समर्पण

करुणामय विद्यामूर्ति गुरुवर **श्रीधर्मानन्द**

नायक महास्थविरपादके करकमलोंमें

शिष्यद्वयकी सादर भेंट ।

प्रकाशकीय निवेदन

आज हम महाबोधि-ग्रन्थमालाके इस चतुर्थ पुष्प दीर्घ-निकायको पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हैं। हमें यह कहते दुःख होता है, कि आर्थिक कठिनाइयोंके कारण संयुक्तनिकाय (हिन्दी अनुवाद) के तैयार होते हुये भी हम इस समय उसे प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं। हम अपने इन दाताओंके बहुत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस शुभकार्यमें धन दे हमारी सहायता की है—

सेठ युगलकिशोर बिड़ला	५००)
U. Thwin, Rangoon	१००)
डाक्टर पेडामल, अमृतसर	१००)
Quah Ee Sin, Rangoon	१००)

१९-२-३७

विनम्र
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय
प्रधानमंत्री,
महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

प्राक्कथन

दी घ नि का य त्रिपिटकके सुत्त(=सूत्र) पिटकके पाँच निकायोंमेंसे पहिला है। म ज्झि म नि का य का नबर यद्यपि इसके बाद आता है, किन्तु, उपयोगिताका ख्याल कर उसे पहिले प्रकाशित किया गया। बुद्धचर्या और विनय पिटक की भूमिकाओंमे संक्षेपसे बतलाया जा चुका है, कि कैसे बुद्धनिर्वाणके ढाईसौ वर्षोंके भीतर ही बौद्धधर्ममें १८ निकाय (=सम्प्रदाय) हो गये। इन सभी निकायोंके अपने अपने पिटक थे, या यों कहिये, वेदकी भिन्न भिन्न शाखाओंमे जैसे पाठभेद तथा कुछ न्यूनाधिक मंत्र मिलते है, वैसे ही इन निकायोंके पिटकोंमें भी कितने ही पाठभेद और कितने ही सुत्तोंकी कमी बेशी थी। किन्तु, उन अठारह निकायोंमसे एक स्थ वि र(=थेर) वाद ही रह गया है, जिसका पिटक पाली भाषामें है, और जिसके एक ग्रंथका अनुवाद हम आज पाठकोंके सामने रख रहे हैं। बाकी नि का य लुप्त हो गये, और उनके वही ग्रंथ बच रहे हैं, जो चीनी या तिब्बती भाषामें अनुवादित हो चुके थे।

नि का य के लिये दूसरा प्रतिशब्द आ ग म है। पालीमें भी आगम शब्द अज्ञात नहीं है, तो भी अधिकतर निकाय शब्दहीका प्रयोग होता है, किन्तु, संस्कृत पिटकमें आगम ही प्रचलित शब्द था। चीनी भाषामें यही अपभ्रष्ट हो अ गो न् कहा जाता है। चीनी दीर्घागममें ३० सूत्र है, किन्तु, पालीमें चौंतीस।

तुलनाके लिये देखिये*—		अन्यत्र भी
१—ब्रह्मजालT	दी० २१	Nanjio's 554
२—सामञ्ञफल	दी० २७	N 593
३—अम्बट्ठ	दी० २०	N 592
४—सोणदंड	दी० २२	
५—कुटदन्त	दी० २३	
६—महालि		
७—जालिय		
८—कस्सपसीहनाद	दी० २५	
९—पोट्ठपाद	दी० २८	
१०—सुभ		
११—केवट्ट	दी० २४	
१२—लोहिच्च	दी० २९	
१३—तेविज्ज	दी० २६	

---

*दी=दीर्घागम, म=मध्यमागम। दी=दीर्घागम (Nanjio's 545), म=मध्यमागम (Nanjio's 342) T=तिब्बतीय अनुवाद सकन्ग्युर (के, चि)।

१४—महापदान	दी० १	
१५—महानिदान	दी० १३	N. 542 97 and 553
१६—महापरिनिब्बाण	दी० २	N. 552
१७—महासुदस्सन	म० ६८	
१८—जनवसभ	दी० ४	
१९—महागोविंद	दी० ३	
२०—महासमय T	दी० १९	
२१—सक्कपञ्ह	दी० १४	N. 542 134
२२—महासतिपट्ठान	म० ९८	
२३—पायासिराजञ्ञ	दी० ७	N. 542 71
२४—पाथिक	दी० १५	
२५—उदुम्बरिकसीहनाद	दी० ८	N. 542 104
२६—चक्कवत्तिसीहनाद	दी० ६	N. 542 70
२७—अगञ्ञ	दी० ५	N. 542 154
२८—सम्पसादनिय	दी० १८	
२९—पासादिक	दी० १७	
३०—लक्खण	म० ५९	
३१—सिगालोवाद	दी० १६	N. 543 135, 555, 595
३२—आटानाटिय T		
३३—संगीति	दी० ९	
३४—दसुत्तर	दी० १०	N. 548

इसे देखनेसे मालूम होगा कि पालीके ३४ सुत्तोंमें २७ चीनी दीर्घागममें मिलते हैं, शेष सातमें ३ मध्यमागममें मिलते हैं, और ४ का पता नहीं लगा है। इन सूत्रोंका अनुवादकाल इस प्रकार है—

		काल (ई०)	अनुवादक
१५—महानिदान	(N 553)	१४६	अन्-शि-काऊ
३१—सिगाल	(N 555)	(?),,	,,
३४—दसुत्तर	(N 548)	,,	,,
१—ब्रह्मजाल	(N 554)	२४०(?)	मा-चि-एन्
३—अम्बट्ठ	(N 592)	,,	,,
१६—महापरिनिब्बाण	(N 552)	३००(?)	पो फा चु (२९०-३०६ ई०)
३१—सिगालोवाद	(N 595)	,,	धर्मरक्ष
२—सामञ्ञ	(N 593)	,,	,,
दीर्घागम	(N 545)	४१२-१३	बुद्धयश
मध्यमागम	(N 542)	३९७-९८	गौतम संघदेव

इस प्रकार दीर्घागमके तीन सूत्रोंका अनुवाद १४६ ई० के आसपास हुआ था।

अनुवादोंमें यह नहीं बतलाया गया है, कि यह किस सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु इस दीर्घागमके अनुवादक बुद्धयश (४०३-१३ ई०) को धर्मगुप्तिक विनय ग्रन्थ (N 1117, 1155) का

भी अनुवाद करते देखते हैं, इससे ख्याल होता है, शायद यह धर्मगुप्तिक सम्प्रदायका दीर्घागम हो। कुछ सूत्रोंके मिलानेसे मालूम होता है, कि संस्कृत और पाली सूत्रोंमें बहुत अन्तर नहीं था।

× . × ×

हम दोनोंने अलग अलग सूत्रोंके अनुवाद किये हैं। यद्यपि एक बार फिर एक दूसरेके अनुवादको देख लिया गया है, तोभी कहीं कहीं भाषाकी विषमता रह गई है।

धम्मपद, मज्झिमनिकाय, विनयपिटक और दीघनिकायके हिन्दी अनुवादोंको पाठकोंके सामने रखा जा चुका। हमारे पूर्व संकल्पके अनुसार संयुत्तनिकाय तथा उदान-सुत्तनिपात मिलिन्दपञ्ह दो जिल्द और बाकी रहते हैं, जिनके कि अनुवाद तैयार हैं। यदि हिन्दी-प्रेमी और पाठक, प्रकाशकको आर्थिक सहायता दे प्रोत्साहित करेंगे, तो वह दोनों भाग भी समयपर निकल जायेंगे। भदन्त आनन्दके जातक-हिन्दी अनुवादका प्रथम भाग भी प्रेसमें है। हमें यह प्रसन्नता हो रही है, कि बौद्धधर्मके मौलिक साहित्यके संबंधमें हिन्दी अपने अनुरूप स्थानको लेने जा रही है।

१७-७ ३५ }

राहुल सांकृत्यायन
जगदीश काश्यप

सुत्त(=सूत्र)-अनुक्रमणी

ग्रन्थ-विषय-सूची

१—सीलक्खन्ध-वग्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

दीघ-निकाय

१–ब्रह्मजाल-सुत्त (१।१।१)

१—बुद्धमें साधारण बातें—आरभिक शील, मध्यम शील, महाशील। २—बुद्धमें असाधारण बातें—बासठ दार्शनिक मत—(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें, (२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के बळे सघके साथ राजगृह और नालन्दाके बीच लम्बे रास्तेपर जा रहे थे।

सुप्रिय परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त माणवकके साथ० जा रहा था। उस समय सुप्रिय० अनेक प्रकारसे बुद्ध धर्म और सघकी निन्दा कर रहा था। किन्तु सुप्रियका शिष्य ब्रह्मदत्त० अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी प्रशसा कर रहा था। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पक्षका प्रतिपादन करते भगवान् और भिक्षु-सघके पीछे-पीछे जा रहे थे।

तब भगवान् भिक्षु-सघके साथ रात भरके लिए अम्बलट्ठिका (नामक बाग)के राजकीय भवनमें टिक गये।

सुप्रिय भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्तके साथ० (उसी) भवनमें टिक गया। वहाँ भी सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी निन्दा कर रहा था और ब्रह्मदत्त० प्रशसा। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनो परस्पर विरोधी पक्षका प्रतिपादन कर रहे थे।

रात ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमे इकट्ठे हो बैठे बहुतसे भिक्षुओंमे ऐसी बात चली—'आवुस! यह बळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोंके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक-ठीक जान लेते हैं। यही सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी निन्दा कर रहा है, और उसका शिष्य ब्रह्मदत्त प्रशसा।०"

तब भगवान् उन भिक्षुओंके बातलापको जान बैठकमें गये, और बिछे हुए आसनपर बैठ गये।

बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमें लगे थे?"

इतना कहनेपर उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते(=स्वामिन्)! रातके ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमे इकट्ठे बैठे हम लोगोमे यह बात चली—आवुस! यह बळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्वविद्, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोंके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक ठीक जान लेते हैं। यही सुप्रिय० निन्दा कर रहा है और ब्रह्मदत्त प्रशसा०। इस तरह ये पीछे-पीछे आ रहे हैं। भन्ते! हम लोगोकी बात यही थी कि भगवान् पधारे।"

(भगवान् बोले—) "भिक्षुओ! यदि कोई मेरी निन्दा करे, या धर्मकी निन्दा करे, या सघकी निन्दा करे, तो तुम लोगोको न (उससे) वैर, न असन्तोष और न चित्तमें कोप करना चाहिए।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी निन्दा करे, और तुम (उससे) कुपित या खिन्न हो जाओगे, तो इसमें तुम्हारी ही हानि है।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी निन्दा करे, तो क्या तुम लोग (झट) कुपित और खिन्न हो जाओगे, और इसकी जाँच भी न करोगे कि उन लोगोके कहनेमे क्या सच बात है और क्या झूठ ?"

"भन्ते ! ऐसा नही ।"

"भिक्षुओ ! यदि कोई० निन्दा करे, तो तुम लोगोको सच और झूठ बातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नही है, यह असत्य है, यह बात हम लोगोमे नही है, यह बात हम लोगोमे बिलकुल नहीं है ?

"भिक्षुओ ! और यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी प्रशसा करे, तो तुम लोगोको न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए।० यदि तुम लोग आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाओगे, तो उसमे तुम्हारी ही हानि है ।

"भिक्षुओ ! यदि कोई प्रशसा ० करे, तो तुम लोगोको सच और झूठ बातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह बात ठीक है, यह बात सत्य है, यह बात हम लोगोमे है और यथार्थमें है।

१—बुद्ध में साधारण बातें

(१) आरम्भिक शील

"भिक्षुओ ! यह शील तो बहुत छोटा और गौण है, जिसके कारण अनाळी लोग (=पृथग् जन) मेरी प्रशसा करते है। भिक्षुओ ! वह छोटा और गौण शील कौनसा है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशसा करते है ?—(वे ये है)—श्रमण गौ त म जीवहिंसा (=प्राणातिपात) को छोळ हिंसासे विरत रहता है। वह दड और शस्त्रको त्यागकर लज्जावान, दयालु और सब जीवोका हित चाहनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—श्रमण गौतम चोरी (=अदत्तादान) को छोळकर चोरीसे विरत रहता है। वह किसीसे दी गई चीजको ही स्वीकार करता है (=दत्तादायी), किसीसे दी गई चीजहीकी अभिलाषा करता है (=दत्ताभिलाषी), और इस तरह पवित्र आत्मावाला, होकर विहार करता है।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—व्यभिचार छोळकर श्रमण गौतम निकृष्ट स्त्री-सभोगसे सर्वथा विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—मिथ्या-भाषणको छोळ श्रमण गौतम मिथ्या-भाषणसे सदा विरत रहता है। वह सत्यवादी, सत्यव्रत, दृढवक्ता, विश्वास-पात्र और जैसी कहनी वैसी करनीवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—चुगली करना छोळ श्रमण गौतम चुगली करनेसे विरत रहता है। फूट डालनेके लिए न इधरकी बात उधर कहता है और न उधरकी बात इधर, बल्कि फूटे हुए लोगोको मिलानेवाला, मिले हुए लोगोके मेलको और भी दृढ करनेवाला, एकता-प्रिय, एकता-रत, एकतासे प्रसन्न होनेवाला और एकता स्थापित करनेके लिये कहनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—कठोर भाषणको छोळ श्रमण गौतम कठोर भाषणसे विरत रहता है। वह निर्दोष, मधुर, प्रेमपूर्ण, जँचनेवाला, शिष्ट और बहुजनप्रिय भाषण करनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निरर्थक बातूनीपनको छोळ श्रमण गौतम निरर्थक बातूनीपनसे विरत रहता है। वह समयोचित बोलनेवाला, यथार्थवक्ता, आवश्यकोचित वक्ता, धर्म और विनयकी बात बोलनेवाला तथा सारयुक्त बात कहनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—श्रमण गौतम किसी बीज या प्राणी के नाश करनेसे विरत रहता है, एकाहारी है, और बेवक्तके खानेसे, नृत्य, गीत, वाद्य और अश्लील हाव-भावके दर्शनसे विरत रहता है। माला, गन्ध, विलेपन, उबटन तथा अपनेको सजने-धजनेसे श्रमण गौतम विरत रहता है। श्रमण गौतम ऊँची और बहुत ठाट-बाटकी शय्यासे विरत रहता है। ० कच्चे अन्नके ग्रहणसे विरत रहता है। ० कच्चे मांसके ग्रहणसे विरत रहता है। ० स्त्री और कुमारीके ग्रहणसे विरत रहता है। ० दास और दासीके ग्रहणसे विरत रहता है। बकरी या भेळके ग्रहणसे विरत रहता है। ०कुत्ता और सूअरके ग्रहणसे विरत रहता है। ० हाथी, गाय, घोळा और खच्चरके ग्रहणसे०।० खेत तथा माल असबाबके ग्रहणसे०।० दूतके काम करनेसे ०।० खरीद-बिक्रीके काम करनेसे ०।० तराजू, पैला और बटखरेमें ठगबनीजी करनेसे ०। दलाली, ठगी और झूठा सोना चाँदी बनाना (=निकति)के कुटिल कामसे, हाथ-पैर काटने, बध करने, बाँधने, लूटने-पीटने और डाका डालनेके कामसे विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अनाळी तथागतकी प्रशंसा इसी प्रकार करते हैं।

(२) मध्यम शील

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोंके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीज और सभी प्राणीके नाशमें लगे रहते हैं, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होता है), स्कन्धबीज (=जिनका प्ररोह गाँठसे होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पाँचवाँ अग्रबीज (=ऊपरसे उगना पौधा)। उस प्रकार श्रमण गौतम बीज और प्राणीका नाश नही करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारके जोळने और बटोरनेमें लगे रहते है, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीजोंका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमे नही लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमें लगे रहते है, जैसे—नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तबला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन,[1] हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोंका युद्ध, भेळोंका युद्ध, मुर्गोंका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार-पीटका खेल, सेना, लळाईकी चालें इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमें नही लगा रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० जूआ आदि खेलोंके नशेमे लगे रहते है, जैसे—[2]अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्तिक, खलिक, घटिक, शलाक-हस्त, अक्ष, पगचिर, वंकक, मोक्खचिक, चिंलिगुलिक, पत्ताहक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, और नकल, उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोंके नशेमें नही पळता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस तरहकी ऊँची और ठाट बाटकी शय्यापर सोते है, जैसे—दीर्घ आसन, पलंग, बळे बळे रोयेंवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनों ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर नही सोता।

---

[1] उस समयके खेल।

[2] उस समयके जूये।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनेको सजने-धजनेमें लगे रहते हैं, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, दर्पण, अंजन, माला, लेप, मुख चूर्ण(=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखामें कुछ बाँधना, छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमे नही लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामे लगे रहते है, जैसे—राजकथा, चोर, महामन्त्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, सूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत प्रेतकी कथायें, ससारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ, उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओमें नही लगता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी लळाई झगळोकी बातोमें लगे रहते हैं, जैसे—तुम इस मत(=धर्मविनय)को नही जानते, मै० जानता हूँ, तुम० क्या जानोगे ? तुमने इसे ठीक नही समझा है, मैं इसे ठीक-ठीक समझता हूँ, मैं धर्मानुकूल कहता हूँ, तुम धर्म विरुद्ध कहते हो; जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया, बात कट गई, तुमपर दोषारोपण किया गया, तुम पकळ लिये गये, इस आपत्तिमे छूटनेकी कोशिश करो, यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि, इस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळेकी बातमे नही रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० (इधर-उधर) जैसे—राजा, महामन्त्री, क्षत्रिय, ब्राह्मणो, गृहस्थो, कुमारोके दूतका काम करते फिरते हैं, वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नही करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखंडी और वचक, बातूनी, जोतिषके पेशावाले, जादू-मन्त्र दिखानेवाले और लाभमे लाभकी खोज करते हैं, वैसा श्रमण गौतम नही है।

(3) महाशील

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन बिताते है, जैसे—अंगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूषिक-विष० अग्नि-हवन, दर्वी-होम, तुष-होम, कण-होम, तण्डुल-होम, घृत-होम, तैल-होम, मुखमें घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विष०, बिच्छू झाळ-फूँककी विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (मन्त्र जाप, जिससे लळाईमे बाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, बाण, धनुष०, आयुध०, स्त्री०, पुरुष०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैंस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, बत्तख०, गोह०, कणिका०, कच्छप० और मृगलक्षण, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार० निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—राजा बाहर निकल जायेगा नही निकल जायेगा, यहाँका राजा बाहर निकल जायगा, बाहरका राजा यहाँ आयेगा,

यहाँके राजाकी जीत होगी और बाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और बाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार, श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—चन्द्र-ग्रहण होगा, सूर्य ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेंगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा,० मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा दाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा बादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोका उदय, अस्त, सदोष होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा,० चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोष या निर्दोष होनेसे यह फल होगा, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी०, सस्ती होगी, महँगी पळेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा विद्या, गणना, कविता-पाद इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही०।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र बताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋणम दिये गये रुपयोंके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, सजना-धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रबलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,० दूसरेके कानको बहरा बना देना ० दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देव-दासिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रके बल मुँहसे अग्नि निकालना, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही०।

'भिक्षुओ! अथवा० निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रबलसे पुरुषको नपुसक और नपुसकको पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, बलिकर्म, आचमन, स्नान-कार्य, अग्नि होम, दवा देकर वमन, विरेचन, उर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमे डालनेके लिए तल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमें तेल देकर छिकवाना, अजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही०।

'भिक्षुओ! यह शील तो बहुत छोटे और गौण है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशसा करते हैं।

२—बुद्धमें असाधारण बातें

बासठ दार्शनिक मत

"भिक्षुओ! (इनके अतिरिक्त) और दूसरे धर्म हैं, जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, अतर्कावचर (=जो तर्कसे नही जाने जा सकते), निपुण और पडितोके समझने योग्य है, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्कर कहते हैं, (और) जिन्ह तथागतके यथार्थ गुणको ठीक-ठीक कहने वाले कहते हैं।

(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें

"भिक्षुओ! वे ० धर्म कौन से हैं?

"भिक्षुओ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो १८ कारणोसे पूर्वान्त कल्पिक=आदिम-छोरवाले मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बल पर० पूर्वान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है।

"भिक्षुओ ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण नित्यवादी (=शाश्वतवादी) हैं, जो चार कारणोंसे आत्मा और लोक दोनोंको नित्य मानते हैं ? वे० किस कारण और किस प्रमाणके बल पर ० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं ?

१—शाश्वत-वाद—(१) "भिक्षुओ ! कोई भिक्षु सयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर-चित्तसे उस प्रकार चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाधिप्राप्त चित्तमें अनेक प्रकारके—जैसे एक सौ० हजार० लाख, अनेक लाख पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है—मैं इस नामका, इस गोत्रका, इस रंगका, इस आहारका, इस प्रकारसे सुखो और दु खोंका अनुभव करनेवाला और इतनी आयु तक जीनेवाला था। सो मैं वहाँ मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी मैं इस नामका० था । सो मैं वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ।

"इस प्रकार वह अपने पूर्वजन्मके सभी आकार प्रकारका स्मरण करता है। वह (इसीके बलपर) कहता है—आत्मा और लोक नित्य, अपरिणामी, कूटस्थ और अचल है । प्राणी चलते, फिरते, उत्पन्न होते और मर जाते हैं, (किन्तु) अस्तित्व नित्य है।

"सो कैसे ? मैं भी ० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमें अनेक प्रकारके० पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है। अत ऐसा जान पड़ता है, मानो आत्मा और लोक नित्य० है।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिस प्रमाणके आधार पर कितने श्रमण और ब्राह्मण शाश्वतवादी हो, आत्मा और लोकको नित्य बताते हैं।

"(२) दूसरे, वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर ० आत्मा और लोकको शाश्वत मानते हैं ?

है—आत्मा और लोक नित्य० हैं। प्राणी० मर जाते है, किन्तु अस्तित्व नित्य है।

"भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है०।

"भिक्षुओ ! इन्ही चार कारणोसे शाश्वतवादी श्रमण और ब्राह्मण आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं। जो कोई ० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं, उनके यही चार कारण है। इनको छोड और कोई कारण नही है।

"तथागत उन सभी कारणोंको जानते है, उन कारणोंके प्रमाण और प्रकारको जानते है, और अधिक भी जानते हैं, जानकर भी "मैं जानता हूँ" ऐसा अभिमान नहीं करते। अभिमान न करते हुए स्वय मुक्तिको जान लेते हैं। वेदनाओंकी उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, रस (=आस्वाद), दोष और निराकरणको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते है। भिक्षुओ ! वे धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, अतर्कावचर, निपुण और पडितोंके समझने योग्य हैं, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्कर कहते हैं, जिसे कि तथागतके यथार्थ गुणको कहने वाले कहते है।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२–नित्यता-अनित्यता-वाद (५)—"भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण है, जो अंशत नित्य और अशत अनित्य माननेवाले हैं। वे चार कारणोंसे आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य मानते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य मानते है ?

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षोके बीतनेपर एक समय आता है, जब इस लोकका प्रलय (=सवर्त) हो जाता है। प्रलय हो जानेके बाद आ भा स्व र ब्रह्मलोकके रहनेवाले वहाँ मनोमय, प्रीतिभक्ष (=समाधिज प्रीतिमें रत रहनेवाले) प्रभावान्, अन्तरिक्षचर, मनोरम वस्त्र और आभरणसे युक्त बहुत दीर्घ काल तक रहते हैं।

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षोके बीतनेपर एक समय आता है, जब उस लोकका प्रलय हो जाता है। ० प्रलय हो जानेके बाद सूना (=शून्य) ब्रह्मविमान उत्पन्न होता है। तब कोई प्राणी आयु या पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय ०। वहाँ वह अकेले बहुत दिनो तक रहकर ऊब जाता है, और उसे भय होने लगता है—अहो ! यहाँ दूसरे भी प्राणी आवे !

"तब (कुछ समय बाद) दूसरे भी आयु और पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानम उत्पन्न होते हैं। वे उस (पहले) सत्वके साथी होते है। वे भी वहाँ मनोमय०।

"वहाँ जो सत्व पहले उत्पन्न होता है, उसके मनमें ऐसा होता है —मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा, अभिभू, अजित, सर्वद्रष्टा, वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, महायशस्वी, वशी और हुए और होनेवाले (प्राणियो) का पिता हूँ, ये प्राणी मेरे ही द्वारा निर्मित हुए हैं। सो कैसे ? मेरे ही मनमे पहले ऐसा हुआ था—अहो ! दूसरे भी जीव यहाँ आवें। फिर मेरी ही इच्छासे ये सत्व यहाँ उत्पन्न हुए हैं।

"जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुए थे, उनके मनमें भी ऐसा हुआ—यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा० है। हम सभी इसी ब्रह्मा द्वारा निर्मित किये गये हैं। सो किस हेतु? इनको हम लोगोने पहले ही उत्पन्न देखा, हम लोग तो इनके पीछे उत्पन्न हुए। अत जो (हम लोगो से) पहले ही उत्पन्न हुआ, वह हम लोगोस दीर्घ आयु वा, अधिक गुणपूर्ण और अधिक यशस्वी हैं, और जो (हम सब) प्राणी उसके पीछे हुए वे अल्प आयुके, अल्पगुणो से युक्त और अल्प यशवाले हैं।

"भिक्षुओ ! तब कोई प्राणी वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है। यहाँ आकर वह घरसे बे-घर हो साधु हो जाता है। वह ० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें वह अपने

पहले जन्मको स्मरण करता है, उससे पहलेको नही,० । वह ऐसा कहता है—जो ब्रह्मा, महाब्रह्मा है०, जिसके द्वारा हम लोग निर्मित किये गये है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिणामधर्मा और अचल है, और ब्रह्मासे निर्मित किये गये हम लोग अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत, परिणामी और मरणशील है।

"भिक्षुओ! यह पहला कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य मानते० है।

(६) "दूसरे ०? क्री डा प्र दू षि क नामके कुछ देव है। वे बहुत काल तक रमण=क्रीडामे लगे रहते है। उसमे उनकी स्मृति क्षीण हो जाती है। स्मृतिके क्षीण हो जानेसे वे उस शरीरसे च्युत हो जाते है, और यहाँ उत्पन्न होते है। यहाँ आकर साधु हो जाते है।० साधु हो० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करते है, जिस समाहित चित्तमें अपने पहले जन्मको स्मरण करते हैं, उसके पहलेको वह ऐसा कहते है—जो क्रीडाप्रदूषिक देव नही होते है, वे बहुत काल तक रमण-क्रीडामे लगे होकर नही विहार करते। ० इसमे उनकी स्मृति क्षीण नही होती। स्मृतिके क्षीण न होनेके कारण वे उस शरीरसे च्युत नही होते, वे नित्य, ध्रुव रहते है, और जो हम लोग क्रीडा प्रदूषिक देव है, सो बहुत काल तक रमण-क्रीडामे लगे होकर विहार करते रहे, जिससे हम लोगोकी स्मृति क्षीण हो गई। स्मृतिके क्षीण होनेसे हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। अत हम लोग अनित्य, अध्रुव मरणशील है।

"भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य० मानते है।

"(७) तीसरे ०? भिक्षुओ! म नः प्र दू षि क नामके कुछ देव है। वे बहुत काल तक परस्पर एक दूसरेको क्रोधसे देखते है। उसमे वे एक दूसरेके प्रति द्वेष करने लगते है। एक दूसरेके प्रति बहुत काल तक द्वेष करते हुए शरीर और चित्तसे क्लान्त हो जाते है, अत वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते है।

"भिक्षुओ! तब कोई प्राणी उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (=इस लोकमें) उत्पन्न होते है। यहाँ आकर० साधु हो जाते है।० साधु हो० उस समाधिको प्राप्त करते है, जिस समाहित चित्तमें अपने पहले जन्मको स्मरण करते है, उसके पहलेका नही। (तब) वह ऐसा कहते है—जो मन प्रदूषिक देव नही होते, वे बहुत काल तक एक दूसरेको क्रोधकी दृष्टिसे नही देखते रहते, जिससे उनमे परस्पर द्वेष भी नही उत्पन्न होता।० द्वेष नहीं करनेसे वे शरीर और चित्तसे क्लान्त भी नहीं होते। अत वे उस शरीरसे च्युत भी नही होते। वे नित्य, ध्रुव० है।

और जो हम लोग मन प्रदूषिक देव थे, सो० क्रोध०, द्वेष करते रहे, (और) ० मन तथा शरीरसे थक गये। अत हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। हम लोग अनित्य, अध्रुव० है।

"भिक्षुओ! यह तीसरा कारण० है।

"(८) चौथे ०? भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण तर्क करनेवाले है? वे तर्क और न्यायसे ऐसा कहते है—जो यह चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा और शरीर है, वह अनित्य, अध्रुव० है, और (जो) यह चित्त, मन या विज्ञान है (वह) नित्य, ध्रुव ० है।

"भिक्षुओ। यह चौथा कारण है ०।

"भिक्षुओ! ये ही श्रमण और ब्राह्मण अशत नित्य और अशत अनित्य० मानते है०। वे सभी इन्ही चार कारणोंसे ऐसा मानते है, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ! तथागत उन सभी कारणोको जानते है०।

३–सान्त-अनन्त-वाद—(१) "भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोसे अन्तानन्त-वादी है, जो लोकको सान्त और अनन्त मानते है। वे० किस कारण० ऐसा मानते है?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें 'लोक सान्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और परिछिन्न है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें 'लोक सान्त है', ऐसा भान होता है, इसीसे मैं समझता हूँ कि लोक सान्त और परिछिन्न है।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(१०) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण०, समाहित चित्तमें 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कहीं नहीं है। जो० ऐसा कहते हैं कि यह लोक सान्त और परिच्छिन्न है, वे मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थमें) यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कहीं नहीं है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है, अत मैं समझता हूँ कि यह लोक अनन्त है०।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(११) तीसरे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० समाहित चित्तमें 'यह लोक ऊपरसे नीचे सान्त और दिशाओंकी ओर अनन्त है, ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है। जो लोकको सान्त बताते हैं और जो अनन्त, दोनों मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थमें) यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें ० ऐसा भान होता है, जिससे मैं समझता हूँ कि यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है।

"भिक्षुओ ! यह तीसरा कारण है कि जिससे वे ० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(१२) चौथे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तर्क करनेवाला होता है। वह अपने तर्कसे ऐसा समझता है कि 'यह लोक न सान्त है और न अनन्त।' जो ० लोकको सान्त, या अनन्त, (=सान्तानन्त) मानते हैं, सभी मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थ में) यह लोक न सान्त और न अनन्त है।

'भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"भिक्षुओ ! इन्हीं चार कारणोंसे कितने श्रमण अन्तानन्तवादी हैं, लोकको सान्त और अनन्त बताते हैं। वे सभी इन्हीं चार कारणोंसे ऐसा करते हैं। इन्हे छोड और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! उन कारणोको तथागत जानते हैं ०।

"भिक्षुओ ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण अमराविक्षेप*वादी हैं, जो चार कारणोंसे प्रश्नोंके पूछे जानेपर उत्तर देनेसे घबळा जाते हैं ? वे क्यों घबळा जाते हैं ?

४—अमराविक्षेप-वाद—(१३) "भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नहीं जानता कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमें ऐसा होता है—मैं ठीकसे नहीं जानता हूँ कि यह अच्छा है और यह बुरा। तब मैं ठीकसे बिना जाने कह दूँ—'यह अच्छा है' और 'यह बुरा', यदि 'यह अच्छा है' या 'यह बुरा है' तो यह असत्य ही होगा। जो मेरा असत्य-भाषण होगा, सो मेरा घातक (=नाशका कारण) होगा, और जो घातक होगा, वह अन्तराय (=मुक्तिमार्गमें विघ्नकारक) होगा। अत वह असत्य-भाषणके भय और घृणासे न यह कहता है कि 'यह अच्छा है' और न यह कि 'यह बुरा'।

"प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बातें नहीं करता—यह भी मैंने नहीं कहा, वह भी नहीं कहा,

---

*अमराविक्षेप नामक छोटी-छोटी मछलियाँ बळी चंचल होती हैं। जिस तरह बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे हाथमें नहीं आती है, उसी तरह इनके सिद्धान्तमें भी कोई स्थिरता नहीं।

अन्यथा भी नहीं, ऐसा नहीं है—यह भी नहीं, ऐसा नहीं नहीं है—यह भी नहीं कहा। भिक्षुओ! यह पहला कारण है जिससे कितने अमराविक्षेपवादी श्रमण या ब्राह्मण प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहते।

"(१४) दूसरे० ? भिक्षुओ! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नहीं जानता, कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमें ऐसा होता है—मैं ठीकसे नहीं जानता हूँ कि यह अच्छा है और यह बुरा तब यदि मैं बिना ठीकसे जाने कह दूँ ० तो यह मेरा लोभ, राग, द्वेष और क्रोध ही होगा। लोभ, राग० मेरा उपादान (=ससारकी ओर आसक्ति) होगा। जो मेरा उपादान होगा, वह मेरा घात होगा, और घात मुक्तिके मार्गमे विघ्नकर होगा। अत वह उपादानके भयसे और घृणासे यह भी नहीं कहता कि यह अच्छा है, और यह भी नहीं कहता कि यह बुरा है। प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहता—मैं यह भी नहीं कहता, वह भी नहीं ०।

"भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० कोई स्थिर बात नहीं कहते।

"(१५) तीसरे० ? भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण यह ठीकसे नहीं जानता कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमें ऐसा होता है —० यदि मैं बिना ठीकसे जाने कह दूँ ०, और जो श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, बळे शास्त्रार्थ करनेवाले, कुशाग्रबुद्धि तथा दूसरेके सिद्धान्तोको अपनी प्रज्ञासे काटनेवाले हैं, वे यदि मुझसे पूछें, तर्क करें, या बाते करें, और मैं उसका उत्तर न दे सकूँ तो यह मेरा विघात (=दुर्भाव) होगा। जो मेरा विघात होगा, वह मेरी मुक्तिके मार्गमे बाधक होगा। अत, वह पूछे जानेके भय और घृणासे न तो यह कहता है कि यह अच्छा है और न यह कि यह बुरा है। प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बाते नहीं करता—मैं यह भी नहीं कहता, वह भी नहीं ०।

"भिक्षुओ! यह तीसरा कारण है, जिससे वे० कोई स्थिर बात नहीं कहते।

"(१६) चौथे ०? भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण मन्द और महामूढ होता है। वह अपनी मन्दता और महामूढताके कारण प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहता। यदि मुझे इस तरह पूछे—'क्या परलोक है?' और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तो कहूँ कि 'परलोक है'। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं०। यदि मुझे पूछे, 'क्या परलोक नहीं है'०। परलोक है, नहीं है, और न है, न नहीं है। औपपातिक (=अयोनिज) सत्व (=ऐसे प्राणी जो बिना माता पिताके सयोगके उत्पन्न हुए हों) हैं, नहीं-है, है-भी-और-नहीं भी, और-न-है-न-नहीं है। सुकृत और दुष्कृत कर्मोंके विपाक (=फल) हैं, नहीं-है, है-भी-और-नहीं भी, और-न है, न नहीं है। तथागत मरनेके बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं०। ऐसा भी मैं नहीं कहता, वैसा भी नहीं ०।

"भिक्षुओ! यह चौथा कारण है जिससे वे० कोई स्थिर बात नहीं कहते।

"भिक्षुओ! ० वे सभी इन्हीं चार कारणोसे ऐसा मानते है, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है। भिक्षुओ! तथागत उन सभी कारणोको जानते है०।

५—अकारण-वाद—(१७) "भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण अ का र ण वा दी (=बिना किसी कारणके सभी चीजें उत्पन्न होती है, ऐसा माननेवाले) है। दो कारणोसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते है। वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर० ऐसा मानते है? भिक्षुओ! 'अ स ञ्ज्ञि स त्व' (=जो सज्ञासे रहित है) नामके कुछ देव है। सज्ञाके उत्पन्न होनेसे वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते है। तब, उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (इस लोकमें) उत्पन्न होते है। यहाँ० साधु हो जाते है।० साधु होकर० समाहित चित्तमें सज्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करते है, उसके पहलेको नहीं। वह ऐसा कहते है—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न हुए हैं। सो कैसे? मैं पहले नहीं था, मैं नहीं होकर भी उत्पन्न हो गया।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी' हो आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न बतलाते हैं।

"(१८) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तार्किक होता है। वह स्वयं तर्क करके ऐसा समझता है—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न होते हैं।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी'० हैं।

"भिक्षुओ ! इन्हीं दो कारणोंसे वे० अकारणवादी० हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है। भिक्षुओ ! तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं०।

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्हीं १८ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक, पूर्वछोरके मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! उन दृष्टि-स्थानों (=सिद्धान्तों)के प्रकार, विचार, गति और भविष्य क्या है, (वह सब) तथागतको विदित है। तथागत उसे और उससे भी अधिक जानते हैं। जानते हुए ऐसा अभिमान नहीं करते—'मैं इतना जानता हूँ'। अभिमान नहीं करते हुए वे निर्वृति (=मुक्ति)को जान लेते हैं। वेदनाओंके समुदय (=उत्पत्तिस्थान), उपशम, आस्वाद, दोष और निःसरण (=दूर करना)को यथार्थतः जानकर तथागत उपादान (=लोकासक्ति)से मुक्त होते हैं।

"भिक्षुओ ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोंके जानने योग्य हैं, जिसे तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्कर उपदेश देते हैं जिन्हें कि तथागतके यथार्थ गुणोंको कहनेवाले कहते हैं।

(२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें

"भिक्षुओ ! कितनेही श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो ४४ कारणोंसे अपरान्तकल्पिक, अपरान्त मत माननेवाले और अपरान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं ?

६–मरणान्तर होनेवाला आत्मा—(१९–३४) 'भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण 'मरनेके बाद आत्मा[1] संज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे १६ कारणोंसे ऐसा मानते हैं। वे० किन्हें कारणोंसे ऐसा क्यों मानते हैं ? मरनेके बाद आत्मा रूपवान्, रोगरहित और आत्म-प्रतीति (संज्ञा=प्रतीति)के साथ रहता है। अरूपवान् और रूपवान् आत्मा होता है, न रूपवान् न अरूपवान् आत्मा होता है, आत्मा सान्त होता है, आत्मा अनन्त होता है, आत्मा सान्त और अनन्त होता है, आत्मा न सान्त और न अनन्त होता है, आत्मा एकात्मसंज्ञी होता है, आत्मा नानात्मसंज्ञी होता है, आत्मा परिमित-संज्ञावाला होता है, आत्मा अपरिमितसंज्ञावाला होता है, आत्मा बिल्कुल शुद्ध होता है, आत्मा बिल्कुल दुःखी होता है, आत्मा सुखी और दुःखी होता है, आत्मा सुख दुःख रहित होता है, आत्मा अरोग और संज्ञी होता है।

'भिक्षुओ ! इन्हीं १६ कारणोंसे वे० ऐसा कहते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोंको जानते हैं०।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

---

[1] "मैं"के ख्याल (=संज्ञा)के साथ।

७—मरणान्तर बेहोश आत्मा—(३५–४२) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोसे 'मरनेके बाद आत्मा असञ्ज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ? वे कहते है—मरनेके बाद आत्मा असञ्ज्ञी, रूपवान् और अरोग रहता है—अरूपवान्०, रूपवान् और अरूपवान्,० न रूपवान् और न अरूपवान्०, सान्त०, अनन्त०, सान्त और अनन्त०, न सान्त और न अनन्त०।

"भिक्षुओ ! इन्ही आठ कारणोसे वे० 'मरनेके बाद आत्मा असञ्ज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० सभी इन्ही आठ कारणोंसे० इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोंको जानते है।

८—मरणान्तर न-होशवाला न-बेहोश आत्मा—(४३–५०) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोसे 'मरनेके बाद आत्मा नैवसञ्ज्ञी, नैवअसञ्ज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ?

"भिक्षुओ ! मरनेके बाद आत्मा रूपवान्, अरोग और नैवसञ्ज्ञी नैवासञ्ज्ञी रहता है। वे ऐसा कहते है—अरूपवान् ०।

"भिक्षुओ ! इन्ही आठ कारणोसे वे० 'मरने के बाद आत्मा नैवसञ्ज्ञी नैवअसञ्ज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० सभी इन्ही आठ कारणोसे०, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोको जानते है०।

९—आत्माका उच्छेद—(५१–५७) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण सात कारणोसे 'सत्व (=आत्मा) का उच्छेद, विनाश और लोप हो जाता है' ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मानते है—यथार्थमे यह आत्मा रूपी=चार महाभूतोसे बना है, और माता पिताके सयोगसे उत्पन्न होता है, इसलिए शरीरके नष्ट होते ही आत्मा भी उच्छिन्न, विनष्ट और लुप्त हो जाता है। क्योकि यह आत्मा बिल्कुल समुच्छिन्न हो जाता है, इसलिए वे सत्व(=जीव) का उच्छेद, विनाश और लोप बताते है।

"(जब) उन्हे दूसरे कहते—जिसके विषयमें तुम कहते हो, वह आत्मा है, (उसके विषयमें) मैं ऐसा नही कहता हूँ कि नहीं है, किन्तु यह आत्मा इस तरहसे बिल्कुल उच्छिन्न नही हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी, का मा व च र लोकमें रहनेवाला (जहाँ आत्मा सुखोपभोग करता है), और भोजन खाकर रहनेवाला है। उसको तुम न तो जानते हो और न देखते हो। उसको में जानता और देखता हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न और विनष्ट हो जाता है, मरनेके बाद नही रहता। इस तरह आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इस तरह कितने सत्वोंका वह उच्छेद, विनाश और लोप बताते है।

"उनसे दूसरे कहते है—जिसके विषयमें तुम कहते हो, वह आत्मा है, (उसके विषयमें) 'यह नहीं है', ऐसा मै नही कहता, किन्तु यह उस तरह बिल्कुल उच्छिन्न नहीं हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी मनोमय, अग प्रत्यगसे युक्त और अहीनेन्द्रिय है। उसे तुम नहीं जानते०, मैं जानता० हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न० हो जाता है०। ० आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इसलिये वह कितने सत्वोका उच्छेद, विनाश और लोप बताते है।

"उन्हे दूसरे कहते है—० वह आत्मा है०; किन्तु उस तरह० नहीं ०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे रूप और सज्ञास भिन्न, प्रतिहिंसावाली सज्ञाओंके अस्त हो जानेसे नानात्म (=नाना शरीरकी) सज्ञाओंको मनमे न करनेसे अनन्त आकाशकी तरह अनन्त आकाश शरीरवाला है। उसे तुम नहीं जानते०, मैं जानता० हूँ। यह आत्मा० उच्छिन्न हो जाता है, अत कितने इस प्रकार सत्वका उच्छेद० बताते है।

"उनसे दूसरे कहते है—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे अनन्त आकाश-शरीरको अतिक्रमण (=लाँघ) कर अनन्त विज्ञान-शरीरवाला है।

"उन्हे दूसरे कहते है—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहमे विज्ञान-आयतनको अतिक्रमणकर कुछ नही ऐसा अकिंचन (=शून्य) शरीरवाला रहता है।०

"उन्हे दूसरे कहते है—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहमे आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर शान्त और प्रणीत नैवसज्ञा-न-असज्ञा है।०

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्ही सात कारणोमे उच्छेदवादी हो, जो (वस्तु) अभी है, उसका उच्छेद, विनाश और लोप बताते है। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत उनको जानते है।०

१०–इसी जन्ममें निर्वाण—(५८–६२) 'भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण पाँच कारणोसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी (=इसी ससारमें देखते-देखते निर्वाण हो जाता है, ऐसा माननेवाले) है, जो ऐसा बतलाते है कि प्राणीका इसी ससारमें देखते देखते निर्वाण हो जाता है। वे० ऐसा क्यो मानते है ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मत माननेवाला होता है—चूँकि यह आत्मा पाँच काम-गुणो (=भोगो) मे लगकर सासारिक भोग भोगता है, इसलिए यह इसी ससारमें आँखोके सामने ही निर्वाण पा लेता है। अत कितने ऐसा बतलाते है कि सत्व इसी ससारमे देखते-देखते निर्वाण पा लेता है।

'उनमे दूसरे कहते है—०। यह आत्मा इस तरह देखते-देखते ससार हीमें निर्वाण नही प्राप्त कर लेता। सो कैसे ? सासारिक काम भोग अनित्य, दुख और चलायमान है। उनके परिवर्तन होते रहनेसे शोक, रोना पीटना, दुख=दौर्मनस्य और बळी परेशानी होती है।

"अत यह आत्मा कामोमे पृथक् रह, बुरी बातोको छोळ, सवितर्क, सविचार विवेकज प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। इसलिए यह आत्मा इसी ससारमे आँखोके सामने ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है०।

"उनमे दूसरे कहते है—०। आत्मा इस प्रकार ० निर्वाण नही पाता। सो कैसे ? जो वितर्क और विचार करनेसे बळा स्थूल (=उदार) मालूम होता है, वह आत्मा वितर्क और विचारके शान्त हो जानेसे भीतरी प्रसन्नता (=आध्यात्म सम्प्रसाद), एकाग्रचित्त हो, वितर्क-विचार-रहित समाधिज प्रीति-सुखवाले दूसरे ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है।

"इतनेसे यह आत्मा ससारहीमें आँखोके सामने निर्वाण प्राप्त कर लेता है।०

"उनसे दूसरे कहते है—०। सो कैसे ? जो प्रीति पा चित्तका आनन्दसे भर जाना है, उसीसे स्थूल प्रतीत होता है। क्योकि यह आत्मा प्रीति और विरागसे उपेक्षायुक्त (=अनासक्त) होकर विहार करता है, तथा ज्ञानयुक्त पण्डितोसे वर्णित सभी सुखको शरीरसे अनुभव करता है, अत उपेक्षायुक्त स्मृतिमान् और सुखविहारी तीसरे ध्यानको प्राप्त करता है।

"इतनेसे ० निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"उनसे दूसरे कहते है—०। जो वहाँ इतनसे चित्तका सुखोपभोग स्थूल प्रतीत होता है, यह आत्मा सुख और दुखके नष्ट होनेसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पहले ही अस्त होनसे, न सुख न दुखवाले, उपेक्षा और स्मृतिसे परिशुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है।०

"इतनेसे० निर्वाण"०।

"भिक्षुओ ! इन्ही पाँच कारणोसे वे० 'इसी ससारमे आँखोके सामने निर्वाण प्राप्त होता है,' ऐसा मानते है। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोको जानते है०।

"भिक्षुओ ! श्रमण और ब्राह्मण इन्ही ४४ कारणोसे अपरान्तकल्पिक मत माननेवाले और

अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! ये श्रमण और ब्राह्मण इन्ही ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक, पूर्वान्त और अपरान्त मत माननेवाले तथा पूर्वान्त और अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त और दूसरा कोई कारण नही हैं।

"तथागत उन सभी कारणोको जानते है, उन कारणोंके प्रमाण और प्रकारको जानते है, और उससे अधिक भी जानते हैं, जानकर भी 'मैं जानता हूँ', ऐसा अभिमान नहीं करते।

"वेदनाओकी निवृत्ति, उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, आस्वाद, दोष और लिप्तताको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते हैं। भिक्षुओ ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोके समझनेके योग्य है, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्-कर कहते हैं, जिसे तथागतके यथार्थ गुणको कहनेवाले कहते हैं।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोंसे नित्यतावादी है तथा आत्मा और लोकको नित्य कहते है, वह उन सासारिक वेदनाओको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणो और ब्राह्मणोकी चचलता मात्र है।

"भिक्षुओ ! जो ० चार कारणोंसे अशत नित्यतावादी और अशत अनित्यतावादी है, जो ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको अन्तानन्तिक (=सान्त भी और अनन्त भी) मानते हैं, जो चार कारणोंसे प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नही कहते, जो अकारणवादी हो दो कारणोंसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते है, जो ० इन अट्ठारह कारणोंसे ० पूर्वान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं।

जो० सोल्ह कारणोंसे मरनेके बाद आत्मा सज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते, जो ० आठ कारणोंसे 'मरनेके बाद आत्मा सज्ञावाला नहीं रहता', ऐसा मानते हैं, जो ० आठ कारणोंसे० आत्मा न तो सज्ञावाला और न नहीं-सज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते हैं, जो सात कारणोंसे उच्छेदवादी ० हैं, जो पाँच कारणोंसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी ० हैं, जो० इन ४४ कारणोंसे ० अपरान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं।

"जो ० इन ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक ० पूर्वान्त और अपरान्तके आधार पर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है, वह सभी उन सासारिक वेदनाओको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणो और ब्राह्मणोकी चचलता मात्र है।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं वह स्पर्श होनेसे। ० ......। जो ० ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० हैं, वह स्पर्शसे ही होता।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं, उन्हे स्पर्शके बिना ही वेदना होती है, ऐसी बात नहीं है ०। .... ।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० हैं, वे सभी छै स्पर्शायतनों (=इन्द्रियों)से स्पर्श करके वेदनाको अनुभव करते हैं। उनकी वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णा० से उपादान, उपादान० से भव, भव० से जन्म और जन्म०से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और परेशानी होती है। भिक्षुओ ! जब भिक्षु छै स्पर्शायतनोंके समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और निस्सरणको यथार्थसे जान लेता है, तब वह इनसे उत्तमकी बातोंको भी जान लेता है।

"भिक्षुओ ! ० वे सभी इन्ही ६२ कारणोंके जालमें फँसकर बँधे रहते हैं। भिक्षुओ ! जैसे

कोई दक्ष मल्लाह, या मल्लाहका लळका छोटे-छोटे छेदवाले जालसे सारे जलाशयको हीडे, उसके मनमे ऐसा हो—इस जलाशयमें जो अच्छी-अच्छी मछलियाँ हैं, सभी जालमे फँसकर बझ गई है, उसी तरहमें०।

"भिक्षुओ ! भव-तृष्णा (=जन्मके लोभ) के उच्छिन्न हो जानेपर भी तथागतका शरीर रहता है। जब तक उनका शरीर रहता है, तभी तक उन्हें मनुष्य और देवता देख सकते हैं। शरीर-पात हो जाने के बाद उनके जीवन-प्रवाहके निरुद्ध हो जानेमे उन्हें देव और मनुष्य नहीं देख सकते। भिक्षुओ ! जैसे किसी आमके गुच्छेकी ढेपके टूट जानेपर उस ढेपसे लगे सभी आम नीचे आ गिरते हैं, उसी तरह भव-तृष्णाके छिन्न हो जानेपर तथागतका शरीर होता है।०"

भगवान्के इतना कहनेपर आयुष्मान आनन्दने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है। भन्ते ! आपके इस उपदेशका नाम क्या हो।"

"आनन्द ! तो तुम इस धर्म उपदेशको 'अर्थजाल' भी कह सकते हो, धर्मजाल भी०, ब्रह्मजाल भी०, दृष्टिजाल भी०, तथा अलौकिक संग्रामविजय भी कह सकते हो।"

भगवान्ने यह कहा। उन भिक्षुओंने भी अनुकूल मनसे भगवान्के कथनका अभिनन्दन किया। भगवान्के इस प्रकार विस्तारपूर्वक कहनेपर दस हजार ब्रह्माड काँप उठे।

२—सामञ्ञफल-सुत्त (१।२)

१—१२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल छँ तीर्थंकरोंके मत—शील (=सदाचार), समाधि, प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [1]राजगृहमें [2]जीवक कौमार-भृत्यके आम्रवनमें, साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ विहार करते थे।

उस समय पूर्णमासीके उपोसथके दिन चातुर्मासकी कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा)से पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध [3]अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्योंसे घिरा, उत्तम प्रासादके ऊपर बैठा हुआ था। तब राजा ० अजातशत्रु ० ने उस दिन उपोसथ (=पूर्णिमा)को उदान कहा—

---

[1] अ. क. "यह बुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय नगर होता है, बाकी समय शून्य भूतोंका डेरा रहता है।"

[2] अ. क. "...जीवकने एक समय भगवान्‌को...विरेचन देकर शिविके दुशालेको देकर, वस्त्र(-दान)के अनुमोदनके अन्तमें स्रोतआपत्तिफलको पा सोचा—'मुझे दिनमें दो तीन बार बुद्धकी सेवामें जाना है, तथा यह वेणुवन अति दूर है, और मेरा आम्रवन समीपतर है, क्यों न मैं यहाँ भगवान्‌के लिये विहार बनवाऊँ'। (तब) उसने उस आम्रवनमें रात्रि-स्थान, दिन-स्थान, गुफा(=लयन), कुटी, मंडप आदि तैयार करा, भगवान्‌के अनुरूप गंध-कुटी बनवा, आम्रवनको अठारह हाथ ऊँची ताँबेके पत्रके रंगके प्राकारसे घिरवाकर, चीवर-भोजन दानके साथ बुद्धसहित भिक्षु-संघके उद्देश्यसे दान-जल छोळकर, विहार अर्पित किया।"

[3] अ. क. "इसके पेटमें होते देवीको....दोहद(=सधौर) उत्पन्न हुआ।...राजाने...वैद्यको बुलाकर सुनहली छुरीसे (अपनी) बाँह चिरवा सुवर्णके प्यालेमें लोहू ले पानीमें मिला, पिला दिया। ज्योतिषियोंने सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका शत्रु होगा, इसके द्वारा राजा मारा जायेगा।' देवीने सुनकर...गर्भ गिरानेके लिये बागमें जाकर पेट मँडवाया, किंतु गर्भ न गिरा।...। जन्मके समय भी...रक्षक लोग बालकको हटा ले गये। तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया। उसको पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ; इससे वह मार न सकी। राजाने भी क्रमशः उसे युवराज-पद दिया।... राज्य दे दिया। उसने...देवदत्तसे कहा। तब उसने उससे कहा—'...थोळेही दिनोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनेगा।...। चुपकेसे मरवा डालो।'

'किन्तु भन्ते! मेरा पिता है न? शस्त्र-वध्य नहीं है।'

'भूखा रखकर मार दो।' उसने पिताको तापन-गेहमें डलवा दिया। तापनगेह कहते हैं, (लोह-) कर्म करनेके लिये (बने) धूम-घरको। और कह दिया—मेरी माताको छोळकर दूसरेको मत देखने

'अहो ! कैसी रमणीय चाँदनी रात है ! कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ! कैसी दर्शनीय चाँदनी रात है ! ! ! कैसी प्रासादिक चाँदनी रात है ! ! ! कैसी लक्षणीय चाँदनी रात है ! ! ! किस श्रमण या ब्राह्मणका सत्सग करें, जिसका सत्सग हमारे चित्तको प्रसन्न करे।"

ऐसा कहनेपर एक राज मन्त्रीने मगधराज, अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्रसे यह कहा—"महाराज ! यह पू र्ण का श्य प सघ स्वामी=गण अध्यक्ष, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थङ्कर (=मतस्थापक) बहुत लोगोसे सम्मानित, अनुभवी, चिरकालका साधु वयोवृद्ध है। महाराज उसी पू र्ण का श्य प से धर्मचर्चा करें,

— — — — ——

देना। देवी सुनहले कटोरे (=सरक)में भोजन रख, उत्सगमें (छिपा) प्रवेश करती थी। राजा उसे खाकर निर्वाह करता था। उसने वह हाल सुन—'मेरी माताको उत्सग (=ओइछा) बाँध मत जाने दो।' तब जूळेमें डालकर तब सुवर्ण पादुकामें । तब देवी गधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार मधुर(रस) मलकर, कपळा पहिनकर जाने लगी। राजा उसके शरीरको चाटकर निर्वाह करता था। । 'अबसे मेरी माताका जाना रोक दो।' देवी दर्वाजेके पास खळी हो बोली—'स्वामि बिंबिसार ! बचपनमें मुझे इसे मारने नहीं दिया, अपने शत्रुको अपनेही पाला। यह अब अन्तिम दर्शन है। इसके बाद अब तुम्हे न देखने पाऊँगी। यदि मेरा (कोई) दोष हो, तो क्षमा करना' (कह) रोती काँदती लौट गई।

उसके बादसे राजाको आहार नहीं मिला। राजा (स्रोतआपत्ति)-मार्गफल (की भावना)के सुखसे टहलते हुए निर्वाह करता था। । 'मेरे पिताके पैरोको छुरेसे फाळकर नून-तेलसे लेपकर खैरके अगारमें चिटचिटाते हुए पकाओ—(कह) नापितको भेजा। पका दिया। राजा मर गया। उसी दिन राजा (अजातशत्रु)को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो लेख (=पत्र)एक साथही निवेदन करनेके लिये आये। अमात्योंने पहिले पुत्र-जन्मके लेखको ही राजाके हाथमें रक्खा। उसी क्षण पुत्र-स्नेह राजाको उत्पन्न हो, सकल शरीरको व्याप्तकर, अस्थि-मज्जा तकमें समा गया। उस समय उसने पिताके गुणको जाना—'मेरे पदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसाही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा'। 'जाओ भणे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो' बोला। 'किसको मुक्त कराते हो देव !' (कहकर) दूसरा लेख हाथमें रख दिया। वह उस समाचारको सुनकर रोते हुए माताके पास जाकर बोला—'अम्मा ! मेरे पिताका मेरे ऊपर स्नेह था ?' उसने कहा—'बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है ? बचपनमें तेरी अँगुलीमें फोळा हुआ था। तब रोते रोते तुझे न समझा सकनेके कारण, कचहरी (=विनिश्चयशाला-अदालत) में बैठे, तेरे पिताके पास ले गये। पिताने तेरी अँगुली मुहमें रक्खी। फोळा मुखमें ही फूट गया। तब तेरे स्नेहसे उस खून मिली पीबको न थूककर, घोट गये। इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था।' उसने रो काँदकर पिताकी शरीर क्रिया की।

देवदत्तने सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिषद लेकर चले जानेपर मुहसे गर्म खून फेंक, नवमास बीमार पळा रहकर, खिन्न हो (पूछा)—'आजकल शास्ता कहाँ है ?'

'जेतवनमें' कहनेपर 'मुझे खाटपर ले चलकर शास्ताका दर्शन कराओ' कहकर ले जाये जाते हुए दर्शनके अयोग्य काम करनेसे, जेतवन पुष्करिणीके समीप ही वह फटी पृथ्वीमें धँसकर नर्कमें जा स्थित हुआ। । यह (अजातशत्रु) कोसल-राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह राजकी(का) नहीं। वैदेही पडिताको कहते हैं, जैसे 'वैदेहिका गृहपत्नी', 'आर्य आनन्दको वैदेह मुनि'। वेद= ज्ञान . , उससे ईहन (=प्रयत्न) करती है=वैदेही ।

पू र्ण का श्य प के साथ थोळी ही धर्म-चर्चा करनेसे चित्त प्रसन्न हो जायेगा। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज अजातशत्रु, वैदेहिपुत्र चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने मगधराज ० से यह कहा—"महाराज! यह म क्ख लि गो सा ल संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०से यह कहा—"महाराज! यह अ जि त के श क म्ब ल संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर ०।

दूसरे मन्त्रीने भी ०—"महाराज! यह प्र क्रु ध का त्या य न संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह स ञ्ज य बे ल ट्ठि पु त्त संघवाला ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह निगण्ठ नाथपुत्त (नातपुत्त, नाटपुत्त) संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

उस समय जी व क कौमारभृत्य राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुके पास ही चुपचाप बैठा था। तब राजा ० अजातशत्रुने जीवक कौमारभृत्यसे यह कहा—"सौम्य जीवक! तुम बिलकुल चुपचाप क्यों हो?"

"देव! ये भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे आमके बगीचेमें साढे बारह सौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल यश फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे युक्त, सुगत (=सुन्दरगतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोंको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने)के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं'। महाराज! आप उनके पास चलें और धर्म-चर्चा करें। उन भगवान्‌के साथ धर्मालाप करनेसे कदाचित् आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।"

"तो सौम्य जीवक! हाथियोंकी सवारीको तैयार कराओ।"

तब जीवक कौमारभृत्यने राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुको "देव! जैसी आज्ञा।" कह पाँच सौ हाथी और राजाके अपने हाथीको सजवाकर मगधराज० को सूचना दी—"देव! सवारीके लिये हाथी तैयार हैं, अब देवकी जैसी इच्छा हो करें।"

तब राजा० अजातशत्रु पाँच सौ हाथियोंपर अपनी रानियोंको बिठला स्वयं राजहाथीपर सवार हो मशालोंकी रोशनीके साथ रा ज गृ ह से बळे राजसीय ठाट बाटमें निकला, और, जहाँ जीवक कौमारभृत्यका आमका बगीचा था उधर चला। तब उस आमके बगीचेके निकट पहुँचनेपर ० अजातशत्रुको भय, घबराहट और रोमाञ्च होने लगा। मगधराज ० डरकर घबराकर और रोमाञ्चित होकर जीवक कौमारभृत्यसे बोला—"सौम्य जीवक! कहीं तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे दगा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे शत्रुओंके हाथ तो नहीं दे रहे हो? बारह सौ पचास भिक्षुओंके बळे संघके (यहाँ रहनेपर भी) भला कैसे, थूकने, खाँसने तकका या किसी दूसरे प्रकारका शब्द न होगा?"

"महाराज! आप मत डरें, आपको मैं धोखा नहीं दे रहा हूँ, न आपको दगा दे रहा हूँ, न आपको शत्रुओंके हाथमें दे रहा हूँ। आगे चलें महाराज! आगे चलें। यह मंडपमें दीये जल रहे हैं।"

तब ० अजातशत्रु जितनी भूमि हाथीद्वारा जाने योग्य थी उतनी हाथीसे जा, हाथीपरसे उतर पैदल ही उस मंडपका जहाँ द्वार था वहाँ गया। जाकर जीवक कौमारभृत्यसे यह बोला—

"सौम्य जीवक! भगवान् कहाँ हैं?"

"महाराज ! भगवान् यहाँ है। महाराज ! भगवान् यहाँ भिक्षुसघके सामने किये बीच वाले खम्भेके सहारे पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे है।"

तब ० अजातशत्रु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा होकर अजातशत्रुने निर्मल जलाशयकी तरह बिल्कुल चुपचाप, शान्त, भिक्षुसघको देख यह उदान (=प्रीति वाक्य) कहा—"मेरा कुमार उ द य भ द्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिसे इस समय यह भिक्षुसघ विराज रहा है।"

"महाराज ! प्रेमपूर्वक आओ।"

"भन्ते ! मेरा कुमार उदयभद्र मेरा बळा प्रिय है, मेरा कुमार उदयभद्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिसे युक्त हो इस समय यह भिक्षुसघ विराज रहा है।

तब राजा अजातशत्रु ०। भगवान्को अभिवादन करके और भिक्षु सघको हाथ जोळ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर मगधराज ०ने भगवान्से कहा—"भन्ते ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो भगवान् कृपा करके प्रश्न पूछनेकी अनुमति दें।"

"महाराज ! जो चाहो पूछो।"

"जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (=विद्या, कला) है, जैसे कि हस्ति-आरोहण (=हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (=युद्धध्वज-धारण), चलक (=व्यूह-रचन), पिंडदायिक (=पिंड बाँटनेवाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र), महानाग (=हाथीसे युद्ध करनेवाले)-शूर, चर्म (=ढाल)-योधी, दासपुत्र, आलारिक (=बावर्ची), कल्पक (=हजाम), नहापक (=नहलानेवाले), सूद (=पाचक), मालाकार, रजक पेशकार (=रगरेज), नलकार कुभकार, गणक, मुद्रिक (=हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प हैं (इनके) शिल्पफलसे (लोग) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष जीविका करते हैं उससे अपनेको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। पुत्र स्त्रीको सुखी करते है, तृप्त करते हैं। मित्र अमात्योंको०। ऊपर लेजानवाला, स्वर्गको लेजानेवाला, सुख विपाक वाला, स्वर्गमार्गीय, श्रमण ब्राह्मणोंके लिये दान, स्थापित करते है। क्या भन्ते ! उसी प्रकार श्रामण्य (=भिक्षुपनका) फल भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष (फलदायक) बतलाया जा सकता है ?"

"महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ?'

"भन्ते ! जाना है ०।

'यदि तुम्हे भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उन्होने उत्तर दिया था ?

'भन्ते ! मुझे भारी नही है, जब कि भगवान् या भगवान्के समान कोई बैठा हो।"

'तो महाराज ! कहो।'

१—छै तीर्थंकरोंके मत

(१) पूर्ण काश्यपका मत (अक्रियवाद)—"एक बार मैं भन्ते ! जहाँ पूर्ण काश्यप थे, वहाँ गया। जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैंने समोदन किया एक ओर बैठकर यह पूछा—'हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान हैं ०। ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मुझसे कहा—'महाराज ! करते कराते, छेदन करते, छेदन कराते, पकाते पकवाते, शोक करते, परेशान होते, परेशान कराते, चलते चलाते, प्राण मारते, बिना दिया लेते, सेंध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते भी, पाप नही किया जाता। छुरेसे तेज चक्रद्वारा जो इस पृथिवी के प्राणियोका (कोई) एक माँसका खलियान, एक माँसका पुज बना दे, तो इसके कारण उसको पाप नही, पापका आगम नही होगा। यदि घात करते कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गगाके दक्षिण तीर पर भी जाये, तो भी इसके कारण उसको पाप नही, पापका आगम नही होगा। दान देते, दान

दिलाते, यज्ञ करते, यज्ञ कराते यदि गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होगा। दान दम संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है।' इस प्रकार भन्ते! पूर्ण० ने मेरे सांदृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य फल पूछने पर अक्रिया वर्णन किया। जैसे कि भन्ते! पूछे आम, जवाब दे कटहल, पूछे कटहल, जवाब दे आम, ऐसेही भन्ते! पूर्ण काश्यपने मेरे सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया।"

"कैसे मुझ जैसा (कोई राजा) अपने राज्यमें बसनेवाले किसी श्रमण या ब्राह्मणको देशसे निकाल दे? भन्ते सो मैंने पूरणकस्सपके कहे हुयेका न तो अभिनन्दन किया और न निन्दा की। न बळाई, न निन्दा करके खिन्न हो, कोई खिन्न बात भी न कहकर, उस (उसकी कही हुई) बातको न स्वीकार कर, और न उसका ख्याल कर, आसनसे उठकर चल दिया।

(२) **मक्खलि गोसालका मत (दैववाद)—**

"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ मक्खलि गोसाल था वहाँ गया, जाकर मक्खलि गोसालके साथ कुशल समाचार०। एक ओर बैठकर मक्खलि गोसालसे मैंने यह कहा, 'हे गोसाल! जिस तरह ये जो दूसरे शिल्प हैं, जैसे०। और भी जो दूसरे० आँखोंके सामने फल देनेवाले हैं, वे उनसे अपने सुख० पुण्य कमाते हैं। हे गोसाल! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करत०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते! मक्खलि गोसालने यह उत्तर दिया—'महाराज! सत्वोंके क्लेशका हेतु नहीं है=प्रत्यय नहीं है। बिना हेतुके और बिना प्रत्ययके ही सत्व क्लेश पाते हैं। सत्वोंकी शुद्धिका कोई हेतु नहीं है, कोई प्रत्यय नहीं है। बिना हेतुके और बिना प्रत्ययके सत्व शुद्ध होते हैं। अपने कुछ नहीं कर सकते हैं, पराये भी कुछ नहीं कर सकते हैं, (कोई) पुरुष भी कुछ नहीं कर सकता है, बल नहीं है, वीर्य नहीं है, पुरुषका कोई पराक्रम नहीं है। सभी सत्व, सभी प्राणी, सभी भूत, और सभी जीव अपने वशमें नहीं हैं, निर्बल, निर्वीर्य, भाग्य और संयोगके फेरसे छै जातियों (में उत्पन्न हो) सुख और दुख भोगते हैं। वे प्रमुख योनियाँ चौदह लाख छियासठ सौ हैं। पाँच सौ पाँच कर्म, तीन अर्ध कर्म (=केवल मनसे शरीरसे नहीं), बासठ प्रतिपदायें (=मार्ग), बासठ अन्तरकल्प, छै अभिजातियाँ, आठ पुरुष भूमियाँ, उन्नीस सौ आजीवक, उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नाग आवास, बीस सौ इन्द्रियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञी (=होशवाले) गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रन्थ गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात स्वर, सात सौ सात गाँठ, सात सौ सात प्रपात, सात सौ सात स्वप्न, और अस्सी लाख छोटे-बळे कल्प हैं, जिन्हें मूर्ख और पण्डित जानकर और अनुगमनकर दुखोंका अन्त कर सकते हैं। वहाँ यह नहीं है—इस शील या व्रत या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको परिपक्व करूँगा। परिपक्व कर्मको भोगकर अन्त करूँगा। सुख दुख द्रोण(=नाप)से तुले हुये हैं, संसारमें घटना-बढ़ना उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं होता। जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर उछलती हुई गिरती है, वैसे ही मूर्ख और पंडित दौळकर—आवागमनमें पळकर, दुखका अन्त करेंगे।

"'भन्ते! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे जानेपर, मक्खलि गोसालने इस तरह संसारकी शुद्धिका उपाय बताया। भन्ते! जैसे आमके पूछनेपर कटहल कहे और कटहलके पूछनेपर आम कहे। भन्ते! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे जानेपर०। भन्ते! तब मेरे मनमें यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा०। भन्ते! सो मैंने मक्खलि गोसालके०।० उठकर चल दिया।

(३) **अजित केशकम्बलका मत (जडवाद, उच्छेदवाद)**—"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ अजित केशकम्बल था वहाँ०। एक ओर बैठकर० यह कहा—'हे अजित! जिस तरह०। हे अजित! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करत०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! अजित केशकम्बलने यह उत्तर दिया—'महराज ! न दान है, न यज्ञ है न होम है, न पुण्य या पापका अच्छा बुरा फल होता है, न यह लोक है न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज (=औपपातिक, देव) सत्व है, और न इस लोकमें वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण हैं जो इस लोक और परलोकको स्वयं जानकर और साक्षात्कर (कुछ) कहेंगे। मनुष्य चार महाभूतोंसे मिलकर बना है। मनुष्य जब मरता है तब पृथ्वी, महापृथ्वीमें लीन हो जाती है, जल ०, तेज ०, वायु ० और इन्द्रियाँ आकाशमें लीन हो जाती हैं। मनुष्य लोग मरे हुयेको खाटपर रखकर ले जाते हैं, उसकी निन्दा प्रशंसा करते हैं। हड्डियाँ कबूतरकी तरह उजली हो (बिखर) जाती हैं, और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते हैं, उसका कोई फल नही होता। आस्तिक्यवाद (=आत्मा है) झूठा है। मूर्ख और पण्डित सभी शरीरके नष्ट होते ही उच्छेदको प्राप्त हो जाते हैं। मरनेके बाद कोई नहीं रहता। भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० अजित केशकम्बलने उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते ! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके ० उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ—कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने अजित केशकम्बलके ०।० उठकर चल दिया।

(४) प्रकुध कात्यायनका मत (अकृततावाद)— 'भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ प्रकुध कात्यायन ०। श्रमणभावके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! प्रकुध कात्यायनने यह उत्तर दिया—'महाराज ! यह सात काय (=समूह) अकृत=अकृतविध=अ-निर्मित=निर्माण-रहित, अवध्य=कूटस्थ, स्तम्भवत् (अचल) हैं। यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते, न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं, न एक दूसरेके सुख, दुख, या सुख-दुखके लिये पर्याप्त हैं। कौनसे सात? पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुख, और जीवन यह सात। यह सात काय अकृत ० सुख-दुखके योग्य नहीं हैं। यहाँ न हन्ता (=मारनेवाला) है, न घातयिता (=हनन करानेवाला), न सुननेवाला न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण शस्त्रसे शीश भी काटे (तोभी) कोई किसीको प्राणसे नहीं मारता। सातों कायोंसे अलग, विवर (=खाली जगह) में शस्त्र (=हथियार) गिरता है।'

"इस प्रकार भन्ते ! ० प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० प्रकुध कात्यायनने दूसरी ही इधर उधरकी बातें बनाई। भन्ते ! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह ० बातें बनाई। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ—'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने ०। ० उठकर चल दिया।

(५) *निगण्ठ नाथपुत्तका मत*—(चातुर्याम संवर)— 'भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ निगण्ठ नाथपुत्त ०१—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्तने यह उत्तर दिया—'महाराज ! निगण्ठ चार (प्रकारके) संवरोंसे संवृत (=आच्छादित, संयत) रहता है। महाराज ! निगण्ठ चार संवरोंसे कैसे संवृत रहता है? महाराज ! (१) निगण्ठ (=निर्ग्रंथ) जलके व्यवहारका वारण करता है (जिसमें जलके जीव न मारे जावें)। (२) सभी पापोंका वारण करता है, (३) सभी पापोंके वारण करनेसे धुतपाप (=पापरहित) होता है, (४) सभी पापोंके वारण करनेमें लगा रहता है। महाराज ! निगण्ठ इस प्रकार चार संवरोंसे संवृत रहता है। महाराज ! क्योंकि निगण्ठ इन चार प्रकारके संवरोंसे संवृत रहता है, इसीलिये वह निर्ग्रन्थ, गतात्मा (=अनिच्छुक), यतात्मा (=संयमी) और स्थितात्मा कहलाता है।"

"भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे० निगण्ठ नाथपुत्तने चार संवरोंका वर्णन किया। भन्ते ! जैसे आमके पूछने०। भन्ते ! इसी तरह० चार संवरोंका वर्णन किया। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ 'कैसे मुझ जैसा०। भन्ते ! सो मैंने०।० उठकर चल दिया।

(६) सजय वेलट्ठिपुत्तका मत (अनिश्चिततावाद)

"भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ स ञ्ज य वे ल ट्ठि पु त्त० ।—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! सञ्जय वेलट्ठिपुत्तने यह उत्तर दिया—"महाराज ! यदि आप पूछे, 'क्या परलोक है ? और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नही कहता, मै वैसा भी नही कहता, मै दूसरी तरहसे भी नहीं कहता, मै यह भी नही कहता कि 'यह नही है' मैं यह भी नही कहता कि 'यह नहीं नही है।' परलोक नही है ०। परलोक है भी और नही भी ०, परलोक न है और न नही है ०। अयोनिज (=औपपातिक) प्राणी है०, अयोनिज प्राणी नही है, है भी और नही भी, न है और न नहीं है ०। अच्छे बुरे कामके फल है, नही है, है भी और नही भी, न है और न नही है ? ०। तथागत मरनेके बाद होते है नही होते हैं ० ?' यदि मुझे ऐसा पूछे, और मै ऐसा समझूँ कि मरनेके बाद तथागत न रहते है और न नही रहते है, तो मै ऐसा आपको कहूँ। मै ऐसा भी नही कहता, मैं वैसा भी नही कहता ०।'

"भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे ० सजय वेलट्ठिपुत्तने कोई निश्चित बात नही कही। भन्ते ! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह ० कोई निश्चित बात नही कही। भन्ते ! तब मेरे मनमे यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने ०।० उठकर चल दिया।

२–भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल

१—शील

"भन्ते ! सो मैं भगवान्‌से पूछता हूँ, 'जिस तरह ये दूसरे शिल्प है, जैसे, हस्त्यारोह, अश्वारोह०। और भी जो दूसरे ० आँखोके सामने फल देनेवाले है, वे उनसे अपने सुख ० करके पुण्य कमाते है। उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करने ० ?"

"हाँ महाराज ! तो मैं आपसे ही पूछता हूँ, जैसा आप समझें वैसा ही उत्तर दें। महाराज ! तो आप क्या समझते है ? आपका एक नौकर हो जो आपके सारे कामोको करता हो, आपके कहनेके पहले ही वह आपके सारे कामोको कर चुकता हो, आपके सोने या बैठनेके बाद ही स्वय सोता या बैठता हो, आपकी आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहता हो, प्रिय आचरण करने वाला, प्रिय बोलने वाला, और आपकी आज्ञाओको सुननेके लिये सदा आपके मुँहकी ओर ताकता रहता हो। उस (नौकर)के मनमे यह हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बळा अद्भुत और आश्चर्यमय है। यह मगधराज अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्र भी मनुष्य ही है और मै भी मनुष्य ही हूँ। यह मगधराज० पाँच प्रकारके भोगो (=कामगुणो) का भोग करते है, जैसे मानो कोई देव हो, और मैं उनका नौकर हूँ, जो उनके सारे कामोको करता हूँ, उनके कहनेके पहले ही उनके सारे कामोको कर डालता हूँ ०। तो मैं भी पुण्य करूँ, शिर और दाढी मुंळवा, काषाय वस्त्र धारण कर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ।'

"वह उसके बाद शिर और दाढी मुळा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर बन, प्रव्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे सयम, वचनसे सयम और मनसे सयम करके विहार करे, तथा खाना कपळा मात्रमे सतुष्ट और प्रसन्न रहे। तब आपसे दूसरे लोग आकर कहें—'महाराज ! क्या आप जानते है कि जो आपका नौकर ० था, वह शिर और दाढी मुंळा, काषाय वस्त्र धारणकर घरसे बेघर बन प्रव्रजित हो गया है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे ० प्रसन्न रहता है।' तब क्या आप ऐसा कहेंगे—'मेरा वह पुरुष लौट आवे और फिर भी मेरा नौकर ० होवे।"

"भन्ते ! हम ऐसा नही कह सकते। बल्कि हम ही उसका अभिवादन करेंगे, उसकी सेवा करेंगे, उसको आसन देंगे और उसे चीवर, पिण्डपात, शयन-आसन और दवा-पथ्य देनेके लिये निमन्त्रण देंगे। उसकी सभी तरहसे देख भाल भी करेंगे।"

"तो महाराज ! क्या समझते है, श्रमणभाव(=साधु होना)के पालन करनेका (यह) फल यहीं आँखोंके सामने मिल रहा है या नही ?"

"भन्ते ! हाँ ऐसा होनेपर तो श्रमणभावके पालन करने का फल यहीं आँखोंके सामने मिल रहा है।"

"महाराज ! यह तो श्रमणभावके पालन करनेका पहला ही फल मैने बतलाया जो कि यहीं आँखोंके सामने मिल जाता है।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या और दूसरा भी श्रमणभावका ० आँखोंके सामने मिल जानेवाला फल दिखा सकते हैं ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! आप ही से पूँछता हूँ, जैसा आप समझे वैसा उत्तर दे। तो क्या समझते हैं महाराज ! आपका कोई आदमी कृषक, गृहपति, काम-काज करनेवाला और धन-धान्य बटोरनेवाला हो। उसके मनमें ऐसा हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बडा आश्चर्य-कारक और अद्भुत है। यह मगधराज ०—मनुष्य हूँ। यह मगधराज ० पाँच भोगोंसे ० जैसे कोई देव और मैं कृषक ०। सो मैं भी पुण्य करूँ। शिर और दाढी ० प्रव्रजित हो जाऊँ।

"सो दूसरे समय अल्प या अधिक (अपनी) भोगकी सामग्रियोंको छोळ अल्प या अधिक परि-वार और जातिके बन्धनको तोळ, शिर और दाढी मुंळा ० प्रव्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे सयम। ०। और आपके दूसरे पुरुष आकर आपको यह कहे—'महाराज ! क्या आप जानते हैं ! जो आपका पुरुष कृषक ० वह शिर दाढी ०। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे ०। तो आप क्या कहेंगे—'वह मेरा आदमी आवे और फिर भी कृषक ० होवे ?'

"नही भन्ते ! बल्कि हम ही उसका ०। तब महाराज ! क्या समझते है, श्रमण भावके पालन करने ० मिल रहा है या नही ?'

"भन्ते ! हाँ, ऐसा होनेपर तो ०।

"महाराज ! यह दूसरा श्रमणभाव ०।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या दूसरा भी ० ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! सुनें, अच्छी तरह ध्यान द, मैं कहता हूँ।"

"हाँ भन्ते !' कह ० अजातशत्रुने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने कहा—"महाराज ! जब ससारमे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या-आचरणसे युक्त, सुगत (=अच्छी गतिवाले), लोकविद्, अनुत्तर (=अलौकिक), पुरुषोंको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने)के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव मनुष्योंके शास्ता, (और) बुद्ध (=ज्ञानी) उत्पन्न होते हैं, वह देवताओंके साथ, मारके साथ, ब्रह्माके साथ, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजाओंके साथ तथा देवताओं और मनुष्योंके साथ, इस लोकको स्वय जाने, साक्षात् किये (धर्म)को उपदेश करते है। वह आदि-कल्याण, मध्यकल्याण, अन्त्यकल्याण धर्मका उपदेश करते है। सार्थक, स्पष्ट, बिलकुल पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको बतलाते है। उस धर्मको गृहपति या गृहपतिका पुत्र, या किसी दूसरे कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके प्रति श्रद्धालु हो जाता है। वह श्रद्धालु होकर ऐसा विचारता है—गृहस्थका जीवन बाधा और रागसे युक्त है और प्रव्रज्या बिलकुल स्वच्छन्द खुला हुआ स्थान है। घरमें रहनेवाला पूरे तौरसे, एकदम परिशुद्ध और खरादे शखसे निर्मल (इस) ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। इसलिये क्यो न मैं शिर और दाढी ० प्रव्रजित हो जाऊँ। वह दूसरे समय अल्प या अधिक भोगकी सामग्रियो ० जातिके बन्धनको तोळ ० प्रव्रजित हो जाता है।

(१) शील

१—आरम्भिक शील

"वह प्रव्रजित हो प्रातिमोक्षके नियमोंका ठीक ठीक पालन करते हुए विहार करता है, आचार-गोचरके सहित हो, छोटेसे भी पापसे डरनेवाला काय और वचन कर्मसे सयुक्त, शुद्ध जीविका करते, शीलसम्पन्न, इन्द्रिय-सयमी, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और सतुष्ट रहता है।

"महाराज! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है? (१) महाराज! भिक्षु हिंसाको छोळ हिंसासे विरत होता है, दण्डको छोळ, शस्त्रको छोळ, लज्जा (पाप कर्मों)से मुक्त, दयासम्पन्न, सभी प्राणियोंके हितकी कामनासे युक्त हो विहार करता है। यह भी शील है। (२) चोरीको छोळ चोरीसे विरत रहता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीको ग्रहण करता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीकी अभिलाषा करता है। इस प्रकार वह पवित्रात्मा होकर विहार करता है। यह भी शील है। (३) अब्रह्मचर्यको छोळ ब्रह्मचारी रहता है, मैथुन कर्मसे विरत और दूर रहता है। यह भी शील है। (४) मिथ्याभाषणको छोळ, मिथ्याभाषणसे विरत रहता है, सत्यवादी, सत्यसन्ध, स्थिर, विश्वसनीय और यथार्थवक्ता होता है। यह भी शील है। (५) चुगली खाना छोळ, चुगली खानेसे विरत रहता है, लोगोंमें लळाई लगानेके लिये यहाँसे सुनकर वहाँ नहीं कहता है और वहाँसे सुनकर यहाँ नहीं कहता। वह फूटे हुए लोगोंको मिलानेवाला, मिले हुए लोगोंमें और भी अधिक मेल करानेवाला, मेल चाहनेवाला, मेल(के काम)में लगा हुआ, (और) मेलमें प्रसन्न होनेवाला, मेल करनेकी बातका बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (६) कठोर वचनको छोळ कठोर वचनसे विरत रहता है। जो बात निर्दोष, कर्णप्रिय, प्रेमयुक्त, मनमें लगनेवाली, सभ्य, तथा लोगोंको प्रिय है, उसी प्रकारकी बातोंका कहनेवाला होता है। यह भी शील है। (७) व्यर्थके बकवादको छोळ व्यर्थके बकवादसे विरत रहता है। समयोचित बात बोलनेवाला, ठीक बात बोलनेवाला, सार्थक बात बोलनेवाला, धर्मकी बात बोलनेवाला, विनयकी बात बोलनेवाला, जँचनेवाली बात बोलनेवाला होता है। समय और अवस्थाके अनुकूल विभागकर सार्थक बात बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (८) बीजो और जीवोंके नाश करनेको छोळ बीजो और जीवोंके नाश करनेसे विरत रहता है०। (९) दिनमें एक बार ही भोजन करनेवाला होता है, विकाल (=मध्याह्नके बाद) भोजनसे विरत रहता है। (१०) नृत्य, गीत, बाजा, और बुरे प्रदर्शनसे विरत रहता है। (११) ऊँची और सजी-धजी शय्यासे विरत रहता है। (१२) सोने चाँदीके छूनेसे विरत रहता है। (१३) कच्चा अन्न०। (१४) कच्चा मास०। (१५) स्त्री और कुमारीके स्वीकार करने०। (१६) दासी और दासके०। (१७) भेळ बकरी०। (१८) मुर्गी, सूअर०। (१९) हाथी, गाय, घोळा, घोळी०। (२०) खेत, माल असबाबके स्वीकार०। (२१) दूतके काम करने०। (२२) क्रय विक्रय०। (२३) नाप-तराजू, बटखरोंमें ठगबनीजी करने०। (२४) घूस लेने, ठगने, और नकली सोना चाँदी बनाने०। (२५) हाथ पैर काटने, मारने, बाँधने, लूटने और डाँका डालनेसे विरत होता है०। यह भी शील है।

२—मध्यम शील

"महाराज! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते हैं—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोंके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीजो और सभी प्राणियोंके नाशमें लगे रहते है, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होना है), स्कन्धबीज (जिनका प्ररोह गाँठमें होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पाँचवाँ अग्रबीज (उगता पौधा), उस प्रकार श्रमण गौतम बीजो और प्राणियोका नाश नहीं करता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण०इस प्रकारके जोळने और

बटोरनेमें लगे रहते हैं, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीजोंका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमें नहीं लगा रहता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमें लगे रहते हैं, जैसे—नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तबला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन*, हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोंका युद्ध, भेळोंका युद्ध, मुर्गोका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मारपीटका खेल, सेना, लळाईकी चालें इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमें नहीं लगता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० जूआ आदि खेलोंके नशेमें लगे रहते हैं, जैसे—†अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्निक, खलिक, घटिक, सलाक-हस्त, अक्ष, पगचिर, वंकक, मोक्खचिक, चिलिगुलिक, पत्ताल्हक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, और नकल, उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोंके नशेमें नहीं पळता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस तरहकी ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर सोते हैं, जैसे—दीर्घ-आसन, पलंग, बळे बळे रोयेंवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनों ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर नहीं सोता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनको सजने-धजनेमें लगे रहते हैं, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, ऐना, अंजन, माला, लेप, मुख-चूर्ण (=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखाका आभूषण छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमें नहीं लगा रहता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामें लगे रहते हैं, जैसे—राजकथा, चोर, महामंत्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, शूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत-प्रेतकी कथायें, संसारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ, उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओंमें नहीं लगता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारकी लळाई-झगळाकी बातोंमें लगे रहते हैं, जैसे—तुम इस मत (=धर्म विनय) को नहीं जानते, मैं० जानता हूँ, तुम० क्या जानोगे? तुमने इसे ठीक नहीं समझा है, मैं इसे ठीक-ठीक समझता हूँ, मैं धर्मानुकूल कहता हूँ, तुम धर्म विरुद्ध कहते हो, जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया, बात कट गई, तुमपर दोषारोपण हो गया, तुम पकळ लिये गये, इस आपत्तिसे छूटनेकी कोशिश करो, यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळोंकी बातमें नहीं रहता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० राजाओं, महामन्त्रीओं,

* उस समयके खेल।

† उस समयके जूये।

क्षत्रियका, ब्राह्मणोंका, गृहस्थोंका, कुमारोंका (इधर उधर) दूतका काम—वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि, करते फिरते हैं, उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नहीं करता।

"महाराज! अथवा ०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखंडी और वंचक, बातूनी, जोतिषके पेशावाले, जादू-मन्तर दिखानेवाले और लाभसे लाभकी खोज करते हैं, वैसा श्रमण गौतम नहीं हैं।

३—महाशील

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन बिताते हैं, जैसे—अंगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूषिक-विष-विद्या, अग्निहवन, दर्वी-होम, तुष-होम, कण-होम, तण्डुल होम, घृत होम, तैल-होम, मुखमें घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विष०, बिच्छूके झाड़ फूँकको विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (=मन्त्र जाप, जिससे लड़ाईमें बाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, बाण०, धनुष०, आयुध०, स्त्री०, पुरुष०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैंस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, बत्तक०, गोह०, कर्णिका०, कच्छप० और मृग-लक्षण, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज! अथवा—इस प्रकार० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—राजा बाहर निकल जायेगा, नहीं निकल जायेगा, यहाँका राजा बाहर जायगा, बाहरका राजा यहाँ आवेगा, यहाँके राजाकी जीत होगी और बाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और बाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—चन्द्र ग्रहण होगा, सूर्य ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेंगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायेंगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा, नक्षत्र अपने मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा डाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा बादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंका उदय, अस्त, सदोष होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा०, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोष या निर्दोष होनेसे यह फल होगा, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी वृष्टि होगी, सस्ती होगी, महँगी पड़ेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा विद्या, गणना, कविता पाठ इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"महाराज! अथवा ०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र बताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋणमें दिये गये रुपयाके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, सजना धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रबलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,०

दूसरेके कानको बहरा बना देना, दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देवता-हिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रसे मुँहसे अग्नि निकालना; इस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"महाराज ! अथवा० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रबलसे पुरुषको नपुंसक और नपुंसकको पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, वस्तिकर्म, आचमन, स्नान-कार्य, अग्नि-होम, दवा देकर वमन, विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमें डालने के लिए तेल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमें तेल देकर छिकवाना, अंजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म, इस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"महाराज ! यह शील तो बहुत छोटे और गौण हैं, जिनके कारण अनाड़ी मेरी प्रशंसा करते हैं।

"महाराज ! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो इस शील-संवरके कारण कहींसे भय नहीं देखता है। जैसे महाराज ! कोई मूर्धाभिषिक्त (=sovereign) क्षत्रिय राजा, सभी शत्रुओंको जीतकर कहींसे किसी शत्रुसे भय नहीं खाता, उसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो कहींसे ०। वह इस शीलके पालन करनेसे अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। महाराज ! भिक्षु इस तरह शीलसम्पन्न होता है।

४—इन्द्रियोंका संवर (=संयम)

"महाराज ! कैसे भिक्षु अपने इन्द्रियोंको वशमें रखता है ? महाराज ! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर न उसके आकारको ग्रहण करता है और न आसक्त होता है। जिस चक्षु इन्द्रियका संयम नहीं रखनेसे (मनमें) दौर्मनस्य बुराइयाँ और पाप चले आते हैं, उसकी रक्षा (=संवर)के लिये यत्न करता है। चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है, चक्षु इन्द्रियको संवृत करता है। कानसे शब्द सुनकर ०। नाकसे गन्ध सूँघकर ०। जिह्वासे रसका आस्वादन कर ०। शरीरसे स्पर्श कर ०। मनसे धर्मोंको जान कर ०। वह इस प्रकारके आ र्य सं व र से युक्त हो अपने भीतर परम सुखको प्राप्त करता है। महाराज ! इस प्रकार भिक्षु अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है।

५—स्मृति, सम्प्रजन्य

"महाराज ! कैसे भिक्षु स्मृति और सम्प्रजन्य (=सावधानी)से युक्त होता है ? महाराज ! भिक्षु जाने और आनेमें सावधान रहता है। देखने और भालनेमें ०। मोड़ने और पसारनेमें ०। संघाटी, पात्र और चीवरके धारण करनेमें ०। खाने, पीने, चलने और सोनेमें ०। पाखाना, पेशाब करनेमें ०। चलते, खड़ा रहते, बैठते, सोते, जागते, बोलने और चुप रहते०। महाराज ! इस तरह भिक्षु स्मृति और सम्प्रजन्यसे युक्त होता है।

६—सन्तोष

"महाराज ! कैसे भिक्षु सन्तुष्ट रहता है ? महाराज ! भिक्षु इस प्रकार शरीर ढकनेभर चीवरसे और पेटभर भिक्षासे सन्तुष्ट रहता है—वह जहाँ जहाँ जाता है अपना सब कुछ लेकर जाता है। जिस तरह महाराज ! पक्षी जहाँ जहाँ उड़ता है, अपने परोंको लिये ही उड़ता है, उसी प्रकार महाराज ! भिक्षु सन्तुष्ट रहता है, शरीर ढकनेभर ० —लेकर जाता है। महाराज ! वह भिक्षु इस प्रकार सन्तुष्ट रहता है।

"वह इस प्रकार उत्तम शीलो (=आर्यशीलस्कंध), उत्तम इन्द्रियसंवर, उत्तम स्मृति-सम्प्रजन्य, और उत्तम सन्तोषसे युक्त हो (ऐसे) एकान्तमें वास करता है, जैसे कि जंगलमें वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, जंगलका रास्ता, खुले स्थान, पुआलका ढेर। पिण्डपातसे लौटनेके बाद भोजन

करनेके उपरान्त, आसन मार, शरीरको सीधाकर, चारों ओरसे स्मृतिमान् हो बाहरकी ओरसे ध्यानको खींच भीतरकी ओर फेरकर विहार करता है। (ऐसे) ध्यान (-अभ्यास)से वह (अपने) चित्तको शुद्ध करता है। हिंसाके भावको छोळ, अहिंसक चित्तवाला होकर विहार करता है। सभी जीवोंके प्रति दयाका भाव (लेकर) अपने चित्तको हिंसाके भावसे शुद्ध करता है। आलस्यको छोळ बिना आलस्य-वाला होकर विहार करता है। प्रकाशयुक्त संज्ञा (=ख्याल)से युक्त सावधान हो अपने चित्तको आलस्य-से शुद्ध करता है। अपनी चंचलता और शंकाओंको छोळ शान्त भावसे रहता है। अपने भीतरकी शान्तिसे संयुक्तचित्तवाला हो, चंचलताओं और शंकाओंसे अपने चित्तको शुद्ध करता है। संदेहोंको छोळ संदेहोंसे रहित होकर विहार करता है। भले कामोंमें संदेहोंसे चित्तको शुद्ध करता है।

"जैसे महाराज! (कोई) पुरुष ऋण लेकर अपना काम चलावे। (जब) उसका काम पूरा हो जावे, वह (पुरुष) अपने (लिये हुए) पुराने ऋणको समूल चुका दे। स्त्रीको पोसनके लिये उसके पास कुछ (धन) बच भी जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—मैंने पहले ऋण लेकर अपना काम चलाया। मेरा काम पूरा हो गया। सो मैंने पुराने ऋणको समूल चुका दिया। स्त्रीको पोसनके लिये भी मेरे पास कुछ (धन) बच गया है। और इससे वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"जैसे महाराज! कोई पुरुष रोगी—दुःखी, और बहुत बीमार हो। उसे भात अच्छा नहीं लगे, और न शरीरमें बल मालूम दे। वह (पुरुष) कुछ दिनोंके बाद उस बीमारीसे उठे, उसे भात भी अच्छा लगे और शरीरमें बल भी मालूम दे। उसके (मनमें) ऐसा हो—'मैं पहले रोगी० था। सो मैं बीमारीसे० बल भी मालूम होता है।' और इससे वह प्रसन्न०।

"जैसे महाराज! कोई पुरुष जेलमें बन्द हो। वह कुछ दिनोंके बाद सकुशल, बिना हानिके जेलसे छूटे, और उसके धनका कोई नुक्सान न हो। उसके मनमें ऐसा हो—'मैं पहले जेलमें० था। सो मैं० जेलसे छूट गया०। और इससे वह प्रसन्न०।

'जैसे महाराज! कोई पुरुष दास हो, न-अपने-अधीन, पराधीन हो, अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ कहीं नहीं जा सकनेवाला हो। दूसरे समय वह दासतासे मुक्त हो जावे, स्वतन्त्र, अपराधीन, यथेच्छ-गामी हो, जहां चाहे जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—'मैं पहले दास था०। सो मैं अब० जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ। इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"जैसे महाराज! कोई धनी और सुखी मनुष्य किसी कान्तार (=मरुभूमि)के लम्बे मार्गमें जा रहा हो, जहाँ भोजनकी सामग्रियाँ नहीं मिलती हों और जहाँ (चोर, डाकू, बाघ आदिका) भय भी हो। सो कुछ समयके बाद उस कान्तारको पार कर जावे, (और) सकुशल भयरहित और क्षेमयुक्त गाँवके पास पहुँच जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—'मैं पहले० कान्तार०। सो मैं अब० पहुँच गया' इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"महाराज! जैसे ऋण, रोग, जेल, दासता, और कान्तारके रास्तेसे जाना, वैसेही भिक्षु अपनेमें वर्तमान पाँच नीवरणों (=काम, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य, विचिकित्सा) को देखता है। जैसे महाराज, ऋणसे मुक्त होना, नीरोग होना, जेलसे छूटना, और स्वतंत्र होना, कान्तार पार होना है, वैसे ही महाराज! भिक्षु इन पाँच नीवरणोंको अपनेमें नष्ट हो गया देखता है।

२—समाधि

१—प्रथम ध्यान—उन नीवरणोंको अपनेमें नष्ट देख, प्रमोद (आनन्द) उत्पन्न होता है। प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिके उत्पन्न होनेसे शरीर शान्त होता है। शरीरके शान्त होनेसे उसे सुख होता है। सुखके उत्पन्न होनेसे चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह कामों (=सांसारिक भोगोंकी इच्छा)को छोड़, पापोंको छोड़ स वितर्क, स विचार, और विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। वह इस शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे सींचता है, भिगोता है, पूर्ण करता है, और चारो ओर व्याप्त करता है। उसके शरीरका कोई भी भाग विवेकसे उत्पन्न उस प्रीति-सुखसे अव्याप्त नहीं रहता।

"जैसे महाराज! नाई या नाईका शागिर्द (=अन्तेवासी, छात्र) कांसेके थालमें स्नान-चूर्णको डाल पानीसे थोळा थोळा सींचे। वह स्नानचूर्णकी पिंडी तेलसे अनुगत, बाहर भीतर तेलसे व्याप्त हो (किन्तु तेल) न चुवे। इसी तरह महाराज! इस शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुखसे ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नहीं रहता है।

"महाराज! जो भिक्षु भोगोंको छोळ, पापोंको छोळ सवितर्क, सविचार, और विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह इसी शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुख-से ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नहीं रहता है।—महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल (=श्रमण भावना-फल) है, पहले जो प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे गये हैं, उनसे भी बढ़कर=प्रणीततर है।

२—द्वितीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेसे भीतरी प्रसाद, चित्तकी एकाग्रतासे युक्त किन्तु वितर्क और विचारसे रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले दूसरे ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुखसे ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।

"जैसे महाराज! कोई जलाशय गम्भीर, और भीतरसे पानीके सोतेवाला हो। न उसके पूर्व दिशामें जलके आनेका कोई रास्ता हो, न दक्षिण ०, न पश्चिम ०, न उत्तर ०। समय समयपर वर्षाकी धारा भी उस (जलाशयमें) आकर न गिरे। और उस जलाशय (के भीतरसे) शीतल जलधारा फूटकर उस जलाशयको शीतल जलसे भरे, ०। और उस जलाशयका कोई भी भाग शीतल जलधारासे रहित न हो। इसी तरहसे महाराज! इसी शरीरको समाधिसे उत्पन्न ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।— यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्यफल पहले कहे गये ० से भी बढ़कर ० है।

३—तृतीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु प्रीति और विरागसे भी उपेक्षायुक्त (=अन्य-मनस्क) हो स्मृति और सम्प्रजन्यसे युक्त हो विहार करता है। और शरीरसे आर्य (=पंडितों)के कहे हुए सभी सुखोंका अनुभव करता है, और उपेक्षाके साथ स्मृतिमान् और सुखविहारवाले तीसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको प्रीतिरहित सुखसे सींचता ०। उसके शरीरका कोई भी भाग प्रीतिरहित सुखसे अव्याप्त नहीं होता।

"जैसे महाराज! उत्पलसमुदाय पद्मसमुदाय, या पुण्डरीकसमुदायमें कोई कोई नील कमल (=उत्पल) रक्तकमल, या श्वेतकमल जलमें उत्पन्न हुये जलहीमें बढ़े जलहीमें रहनेवाले, और जलहीके भीतर पुष्ट होनेवाले, जलसे चोटी तक शीत जलसे व्याप्त ०। उनका कोई भी भाग शीत जलसे अव्याप्त नहीं रहता। इसी तरह महाराज! भिक्षु इस शरीरको प्रीतिरहित सुखसे ०। इसके शरीरका कोई भी भाग ०। महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य फल ०।

४—चतुर्थ ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु सुखको छोळ, दुखको छोळ पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्यके अस्त हो जानेसे न-दुख और न-सुखवाले, तथा स्मृति और उपेक्षासे शुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। सो इसी शरीरको अपने शुद्ध चित्तसे निर्मल बनाकर बैठा है। उसके शरीरका कोई भाग शुद्ध और निर्मल चित्तसे अव्याप्त नहीं होता। जैसे महाराज! कोई पुरुष उजले कपळे से शिर तक ढाँककर, पहनकर बैठे, (और) उसके शरीरका कोई भाग उस उजले कपळेसे बे-ढँका न हो। इसी तरह महाराज! भिक्षु इसी शरीरको ०—अव्याप्त नहीं होता। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्यफल ०।

३—प्रज्ञा

१—**ज्ञान दर्शन**—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, निर्मल, निष्पाप, क्लेशोंसे रहित, मृदु, मनोरम, और निश्चल चित्त पानेके बाद सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिये अपने चित्तको नवाता है। वह इस प्रकार जानता है—'यह मेरा शरीर, भौतिक (=रूपी) चार महाभूतों (=पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बना, माता और पिताके संयोगसे उत्पन्न, भात दालसे वर्द्धित, अनित्य, छेदन, भेदन, मर्दन, और नाशन योग्य (है)। यह मेरा विज्ञान (=मन) इसमें लग जाता है और बँध जाता है। जैसे महाराज! श्वेत अच्छी जातिवाला, अठपहलू, अच्छा काम किया हुआ, स्वच्छ, प्रसन्न, निर्मल, और सभी गुणोंसे युक्त हीरा (हो), और उसमें नीला, पीला, लाल, उजला, या पाडु रंगका धागा पिरोया हो। उसे आँखवाला (कोई) पुरुष हाथमें लेकर देखे—'यह श्वेत ० हीरा पाडु रंगका धागा पिरोया है। इसी तरह महाराज! भिक्षु एकाग्र, शुद्ध ०—चित्तको लगाता है। वह ऐसा जानता है,—'यह मेरा शरीर भौतिक ० नाशनयोग्य है। और मेरा यह विज्ञान यहाँ लग गया है, फँस गया है। यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल० बढकर है।

२—**मनोमय शरीरका निर्माण**—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पानेके बाद मनोमय शरीरके निर्माण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह इस शरीरसे अलग एक दूसरे भौतिक, मनोमय, सभी अङ्गप्रत्यङ्गोंसे युक्त, अच्छी पुष्ट इन्द्रियोंवाले शरीरका निर्माण करता है।

जैसे महाराज! कोई पुरुष मूँजसे सरकडेको निकाल ले। उसके मनमें ऐसा हो, 'यह मूँज है (और) यह सरकडा। मूँज दूसरी है और सरकडा दूसरा है। मूँजहीसे सरकडा निकाला गया है।'

"जैसे महाराज! (कोई) पुरुष तलवारको म्यानसे निकाले। उसके मनमें ऐसा हो—'यह तलवार है और यह म्यान। तलवार दूसरी है और म्यान दूसरा। तलवार म्यान हीसे निकाली गई है।

"या, जैसे महाराज! कोई (सँपेरा) अपने पिटारेसे साँपको निकाले। उसके मनमें ऐसा हो—'यह साँप है यह पिटारा ०।' इसी तरहसे महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पाकर मनोमय शरीरके निर्माणके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो इस शरीरसे दूसरा ०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

३—**ऋद्धियाँ**—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त करता है—एक होकर बहुत होता है, बहुत होकर एक होता है, प्रगट होता है, अन्तर्धान होता है, दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार बिना टकराये चला जाता है, मानो आकाशमें (जा रहा हो)। पृथिवीमें जलमें जैसा गोते लगाता है, जलके तलपर भी पृथिवीके तलपर जैसा चलता है। आकाशमें भी पलथी मारे हुये उड़ता है, मानो पक्षी (उड़ रहा हो), महातेजस्वी सूरज और चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है, ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमें किये रहता है।

"जैसे महाराज! (कोई) चतुर कुम्हार, या कुम्हारका चेला अच्छी तरहसे तैयार की गई मिट्टीसे जो बर्तन चाहे वही बनाले और फिर बिगाड़ दे।

"जैसे महाराज! (कोई) चतुर (हाथीके) दाँतका काम करने वाला (=दन्तकार) ० अच्छी तरह शोधे गये दाँत से ०।

४—**दिव्य श्रोत्र**—"वह इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पाकर दिव्य श्रोत्रधातुके पानेके लिये अपने चित्तको लगाता है, और वह अपने अलौकिक शुद्ध दिव्य, श्रोत्र (=कान)से दोनो (प्रकारके) शब्द सुनता है, देवताओंके भी और मनुष्योंके भी, दूरके भी और निकटके भी। जैसे महाराज! कोई पुरुष रास्तेमे जा रहा हो, वह सुने भेरीके शब्द, मृदङ्गके शब्द, शंख और प्रणवके शब्द। उसके मनमें ऐसा हो, (यह) भेरीका शब्द है, मृदङ्गका शब्द है, शंख और प्रणवका शब्द है। इसी तरहसे महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पा दिव्य श्रोत्रधातुके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह, शुद्ध दिव्य० दूरके भी और निकटके भी। महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल०।

५—**पर चित्त ज्ञान**—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर दूसरेके चित्तकी बातोंको जाननेके लिये अपना चित्त लगाता है। वह दूसरे सत्वोंके, दूसरे लोगोंके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—रागसहित चित्तको रागसहित जान लेता है, वैराग्यसहित चित्त०, द्वेषसहित चित्त०, द्वेषसे रहित चित्त०, मोहसहित चित्त०, मोहसे रहित०, संकीर्ण चित्त०, विक्षिप्त चित्त०, उदार चित्त०, अनुदार चित्त०, सासारिक (=साधारण) चित्त०, अलौकिक (=असाधारण) चित्त, एकाग्र चित्त ०, न एकाग्र ०, विमुक्त चित्त ०, अ-मुक्त (=बद्ध) चित्त ० (को वैसाही जान लेता है),

"जैसे महाराज! स्त्री या पुरुष, या लड़का, या जवान अपनेको सज धजकर दर्पण या शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ जलके पानमें अपने मुखको देखते हुये अपने मुखके मैलेपन या स्वच्छताको ज्योंका त्यो जान ले, उसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर दूसरेके चित्त ०। वह दूसरे सत्वो और दूसरे लोगोके चित्त ०।—यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

६—**पूर्वजन्मोका स्मरण**— वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर पूर्व जन्मोकी बातोको स्मरण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो नाना पूर्व जन्मोकी बातोको स्मरण करता है। जैसे, एक जाति, दो ०, तीन ०, चार ०, पाँच ०, दस ०, बीस ०, तीस ०, चालीस ०, पचास ०, सौ ०, हजार ०, लाख ०, अनेक संवर्त (=प्रलय) कल्पो, अनेक विवर्त (=सृष्टि) कल्पो, अनेक संवर्त विवर्त कल्पो (को जानता है)—'(मैं) वहाँ था, इस नाम वाला, इस गोत्र वाला इस रंगका, इस आहार (भोजन)को खाने वाला इतनी आयु वाला था। मैंने इस प्रकारके सुख और दुःखका अनुभव किया। सो (मैं) वहाँसे मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ, इस नाम वाला ०। सो (मैं) वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ' इस तरह आकार प्रकारके साथ वह अनेक पूर्व जन्मोको स्मरण करता है।

"जैसे महाराज! (कोई) पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जावे, वह फिर भी उस गाँवसे अपने गाँवमे लौट आवे। उसके मनमें ऐसा हो—'मैं अपने गाँवसे अमुक गाँवमे गया वहाँ ऐसे खड़ा रहा, ऐसे बैठा ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस गाँवसे भी अमुक गाँवमें गया, वहाँ भी ऐसे खड़ा ०—सो मैं उस गाँवसे अपने गाँवमे लौट आया। इसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र ० अनेक पूर्व जन्मोको ०—जैसे, एक जन्म ०। मैं वहाँ था, इस नाम वाला ०। इस तरह आकार प्रकारके साथ ०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य फल ०।

७—**दिव्य चक्षु**—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर प्राणियोंके जन्म मरण (के विषय) मे जाननेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह शुद्ध और अलौकिक दिव्य चक्षुसे मरते उत्पन्न होते, हीन अवस्थामें आये, अच्छी अवस्थामे आये, अच्छे वर्ण (=रंग) वाले, बुरे वर्ण वाले; अच्छी गतिको प्राप्त, बुरी गतिको प्राप्त, अपने अपने कर्मके अनुसार अवस्थाको प्राप्त, प्राणियोको जान लेता है—ये प्राणी शरीरसे दुराचरण, वचनसे दुराचरण, और मनसे दुराचरण करते हुये, साधुपुरुषोकी निन्दा करते थे, मिथ्या दृष्टि (=बुरे सिद्धान्त) रखते थे, बुरी धारणा(= मिथ्यादृष्टि)के काम करते थे। (अब) वह मरनेके बाद नरक, और दुर्गतिको प्राप्त हुये हैं। और यह (दूसरे)

प्राणी शरीर, वचन और मनमें सदाचार करते, साधुजनोकी प्रशंसा करते, ठीक धारणा (= सम्यक् दृष्टि) वाले, सम्यक् दृष्टिके अनुकूल आचरण करते थे, सो अब अच्छी गति और स्वर्गको प्राप्त हुये है।—इस तरह शुद्ध अलौकिक दिव्य चक्षुसे ० जान लेता है।

"जैसे महाराज ! चौरस्तेके बीचमें प्रासाद (=महल) हो। वहाँ आँखवाला (कोई) मनुष्य खळा हो मनुष्योंको घरमें घुसते भी और बाहर आते भी एक सळकसे दूसरी सळकमें घूमते, चौरस्तेके बीचमें पास बैठे भी देखे। उसके मनमें ऐसा होवे—'यह मनुष्य घरमें घुसते है, यह बाहर निकल रहे है, यह एक सळकसे दूसरी सळकमें घूम रहे हैं, यह चौरस्तेके बीचमें बैठे है।' इसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र,० चित्तको पाकर प्राणियोंके जन्म मरण जानने ०। वह० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको मरते जीते ० जान लेता है—'यह प्राणी शरीर० दुर्गति०। ये प्राणी० सुगति०। इस प्रकार० दिव्य चक्षुसे प्राणियोको जन्म लेते ० जान लेता है। यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष०।

८—दुःख-क्षय ज्ञान—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर आस्रवो (=चित्तमलो)के क्षयके (विषयमें) जाननेके लिये ०। वह 'यह दुःख है' इसको भली भाति जान लेता है, 'यह दुःख-समुदय (=दुःखका कारण) है ०', 'यह दुःख निरोध (=दुःखका नाश) है' ०, 'यह दुःखसे बचनेका मार्ग है'० जान लेता है। 'यह आस्रव है' ०, 'यह आस्रवोका समुदय है' ०, 'यह आस्रवोका निरोध है' ०, 'यह आस्रवोंके निरोधका मार्ग है' ०। ऐसा जानने और देखनेसे कामास्रवसे उसका चित्त मुक्त हो जाता है, भवआस्रवसे ०, अविद्या-आस्रवसे ०। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये करनेको नहीं रहा'—ऐसा जान लेता है।

"जैसे महाराज ! पहाळ के ऊपर स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल जलाशय (हो)। वहाँ आँखवाला (कोई) मनुष्य किनारेपर खळा होकर, सीप, घोघा, और जलजन्तु, तैरती खळी मछलियाँ, देखे। उसके मनमें ऐसा हो—'यह जलाशय स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल है। इसमें ये सीप ०'. उसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र० चित्तको पाकर आस्रवोके क्षयके लिये०। वह 'यह दुःख है' ० ०। 'यह आस्रव है ० ० जान लेता है। जानने और देखनेसे कामास्रवसे भी उसका चित्त मुक्त हो जाता है भवआस्रव ०, अविद्याआस्रव ०। 'मैं मुक्त हो गया, मैं मुक्त हो गया—ज्ञान होता है। आवागमन क्षीण०। यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष ०।

अपने पापको स्वीकारकर भविष्यमें सँभलकर रहनेकी प्रतिज्ञा करते हो, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूँ। आर्यधर्ममें यह वृद्धि (की बात) ही समझी जाती है, यदि कोई अपने पापको समझकर और स्वीकार करके भविष्यमें उस पापको न करने और धर्माचरण करनेकी प्रतिज्ञा करता है।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर राजा मागध वैदेहीपुत्र, अजातशत्रुने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! तो मैं अब जाता हूँ, मुझे बहुत कृत्य है, बहुत करणीय है।"

"महाराज ! जिसका तुम समय समझते हो।"

तब राजा ० अजातशत्रु भगवान्‌के कहे हुयेका अभिनन्दन और अनुमोदन कर आसनसे उठ भगवान्‌की वन्दना और प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब भगवान्‌ने राजा ० अजातशत्रुके जानेके बाद ही भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! इस राजाका संस्कार अच्छा नहीं रहा, यह राजा अभागा है। यदि भिक्षुओ ! यह राजा अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या न करता, तो आज इसे इसी आसनपर बैठे बैठे विरज (=मल रहित), निर्मल धर्मचक्षु (=धर्मज्ञान) उत्पन्न हो जाता।"

भगवान्‌ने यह कहा, भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका बळी प्रसन्नतासे अभिनन्दन किया।

चला। जितनी रथकी भूमि थी, उतना रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे। तब अम्बष्ट माणवक जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओंसे बोला—

"भो! आप गौतम इस समय कहाँ विहार कर रहे हैं? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये हैं।

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'यह कुलीन प्रसिद्ध अम्बट्ठ (=अम्बष्ट) माणवक, अभिज्ञात (=प्रख्यात) पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य है। इस प्रकारके कुल-पुत्रोंके साथ कथा-सलाप भगवान्‌को भारी नही होता।' और अम्बट्ठ माणवकसे कहा—

"अम्बट्ठ! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार (=कोठरी) है, चुपचाप धीरेसे वहाँ जाओ और बराडे (=अलिन्दे)में प्रवेशकर खासकर, जजीरको खटखटाओ, बिलाईको हिलाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।"

१—अम्बष्टका शाक्योंपर आक्षेप

तब अम्बट्ठ माणवकने जहाँ वह बद दर्वाजेवाला विहार था, चुपचाप धीरेसे वहाँ जा ० बिलाई-को हिलाया। भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। अम्बष्ट माणवकने भीतर प्रवेश किया। (दूसरे) माणवकों-ने भी प्रवेशकर भगवान्‌के साथ समोदन किया (और) वह एक ओर बैठ गये। (उस समय) अम्बट्ठ माणवक (स्वय) बैठे हुये भी, भगवान्‌के टहलते वक्त कुछ पूछ रहा था, स्वय खळे हुये भी बैठ हुये भगवान्‌से कुछ पूछ रहा था।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे यह कहा—

"अम्बष्ट! क्या वृद्ध=महल्लक आचार्य प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ कथा-सलाप, ऐसे ही होना है जैसा कि तू चलते खळे बैठे हुये मेरे साथ कर रहा है?'

'नही हे गौतम! चलते ब्राह्मणोंके साथ चलते हुये, खळे ब्राह्मणोंके साथ खळे हुये, बैठे ब्राह्मणों के साथ बैठे हुये बात करनी चाहिये। सोये ब्राह्मणके साथ सोये बात कर सकते है। किन्तु हे गौतम! जो मुडक, श्रमण, इभ्य (=नीच) काले, ब्रह्मा(=बन्धु)के पैरकी सतान है, उनके साथ ऐसे ही कथा-सलाप होता है, जैसा कि (मेरा) आप गौतमके साथ।

'अम्बट्ठ! याचक(=अर्थी)की भाँति तेरा यहाँ आना हुआ है। (मनुष्य) जिस अर्थके लिये आवे, उसी अर्थको (उसे) मनमे करना चाहिये। अम्बष्ट! (जान पळता है) तूने (गुरुकुलमें) नहीं वास किया है, वास करे बिना ही क्या (गुरुकुल) वासका अभिमान करता है?

तब अम्बष्ट माणवकने भगवान्‌के (गुरुकुल-) अ वास कहनम कुपित, असनुष्ट हो, भगवान्‌को ही खुनसाते (=खुसेन्तो) भगवान्‌को ही निन्दते, भगवान्‌को ही ताना देते—'श्रमण गौतम दुष्ट है' (सोच) यह कहा— हे गौतम! शाक्य-जाति चड है। हे गौतम शाक्य जाति क्षुद्र (=लघुक) है। हे गौतम! शाक्य-जाति बकवादी (=रभस) है। नीच (=इभ्य) समान होनेसे शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नही करते, ब्राह्मणोंका गौरव नही करते, ० नही मानते, ० नही पूजते, ० नहीं (=खातिर) करते। हे गौतम! सो यह अयोग्य है, जो कि नीच, नीच-समान शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठने शाक्योंपर इभ्य (=नीच) कह यह प्रथम आक्षेप किया।

"अम्बट्ठ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया है?"

'हे गौतम! एक समय मैं (अपने) आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिके किसी काममे कपिलवस्तु गया और जहाँ शाक्योंका सस्थागार (=प्रजातन्त्र भवन) था, वहाँ पहुँचा। उस समय बहुतसे शाक्य तथा शाक्य-कुमार सस्थागारमें ऊँचे ऊँचे आसनोंपर, एक दूसरेको अगुली गळाते हँस रहे

थे, खेल रहे थे, मुझे ही मानो हँस रहे थे। (उनमेंसे) किसीने मुझे आसनपर बैठनेको नहीं कहा। सो हे गौतम! अच्छन्न=अयुक्त है, जो यह इभ्य तथा इभ्य-समान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर दूसरा आक्षेप किया।

"लटुकिका (=गौरय्या) चिळिया भी अम्बट्ठ अपने घोसलेपर स्वच्छन्द-आलाप करती है। कपिलवस्तु शाक्योंका अपना (घर) है, अम्बट्ठ! इस थोळी बातसे तुम्हें अमर्ष न करना चाहिये।"

"हे गौतम! चार वर्ण है—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इनमें हे गौतम! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह तीनो वर्ण, ब्राह्मणके ही सेवक है। गौतम! सो यह ० अयुक्त है ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने इभ्य कह, शाक्योंपर तीसरी बार आक्षेप किया।

तब भगवान्को यह हुआ—यह अम्बट्ठ माणवक बहुत बढ बढकर शाक्योंपर इभ्य कह आक्षेप कर रहा है, क्यों न मैं (इससे) गोत्र पूछूँ। तब भगवान्ने अम्बट्ठ माणवकसे कहा—'किस गोत्रके हो, अम्बट्ठ!"

"कार्ष्ण्यायन हूँ, हे गौतम!"

२—शाक्योंकी उत्पत्ति

"अम्बट्ठ! तुम्हारे पुराने नाम गोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य(=स्वामि)-पुत्र होते हैं। तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो। अम्बष्ट! शाक्य, राजा इ क्ष्वा कु (=ओक्काक)को पितामह कह धारण करते (=मानते) हैं। पूर्वकालमें अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया मनापा रानीके पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, ओ क्का मु ख (=उल्कामुख), क र ण्डु, ह त्थि नि क, और सि नी सू र (नामक) चार बळे लळकोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया। वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) बळे शाक (=सागौन)-वनमें वास करने लगे। (गोरी) जातिके बिगळनेके डरसे उन्होंने अपनी बहिनोंके साथ सवास (=सभोग) किया। तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपने अमात्यो और दरबारियोंसे पूछा—'कहाँ है भो! इस समय कुमार?'

'देव! हिमवान्के पास सरोवरके किनारे महाशाकवन (=साक-सड) है, वहीं इस वक्त कुमार रहते हैं। वह जातिके बिगळनेके डरसे अपनी बहिनोंके साथ सवास करते है।'

"तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने उदान कहा—'अहो! कुमार! शाक्य (=समर्थ) हैं रे!! महाशाक्य हैं रे कुमार!' तबसे अम्बट्ठ! व ह शाक्यके नामहीसे प्रसिद्ध हुए, वही (इक्ष्वाकु) उनका पूर्वपुरुष था। अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुकी दि शा नामकी दासी थी। उससे कृ ष्ण (=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ। पैदा होतेही कृष्णने कहा—'अम्मा! धोओ मुझे, अम्मा! नहलाओ मुझे, इस गदगी (=अशुचि)से मुक्त करो, मैं तुम्हारे काम आऊँगा।' अम्बट्ठ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोंको देखकर 'पिशाच' कहते हैं, वैसेही उस समय पिशाचोंको, कृष्ण कहते थे। उन्होने कहा—इसने पैदा होते ही बात की, (अत यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ'। उसी (कृष्ण)से (उत्पन्न वश) आगे कार्ष्णायन प्रसिद्ध हुआ। वही कार्ष्णायनोंका पूर्व-पुरुष था। इस प्रकार अम्बष्ट! तुम्हारे माता पिताओंके गोत्रको ख्याल करनेसे, शाक्य आर्य-पुत्र होते हैं, तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो।"

ऐसा कहनेपर उन माणवकोंने भगवान्से कहा—

"आप गौतम! अम्बष्ट माणवकको बळे दासी-पुत्र-वचनसे मत लजावें। हे गौतम! अम्बष्ट माणवक सुजात है, कुल-पुत्र है ० बहुश्रुत ०, सुवक्ता ०, पंडित है। अम्बष्ट माणवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है।"

तब भगवान्ने उन माणवकोंसे कहा—

"यदि तुम माणवकोंको होता है—'अम्बष्ट माणवक दुर्जात है, ० अ-कुलपुत्र है, ० अल्पश्रुत ०,० दुर्वक्ता ०, दुष्प्रज्ञ (=अ-पंडित) ०। अम्बष्ट माणवक श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता। तो अम्बष्ट माणवक बैठे, तुम्ही इस विषयमें मेरे साथ वाद करो। यदि तुम माणवकोंको ऐसा है—अम्बष्ट माणवक सुजात है ०।०। तो तुम लोग ठहरो, अम्बष्ट माणवकको मेरे साथ वाद करने दो।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक सुजात है, ०। अम्बष्ट माणवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है। हम लोग चुप रहते हैं। अम्बष्ट माणवक ही आप गौतमके साथ वाद करेगा।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अम्बष्ट ! यहाँ तुमपर धर्म-सम्बन्धी प्रश्न आता है, न इच्छा होने हुए भी उत्तर देना होगा, यदि नही उत्तर दोगे, या इधर उधर करोगे, या चुप होगे, या चले जाओगे, तो यहीं तुम्हारा शिर सात टुकळे हो जायगा। तो अम्बष्ट ! क्या तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मण आचार्य-प्राचार्यो श्रमणाम सुना है (कि) कबस काण्र्ण्यायन है, और उनका पूर्व-पुरुष कौन था?"

ऐसा पूछनेपर अम्बष्ट माणवक चुप हो गया।

दूसरी बार भी भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे यह पूछा—०।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

अम्बष्ट ! उत्तर दो, यह तुम्हारा चुप रहनेका समय नही। जो कोई तथागतसे तीन बार अपने धर्म-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नही देगा, उसका शिर यहीं सात टुकळे हो जायगा।'

उस समय वज्रपाणि यक्ष बळे भारी आदीप्त=सम्प्रज्वलित=चमकते लोह-कूट (=अय-कूट)को लेकर, अम्बष्ट माणवकके ऊपर आकाशमें खळा था—'यदि यह अम्बष्ट माणवक तथागतसे तीन बार अपने धर्म-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नही देगा (तो) यही इसके शिरको सात टुकळे करूँगा।' उस वज्रपाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्बष्ट माणवक। तब उस देख अम्बष्ट माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित हो, भगवान्‌से त्राण=लयन=शरण चाहता, बैठकर भगवान्‌से बोला—

'क्या आप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहे ता?"

'तो क्या मानते हो, अम्बष्ट ! क्या तुमने सुना है ०?'

'ऐसा ही है हे गौतम ! जैसा कि आपने कहा। तबसे ही काण्र्ण्यायन हुए, और वही काण्र्ण्यायना-का पूर्व-पुरुष था।'

ऐसा कहनेपर (दूसरे) माणवक उन्नाद=उच्चशब्द=महा-शब्द (=कोलाहल) करने लगे—

'अम्बष्ट माणवक दुर्जात है। अ-कुलपुत्र है। अम्बष्ट माणवक शाक्योंका दासी-पुत्र है। शाक्य, अम्बष्ट माणवकके आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते है। सत्यवादी श्रमण गौतमको हम अश्रद्धेय बनाना चाहते थे।

तब भगवान्‌ने देखा—'यह माणवक, अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक लजाते है, क्यों न मैं (इसे) छुळाऊँ।' तब भगवान्‌ने माणवकोंसे कहा—

माणवको ! तुम अम्बष्ट माणवकको दासी पुत्र कहकर बहुत अधिक मत लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे। उन्होने दक्षिण-देशमें जाकर ब्रह्ममन्त्र पढकर, राजा इक्ष्वाकुके पास जा (उसकी) क्षुद्र रूपी कन्याको माँगा। तब राजा इक्ष्वाकुने—'अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगता है' (सोच), कुपित हो असन्तुष्ट हो, बाण चढाया। लेकिन उस बाणको न वह छोळ सकता था, न समेट सकता था। तब अमात्य और पार्षद (=दर्बारी) कृष्ण ऋषिके पास जाकर बोले—

'भदन्त ! राजाका मगल हो, भदन्त ! राजाका मगल (=स्वस्ति) हो।'

'राजाका मगल होगा, यदि राजा नीचेकी ओर बाण(=क्षुरप्र)को छोळेगा। (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी फट जायगी।'

'भदन्त ! राजाका मगल हो, जनपद(=देश)का मगल हो।'

'राजाका मगल होगा, जनपदका भी मगल होगा, यदि राजा ऊपरकी ओर बाण छोळेगा, (लेकिन) जहाँ तक राजाका राज्य है, सात वर्ष तक वहाँ वर्षा न होगी।'

'भदन्त ! राजाका मगल हो, जनपदका मगल हो, दैव वर्षा करे।'

'० दैव भी वर्षा करेगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोळे। कुमार स्वस्ति पूर्वक (रहेगा किन्तु) गजा हो जायेगा।'

"तब माणवको ! अमात्योंने इक्ष्वाकुसे कहा—' ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोळे, कुमार स्वस्ति-सहित (किन्तु) गजा हो जायेगा। राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोळ दिया । उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित, तर्जित राजा इक्ष्वाकुने ऋषिको कन्या प्रदान की। माणवको ! अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कह, तुम मत बहुत अधिक लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे।"

३–जात-पाँतका खंडन

तब भगवान्ने अम्बष्ट माणवकको सम्बोधित किया—

"तो ..अम्बष्ट ! यदि (एक) क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ सहवास करे, उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन और पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पाहुनाईमें उसे (साथ) खिलायेंगे?"

"खिलायेंगे हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण उसे मत्र (=वेद) बँचायेंगे?" "बँचायेंगे हे गौतम !"

"उसे (ब्राह्मणी) स्त्री (पाने)में रुकावट होगी, या नहीं?"

"नहीं रुकावट होगी।"

"क्या क्षत्रिय ! उसे क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?"

"नहीं, हे गौतम ! .क्योंकि माताकी ओरसे हे गौतम ! वह ठीक नहीं है।"

"तो ..अम्बष्ट ! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ सहवास करे, और उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा?"

"पायेगा हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पाहुनाईमें उसे (साथ) खिलायेंगे?"

"खिलायेंगे हे गौतम !"

"ब्राह्मण उसे मत्र बँचायेंगे, या नहीं?"

"बँचायेंगे हे गौतम !"

"क्या उसे (ब्राह्मण-)स्त्री (पाने)में रुकावट होगी?"

"रुकावट न होगी हे गौतम !"

"क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?"

"नहीं, हे गौतम !"

"सो किस हेतु?"

"(क्योंकि) हे गौतम ! पिताकी ओरसे वह ठीक नहीं है।"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! स्त्रीकी ओरसे भी, पुरुषकी ओरसे भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। तो...अम्बष्ट यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको छुरेसे मुंडित कर, पाँठीसे चाबुक मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्थालीपाक, यज्ञ, पाहुनाईमें उसे खिलायेंगे ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे या नहीं ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"उसे (ब्राह्मण-)स्त्री (पाने)में रुकावट होगी या नहीं ?"

"रुकावट होगी, हे गौतम !"

"तो अम्बष्ट ! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुरेसे मुंडित कर, पाँठीसे चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दे। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा ?"

"पायेगा हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण ० उसे खिलायेंगे ?" "खिलायेंगे हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे ?"

"बँचायेंगे हे गौतम !"

"उसे स्त्रीमें रुकावट होगी, या नहीं ?"

"रुकावट नहीं होगी हे गौतम !"

"अम्बट्ठ ! क्षत्रिय बहुतही निहीन (=नीच) हो गया रहता है, जबकि उसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुंडित कर ०। इस प्रकार अम्बष्ट ! जब वह क्षत्रियोंमें परम नीचताको प्राप्त है, तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बष्ट ! यह गाथा कही है—

४—विद्या और आचरण

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

'जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥१॥'

"सो अम्बष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी (=गुनी) है, अनुचित नहीं गायी है,—सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं है, सार्थक है, निरर्थक नहीं है, मैं भी सहमत हूँ, मैं भी अम्बष्ट कहता हूँ—'गोत्र लेकर ०।'"

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्र-वाद कहते, नहीं मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहते हैं। जहाँ अम्बष्ट ! आवाह-विवाह होता है , वहीं यह जातिवाद , गोत्रवाद , मानवाद, 'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहा जाता है। अम्बट्ठ ! जो कोई जातिवादमें बँधे हैं, गोत्रवादमें बँधे हैं, (अभि-)मान-वादमें बँधे हैं, आवाह विवाहमें बँधे हैं, वह अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर हैं। अम्बष्ट ! जाति-वाद-बन्धन, गोत्र-वाद-बन्धन, मान-वाद-बन्धन, आवाह-विवाह-बन्धन छोड़कर, अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाका साक्षात्कार किया जाता है।

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! संसारमें तथागत उत्पन्न होते हैं ०[1]।०। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवरसे

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २३-२७।

खानेसे सन्तुष्ट होता है। ०। इस तरह अम्बष्ट ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है ०[1]।

[2]वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी उसके चरणमें होता।० द्वितीय ध्यान ०।० तृतीय ध्यान ०।० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमें होता है। अम्बष्ट ! यह चरण है। ० सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिए, (अपने) चित्तको नवाता है, झुकाता है। सो इस प्रकार एकाग्र चित्त ०[3]। इस तरह आकार प्रकार के साथ अनेक पूर्व (जन्म-)निवासोंको जानता है। यह भी अम्वष्ट ! उसकी विद्यामें है। ० विशुद्ध अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०[4] प्राणियोंको देखता है। यह भी अम्वष्ट ! उसकी विद्याम है। ०[5] 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अव यहाँ (करने)के लिये कुछ नही रहा —यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामें है। यह अम्वष्ट ! विद्या है। अम्वष्ट ! ऐसा भिक्षु विद्या-सम्पन्न कहा जाता है। इसी प्रकार चरण-सम्पन्न, इस प्रकार विद्या-चरण-सम्पन्न होता है। इस विद्या सम्पदा, तथा चरण-सम्पदासे बढकर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण-सम्पदा नही है।

५—विद्याचरणके चार विघ्न

"अम्वष्ट ! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न होते हैं। कौनसे चार ? (१) कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्वष्ट ! इस अनुपम विद्या चरण सम्पदाको पूरा न करके, बहुतसा विविध झोरी मना (=वाणप्रस्थीक सामान) लेकर—'फल मूलाहारी होऊँ (सोच) वन वासके लिये जाता है। वह विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुका सेवन करता है। इस अनुपम विद्या चरण-सम्पदाका यह प्रथम विघ्न है। (२) और फिर अम्वष्ट ! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या चरण-सम्पदाको पूरा न करके, फलाहारिता को भी पूरा न करके, कुदाल ले 'कन्द मूल फलाहारी होऊँ (सोच) विद्या चरणसे भिन्न वस्तुका सेवन करता है।० यह द्वितीय विघ्न है। (३) और फिर अम्वष्ट ! ० फलाहारिताको न पूरा करके, गाँवके पास या निगम (=कस्बा)के पास अग्निशाला बना अग्नि-परिचरण (=होम आदि) करता रहता है ०।० यह तृतीय विघ्न है। (४) और फिर अम्वष्ट ! ० अग्नि-परिचर्याको भी न पूरा करके, चौरस्तेपर चार द्वारोंवाला आगार बनाकर रहता है, कि यहाँ चारो दिशाओंसे जो श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति=यथाबल सत्कार करूँगा। अनुपम विद्या चरण-सम्पदाके अम्वष्ट ! यह चार विघ्न है।

"तो अम्वष्ट ! क्या आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-सम्पदाका उपदेश करते हो ?"

"नही हे गौतम ! कहाँ आचार्य-सहित मैं और कहाँ अनुपम विद्या चरण-सम्पदा ! हे गौतम ! आचार्य-सहित मैं अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर हूँ।"

"तो अम्बष्ठ ! इस अनुपम विद्या चरण-सम्पदाको पूरा न कर, झोली आदि (=खारी-विविध) लेकर 'फलाहारी होऊँ (सोच), क्या तुम आचार्य-सहित वनवासके लिये वनमें प्रवेश करते हो ?

"नही हे गौतम !"

"०।०। चौरस्तेपर चार द्वारोंवाला आगार बनाकर रहते हो, कि जो यहाँ चारो दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका यथाशक्ति सत्कार करूँगा ?" "नही हे गौतम !"

"इस प्रकार अम्वष्ट ! आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्या चरण-सम्पदासे भी हीन हो, और यह जो अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न (=अपाय-मुख) हैं, उनसे भी हीन। तुमने अम्वष्ट ! क्यो आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सीखकर यह वाणी कही—'कहाँ इब्भ, (=नीचा, इभ्य) काले,

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २७-२८। [2] पृष्ठ २९-३०। [3] पृष्ठ ३१। [4] पृ ३१-३२। [5] पृ ३२।

पैसे उत्पन्न मुडक श्रमण हैं, और कहाँ त्रैविद्य (=त्रिवेदी) ब्राह्मणका साक्षात्कार'? स्वयं अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) न पूरा करते (हुए भी), अम्बष्ट! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष देखो। अम्बष्ट! पौष्करसाति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नहीं देता। जब उससे साथ मत्रणा भी करनी होती है, तो कपडेकी आळमे मत्रणा करता है। अम्बष्ट! जिसकी धार्मिक दी हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, वह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नहीं देता!! देखो अम्बष्ट! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष। । तो क्या मानते हो अम्बष्ट! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथीपर बैठा, या रथके ऊपर खळा उग्रोके साथ या राजन्योके साथ कोई सलाह करे, और उस स्थानसे हटकर एक ओर खळा हो जाय। तब (कोई) शूद्र या शूद्र-दास आजाय, वह उस स्थानपर खड़ा हो, उसी सलाहको करे—जिसे कि राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो वह राज-कथनको कहता है, राजमत्रणाको मन्त्रित करता है, इतनेसे क्या वह राजा या राज-अमात्य हो जाता है?"

"नही हे गौतम!"

"इसी प्रकार हे अम्बष्ट! जो वह ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषि मत्र-कर्ता, मत्र प्रवक्ता (थे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (=विलित) मत्रपद (=-वेद)को ब्राह्मण आजकल अनुगान अनुभाषण करते है, भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनुवाचित करते हैं, जैसे कि—अ ट्ट क, वा म क, वा म दे व, वि श्वा मि त्र, य म द ग्नि, अ गि रा, भ र द्वा ज, व शि ष्ठ, क श्य प, भृ गु। उनके मत्रोको आचार्य-सहित मै अध्ययन करता हूँ, क्या इतनसे तुम ऋषि या ऋषित्वके मार्गपर आरूढ कहे जाओगे? यह सभव नहीं।

"तो क्या अम्बष्ट! तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणो, आचार्यों प्राचार्योको कहते सुना है कि जो वह ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषि ०अट्टक० (थे), क्या वह ऐसे सुस्नात सुविलिप्त (=अगराग लगाये), केश मोछ सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिन, स्वच्छ (=श्वेत) वस्त्र-धारी, पाँच काम भोगोसे लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?'

"नहीं, हे गौतम!'

क्या वह ऐसा शालिका भात, शुद्ध मासका तीवन (=उपसेचन), कालिमारहित सूप, अनेक प्रकारकी तरकारी (=व्यजन) भोजन करते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?

'नहीं, हे गौतम!"

'क्या वह ऐसी (साळी) वेष्टित कमनीयगात्रा स्त्रियोके साथ रमते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?'

'क्या वह ऐसी कटे बालोवाली घोळियोके रथपर लम्बे डडेवाले कोळोसे वाहनोको पीटते गमन करते थे, जैसे कि० तुम?'

"नहीं, हे गौतम!"

'क्या वह ऐसे खाँई खोदे, परिघ (=काष्ठ-प्राकार) उठाये, नगर-रक्षिकाओमें (=नगरूप-कारिकासु) दीर्घ-आयु-पुरुषोसे रक्षा करवाते थे, जैसे कि० तुम?'

"नहीं, हे गौतम!"

'इस प्रकार अम्बष्ट! न आचार्य-सहित तुम ऋषि हो, न ऋषित्वके मार्गपर आरूढ। अम्बष्ट! मेरे विषयमें जो तुम्हें सशय=विमति हो वह प्रश्न करो, मै उसे उत्तरसे दूर करूँगा।"

यह कह भगवान् विहारसे निकल, चक्रम (=टहलने)के स्थानपर खळे हुए। अम्बष्ट माणवक भी विहारसे निकल चक्रमपर खळा हुआ। तब अम्बष्ट माणवक भगवान्के पीछे पीछे टहलता भगवान्के

शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोको ढूंढता था। अम्बष्ट माणवकने दोको छोळ बत्तीस महापुरुष-लक्षणो-मेसे अधिकाश भगवान्के शरीरमें देख लिये। ०।

तव अम्बष्ट माणवकको ऐसा हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोसे समन्वित, परिपूर्ण हैं' और भगवान्से बोला—"हन्त! हे गौतम! अब हम जायेंगे, हम बहुत कृत्यवाले बहुत काम-वाले हैं।"

"अम्बष्ट! जिसका तुम काल समझते हो।"

तव अम्बष्ट माणवक वडवा(=घोळी)-रथपर चढकर चला गया।

उस समय पौष्कर साति ब्राह्मण, बळे भारी ब्राह्मण-गणके साथ, उक्कट्ठासे निकलकर, अपने आराम (=बगीचे) मे, अम्बष्ट माणवककी ही प्रतीक्षा करते बैठा था। तव अम्बष्ट माणवक जहाँ अपना आराम था वहाँ गया। जितना यान (=रथ)का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतरकर पैदल ही जहाँ पौष्कर-साति ब्राह्मण था, वहाँ गया। जाकर ब्राह्मण पौष्कर-सातिको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अम्बष्ट माणवकको पौष्कर-साति ब्राह्मणने कहा—

"क्या तात! अम्बष्ट! उन भगवान् गौतमको देखा?"

"भो! हमने उन भगवान् गौतमको देखा।"

"क्या तात! अम्बष्ट! उन भगवान् गौतमका यथार्थ यश फैला हुआ है, या अयथार्थ? क्या आप गौतम वैसे ही हैं, या दूसरे?"

"भो! यथार्थमें उन भगवान् गौतमके लिये शब्द (=यश) फैला हुआ है। आप गौतम वैसेही है, अन्यथा नही। आप गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोसे समन्वित परिपूर्ण हैं।'

"तात! अम्बष्ट! क्या श्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा-सलाप हुआ?"

"भो! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-सलाप हुआ।"

"तात! अम्बष्ट! श्रमण गौतमके साथ क्या कथा-सलाप हुआ?"

तव अम्बष्ट माणवकने जितना भगवान्के साथ कथा-सलाप हुआ था, सब पौष्कर-साति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्कर-साति०ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अहो! हमारा पडितवा-पन!! अहो! हमारा बहुश्रुतवा-पन!! अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यक-पन! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुष, काया छोळ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात=निरय (=नरक)में ही उत्पन्न होना है, जो अम्बट्ठ! उन आप गौतमसे इस प्रकार चिढाते हुए तुमने बात की। और आप गौतम हम (ब्राह्मणो)के लिये भी ऐसे खोल खोलकर बोले। अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यकपन!!! " (यह वह पौष्कर-सातिने) कुपित, असतुष्ट हो, अम्बष्ट माणवकको पैदलही वहाँसे हटाया, और उसी वक्त भगवान्के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ। तब उन ब्राह्मणोने पौष्करसाति ब्राह्मणसे यह कहा—

"भो! श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विकाल है। दूसरे दिन आप पौष्कर साति श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावें।'

इस प्रकार पौष्कर-साति ब्राह्मण अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा, यानोपर रखवा, मशाल (=उल्का)की रोशनीमें उक्कट्ठासे निकल, जहाँ इच्छानगल वन-खण्ड था, वहाँ गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। जाकर भगवान्के साथ सम्मोदनकर (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"हे गौतम! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था?"

"ब्राह्मण ! तेरा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कुछ कथा-सलाप हुआ ?"

"ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवकके साथ मेरा कुछ कथा-सलाप हुआ।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कथा-सलाप हुआ ?"

तब भगवान्‌ने, अम्बष्ट माणवकके साथ जितना कथा-सलाप हुआ था, (वह) सब पौष्करसाति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"बालक है, हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक। क्षमा करें, हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकको।"

"सुखी होवे, ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवक।"

तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्‌के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढने लगा०[1]। पौष्कर-साति ब्राह्मणको हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण हैं', और भगवान्‌से बोला—

"भिक्षुसघ सहित आप गौतम आजका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने भगवान्‌की स्वीकृति जान, भगवान्‌से कालनिवेदन किया—"(भोजनका) काल है, हे गौतम ! भात तैयार है।' तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ ब्राह्मण पौष्कर-सातिके परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को अपने हाथसे उत्तम खाद्यभोज्यसे सतर्पित=सप्रवारित किया, और माणवकोंने भिक्षु-सघको। पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक दूसरे नीचे आसनको ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, पौष्कर-साति ब्राह्मणको भगवान्‌ने आनुपूर्वी-कथा कही०[2] जैसे कि दानकी कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगोंके दुष्परिणाम, अपकार, मलिन-करण, और निष्कामता (=भोग-त्याग)के माहात्म्यको प्रकाशित किया। जब भगवान्‌ने पौष्करसाति ब्राह्मणको उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत चित्त=प्रसन्न चित्त जाना तो जो बुद्धोंका खींचने वाला धर्म उपदेश है—दुःख, कारण, विनाश, मार्ग—उसे प्रकाशित किया, जैसे शुद्ध, निर्मल वस्त्रको अच्छी तरह रग पकड़ता है, वैसेही पौष्कर-साति ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला (=समुदय-धर्म) है, वह नाशवान् (=निरोध-धर्म) है'—उत्पन्न हुआ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म ० हो भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! अद्भुत हे गौतम !!! ०[2] (अपने) पुत्र-सहित भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य सहित, मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे आप गौतम मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें। जैसे उक्कट्ठामें आप गौतम दूसरे उपासक-कुलोंमें आते हैं, वैसेही पुष्कर-साति-कुलमें भी आवें। वहाँपर माणवक (=तरुण ब्राह्मण) या माणविका जाकर भगवान् गौतमको अभिवादन करेंगे, आसन या जल देंगे। या (आपके प्रति) चित्तको प्रसन्न करेंगे। यह उनके लिये चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

'सुन्दर (=कल्याण) कहा, ब्राह्मण !"

---

[1]पृष्ठ ४२। [2]पृष्ठ ३२।

४—सोणदण्ड-सुत्त (१।४)

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म (जात-पात-खडन)। २—शील। ३—प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् अंग (देश) में विचरते, जहाँ चम्पा है, वहाँ पहुँचे। वहाँ चम्पामें भगवान् गर्गरा (गग्गरा) पुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे।

उस समय सोणदण्ड (=स्वर्णदण्ड) ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार-द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय, चम्पाका स्वामी था।

चम्पा निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित० श्रमण गौतम चम्पामें गर्गरा पुष्करिणीके तीर विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब चम्पा वासी ब्राह्मण-गृहस्थ चम्पासे निकलकर झुंडके झुंड जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे। उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये (अपने) प्रासादपर गया हुआ था। सोणदण्ड ब्राह्मणने चम्पा-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंको ० जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर ० जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी) को सम्बोधित किया—०[1]०।

उस समय चम्पामें नाना देशोंके पाँच-सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ सोणदण्ड ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर सोणदण्ड ब्राह्मणसे बोले—०[2]०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ गर्गरा पुष्करिणी थी, वहाँ गया। तब वनखडकी आळमें जानेपर, सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तमें वितर्क उत्पन्न हुआ—"यदि मैं ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ, तब यदि श्रमण गौतम मुझे ऐसा कहे—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रकारसे, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—अज्ञ (=बाल)=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, श्रमण गौतमसे ठीकसे (=योनिसो) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता। जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होंगे। यशसे ही भोग मिलते हैं। और यदि मुझसे श्रमण गौतम प्रश्न पूछें, यदि मैं प्रश्नके उत्तर द्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ। तब मुझे, यदि श्रमण गौतम ऐसा कहे—ब्राह्मण! इस प्रश्नका ऐसे उत्तर नहीं देना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देना चाहिये। तो यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मैं यदि इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही लौट जाऊँ, तो इससे भी यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—बाल=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, मानी है, भयभीत है, श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ। इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही, कैसे लौट गया? जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी ०।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ ० संमोदन कर ०

---

[1] देखो पृष्ठ ४८। [2] पृष्ठ ४९।

एक ओर बैठ गया। चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये, कोई-कोई समोदनकर ०, कोई-कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०, कोई-कोई नाम गोत्र सुनाकर ०, कोई-कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

वहाँ भी सोणदण्ड ब्राह्मणके (चित्तमें) बहुतसा वितर्क उठ रहा था—'यदि मैं ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ ०। अहोवत! यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रै वि द्य क पंडिताईमें प्रश्न पूछता, तो मैं प्रश्नका उत्तर देकर उसके चित्तको सन्तुष्ट करता।'

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है। क्यों न मैं सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्‌ने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग कितने अंगों (=गुणों)से युक्त (पुरुष)को ब्राह्मण कहते हैं, और वह 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते हुए सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता?"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणको हुआ—'अहो! जो मेरा इच्छित=आकांक्षित=अभिप्रेत=प्रार्थित था—अहोवत! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें प्रश्न पूछता ०। सो श्रमण गौतम मुझसे अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही पूछ रहा है। मैं अवश्य प्रश्नोत्तरसे उसके चित्तको सन्तुष्ट करूँगा। तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठाकर, परिषद्‌की ओर नजर दौळा भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम! ब्राह्मण लोग पाँच अंगोंसे युक्त (पुरुष)को, ब्राह्मण कहते हैं ०। कौनसे पाँच? (१) ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो ०। (२) अध्यायक (=वेदपाठी) मंत्रधर ० त्रिवेद-पारगत ०। (३) अभिरूप=दर्शनीय ० अत्यन्त (गौर) वर्णसे युक्त हो। (४) शीलवान्०। (५) पंडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा (=सुजा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय हो। इन पाँच अंगोंसे युक्तको ०।"

"ब्राह्मण! इन पाँच अंगोंमें एकको छोळ, चार अंगोंसे भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन पाँच अंगोंमेंसे हे गौतम! वर्ण (३)को छोळते हैं। वर्ण (=रंग) क्या करेगा। यदि ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो ०। अध्यायक, मंत्रधर० ० हो। शीलवान् ० हो ०। पंडित मेधावी ० हो। इन चार अंगोंसे युक्तको, हे गौतम! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं ०।"

"ब्राह्मण! इन चार अंगोंमेंसे एक अंगको छोळ, तीन अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन चारों अंगोंमेंसे हे गौतम! मंत्र (=वेद) (२) को छोळते हैं। मंत्र क्या करेंगे, यदि भो! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात० हो। शीलवान्० हो। पंडित मेधावी ० हो। इन तीन अंगोंसे युक्तको हे गौतम! ब्राह्मण कहते हैं ०।"

'ब्राह्मण! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको छोळ, दो अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन तीनोंमेंसे हे गौतम! जाति (१) को छोळते हैं, जाति (=जन्म) क्या करेगी, यदि भो! ब्राह्मण शीलवान् ० हो। पंडित मेधावी ० हो। इन दो अंगोंसे युक्तको ब्राह्मण कहते हैं ०।"

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोंने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"आप सोणदण्ड! ऐसा मत कहें, आप सोणदण्ड ऐसा मत कहें। आप सोणदण्ड वर्ण (=रंग)-का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते हैं, मंत्र (=वेद)का प्रत्याख्यान करते हैं, जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अंशमें आप सोणदण्ड श्रमण गौतमके ही वादको स्वीकार कर रहे हैं।"

तब भगवान्‌ने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"यदि ब्राह्मणो ! तुमको यह हो रहा है—सोणदण्ड ब्राह्मण अल्पश्रुत है, ० अ-सुवक्ता है, ० दुष्प्रज्ञ है। सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद नही कर सकता। तो सोणदण्ड ब्राह्मण ठहरे, तुम्हीं मेरे साथ वाद करो। यदि ब्राह्मणो ! तुमको ऐसा होता है—सोणदण्ड ब्राह्मण बहुश्रुत है, ० सुवक्ता है, ० पडित है, सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमे श्रमण गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदण्ड ब्राह्मणको मेरे साथ वाद करने दो।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"आप गौतम ठहरें, आप गौतम मौन धारण करें, मैंही धर्मके साथ इनका उत्तर दूँगा।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"आप लोग ऐसा मत कहे, आप लोग ऐसा मत कहे—आप सोणदण्ड वर्णका प्रत्याख्यान करते है ०। मैं वर्ण या मत्र (=वेद) या जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान नही करता।"

उस समय सोणदण्ड ब्राह्मणका भाजा **अंगक** नामक माणवक उस परिषद्‌में बैठा था। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"आप सब हमारे भाजे अगक माणवकको देखते है?"

"हाँ, भो!"

"भो! (१) अगक माणवक अभिरूप दर्शनीय प्रासादिक, परम (गौर) वर्ण पुष्कलतासे युक्त ० है। इस परिषद्‌मे श्रमण गौतमको छोळकर, वर्ण (=रग)मे इसके बराबरका (दूसरा) कोई नही है। (२) अगक माणवक अध्यायक, (=वेद-पाठी) मत्रधर निघण्टु-कल्प-अक्षरप्रभेद सहित तीनो वेद और पाँचवे इतिहासमे पारगत है, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत-महापुरुष-लक्षण-(शास्त्रो)में निपुण है। मैंही उसे मत्रो (=वेद)को पढानेवाला हूँ। (३) अगक माणवक दोनों ओरसे सुजात है ०। मै इसके माता पिता दोनोको जानता हूँ ०। (यदि) अगक माणवक प्राणोको भी मारे, चोरी भी करे, *परस्त्रीगमन भी करे,* मृपा (=झूठ) *भी बोले,* मद्य भी पीवे। यहाँपर अब भो! *वर्ण क्या करेगा? मत्र और जाति क्या (करेगी)? जब कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) बृद्धशील* (=बडे शीलवाला), वृद्धशीलतासे युक्त होता है, (२) पडित और मेधावी होता है, सुजा (=यज्ञ-दक्षिणा)-ग्रहण करनेवालोमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनो अगोसे युक्तको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते है। (वह) 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते, सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नही होता।"

"ब्राह्मण! इन दो अगोमेंसे एक अगको छोळ, एक अगसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है? ०।"

"नही, हे गौतम! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान)। प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है, जहाँ प्रज्ञा है, वहाँ शील है। शीलवान्‌को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्‌को शील। किन्तु शील लोकमें प्रज्ञाओका अगुआ (=अग्र) कहा जाता है। जैसे हे गौतम! हाथसे हाथ धोवे, पैरसे पैर धोवे, ऐसेही हे गौतम! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है ०।"

"*यह ऐसाही है, ब्राह्मण!* शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा-प्रक्षालित शील है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा, जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील। शीलवान्‌को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्‌को शील। किन्तु लोकमें शील प्रज्ञाका सर्दार कहा जाता है। ब्राह्मण! शील क्या है? प्रज्ञा क्या है?"

"हे गौतम! इस विषयमें हम इतनाही भर जानते हैं। अच्छा हो यदि आप गौतमही . . (इसे कह)।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" (यह) सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌को उत्तर दिया। भगवान्‌ने कहा—

२—शील

"ब्राह्मण ! तथागत लोकमें उत्पन्न होते[1]०। इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। यह भी ब्राह्मण वह शील है।

३—प्रज्ञा

"० प्रथम ध्यान ०[1]। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीयध्यान ०। ० चतुर्थध्यान ०। ० ज्ञानदर्शनके लिये चित्तको लगाता है ०। '० अब कुछ यहाँ करनेको नहीं है' यह जानता है। यह भी उसकी प्रज्ञामें है। ब्राह्मण ! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !! ०[2]। आजसे आप गौतम मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें। भिक्षु-संघ सहित आप मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। ०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा भगवान्‌को काल सूचित किया—'हे गौतम ! (चलनेका) काल है, भोजन तय्यार है'।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ ब्राह्मण सोणदण्डका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सर्तापत=सप्रवारित किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"यदि हे गौतम ! परिषद्‌में बैठे हुए मैं आसनसे उठकर आप गौतमको अभिवादन करूँ, तो मुझे वह परिषद् तिरस्कृत करेगी। वह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा। यशसे ही तो हमारे भोग मिले हैं। मैं यदि हे गौतम ! परिषद्‌में बैठ हाथ जोडूँ, तो उसे आप गौतम मेरा प्रत्युपस्थान (=खळा होना) समझें। मैं यदि हे गौतम ! परिषद्‌में बैठा साफा (=वेष्ठन) हटाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझें। मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठा हुआ, यानसे उतरकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ उससे वह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठाही पतोद लट्ठी (=कोळेका डंडा) ऊपर उठाऊँ, तो उसे आप गौतम मेरा यानसे उतरना धारण करें। यदि मैं हे गौतम ! यानमें बैठा हाथ उठाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार करें।"

तब भगवान् सोणदण्ड ब्राह्मणको धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० कर, आसनसे उठकर चल दिये।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-३२। [2] पृष्ठ ३२।

५—कुटदन्त-सुत्त (१।५)

१—बुद्धकी प्रशसा । २—अहिंसामय-यज्ञ (महाविजित जातकका)—(१) बहुसामग्रीका यज्ञ; (२) अल्प सामग्रीका महान् यज्ञ ।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओके महा-भिक्षु-सघके साथ मगध देशमे विचरते, जहाँ **खाणुमत** नामक मगधका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् खाणुमतमे अम्ब-लट्ठिका (=आम्रयष्टिका)मे विहार करते थे।

उस समय कुटदन्त ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ट-उदक-धान्य-सम्पन्न राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था। उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था। सात सौ बैल, सातसौ बछळे, सातसौ बछळियाँ, सातसौ बकरियाँ, सातसौ भेळें यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भा)पर लाई गई थी।

खाणुमत-वासी ब्राह्मण गृहस्थोने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं। उन आप गौतमका ऐसा मगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगति-प्राप्त, लोकवेत्ता, पुरुषोके अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्यके उपदेशक, बुद्ध भगवान् है, इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ खाणुमतसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाने लगे। उस समय कुटदन्त ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनके शयनके लिये गया हुआ था। कुटदन्त ब्राह्मणने खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोको झुण्डके झुण्ड खाणुमतसे निकलकर, जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रटरी)को सम्बोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता! (जो) ० खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ ० अम्बलट्ठिका जा रहे है?"

"भो! शाक्य कुलसे प्रव्रजित ० श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामे विहार कर रहे है। उन गौतम-का ऐसा मगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है ०। उन्ही आप गौतमके दर्शनार्थ जा रहे है।"

तब कुटदन्त ब्राह्मणको हुआ—'मैने यह सुना है, कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कारोवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदा (=यज्ञविधि)को जानता है। मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। क्यो न श्रमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदाको पूछूँ?' तब कुटदन्त ब्राह्मणने क्षत्ताको सम्बोधित किया—

"तो हे क्षत्ता! जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ है, वहाँ जाओ। जाकर खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंसे ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है 'थोळी देर आप सब ठहरें, कुटदन्त ब्राह्मण भी, श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

कुटदन्त ब्राह्मणसे—'अच्छा भो!' कह क्षत्ता वहाँ गया, जहाँ कि खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ थे। जाकर ० बोला—'कुटदन्त ०'।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञका उपभोग करनेके लिये खाणुमतमें वास करते थे।

उन ब्राह्मणोंने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ कुटदन्त० था वहाँ गये। जाकर कुटदन्त ब्राह्मणसे बोले—"सचमुच आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेंगे?"

"हाँ भो! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं है। यदि आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेंगे, (तो) आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा। चूँकि आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका बढ़ेगा, इस बात (=अंग)से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप कुटदन्तके दर्शनार्थ आने योग्य हैं०। आप कुटदन्त बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं, तीनसौ माणवकों-को मंत्र (=वेद) पढ़ाते हैं। नाना दिशाओंसे, नाना देशोंसे बहुतसे माणवक (=विद्यार्थी) मंत्रके लिये, मंत्र-पढ़नेके लिये, आप कुटदन्तके पास आते हैं०। आप कुटदन्त जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय प्राप्त हैं। श्रमण गौतम तरुण हैं, तरुण साधु हैं०। आप कुटदन्त मगधराज श्रेणिक बिम्बिसारसे सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित हैं०। आप कुटदन्त ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सत्कृत० हैं०। आप कुटदन्त० खाणुमतके स्वामी हैं। इस बातसे भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं, श्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य हैं।"

१—बुद्धकी प्रशंसा

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंसे यह कहा—

"तो भो! मेरी भी सुनो, कि क्यों हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम भो! दोनों ओरसे सुजात हैं०, इस बातसे भी हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं। श्रमण गौतम बड़े भारी ज्ञाति-संघको छोड़कर प्रब्रजित हुए हैं०। श्रमण गौतम शीलवान् आर्यशील-युक्त कुशल-शीली=अच्छे शीलसे युक्त०। श्रमण गौतम सुवक्ता=कल्याण-वाक्करण। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य०।० काम-राग-रहित, चपलता-रहित०।० कर्मवादी-क्रियावादी ०। ब्राह्मण संतानोंके निष्पाप अग्रणी०।० अमिश्र उच्चकुल क्षत्रिय कुलसे प्रब्रजित ०।० आढ्य महाधनी, महाभोगवान्-कुलसे प्रब्रजित०। श्रमण गौतमके पास दूसरे राष्ट्र दूसरे जनपदोंसे पूछनेके लिये आते हैं०।० अनेक सहस्र देवता प्राणोंसे शरणागत हुए०। श्रमण गौतमके लिये ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द फैला हुआ है—कि वह भगवान्०[1]। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं०। श्रमण गौतम 'आओ, स्वागत' बोलनेवाले, सम्मोदक, अभ्राकुटिक (=अकुटिलभ्रू), उत्तान-मुख, पूर्वभाषी०।० चारों परिषदोंसे सत्कृत=गुरुकृत००। श्रमण गौतममें बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् हैं०। श्रमण गौतम जिस ग्राम या नगरमें विहार करते हैं, उसे अ-मनुष्य (=देव, भूत आदि) नहीं सताते०। श्रमण गौतम संघी (=संघाधिपति), गणी, गणाचार्य, बड़े तीर्थंकरों (=सम्प्रदाय-स्थापकों)में प्रधान कहे जाते हैं०। जैसे किसी-किसी श्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे तैसे हो जाता है, उस तरह श्रमण गौतम का यश नहीं हुआ है। अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे श्रमण गौतमका यश उत्पन्न हुआ है। भो! पुत्र-सहित, भार्या-सहित, अमात्य-सहित मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार प्राणोंसे श्रमण गौतमका शरणागत हुआ है०।० राजा प्रसेनजित् कोसल०।० ब्राह्मण पौष्करसातिने००। श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं। खाणुमतमें अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं। जो कोई श्रमण या

---

[1] पृष्ठ ४८।

ब्राह्मण हमारे गाँव-खेतमे आते है, वह (हमारे) अतिथि होते है। अतिथि हमारा सत्करणीय=गुरु-करणीय=माननीय=पूजनीय है। चूँकि भो ! श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं ०। श्रमण गौतम हमारे अतिथि है। अतिथि हमारा सत्करणीय ० है। इस बातसे भी ०। भो ! मैं श्रमण गौतमके इतने ही गुण कहता हूँ। लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नही है, आप गौतम अपरिमाण गुणवाले है।"

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणसे कहा—"जैसे आप कुटदन्त श्रमण गौतमके गुण कहते है, (तब तो) यदि वह आप गौतम यहाँसे सौ योजनपर भी हो, तोभी पाथेय बाँधकर, श्रद्धालु कुल-पुत्रको (उनके) दर्शनार्थ जाना चाहिये। तो भो ! (चलो) हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेंगे।"

तब कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्‌के साथ समोदन किया ०। खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंमें कोई-कोई भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। कोई-कोई समोदन कर ०, ० जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०, ० चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ सम्पदाको जानते है। भो ! मैं सोलह परिष्कार-सहित यज्ञ सम्पदाको नही जानता। मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदाका मुझे उपदेश करे।"

"तो ब्राह्मण ! सुनो, अच्छी तरहसे मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा। भगवान् बोले—

२—अहिंसामय यज्ञ (महाविजित-जातक)

(१) बहुसामग्रीका यज्ञ

१—राज्य-यज्ञ—"पूर्व कालमें ब्राह्मण ! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदीवाला, बहुत वित्त उपकरण (=साधन)वाला, बहुधन धान्यवान् भरे-कोश कोष्ठागारवाला, **महाविजित** नामक राजा था। ब्राह्मण ! (उस) राजा महाविजितको एकान्तमें विचारते चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—'मुझे मनुष्योंके विपुल भोग प्राप्त हैं, (मैं) महान् पृथ्वीमंडलको जीतकर, शासन करता हूँ। क्यों न मैं महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' तब ब्राह्मण ! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'ब्राह्मण ! यहाँ एकान्तमें बैठ विचारते, मेरे चित्तमे यह ख्याल उत्पन्न हुआ—० क्यों न मैं महायज्ञ करूँ ०। ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन कर, जो चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' ऐसा कहनेपर ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितसे कहा—'आप ० का देश सकंटक, उत्पीळा सहित है। (राज्यमें) ग्राम घात (=गाँवोंकी लूट) भी दिखाई पळते है, बटमारी भी देखी जाती है। आप ऐसे सकंटक उत्पीळा-सहित देशसे बलि (=कर) लेते है। इससे आप इस (देश)के अकृत्य-कारी है। शायद आप ० का (विचार) हो, दस्युओ (=डाकुओ) के कीलको हम वध, बन्धन, हानि, निन्दा, निर्वासनसे उखाळ देंगे। लेकिन इस दस्यु-कील (=लूट-पाट रूपी कील)को, इस तरह भलीभाँति नही उखाळा जा सकता। जो मारनेसे बच रहेंगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेंगे। ऐसे दस्युकीलका इस उपायसे भली प्रकार उन्मूलन हो सकता है, कि राजन् ! जो कोई आपके जनपदमें कृषि गोपालन करनेका उत्साह रखते है, उनको आप बीज और भोजन प्रदान करें। ० वाणिज्य करनेका उत्साह रखते है, उन्हे आप पूँजी (=प्राभृत) दें। जो राजपुरुषाई (=राजाकी नौकरी) करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हे आप भत्ता-वेतन (=भत्त-वेतन) दें। (इस प्रकार) वह लोग

अपने काममें लगे, राजाके जनपदको नहीं सतायेंगे। आप को महान् (धन धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीडा-रहित, कंटक-रहित क्षेम युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमें पुत्रोंको नचातेमें, खुले घर विहार करेंगे।'

"राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको—'अच्छा भो ब्राह्मण !' कहा। राजाके जनपदमें जो कृषि-गो रक्षा करना चाहते थे, उन्हें राजाने बीज भत्ता सम्पादित किया। जो राजाके जनपदमें वाणिज्य करनेके उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादित की। जो राजाके जनपदमें राज-पुरुषाईमें उत्साही हुए, उनका भत्ता-वेतन ठीक कर दिया। उन मनुष्योंने अपने अपने काममें लग, राजाके जनपदको नहीं सताया। राजाको महाधनराशि प्राप्त हुई। जनपद अकंटक अपीडित क्षेम-युक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमें पुत्रोंको नचातेसे खुले घर विहार करने लगे।

'ब्राह्मण ! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'भो ! मैंने दस्युकील उखाड़ दिया। मेरे पास महाराशि है ०। हे ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित सुखके लिये हो'।

२—होम-यज्ञ'तो आप ! जो आपके जनपदमें जानपद (=ग्रामीण), नैगम (=शहरके) अनुयुक्तक क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—'मैं भो ! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (=आज्ञा) करें, जो कि मेरे चिरकाल तक हित-सुखके लिये हो। जो आपके जनपदमें जानपद या नैगम अमात्य पारिषद्य (=सभासद्) ०। जनपदमें जानपद या नैगम ब्राह्मण महाशाल (=धनी) ०।० जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नेचयिक (=धनी) ०। राजा महाविजितने ब्राह्मण पुरोहितको— 'अच्छा भो' कहकर, जो राजाके जनपदमें ० अनुयुक्तक क्षत्रिय ० अमात्य पारिषद्य ०, ० ब्राह्मण महाशाल ०, ० गृहपति नेचयिक थे, उन्हें राजा महाविजितने आमन्त्रित किया—'भो ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'राजा ! आप यज्ञ करें महाराज यह यज्ञका काल है। ब्राह्मण ! यह चारों अनुमति-पक्ष उसी यज्ञके (चार) परिष्कार होते हैं।

"(वह) राजा महाविजित आठ अंगोंमें युक्त था। (१) दोनों ओरसे सुजात ०। (२) अभिरूप=दर्शनीय ० ब्रह्मवर्णी=ब्रह्मवृद्धि, दर्शनके लिये अवकाश न रखनेवाला। (३) ० शीलवान् ०। (४) आढ्य महाधनवान् महाभोगवान्, बहुत चाँदी सोनेवाला, बहुत वित्त उपकरणवाला, बहुत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण कोश कोष्ठागारवाला, (५) बलवती चतुरंगिनी सेनामें युक्त, आश्रयके लिये अपवाद प्रतिकार (=ओवाद्-पटिकार)के लिये यशसे मानो शत्रुओंको तपातासा था। (६) श्रद्धालु, दायक=दानपति श्रमण-ब्राह्मण दरिद्र-आर्थिक (=मँगता) वन्दीजन (=वणिब्बक) याचकोंके लिये खुले-द्वार-वाला प्याउ सा हो, पुण्य करता था। (७) बहुश्रुत, सुने हुआ, कहे हुआका अर्थ जानता था—इस कथनका यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है। (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य-वर्तमानसंबंधी बातोंको सोचनेमें समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अंगोंमें युक्त (था)। यह आठ अंग उसी यज्ञके आठ परिष्कार होते हैं।

'पुरोहित ब्राह्मण चार अंगोंसे युक्त (था)। (१) दोनों ओरसे सुजात ०। (२) अध्यायक मंत्र धर ० त्रिवेद-पारंगत ०। (३) शीलवान् ०। (४) पंडित=व्यक्त मेधावी ० सुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगोंसे युक्त (था)। वह चार अंग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते हैं।

"तब ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधियोंका उपदेश किया। (१) यज्ञ करनेकी इच्छावाले आप को शायद कहीं अफसोस हो—'बड़ी धनराशि चली

जायगी', सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुए आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो—० चली जा रही है ०। (३) यज्ञ कर चुकनेपर आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो—'बळी धन-राशि चली गई', सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये। ब्राह्मण ! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको यज्ञ (करने)से पहले तीन विधियाँ बतलाईं।

"तब ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकोंके प्रति (उत्पन्न होनेवाले) दश प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये—(१) आपके यज्ञमें प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आवेंगे, प्राणातिपात-विरत (=अ-हिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो वह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप उनके चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें। (२) आपके यज्ञमें चोर भी आवेंगे, अ-चोर भी। जो वहाँ चोर हैं, वह अपने लिये हैं, जो वहाँ अ-चोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३) ० व्यभिचारी ०, अ-व्यभिचारी भी ०। (४) ० मृषावादी (=झूठे) ०, मृषावाद-विरत भी ०। (५) ० पिशुनवाची (=चुगुल-खोर) ०, पिशुन-वचन-विरत भी ०। (६) ० परुषवाची (=कटुवचनवाले) ०, परुष-वचनविरत भी ०। (७) ० सप्रलापी (=बकवादी) ०,सप्रलाप-विरत भी ०। (८) ० अभिध्यालु (=लोभी) ०, अभिध्या-विरत ०। (९) ०—व्यापन्न-चित्त (=द्रोही) अ-व्यापन्नचित्त-भी ०। (१०) ० मिथ्यादृष्टि (=झूठे मत वाले) ०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्यमतवाले) भी। जो वहाँ मिथ्या दृष्टि हैं, वह अपनेही लिये है, जो वहाँ सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों (=दान लेनेवालों)के प्रति (उत्पन्न होनेवाले), इन दस प्रकारके विप्रतिसार (=चित्त-विकार) अलग कराये।

"तब ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तको सोलह प्रकारसे सदर्शन=समादपन=समुत्तेजन सप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करते वक्त आप राजाको (कोई) बोलनेवाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किन्तु उसने नैगम-जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियों (=माडलिक या जागीरदार राजाओं)को आमंत्रित नहीं किया, तो भी यज्ञ कर रहा है। (सो अब) ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नहीं है। आप . नैगम (=शहरी), जानपद (=देहाती) अनुयुक्तक क्षत्रियोंको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) शायद ० कोई बोलनेवाला हो—० नैगम जानपद अमात्यों (=अधिकारी), पार्षदों (=सभासद्)को आमंत्रित नहीं किया ०। (३) ० ० ब्राह्मण महा-शालों ०। (४) ० ० नैचयिक गृहपतियों (=धनी वैश्यों)को ०। (५) शायद कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किन्तु वह दोनों ओरसे सुजात नहीं है ०। तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलने वाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६) ० ० अभिरूप=दर्शनीय ०। ०। (७) ० ० शीलवान् ० ०। (८) ० ० आढ्य महा भोगवान् बहुत सोना चाँदी वाले, बहुत वित्त-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण ० ०। (९) ० ० बलवती चतुरंगिनी सेनामें ०" (१०) ० ० श्रद्धालु दायक ० ०। (११) ० ० बहुश्रुत ० ०। (१२) ० ० पण्डित=व्यक्त मेधावी ० ०। (१३) ० ० पुरोहित दोनों ओरसे सुजात ० ०। (१४) ० ० पुरोहित ० अध्यायक मंत्रधर ० ०। (१५) ० ० पुरो-हित ० शीलवान् ० ०। (१६) पुरोहित ० पंडित=व्यक्त ० ०। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोलह विधियोंसे समुत्तेजित किया।

"ब्राह्मण ! उस यज्ञमे गाये नही मारी गई, बकरे-भेळे नही मारी गई, मुर्गे सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न यूप (=यज्ञ-स्तभ)के लिये वृक्ष काटे गये। न परहिंसाके लिये दर्भ (=कुश) काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दण्ड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुये सेवा नही की। जिन्होने चाहा उन्होने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नही किया। जिसे चाहा उसे किया, जिसे नही चाहा उसे नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाड(=फाणित)से वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

"तब ब्राह्मण ! नैगम-जानपद अनुयुक्तक-क्षत्रिय, ० अमात्य-पार्षद, ० महाशाल (=धनी) ब्राह्मण, ० नैचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्य ले, राजा महाविजितके पास जाकर, बोले—'देव ! यह बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें'। 'नहीं भो ! मेरे पास भी यह बहुत सा धर्मसे उपार्जित सापतेय्य है। यह तुम्हारे ही पास रहे, यहाँसे भी और ले जाओ। राजाके इन्कार करनेपर एक ओर जाकर, उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नही, कि हम इस धन धान्यको फिर अपने घरको लौटा ले जाये। राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, हन्त ! हम भी इसके अनुगामी हो पीछे पीछे यज्ञ करनेवाले होवे।

"तब ब्राह्मण ! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्व ओर नैगम जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियोंने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर ० अमात्य-पार्षदोंने ०। पश्चिम ओर ० ब्राह्मण महाशालोंने ०। ० उत्तर ओर ० नैचयिक वैश्योने ०। ब्राह्मण ! उन (अनु)यज्ञोमे भी गाय नहीं मारी गई ०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँळसे ही वह यज्ञ सम्पादित हुये।

"इस प्रकार चार अनुमति-पक्ष, आठ अगोसे युक्त राजा महाविजित, चार अगोसे युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधियाँ हुई। ब्राह्मण ! इसे ही त्रिविध यज्ञ-सपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है।"

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण उन्नाद उच्चशब्द=महाशब्द करने लगे—'अहो यज्ञ ! अहो ! यज्ञ सपदा ! !' कूटदन्त ब्राह्मण चुपचाप हो बैठा रहा। तब उन ब्राह्मणोंने कूटदन्त ब्राह्मणसे यह कहा—

"आप कूटदन्त किसलिये श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदित नहीं कर रहे हैं ?"

"भो ! मैं, श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अन्-अनुमोदन नहीं कर रहा हूँ। शिर भी उसका फट जायगा जो श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदन नही करेगा। मुझे यह (विचार) हो रहा है, कि श्रमण गौतम यह नहीं कहते—'ऐसा मैंने सुना', या ऐसा हो सकता है'। बल्कि श्रमण गौतमने— ऐसा तब था, इस प्रकार तब था, कहा है। तब मुझे ऐसा होता है—'अवश्य श्रमण गौतम उस समय (यातो) यज्ञ स्वामी राजा महाविजित थे, या यज्ञके करानेवाले पुरोहित ब्राह्मण थे। क्या जानते हैं, आप गौतम ! इस प्रकारके इस यज्ञको करके या कराके, (मनुष्य) काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न होता है ?"

ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके यज्ञ ०। मैं उस समय उस यज्ञका याजयिता पुरोहित ब्राह्मण था।'

(२) अल्पसामग्रीका महान यज्ञ

"हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-सपदामे भी कम सामग्री (=अर्थ) वाला, कम क्रिया (=समारभ)-वाला, किन्तु महाफल-दायी कोई यज्ञ है ?"

'है, ब्राह्मण ! इस ० से भी ० महाफलदायी।"

हे गौतम ! वह इस ० से भी ० महाफलदायी यज्ञ कौन है ?"

१—दान-यज्ञ—"ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुलमें शीलवान् (=सदाचारी) प्रव्रजितोंके लिये नित्य दान दिये जाते हैं। ब्राह्मण ! वह यज्ञ इस० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे *गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्य दान इस ० से भी ०* महाफलदायी है?"

"ब्राह्मण ! इस प्रकारके (महा)यज्ञोंमे अर्हत् (=मुक्त पुरुष), *या अर्हत्-मार्गारूढ नही आते।* सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! यहाँ दण्ड-प्रहार और गल-ग्रह (=गला पकळना) भी देखा जाता है। इस लिये इस प्रकारके यज्ञोंमें अर्हत् ० नही आते। जोकि वह नित्य-दान ० है, इस प्रकारके यज्ञमे ब्राह्मण ! अर्हत् ० आते हैं। सो किस हेतु ? वहाँ ब्राह्मण ! दड प्रहार, गल-ग्रह नही देखा जाता। इसलिये इस प्रकारके यज्ञमे ०। ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्य-दान ० उस ० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! *क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह-परिष्कार त्रिविध-यज्ञसे भी अधिक फलदायी,* इस नित्यदान ० से भी अल्प सामग्री-वाला अल्पसमारम्भवाला और महाफलदायी, महामाहात्म्यवाला है ?"

'है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! वह यज्ञ कौन सा है, (जो कि) इस सोलह ० ?"

"ब्राह्मण ! जो कि यह चारो दिशाओंके सघके लिये (=चातुद्दिस सघ उद्दिस्स) विहारका बनवाना है। *यह ब्राह्मण ! यज्ञ, इस सोलह ०।"*

'हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ०, इस नित्यदान ० से भी, इस विहार-दानसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प क्रियावाला, और महाफलदायी महामाहात्म्यवाला है ?'

"है, ब्राह्मण ! ०।"

'हे गौतम ! कौन सा है ० ?"

२—*त्रिशरण-यज्ञ*—"*ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध (परम ज्ञानी) की शरण जाना* है, धर्म (=परम-तत्व) की शरण जाना है, सघ (=परम तत्व-रक्षक-समुदाय)की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ० ०।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शरण गमनोंसे भी अल्प-सामग्रीक, अल्प क्रियावान् और महाफलदायी, महामाहात्म्यवान् है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

'हे गौतम ! कौनसा है, ० ?"

३—शिक्षापद-यज्ञ—"ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (=स्वच्छ)-चित्त (हो) शिक्षापदो (=यम-नियमों)का ग्रहण करता है—(१) अहिंसा, (२) अचोरी, (३) अव्यभिचार, (४) झूठ-त्याग, (५) सुरा-मेरय-मद्य प्रमाद-स्थान विरमण (=नशा-त्याग)। यह यज्ञ ब्राह्मण ! ० ० इन शरण गमनोंसे भी ० महा-माहात्म्यवान् है।"

'हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शिक्षापदोंसे भी ० महामाहात्म्यवान् है ?'

'है, ब्राह्मण ! ०।"

'हे गौतम ! कौनसा है ० ?"

४—शील-यज्ञ— '*ब्राह्मण ! जब लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं ? ०*[1]। *इस प्रकार ब्राह्मण शील-सम्पन्न होता है ०।*

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२९।

५—समाधि-यज्ञ—० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्वके यज्ञोंसे अल्प-सामग्रीक ० और महामाहात्म्यवान् है।"

"क्या है, हे गौतम ! ००इस प्रथम ध्यानसे भी ०[1] ?"

"है ०।" "कौन है ० ?"

"००द्वितीय ध्यान ००।" "तृतीय-ध्यान ००।" "०० चतुर्थ-ध्यान ००।" "ज्ञान दर्शनके लिये चित्तको लगाता, चित्तको झुकाता है ००।"

६—प्रज्ञा-यज्ञ—" ०० ०नही अब दूसरा यहाँके लिये है, जानता है ००। यह भी ब्राह्मण ! यज्ञ पूर्वके यज्ञोसे अल्प सामग्रीक ० और ० महामाहात्म्यवान् है। ब्राह्मण ! इस यज्ञ-सम्पदासे उत्तरितर (=उत्तम) प्रणीततर दूसरी यज्ञ-सम्पदा नही है।'

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम ! अद्भुत ! हे गौतम ! ०[2] मै भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी। आप गौतम आजसे मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें। हे गौतम ! यह मै सात सौ बैलो सात सौ बछड़ो, सात सौ बकरो, सात सौ भेड़ोको छोड़वा देता हूँ, जीवन-दान देता हूँ, (वह) हरी घासें चरें, ठंडा पानी पीवें, ठंडी हवा उनके (लिये) चले।"

तब भगवान्ने कुटदन्त ब्राह्मणको आनुपूर्वी-कथा कही ०[3]। कुटदन्त ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल=धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशमान है'। तब कुटदन्त ब्राह्मणने दृष्टधर्म ० हो भगवान्से कहा—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौनसे स्वीकार किया। तब कुटदन्त ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब कुटदन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञवाट (=यज्ञमंडप)मे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को काल सूचित कराया ०[4]। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षु-संघके साथ, जहाँ कुटदन्त ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। कुटदन्त ब्राह्मणने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सन्तर्पित=सम्प्रवारित किया। भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर कुटदन्त ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, कुटदन्त ब्राह्मणको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित कर, आसनसे उठकर चले गये।

---

[1] पृष्ठ २९। [2] पृष्ठ ३२। [3] देखो पृष्ठ ४३। [4] देखो पृष्ठ ४७।

६—महालि-सुत्त (१।६)

भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत-कथा)—(१) समाधिके चमत्कार नहीं। (२) निर्वाणका साक्षात्कार। (३) आत्मवाद (मण्डिस्स-कथा)। (४) निर्वाण साक्षात्कारके उपाय (शील, समाधि, प्रज्ञा)।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

उस समय बहुतसे कोसलवासी ब्राह्मण-दूत, मगधवासी ब्राह्मण-दूत वैशालीमें किसी कामसे वास करते थे। उन कोसल-मगध-वासी ब्राह्मण दूतोंने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण-गौतम वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते हैं। उन आप गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-ब्राह्मणदूत जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् **नागित** भगवान्के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब वह ब्राह्मण-दूत जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् नागितसे बोले।—

"हे नागित! इस वक्त आप गौतम कहाँ विहरते हैं? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं।"

"आवुसो! भगवान्के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

तब वह ० ब्राह्मणदूत वहीं एक ओर बैठ गये—'हम उन आप भगवान्का दर्शन करके ही जावेंगे'। **ओट्ठद्ध** (=आधे ओठवाला) लिच्छवि भी, बळी भारी लिच्छवि-परिषद्के साथ, जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुये ओट्ठद्ध लिच्छविने आयुष्मान् नागितसे कहा—

"भन्ते नागित! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहा विहार कर रहे हैं।"

'महालि! भगवान्के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

ओट्ठद्ध लिच्छवि भी वहीं एक ओर बैठ गया—'उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धका दर्शन करके ही जायेंगे'।

तब **सिंह** श्रमणोद्देश जहाँ आयुष्मान् नागित थ, वहाँ आया। आकर आयुष्मान् नागित को अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। ० यह बोला—

"भन्ते काश्यप! यह बहुतसे ०ब्राह्मण-दूत भगवान्के दर्शनके लिये यहाँ आये हैं। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी महती लिच्छवि-परिषद्के साथ भगवान्के दर्शनके लिये यहाँ आया है। भन्ते काश्यप! अच्छा हो, यदि यह जनता भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! तू ही जाकर भगवान्से कह।"

---

[1]देखो पृष्ठ ४८।

आयुष्मान् नागित को "अच्छा भन्ते!" कह, सिंह श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो ० भगवान्‌से बोला—

"भन्ते! यह बहुतसे ०, अच्छा हो यदि यह परिषद् भगवान्‌का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! विहारकी छायामें आसन बिछा।"

"अच्छा भन्ते!" कह, सिंह श्रमणोद्देशने विहारकी छायामें आसन बिछाया। तब भगवान् विहारसे निकलकर, विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे।

तब वह ० ब्राह्मण-दूत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन कर ०। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि-परिषद्‌के साथ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, ओट्ठद्ध लिच्छवि भगवान्‌से कहा—

१—भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत्त-कथा)

'पिछले दिनों (=पुरिमानि दिवसानि पुरिमतराणि) सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—'महालि! जिस लिये मैं भगवान्‌के पास अनु-अधिक तीन वर्ष तक रहा, नि प्रिय कमनीय रजनीय दिव्य शब्द सुनूँगा, किन्तु प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य शब्द मैंने नहीं सुना। भन्ते! क्या सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र ने विद्यमान ही ० दिव्य शब्द नहीं सुने या अविद्यमान?

"महालि! विद्यमान ही ० दिव्य शब्दोंको सुनक्खत्त० ने नहीं सुना, अविद्यमानको नहीं।

'भन्ते! क्या हेतु प्रत्यय है, जिससे कि ० दिव्य शब्दोंको सुनक्खत्त ० ने नहीं सुना ०?

(१) समाधिके चमत्कार नहीं

'महालि! एक भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकांगी समाधि प्राप्त होती है किन्तु ० दिव्य शब्दोंके श्रवणार्थ नहीं। वह पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंको देखता है किन्तु ० दिव्य-शब्दोंको नहीं सुनता। सो किस हेतु? महालि! पूर्व दिशामें रूपोंकी एकांगी समाधि प्राप्त होनेसे ० दिव्य रूपोंके दर्शनके लिये होती है ०, दिव्य शब्दोंके श्रवणके लिये नहीं। और फिर महालि! भिक्षुको दक्षिण दिशा ०, ० पश्चिम दिशा, ० उत्तर दिशा ० ० ऊपर ०, ० नीचे ० ० तिर्छे रूपोंके दर्शनार्थ एकांगी समाधि प्राप्त होती है ०। महालि! भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ ०। ० दक्षिण दिशामें ०। ० पश्चिम दिशामें ०। ० उत्तर दिशामें ०। महालि! भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ उभयांश (=दो-तरफी) समाधि प्राप्त होती है। वह उभयांश समाधिके प्राप्त होनेसे पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंको देखता है ० दिव्य शब्दोंको सुनता है ०। ० ०। ० उत्तर दिशामें ०। ० ऊपर ०। ० नीचे ०। ० तिर्छे ०।

भन्ते! इन समाधि भावनाओंके साक्षात्कार (=अनुभव)के लिये ही भगवान्‌के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं?"

'नहीं महालि! इन्हीं ०के लिये (नहीं) ०। महालि! दूसरे इनसे बढ़कर, तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।

'भन्ते! कौनसे इनसे बढ़कर तथा अधिक उत्तम धर्म हैं जिनके ० लिये ०?"

(२) निर्वाण साक्षात्कारके लिये

'महालि! तीन संयोजनों (=बंधनों)के क्षयसे (पुरुष) फिर न पतित होनेवाला नियत संबोधि (=परमज्ञान)की ओर जानेवाला, स्रोत-आपन्न होता है। महालि! ० यह भी धर्म है ०। और फिर महालि! तीनों संयोजनोंके क्षीण होनेसे, राग, द्वेष मोहके निर्बल (=तनु) पड़नेसे, सकृदागामी होता है, एक ही बार (=सकृद् एव) इस लोकमें फिर आ (=जन्म)कर, दुःखका अन्त

करता (=निर्वाण-प्राप्त होना) है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। और फिर महालि! भिक्षु पाँचो अवरभागीय (=ओरभागिय=यहीं आवागमनमें फँसा रखनेवाले) संयोजनोंके क्षीण होनेसे औपपातिक (=देव) बन वहाँ (=स्वर्ग-लोकमें) निर्वाण पानेवाला =(फिर यहाँ) न लौटकर आनेवाला होता है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। और फिर महालि! आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षीण होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्तिके ज्ञानद्वारा इसी जन्ममें (निर्वाणको) स्वयं जानकर= साक्षात्कार कर=प्राप्त कर विहार करता है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। यह है महालि! ०अधिक उत्तम धर्म, जिनके साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।"

"क्या भन्ते! इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग-प्रतिपद् है?"

"है, महालि! मार्ग=प्रतिपद् ०।"

"भन्ते! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है ०।"

"यही आ र्य-अ ष्टा ङ्गि क मार्ग, जैसे कि-(१) सम्यक्-दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति, (८) सम्यक्-समाधि। महालि! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है, इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये०।"

(३) (आत्मवाद नहीं) मण्डिस्स कथा

"एक बार महालि! मैं कौशाम्बीमें घो षि ता रा म में विहार करता था। तब दो प्रव्रजित (=साधु) मण्डिस्स परिव्राजक, तथा दा रु पा त्रि क का शिष्य जालिय—जहाँ मैं था, वहाँ आये। आकर मेरे साथ संमोदन कर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुये उन दोनो प्रव्रजितोंने मुझसे कहा—'आवुस! गौतम! क्या वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' 'तो आवुसो! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।' 'अच्छा आवुस!'—कह उन दोनो प्रव्रजितोंने मुझे उत्तर दिया। तब मैंने कहा—

(४) निर्वाण साक्षात्कार के उपाय

१—शील—'आवुसो! लोकमे तथागत उत्पन्न होता है०[1], इस प्रकार आवुसो! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है।

२—समाधि—०[2] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता= ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है'? आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—वही जीव है ०? मैं आवुसो! इसे ऐसा जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—वही जीव है, वही शरीर है, या ०'। [2]० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०[2] चतुर्थ ध्यानको० प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।

३—प्रज्ञा—"ज्ञान= दर्शन केलिये चित्तको लगाता=झुकाता है ०। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।०[3] और अब यहाँ करनेके लिये नहीं रहा—जानता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०। क्या उसको यह कहने की जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' आवुसो! जो ० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है— ०। मैं आवुसो! ऐसे जानता हूँ ०, तो भी मैं नहीं कहता—'वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है।"

भगवान्ने यह कहा—ओट्ठद्ध लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्के भाषणको अनुमोदित किया।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२८। [2] पृष्ठ २९। [3] पृष्ठ ३२।

७—जालिय-सुत्त (१।७)

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन अयुक्त—(१) शीलसे; (२) समाधिसे; (३) प्रज्ञासे।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **कौशाम्बी** के घोषितारामम विहार करते थे। उस समय माण्डिस्स परिव्राजक और दारुपात्रिकके शिष्य जालिय—दो साधु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ लेनेके बाद वे एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे उन साधुओंने भगवान्से कहा—"आवुस ! गौतम ! वही जीव है, वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है ?"

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन व्यर्थ

(भगवान्ने कहा—) "आवुसो ! आप लोग मन लगाकर सुनें, मैं कहता हूँ"।

"हाँ आवुस" कह उन साधुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१—**शीलसे** भगवान् बोले—"आवुसो ! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1] उत्पन्न होते हैं। आवुसो ! भिक्षु इस प्रकार शील-सम्पन्न होता है।

२—**समाधिसे** ०[2]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो कर विहार करता है। आवुसो ! जब वह भिक्षु इस तरह जानता है, इस तरह देखता है, तो क्या उसके लिये यह कहना ठीक है 'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है ?' आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका यह कहना ठीक ही है 'वही जीव ०।' "आवुसो ! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ—वही जीव ०।०[2] द्वितीय ध्यान ०।०[2] तृतीय ध्यान ०।०[2] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह आवुसो ! भिक्षु ऐसा जानता है ऐसा देखता है, क्या उसका ऐसा कहना ठीक है—'वही जीव ०' ? आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है 'वह जीव ०।'

३—**प्रज्ञासे** "आवुसो ! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ—'वही जीव ०—ज्ञानप्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना क्या ठीक है, 'वही जीव' ? आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है—'वही जीव ०।"

"आवुसो ! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ—'वही जीव ०'। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका ऐसा कहना ठीक है, 'वही

---

[1]देखो पृष्ठ २३-२८। [2]देखो पृष्ठ २९।

जीव ० ?' आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नही, 'वही जीव ०।

"आवुसो ! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ, अन मैं नही कहता हूँ 'वही' जीव०।"

भगवान्‌ने यह कहा। उन साधुओंने प्रसन्नता-पूर्वक भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन किया।

८—कस्सप-सीहनाद-सुत्त (१।८)

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं। २—सच्ची धर्मचर्या में सहमत। ३—झूठी शारीरिक तपस्यायें। ४—सच्ची तपस्यायें—(१) शील-सम्पत्ति, (२) चित्त-सम्पत्ति, (३) प्रज्ञा-सम्पत्ति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् उजुञ्ञामें पास कण्णकत्थल मिगदायमें विहार करते थे। तब अचेल (=नंगा) काश्यप जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ वह एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा हो, अचेल काश्यपने भगवान्से कहा—"हे गौतम! ऐसा सुना है कि श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोंकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोंकी कठोरताको बिलकुल बुरा और अनुचित बतलाता है। जो ऐसा कहते हैं क्या वह आपके प्रति ठीक कहनेवाले हैं? आपको असत्य = अभूतसे निन्दा तो नहीं करते? धर्मके अनुकूल तो कहते हैं? वैसा कहनेसे किसी धर्मानुकूल वादका परित्याग या निन्दा तो नहीं होती? हम आप गौतमकी निन्दा नहीं चाहते।"

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं

"काश्यप! जो लोग ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोंकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोंकी कठोरताको बिल्कुल बुरा बतलाता है'—ऐसा कहनेवाले मेरे बारेमें ठीकसे कहनेवाले नहीं हैं, मेरी झूठी निंदा करते हैं। काश्यप! मैं किन्हीं किन्हीं कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको विशुद्ध और अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०काया छोळ मरनेके बाद नरकमें उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! मैं किन्हीं किन्हीं कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको मरनेके बाद स्वर्गलोकमें उत्पन्न और सुगतिको प्राप्त देखता हूँ। किन्हीं किन्हीं कम कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको मरनेके बाद नरकमें उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! किन्हीं किन्हीं ० को ० मरनेके बाद स्वर्गलोकमें उत्पन्न सुगतिको प्राप्त देखता हूँ।

"जब मैं काश्यप! इन तपस्वियोंकी इस प्रकारकी अगति, गति, च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति-को ठीकसे जानता हूँ। फिर मैं कैसे सब तपश्चरणोंकी निन्दा करूँगा? सभी कठोर जीवनवाले तपस्वियोंकी बिल्कुल निन्दा, शिकायत करूँगा?

२—सच्ची धर्मचर्यामें सहमत

"काश्यप! कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, शास्त्रार्थमें विजय पाये हुए (और) बालकी खाल उतारनेवाली अपनी बुद्धिसे दूसरोंके मतोंको छिन्न भिन्न करते से दीखते हैं। वह भी किन्हीं किन्हीं बातोंमें मुझसे सहमत हैं, किन्हीं किन्हीं बातोंमें सहमत नहीं। कुछ बातें जिन्हें वे ठीक कहते हैं, उन्हें हम भी ठीक कहते हैं। कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते, हम भी उन्हें ठीक नहीं कहते।

"काश्यप ! कच्चा साग खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना कपड़ा धारण करता है ०।

० अचेल काश्यपने ० कहा—"हे गौतम ! श्रामण्य दुर्ज्ञेय है, ब्राह्मण्य दुर्ज्ञेय है।"

"० नंगे रहते हैं ०। काश्यप ! यदि इस प्रकारकी कठोर तपस्या करनेमे ०। यदि इतने मात्रसे ० दुर्ज्ञेय ० होता। इन्हे तो ० पनिहारी तक भी जान सकती है। ०।

"काश्यप ! साग मात्र खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना वस्त्र धारण करता है ०।"

ऐसा कहनेपर अचेल काश्यपने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! वह शीलसम्पत्ति कौनसी है, वह चित्तसम्पत्ति कौनसी है, वह प्रज्ञासम्पत्ति कौनसी है ?"

(१) शील-सम्पत्ति

"काश्यप ! जब ससारमें तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ० उत्पन्न होते हैं०[1]। आचार-नियमो (=शिक्षापदो)को मानता है और उनके अनुकूल चलता है, काया और वचनसे अच्छे कर्म करनेमें लगा रहता है। सदाचारी, परिशुद्ध, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और सतुष्ट (रहता है)। काश्यप ! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है ? काश्यप ! भिक्षु हिंसाको छोड़ हिंसासे विरत रहता है, दण्ड और शस्त्रको छोड़ देता है। सकोची, दयालु, और सभी जीवोंकी ओर स्नेह दिखाते हुए विहार करता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति होती है। ०[2]। जैसे, कितने ही श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर इस प्रकारकी बुरी जीविकासे जीवन व्यतीत करते हैं, जैसे—शान्ति-कर्म (=मिन्नत मानना), प्रणिधि-कर्म (=मिन्नत पूरा करना) ०[3] वैद्य-कर्म। इस या इस प्रकारकी दूसरी बुरी जीविकाओंसे विरत रहता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति है।

"काश्यप ! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो, शीलसवरके कारण कहींसे भय नहीं देखता। जैसे काश्यप ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, शत्रुओंको बिल्कुल दमन करनेके बाद कहीं भी शत्रुओंसे भय नही देखता। काश्यप ! इसी प्रकार शीलसवरके कारण भिक्षु कहींसे भय नही खाता है, जो यह ०। वह इस आर्य शीलस्कन्ध (=शुद्ध शीलपुंज)मे युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। काश्यप ! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है। काश्यप ! यह शीलसम्पत्ति है।

(२) चित्त-सम्पत्ति

"०[4]प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है। ० दूसरे ध्यान। ० तीसरे ध्यान, ०। ० चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है।

(३) प्रज्ञा-सम्पत्ति

"वह इस प्रकार समाहित एकाग्रचित्त हो ०[5] ज्ञान-दर्शनकी ओर अपने चित्तको लगाता है। ०[5] यह उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है ० आवागमनके लिये कारणको नहीं देखता। यह भी उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है। काश्यप ! यही प्रज्ञा-सम्पत्ति है।

"काश्यप ! इस शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्तिसे अच्छी और सुन्दर दूसरी शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति नहीं है।

---

[1] पृष्ठ २३-२४। [2] पृष्ठ २४। [3] पृष्ठ २४-२७। [4] पृष्ठ २९। [5] पृष्ठ ३०।

"काश्यप! कोई-कोई श्रमण और ब्राह्मण हैं जो शीलवादी हैं। वे अनेक तरहसे शील (=आचार)की प्रशंसा करते हैं। काश्यप! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परमशील (का सबंध) है वहाँ तक मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नहीं देखता, अधिकका तो कहना ही क्या! अतः यहाँ इस शीलके विषयमें मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण हैं जो तपस्याको बुरा समझते हैं। वे अनेक प्रकारसे तपस्याको बुरा माननेकी ही तारीफ करते हैं। काश्यप! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परम तपस्याको बुरा मानना है, वहाँ मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नहीं देखता ०।

"काश्यप! कोई कोई ० प्रज्ञावादी (=ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है ऐसा समझनेवाले) हैं। वे अनेक प्रकारसे प्रज्ञाहीकी प्रशंसा करते हैं। काश्यप! जहाँ तक ० प्रज्ञा है वहाँ तक ०। अतः ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप! कोई कोई ० विमुक्तिवादी हैं। वे अनेक प्रकारसे विमुक्तिहीकी प्रशंसा ०। काश्यप! जहाँ तक ० विमुक्ति है वहाँ तक ०। अतः ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

५—बुद्धका सिंहनाद

"काश्यप! हो सकता है दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद करता है। (किन्तु) उस सिंहनादको वह सूने घरमें करता है, परिषद्में नहीं।' उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, और परिषद्में करता है।' काश्यप! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्में (भी) करता है, किन्तु निर्भय होकर नहीं करता।' उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद ० और निर्भय होकर करता है।' ० उन्हें ऐसा कहना चाहिये।—काश्यप! हो सकता है ० ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद ० किन्तु उससे कोई प्रश्न नहीं पूछता।' ० उससे प्रश्न भी पूछते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं है कि प्रश्नोंके पूछे जानेपर वह उनका उत्तर नहीं दे सकता है। प्रश्नोंके पूछे जानेपर वह उनका (ठीक ठीक) उत्तर भी दे देता है। ० ऐसी बात भी नहीं है कि प्रश्नोंके उत्तर नहीं जँचते हों, प्रश्नोंके उत्तर जँचते भी हैं। ० ऐसी बात भी नहीं कि (उसका उत्तर) सुननेके योग्य नहीं होता है, वह सुननेके योग्य होता है। ० ऐसी बात भी नहीं कि उसे सुनकर प्रसन्न नहीं होते हैं, प्रसन्न होते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं कि वे प्रसन्नताको नहीं प्रकट करते हैं, वे प्रसन्नताको प्रकट करते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं है कि (उसका) वह (उत्तर) सत्यका दिखाने-वाला नहीं होता, वह सत्यका दिखानेवाला होता है।

"० उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्में ०, निर्भय ०, उससे लोग प्रश्न पूछते हैं पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर देता है, वह उत्तर चित्तको जँचता है, सुननेके योग्य होता है, सुननेवाले प्रसन्न हो जाते हैं, प्रसन्नताको वे प्रगट करते हैं, वह उत्तर सत्यको दिखानेवाला होता है, वे (सत्य को) प्राप्त करते हैं।' काश्यप! उन्हें ऐसा कहना चाहिये।

"काश्यप! एक समय मैं राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहरता था। वहाँ मुझे न्यग्रोध[*] तप-ब्रह्मचारीने प्रश्न पूछा। प्रश्नका उत्तर मैंने दे दिया। मेरे उत्तर देनेपर वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।'

"भला, भगवान्के धर्मको सुनकर कौन अत्यन्त सन्तुष्ट नहीं होगा! भन्ते! मैं आपके धर्मको सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। भन्ते! आपने खूब कहा है, आपने खूब कहा है। भन्ते! जैसे उलटे हुएको सीधा कर दे, ढकेको खोल दे, भटके हुएको मार्ग दिखा दे, अन्धकारमें तेलका दीपक

[*] मिलाओ उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त २५ (पृष्ठ २२०)।

रख दे, जिसमे कि आँखवाले रूप देख ले, इसी प्रकार भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते ! यह मै आपकी शरण जाता हूँ, धर्मकी और भिक्षुसघकी भी। भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

"काश्यप ! जो दूसरे मतके परिव्राजक इस (मेरे) धर्ममें प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं, वह चार महीने परिवास (=परीक्षार्थ वास) करते हैं। चार महीनोके बीतनेपर (यदि) वे (उससे) सतुष्ट रहते हैं, तो भिक्षु प्रव्रज्या देते है, और भिक्षु-भावके लिये उपसम्पदा देते हैं। अभी तो मैं केवल इतनाही जानता हूँ कि तुम कोई मनुष्य हो (अभी तो तुमसे परिचयही हुआ है)।"

"भन्ते ! यदि दूसरे मतवाले परिव्राजक, जब इस धर्ममे प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं, तो (भिक्षु उन्हे) चार महीनोके लिये परिवास देते हैं, चार महीनोके बाद ०। (तो) मैं चार साल तक परिवास करूँगा, चार सालके बीतनेपर यदि भिक्षु लोग मुझसे प्रसन्न हो, तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देंगे।"

अचेल काश्यपने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके बाद आयुष्मान् काश्यप एकान्तमें प्रमादरहित; उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते थोळेही समयमे जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो साधु होते है, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके छोर (=निर्वाण)को इसी जन्ममें स्वय जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर विहार करने लगे। "आवागमन छूट गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और यहाँ कुछ करनेको (शेष) नही रहा'—जान लिया। आयुष्मान् काश्यप अर्हतोंमेंसे एक हुये।[1]

---

[1] "इस सूत्रका दूसरा नाम महासीहनाद भी है।"

९–पोट्ठपाद-सुत्त (१।९)

१—व्यर्थकी कथायें। २—संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे—(१) शील; (२) समाधि। ३—संज्ञा और आत्मा—(१) अव्याकृत वस्तुयें;; (२) आत्मवाद; (३) तीन प्रकारके शरीर; (४) वर्तमान शरीर ही सत्य।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे।

१—व्यर्थकी कथायें

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान्‌को यह हुआ—'श्रावस्तीमें भिक्षाटनके लिये बहुत सवेरा है, क्यों न मैं स म य प्र वा द क (=भिन्न भिन्न मतोंके वादका स्थान) ए क शा ल क (=एक शालावाले) म ल्लि का (कोसलराज-महिषी)के आराम ति न्दु का ची र[1]में, जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।' तब भगवान् जहाँ ० तिन्दुकाचीर था, वहाँ गये। उस समय पो ट्ठ (=प्रोष्ठ)पा द परिव्राजक, राज-कथा चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गन्ध-कथा, माल्य-कथा, ज्ञाति(=कुल)-कथा, यान(=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जनपद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा(=चौरस्ता)-कथा, कुम्भ-स्थान(=पनघट)-कथा, पूर्व-प्रेत (=पहिले मरोंकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा—आदि निरर्थक कथाये कहता, नाद करता, शोर मचाता, बळी भारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ बैठा था। पोट्ठपाद परिव्राजकने दूरहीसे भगवान्‌को आते देखा, देखकर अपनी परिषद्‌से कहा—'आप सब निःशब्द हों, आप सब शब्द मत करें। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् निःशब्द-प्रेमी, निः (=अल्प)-शब्द-प्रशंसक हैं। परिषद्‌को निःशब्द देख, सम्भव है (इधर) आयें।" ऐसा कहनेपर (वे) परिव्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक था, वहाँ गये। पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्‌से कहा—

"आइये भन्ते! भगवान्! स्वागत है भन्ते! भगवान्! चिर (काल) के बाद भगवान् यहाँ आये, बैठिये भन्ते! भगवान् यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। पोट्ठपाद परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए पोट्ठपाद परिव्राजकसे भगवान्‌ने कहा—

"पोट्ठ-पाद! किस कथामें इस समय बैठे थे, क्या कथा बीचमें चल रही थी?"

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्‌से कहा—

---

[1] वर्तमान चीरेनाथ (सहेट-महेट)।

२—संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे

"जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा, भन्ते ! भगवान्‌को पीछे भी सुननको दुर्लभ न होगी। पिछले दिनोंके पहिले भन्ते ! **कुतूहलशाला**में जमा हुए, नाना तीर्थों (=पन्थो)के श्रमण-ब्राह्मणोंमे अभिसंज्ञा-निरोध (=एक समाधि)पर कथा चली—'भो ! अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है ?' वहाँ किन्हींने कहा— 'बिना हेतु=बिना प्रत्यय ही पुरुषकी संज्ञा (चेतना) उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है । वह उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा निरोधका प्रचार करते हैं।' उसमे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय संज्ञा वान् (=संज्ञी) होता है, जिस समय जाता है, उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा निरोध बतलाते हैं।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नहीं होगा। (कोई कोई) श्रमण ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको (शरीरके भीतर) डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय डालतेहै, उस समय संज्ञी होता है। जिस समय निकालते हैं, अ-संज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा न होगा । (कोई कोई) देवता-महा ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको डालते भी है, निकालते भी हैं ०। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते है।' तब मुझको भन्ते ! भगवान्‌के बारेमे ही स्मरण आया—'अहो ! अवश्य वह भगवान् सुगत है जो इन धर्मोंमें चतुर है । भगवान् अभि-संज्ञा निरोधके प्रकृतिज्ञ (=स्वभावज्ञ) हैं।' कैसे भन्ते ! अभि-संज्ञा-निरोध होता है ?"

"पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—बिना हेतु=बिना प्रत्यय ही पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती है, निरुद्ध भी होती है। आदिको लेकर उन्होंने भूल की। सो किस लिये ? स-हेतु (=कारणसे)=स-प्रत्यय पोट्ठ पाद पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती है, निरुद्ध भी होती हैं । शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती हैं।" "और शिक्षा क्या है ?"

(१) शील-सम्पत्ति

"पोट्ठ-पाद ! जब संसारमें तथागत, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव मनुष्य-उपदेशक, बुद्ध भगवान्, उत्पन्न होते हैं।०[1] (२५) हाथ-पैर काटने, मारने, बाँधने, लूटने और डाका डालनेसे विरत होती है। इस प्रकार पोट्ठ-पाद ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। ०[2]। उसे इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त हो, अपनेको देखनेमें प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति-सहित चित्तवालेकी काया अ-चचल (=प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-कायवाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त एकाग्र होता है।

(२) समाधि-सम्पत्ति

वह काम-भोगोंसे पृथक् हो, बुरी बातोंसे पृथक् हो, वितर्क और विवेक सहित उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले **प्रथम ध्यान**को प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है, वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है, जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी होता है। इस *शिक्षासे* भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती है, कोई कोई निरुद्ध होती हैं।

"और भी पोट्ठपाद ! भिक्षु वितर्क विचारके उपशान्त होनेपर, भीतरके सप्रसाद (=प्रसन्नता)

---

[1] देखो पृष्ठ २४। [2] पृष्ठ २९।

=चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको, प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिली विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञासे युक्त ही वह उस समय होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु प्रीति और विराग द्वारा उपेक्षावाला हो ० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा (ही) उस समय होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-संज्ञा ही वह उस समय होती है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती है, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह जो पहलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है। सुख और दुःखसे परे सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा, उस समय होती है। उस समय सुख-दुःख-रहित सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही वह होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती है, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोड़नेसे प्रतिघ(=प्रतिहिंसा)-संज्ञाओंके अस्त हो जानेसे, नानापन (=नानात्व)की संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, 'अनन्त आकाश'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो पहलेकी रूप-संज्ञा थी वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। आकाश-आनन्त्य-आयतन सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी ०।

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु आकाश-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहलेकी आकाश आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही (वह) उस समय होता है।०।

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है'—इस आकिंचन्य (=न-कुछ-पना)-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है। उसकी वह पहलेकी विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट हो जाती है, आकिंचन्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा ही ० वह आकिंचन्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही उस समय होता है।०।

"चूंकि पोट्ठपाद ! भिक्षु स्वक-संज्ञी (=अपनी ही संज्ञा वहाँ रखनेवाला) होता है, (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर संज्ञाको प्राप्त (=स्पर्श) करता है। श्रेष्ठतर संज्ञा-पर स्थित हो, उसको यह होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा (=पापीयस्) है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा (=श्रेयस्) है। यदि मैं न चिंतन करूँ=न अभिसंस्करण करूँ, तो मेरा यह संज्ञायें नष्ट हो जावेंगी, और और भी विशाल (=उदार) संज्ञायें उत्पन्न होंगी। क्यों न मैं न चिंतन करूँ न अभिसंस्करण करूँ।' उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करनेसे, वह संज्ञायें नष्ट हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं। वह निरोधको प्राप्त करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमशः अभिसंज्ञा (=संज्ञाकी चेतना) निरोधवाली सम्प्रज्ञान-समापत्ति (=सज्ञान-समापत्ति) उत्पन्न होती है।

"तो क्या मानते हो, पोट्ठपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध सम्प्रज्ञान-समापत्ति सुनी थी ?"

"नहीं, भन्ते ! भगवान्‌के भाषण करनेसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ।"

"चूंकि पोट्ठपाद ! भिक्षु यहाँ स्वक-संज्ञी होता है। (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः संज्ञाके अग्र (=अन्तिम स्थान)को प्राप्त (=स्पर्श) करता है। संज्ञाके अग्रपर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चिंतन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है ०।' वह निरोध-को स्पर्श करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध सम्प्रज्ञात-समापत्ति होती है। ऐसे पोट्ठपाद ! ०"

३–संज्ञा और आत्मा

"भन्ते! भगवान् क्या एकहीको सज्ञा-अग्र (=सज्ञाओमें सर्वश्रेष्ठ) बतलाते हैं, या पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको (वैसा) कहते हैं?"

"पोट्ठपाद! मै एक भी सज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको बतलाता हूँ। पोट्ठपाद! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त करता है, वैसे वैसे सज्ञा-अग्रको मै कहता हूँ। इस प्रकार पोट्ठपाद! मै एक भी सज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको बतलाता हूँ।"

"भन्ते! सज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान, या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है, पीछे सज्ञा, या सज्ञा और ज्ञान न-पूर्व न-पीछे उत्पन्न होते है?"

"पोट्ठपाद! सज्ञा पहले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान। सज्ञाकी उत्पत्तिसे (ही) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। वह यह जानता है—इस कारण (=प्रत्यय)से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। पोट्ठपाद! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, सज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे, सज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।"

"सज्ञा (ही) भन्ते! पुरुपका आत्मा है, या सज्ञा अलग है, आत्मा अलग?"

"किसको पोट्ठपाद! तू आत्मा समझता है?"

"भन्ते! मै आत्माको स्थूल (=औदारिक) रूपी=चार महाभूतोवाला,=कौर-कौर करके खानेवाला (=कवलिकार-आहार) मानता हूँ।"

"तो पोट्ठपाद! तेरा आत्मा यदि स्थूल ०, रूपी=चतुर्महाभौतिक, कवलिकार-आहार-वान् है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद! सज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, कि सज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल ० है, (इस)के होनेहीसे इस पुरुपकी दूसरी ही सज्ञायें उत्पन्न होती है, दूसरी ही सज्ञायें निरुद्ध होती है। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, सज्ञा दूसरी है, आत्मा दूसरा।"

"भन्ते! मै आत्माको समझता हूँ—मनोमय सब अग-प्रत्यगवाला, इन्द्रियोंसे परिपूर्ण।"

"ऐसा होनेपर भी पोट्ठपाद! तेरी सज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, (कि) सज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! (जब) सर्वांग-प्रत्यग युक्त इन्द्रियोंसे परिपूर्ण मनोमय आत्मा है, तभी इस पुरुपकी कोई कोई सज्ञाये उत्पन्न होती है, कोई कोई सज्ञाये निरुद्ध होती है। इस कारणसे भी पोट्ठपाद! ०।"

"भन्ते! मै आत्माको रूप-रहित सज्ञा-मय समझता हूँ।"

"यदि पोट्ठपाद! तेरा आत्मा रूप-रहित सज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद! (इस) कारणसे जानना चाहिये, कि सज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! जब रूप-रहित सज्ञा-मय आत्मा है, तभी इस पुरुपकी ०।"

"भन्ते! क्या मै यह जान सकता हूँ—कि सज्ञा पुरुपकी आत्मा है, या सज्ञा दूसरी (चीज है,) आत्मा दूसरी (चीज)?"

"पोट्ठपाद! भिन्न दृष्टि(=धारणा)-वाले भिन्न क्षान्ति(=चाह)-वाले, भिन्न रुचिवाले, भिन्न-आयोग-वाले, भिन्न-आचार्य-रखनेवाले तेरे लिये—'सज्ञा पुरुपकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है।"

"यदि भन्ते! भिन्न-दृष्टिवाले ० मेरे लिये—'सज्ञा पुरुपकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है। तो फिर क्या भन्ते! 'लोक नित्य (=शाश्वत) है,' यही सच है, दूसरा (अनित्यताका विचार) निरर्थक (=मोघ) है?"

श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एक-सा नही देखते, कि—'लोक शाश्वत है', 'लोक-अशाश्वत है', 'लोक अन्तवान् है', 'लोक-अन्-अन्त है', 'वही जीव है, वही शरीर है', 'दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है', 'तथागत मरनेके बाद होता है', 'तथागत मरनेके बाद नही होता' 'तथागत मरनेके बाद होता भी है, नहीं भी होता है।' 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नही होता है।'"

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने उन परिव्राजकोंमे यह कहा—"मैं भी भो! श्रमण गौतम-का कहा कोई धर्म एक-सा नही देखता... 'लोक शाश्वत है ०। बल्कि श्रमण गौतम 'भूत=तथ्य (=यथार्थ) धर्ममें स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपद् (=०मार्ग, ज्ञान)को कहता है। (तो फिर) मेरे जैसा जानकार, श्रमण गौतमके सुभाषितका सुभाषितके तौरपर कैसे अनुमोदन न करेगा?"

तब दो तीन दिनके बीतनेपर, चित्त हत्थिसारिपुत्त और पोट्ठ-पाद परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर चित्त हत्थिसारिपुत्त भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पोट्ठपाद परिव्राजकभी भगवान्के साथ संमोदनकर. ., एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"उस समय भन्ते! भगवान्के चले जानेके थोळी ही देर बाद (परिव्राजक) मुझे चारो ओरसे वाग्बाणोंद्वारा जर्जरित करने लगे—'इसी प्रकार आप पोट्ठ-पाद! ०।० मेरे जैसा जानकार० सुभाषितको ०कैसे अनुमोदन नही करेगा?"

"पोट्ठ-पाद! वह सभी परिव्राजक अन्धे=आँखबिना हैं। तूही एक उनमें आँखवाला है। पोट्ठ-पाद! मैंने (कितनेही) धर्म एकांशिक कहे हैं=प्रज्ञापित किये हैं। कितने ही धर्म अन्-एकांशिक भी कहे हैं ०। पोट्ठ-पाद! मैंने कौनसे धर्म अन्-एकांशिक कहे हैं०? 'लोक शाश्वत है' इसको मैंने अनेकांशिक धर्म कहा है०। 'लोक अ-शाश्वत है'० अनेकांशिक धर्म०।०। 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नही होता है' मैंने अनेकांशिक धर्म कहा है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद! न सार्थक है, न धर्म-उपयोगी है, न आदि-ब्रह्मचर्य उपयोगी है। न निर्वेदके लिये०, न वैराग्यके लिये०। इसलिये इन्हे मैंने अन् एकांशिक कहा ०।

"पोट्ठ-पाद! मैंने कौनसे एक-आंशिक धर्म कहे हैं=प्रज्ञापित किये है? 'यह दुःख है' ०।० "यह दुःख निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे पोट्ठपाद! मैंने एकांशिक धर्म बतलाया है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद! सार्थक है ०। इसलिये मैंने इन्हे एकांशिक धर्म कहा है, प्रज्ञापित किया है।

(२) आत्मवाद

"पोट्ठपाद! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (=मत)-वाले ऐसी दृष्टिवाले है—'मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्तसुखी (-केवल सुखी) होता है'। उनसे मैं यह कहता हूँ—'सच मुच तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त सुखी होता है? ऐसा पूछनेपर वह 'हाँ' कहते है। तब उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् उस एकान्त सुखवाले लोकको जानते, देखते, विहरते हो'? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते है। उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जानते हो'? यह पूछनेपर 'नही' कहते है। उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जानते है, यही मार्ग=यही प्रतिपद् एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये है? ऐसा पूछनेपर 'नही' कहते हैं। उनसे मैं यह पूछता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जो वह देवता एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न है, उनके कहे शब्दको एकान्त सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये सुनते हैं—'मार्ष! ठीक मार्गपर आरूढ हो, मार्ष! सरल मार्गपर आरूढ हो, हम भी मार्ष! ऐसे ही मार्गारूढ हो, एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हुए है?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते है। तो क्या मानते हो पोट्ठपाद! क्या ऐसा होनेसे उन श्रमण ब्राह्मणोका कथन प्रमाण(=प्रतिहरण)-रहित नहीं होता?"

"अवश्य, भन्ते! ऐसा होनेपर उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण-रहित होता है।"

"जैसे कि पोट्ठ-पाद! कोई पुरुष ऐसा कहे—'इस जनपद (=देश)में जो जनपदकल्याणी (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ'। उसको यदि (लोग) ऐसा कहे—हे पुरुष जिस जनपद कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्री है'? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' बोले, तब उसको यह कहे—'हे पुरुष! जिस जन-पद-कल्याणीको तू चाहता है० जानता है० (वह) अमुक नामवाली अमुक गोत्रवाली है, लम्बी, छोटी या मझोले कदकी, काली, श्यामा या, मद्गुर (=मगुर मछली) के वर्ण की है, इस ग्राम-निगम या नगर, मे (रहती) है?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे तब उसको यह कहे—'हे पुरुष जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा; उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है'? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता?"

"अवश्य भन्ते! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित हो जाता है।"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरहके वादवाले=दृष्टिवाले हैं—'मरने-के बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है', उनको मैं यह कहता हूँ—'सचमुच तुम सब आयुष्मान्०।० पोट्ठ-पाद! क्या० उन श्रमण-ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण-रहित नहीं है?"

"अवश्य! भन्ते०।"

"जैसे पोट्ठ-पाद! कोई पुरुष महलपर चढ़नेके लिये चौरस्ते (=चातुर्महापथ)पर, सीढ़ी बनावे। तब उसको (लोग) यह कहे—'हे पुरुष! जिस (प्रासाद)के लिये तू सीढ़ी बनाता है, जानता, है वह प्रासाद पूर्व दिशामे है, दक्षिण दिशामे, पश्चिम दिशामे, (या) उत्तर दिशामे है?, ऊँचा, नीचा (या) मझोला है?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे। उसको यह कहे—'हे पुरुष! जिसको तू नहीं जानता, तूने नहीं देखा, उस प्रासादपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बना रहा है?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता?"

"अवश्य भन्ते! ०"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद! जो वह श्रमण ब्राह्मण० 'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्तसुखी होता है०।०—"अवश्य भन्ते! ०"

३—तीन प्रकारके शरीर

"पोट्ठ-पाद! तीन शरीर-ग्रहण है, स्थूल (=औदारिक) शरीर-ग्रहण, मनोमय शरीर-ग्रहण, अ-रूप(=अभौतिक) शरीर ग्रहण। पोट्ठ-पाद! स्थूल शरीर-ग्रहण क्या है? रूपी=चार महाभूतोंसे बना कवलिंकार (=ग्रास ग्रास करके) आहार करनेवाला, यह स्थूल शरीर-ग्रहण है। मनोमय आत्म-प्रतिलाभ क्या है? रूपी मनोमय सर्व-आहार सर्व अंग-प्रत्यंग-वाला, इन्द्रियोंसे परिपूर्ण, यह मनोमय शरीर-ग्रहण है। अ-रूप (=अभौतिक) शरीर-ग्रहण क्या है? अ-रूप (देवलोकमे) संज्ञामय होना, यह अ-रूप शरीर-ग्रहण है। पोट्ठ पाद! मै स्थूल शरीर-परिग्रहसे छूटनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ हुओंके चित्तमल उत्पन्न करनेवाले (=सक्लेशिक) धर्म छूट जायेंगे। शोधक (=व्यवदानीय) धर्म, प्रज्ञाकी परिपूर्णता, विपुलताको प्राप्त होंगे, (और वह पुरुष) इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्-कर, प्राप्त कर विहरेगा। शायद पोट्ठ-पाद! तुम्हें (यह विचार) हो—'संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे०, इसी जन्ममें० प्राप्त कर विहरेगा, (किन्तु) वह विहरना कठिन (=दुःख) होगा।' पोट्ठ-पाद! ऐसा नहीं समझना चाहिये,०। उसे प्रामोद्य (=प्रमोद) भी होगा, प्रीति, निश्चलता (=प्रश्रब्धि), स्मृति, सम्प्रजन्य और सुख विहार भी होगा।"

"पोट्ठ पाद ! मैं मनोमय शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी धर्म उपदेश करता हूँ ! जिससे कि मार्गारूढ होनेवालोके सक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे ०।०।० सुख विहार भी होगा।

"अ-रूप शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठ-पाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ।०।० सुख विहार भी होगा।"

"यदि पोट्ठ पाद ! दूसरे लोग हमें पूछें—'क्या है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह जिससे छूटनेके लिये तुम धर्म उपदेश करते हो, और जिस प्रकार मार्गारूढ हो०, इसी जन्ममें स्वय जानकर विहरोगे ?' उसके ऐसा पूछनेपर हम उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिससे छूटनेके लिये हम धर्म उपदेश करते है।०।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठ-पाद ! हमें पूछें—क्या है आवुसो ! मनोमय शरीर परिग्रह ०।० विहरेगे ?

"यदि पोट्ठ-पाद ! दूसरे लोग हमे पूछे—क्या है आवुसो ! अ रूप शरीर परिग्रह ० ? ०।०।

"जैसे पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष प्रासादपर चढनेके लिये उसी प्रासादके नीचे सीढी बनावे। उसको यह पूछें—'हे पुरुष ! जिस प्रासादपर चढनेके लिये तुम सीढी बनाते हो, जानते हो, वह प्रासाद पूर्व दिशाम है, या दक्षिण ०, ऊँचा है या नीचा या मझोला ?।' वह यदि कहे—'यह है आवुसो ! वह प्रासाद, जिसपर चढनेके लिये, उसीके नीचे मैं सीढी बनाता हूँ।' तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा।"

"इसी प्रकार पोट्ठ पाद ! यदि दूसरे हमें पूछे—आवुसो ! वह स्थूल शरीर परिग्रह क्या है०।०।

"०आवुसो ! वह मनोमय शरीर परिग्रह क्या है ० ? ०।

"० आवुसो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्या है, जिसके (परित्यागके) लिये, तुम धर्म उपदेश करत हो, ०, ०? उनके ऐसा पूछने पर हम यह उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह अ-रूप-शरीर-परिग्रह ०।० तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ०"

४—वर्तमान शरीर ही सत्य

ऐसा कहनेपर चित्त हत्थिसारिपुत्तने भगवान्से कहा—"भन्ते ! जिस समय स्थूल शरीर परिग्रह होता है, उस समय मनोमय-शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोघ (=मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! मनोमय-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा अ रूप-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! अ-रूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा मनोमय-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ-रूप शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है।"

"जिस समय चित्त ! स्थूल-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'मनोमय शरीर-परिग्रह है' नहीं समझा जाता। न 'अ-रूप शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। 'स्थूल-शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय-शरीर-परिग्रह ०। जिस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह ०। यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—'तू भूत कालमें था, नही तो तू न था ? भविष्यकालमें तू होगा (=रहेगा), नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है, नहीं तो तू नहीं है ?' ऐसा पूछनेपर चित्त ! तू कैसे उत्तर देगा ?"

"ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—'मैं भूतकालमें था, मैं नहीं तो न था। भविष्य-

कालमें मैं होऊँगा, नही तो मैं न होऊँगा। इस समय मैं हूँ, नही तो मैं नही हूँ'। वैसा पूछनेपर भन्ते ! म इस प्रकार उत्तर दूँगा।"

"यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था, वही तेरा शरीर-परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो इस समय तेरा वर्तमानका शरीर-परिग्रह है, वही तेरा शरीर-परिग्रह सच्चा है, भूत और भविष्यका (क्या) मिथ्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त ! तू कैसे उत्तर देगा ?"

"यदि भन्ते ! मुझे ऐसा पूछेंगे 'जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था ० ।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—'जो मेरा भूतका शरीर-परिग्रह था, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके ० असत्य थे। जो मेरा, भविष्यमें अन्-आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा, भूत और वर्तमानके शरीर-परिग्रह असत्य होंगे। जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही शरीर-परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर-परिग्रह असत्य है।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा।"

"ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह नही कहा जाता, न उस समय अ-रूप शरीर परिग्रह कहा जाता है, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय कहा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय-शरीर परिग्रह ०। जिस समय चित्त ! अरूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' नही कहा जाता, न 'मनोमय-शरीर-परिग्रह है', कहा जाता है। 'अरूप शरीर-परिग्रह है' यही कहा जाता है। जैसे चित्त ! गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (=नैनू), नवनीतसे घी (=सर्पिष), सर्पिषसे सर्पिष्-मण्ड (=घीका सार) होता है। जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत ०, न सर्पिष् ०, न सर्पिष्-मंड ०, दूध ही उस समय उसका नाम होता है। जिस समय दही ० । ० नवनीत ० । ० सर्पिष् ० । सर्पिष्-मड ० । ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है ० । ० मनोमय ० । ० अ-रूप ० । चित्त ! यह लौकिक सज्ञायें है=लौकिक निरुक्तियाँ है=लौकिक व्यवहार है=लौकिक प्रज्ञप्तियाँ है, तथागत बिना लिप्त हुये उन्हे व्यवहार करते हैं।"

"ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! ! अद्भुत ! भन्ते ! ! ० [1] आजसे आप गौतम मुझे अजलिबद्ध शरणा-गत उपासक धारण करें।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्त (=चित्र हस्ति-सारि-पुत्र) ने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! ! अद्भुत ! भन्ते ! ! ०। भन्ते ! मैं भगवान्की शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। भन्ते ! भगवान्के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसपदा मिले।"

चित्त-हत्थि सारि-पुत्तने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसपदा पाई। आयुष्मान् चित्त-हत्थि-सारि-पुत्त उपसपदा प्राप्त करनेके थोळे ही दिनो बाद, एकाकी, एकांतवासी, प्रमाद-रहित, उद्योगी, आत्म-सयमी हो, विहार करते हुये, जल्दी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते है, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें जानकर=साक्षात् कर=पाकर, विहार करने लगे 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, और कुछ करनेको (बाकी) नही रहा।' यह जान गये। आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि-पुत्त अर्हतोमेसे एक हुये।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

१०—सुभ-सुत्त (१।१०)

धर्म के तीन स्कध—(१) शील-स्कध। (२) समाधि-स्कंध। (३) प्रज्ञा-स्कंध।

ऐसा मैने सुना—एक समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के परिनिर्वाणके कुछ ही दिन बाद श्रावस्तीमें अनाथ-पिण्डिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे, ।

उस समय किसी कामसे तोदेय्य पुत्त शुभ नामक माणवक भी श्रावस्तीहीमें वास करता था। तव तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकने किसी दूसरे माणवकसे कहा—"हे माणवक, सुनो। जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ, जाकर आयुष्मान् आनन्दको मेरी ओरसे कुशल समाचार पूछो—'तोदेय्यपुत्त शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है'। और ऐसा कहो, आप कृपाकर तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकके घरपर चले।"

"बहुत अच्छा" कहकर वह माणवक ० शुभ माणवकके कहे हुयेको स्वीकारकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके शब्द कहे। स्वागतके शब्द कहकर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये उस माणवकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—"शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है, और ऐसा कहता है,—'आप कृपाकर वहाँ चले, जहाँ ० शुभ माणवकका घर है।"

उसके ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने उस माणवकसे कहा,—"माणवक ! यह समय नही है, आज मैने जुलाब लिया है, कल उचित समय देखकर आऊँगा।"

"वह माणवक आयुष्मान् आनन्दके कहे हुयेको मान "बहुत अच्छा" कह आसनसे उठकर वहाँ गया जहाँ ० शुभ माणवक था। जाकर ० शुभसे यह कहा—"श्रमण आनन्दको मैने आपकी ओरसे कहा—शुभ ० आप आनन्द ०। और ऐसा कहा—आप कृपाकर ०। ऐसा कहनेपर श्रमण आनन्दने मुझे यह कहा—'माणवक ! यह समय ०।' इतना पर्याप्त है (क्योंकि इतनेसे) आप आनन्दने कल आनेको स्वीकारकर लिया।"

तव आयुष्मान् आनन्द उस रातके बीत जानेपर सुबह ही तैयार हो, पात्र और चीवर ले चेतक भिक्षुको साथ ले जहाँ ० शुभ माणवकका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये।

तब ० शुभ माणवक जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके वचन कहे। स्वागतके वचन कहनेके बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे ० शुभ माणवकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—'आप (आनन्द) भगवान् गौतमके बहुत दिनो तक सेवक और पासमें रहनेवाले रह चुके है। आप आनन्द जानते हैं जिन धर्मोंकी प्रशसा भगवान् गौतम किया करते थे, जिन (धर्मों)को वे जनताको सिखाते पढाते और (जिनमें) प्रतिष्ठित करते थे। हे आनन्द ! भगवान् गौतम किन धर्मोंकी प्रशसा किया करते थे, किन (धर्मों)को वे जनताको सिखाते पढाते और (उनमें) प्रतिष्ठित करते थे ?"

धर्मके तीन स्कन्ध

"वे भगवान् तीन स्कन्धो[1] (=समूहों)की प्रशंसा करते थे। जिससे वे जनता ०। किन तीनों की ? आर्य शीलस्कन्ध (=उत्तम सदाचार-समूह)की, आर्य समाधिस्कन्धकी, (और) आर्य प्रज्ञा-स्कन्धकी। हे माणवक ! भगवान् इन्ही तीन स्कन्धोंकी प्रशंसा किया करते थे, जिससे वे जनता ०।"

१—शील-स्कन्ध

'हे आनन्द ! वह आर्य शील-स्कन्ध कौन-सा है जिसकी भगवान् प्रशंसा करते थे, और जिसको वे जनता ०?"

'हे माणवक ! जब संसारमें तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०[2] उत्पन्न होते हैं। ० शील-सम्पन्न, ०। इन्द्रियोको वशमें रखनेवाला, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और सन्तुष्ट रहता है।

"माणवक ! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न (=सदाचारयुक्त) होता है ?

"माणवक ! भिक्षु हिंसाको छोळ ०[3]—वह इस उत्तम सदाचार-समूह (=आर्य शील-स्कन्ध)से युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। माणवक ! इस तरह भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। माणवक ! यही शील स्कन्ध है जिसकी प्रशंसा भगवान् करते थे और जिससे जनता ०। (किन्तु) इसमें और ऊपर भी करना है।"

"हे आनन्द ! आश्चर्य है, हे आनन्द अद्भुत है ! हे आनन्द ! वह आर्य शील स्कन्ध पूर्ण है अपूर्ण नहीं है। हे आनन्द ! इस प्रकारका परिपूर्ण आर्य शील-स्कन्ध मैं तो इस (धर्म)के बाहर और किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मणमें नहीं देखता ! हे आनन्द ! इस प्रकारके परिपूर्ण आर्य-शील स्कन्ध इसके बाहर दूसरे श्रमण और ब्राह्मण यदि अपनेमें देखें तो वे इतनेसे सन्तुष्ट हो जाय— बस, इतना काफी है, श्रमण-भावके लिये इतना पर्याप्त है अब और कुछ करना बाकी नहीं है। किन्तु आप आनन्दने तो कहा है—'इसके ऊपर और करना है'।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२—समाधि-स्कन्ध

'हे आनन्द ! वह श्रेष्ठ समाधि-समूह (=आर्य समाधि-स्कन्ध) कौन-सा है, जिसकी प्रशंसा भगवान् किया करते थे, जिसको वे जनता ०?"

३—प्रज्ञा-स्कन्ध

'हे माणवक ! भिक्षु कैसे इन्द्रियोको वशमें रखनेवाला होता है ? माणवक ! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर ००[4] —अब यहाँ करनेके लिये नहीं रहा।"

"आनन्द ! आश्चर्य है, आनन्द ! अद्भुत है ! यह आर्य प्रज्ञा-स्कन्ध परिपूर्ण ०।

"आश्चर्य है हे आनन्द ! अद्भुत है हे आनन्द ! जैसे उलटेको सीधा करदे[5] ०। इसी तरहसे आप आनन्दने अनेक प्रकारसे धर्म प्रकाशित किया। हे आनन्द ! यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। हे आनन्द ! आजसे आप मुझे जन्म भरकेलिये अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

---

[1] उपनिषद्में—त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं, दानमिति।
[2] देखो पृष्ठ २३-२४। [3] पृष्ठ २४। [4] पृष्ठ २७-३२। [5] पृष्ठ ३२।

११–केवट्ट-सुत्त (१।११)

१—ऋद्धियो का दिखाना निषिद्ध । २—तीन ऋद्धि भी अन-प्राति हार्य । ३—चारो भूतोका निरोध कहाँ पर ?—(१) सारे देवता अनभिज्ञ; (२) अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्म-वचना; (३) बुद्धही जानकार

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् ना ल न्दाके पास पा वा रि क आम्रवनमें विहार करते थे। तब केवट्ट गृहपतिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ केवट्ट गृहपति पुत्रने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण , और बहुत घनी बस्तीवाली है। यहाँके मनुष्य आपके प्रति बहुत श्रद्धालु हैं। भगवान् कृपया एक भिक्षुको कहे कि अलौकिक ऋद्धियोको दिखावे। इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे।"

१–ऋद्धियोंका दिखाना निषिद्ध

ऐसा कहनेपर भगवान्ने केवट्ट ० से यह कहा—'केवट्ट ! मैं भिक्षुओको इस प्रकारका उपदेश नही देता हूँ कि—भिक्षुओ ! आओ, तुम लोग उजले कपळे पहननेवाले गृहस्थोको अपनी ऋद्धि दिखलाओ।"

दूसरी बार भी केवट्ट ० ने भगवान्से यह कहा—"मैं भगवान्को छोटा दिखाना नही चाहता हूँ किन्तु ऐसा कहता हूँ—'भन्ते ! यह नालन्दा समृद्ध ० इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने केवट्ट ० से यह कहा—'केवट्ट ! मैं भिक्षुओको ०।

तीसरी बार भी केवट्ट ० ने भगवान्से यह कहा—"मैं भगवान्को ०। किंतु ऐसा कहता हूँ—भन्ते ! यह नालन्दा समृद्ध ० इससे नालन्दाके लोग ०।"

२–तीन ऋद्धि प्रातिहार्य

'केवट्ट ! तीन प्रकारके ऋद्धि-बल (ऋद्धियाँ=दिव्यशक्तियाँ)है, जिन्हे मैंने जानकर और साक्षात्कर बतलाया है। वे कौन से तीन ? ऋद्धिप्रातिहार्य (=ऋद्धियोका प्रदर्शन),आदेशना प्रातिहार्य, अनुशासनी प्रातिहार्य।

"(१) केवट्ट ! ऋद्धि-प्रातिहार्य कौन सा है ? केवट्ट ! भिक्षु अपने ऋद्धिबलसे अनेक प्रकारके रूप धारण करता है—एक होकर बहुत हो जाता है, बहुत होकर एक हो जाता है ०।[1]

---

[1] देखो पृष्ठ ३०

उसे देखकर वह श्रद्धालु=प्रसन्न हो, दूसरे श्रद्धारहित=अप्रसन्न पुरुषको कहता है—'अरे! आश्चर्य, है, अद्भुत है, श्रमणका ऋद्धिबल और उसकी महानुभावता। मैंने भिक्षुको अनेक प्रकारसे अपने ऋद्धिबल दिखाते हुये देखा—एक होकर अनेक०। श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कह सकता है—'हाँ! गान्धारी नामक एक विद्या है, उसीसे भिक्षु अनेक तरहके ऋद्धिबल दिखाता है—एक होकर०। तब केवट्ट! क्या समझते हो, वह श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कहेगा या नहीं?"

"भन्ते! वह ऐसा कहेगा।" 'अतः केवट्ट! ऋद्धिबलके दिखानेमें मैं इसी दोषको देखकर ऋद्धिबलके दिखानेसे हिचकता हूँ, सकोच करता हूँ, और घृणा करता हूँ।

(२) "केवट्ट! आदेशना-प्रतिहार्य कौन सा है? केवट्ट! भिक्षु दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्तको बतला देता है०[1] 'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा चित्त ऐसा है'। कोई श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य उस भिक्षुको दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्त० को बतलाते देखता है। वह श्रद्धालु० दूसरे श्रद्धारहित० से कहता है—'अहो आश्चर्य है! अहो अद्भुत है, श्रमणके इस बड़े ऋद्धिबल और उसकी महानुभावताको। मैंने भिक्षुको दूसरेके० चित्त० को बतलाते देखा है। वह श्रद्धा-रहित० उस श्रद्धालु० को ऐसा कहे—'हाँ चिन्तामणि नामकी एक विद्या है, उसीसे भिक्षु दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्त को बतला देता है'। केवट्ट! तब तुम क्या समझते हो—वह श्रद्धारहित० श्रद्धालु० को ऐसा क्या नहीं कहेगा?" "भन्ते! कहेगा।'

"केवट्ट! आदेशना-प्रातिहार्यके इसी दोषको देखकर मैं आदेशना प्रातिहार्यसे हिचकता०।

(३) 'केवट्ट! कौन सा अनुशासनी-प्रातिहार्य है? भिक्षु ऐसा अनुशासन करता है—'ऐसा विचारो, ऐसा मत विचारो, ऐसा मनमें करो, ऐसा मनमें मत करो, इसे छोड़ दो, इसे स्वीकार कर लो। केवट्ट! यही अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है। केवट्ट! जब ससारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1], उत्पन्न होते हैं, ० केवट्ट! इस तरहसे भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।०[1] प्रथम ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी प्रातिहार्य कहलाता है।० द्वितीय ध्यान०।० तृतीय ध्यान०।० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है।० ज्ञानदर्शनके लिये अपने चित्तको नवाता है०[1] केवट्ट! यह भी०। आवागमनके और किसी कारणको नहीं देखता है० केवट्ट! यह भी०।—केवट्ट! इन तीन ऋद्धि-बलोंको मैंने जानकर और साक्षात् कर बतलाया है।

३—चारों भूतोंका निरोध कहाँ पर?

(१) सारे देवता अनभिज्ञ

"केवट्ट! बहुत पहले इसी भिक्षु-सघमें एक भिक्षुके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ—'ये चार महाभूत—पृथ्वी-धातु, जल धातु, तेजो धातु, वायुधातु—कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते है?' तब केवट्ट! उस भिक्षुने उस प्रकारकी समाधिको प्राप्त किया जिससे कि समाहित चित्त होनेपर उसके सामने देवलोक जानेवाले मार्ग प्रकट हुये। केवट्ट! तब वह भिक्षु जहाँ चातुर्महाराजिक देवता रहते हैं, वहाँ गया, जाकर चातुर्महाराजिक देवताओंसे यह बोला—'आवुसो! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते है?' केवट्ट! (उस भिक्षुके) ऐसा कहनेपर चातुर्महाराजिक देवताओ

[1] देखो पृष्ठ २३-३०।

ने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते हैं कि कहाँ जाकर ये चार महाभूत—० बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। हे भिक्षु ! हमसे भी बढ़ चढ़कर चार महाराजा हैं। वे शायद इसे जानते हों, कि कहाँ जाकर कि ये चार महाभूत—०।' ।

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ चार महाराज थे, वहाँ गया, जाकर चारों महाराजोंसे यह पूछा,—'ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर ०?' केवट्ट ! (उसके) ऐसा पूछनेपर चार महाराजोने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते ! हे भिक्षु ! हम लोगोंसे भी बढ़-चढ़कर त्रायस्त्रिंश नामक देवता हैं। वे शायद ०।'—

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ त्रायस्त्रिंश देवता थे, वहाँ गया। जाकर त्रायस्त्रिंश देवताओंसे यह पूछा—'ये चार महाभूत— ०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! ऐसा पूछनेपर उन त्रायस्त्रिंश देवताओंने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते ! ० हम लोगोंसे बढ़०देवताओंका अधिपति शक्र है। वह शायद जान सके ०।'

'केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ देवताओंका अधिपति शक्र था वहाँ गया। जाकर शक्र ० से यह पूछा—'ये चार महाभूत— ० कहाँ जाकर ० ?' उसके ऐसा पूछनेपर ० शक्रने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता ०। हे भिक्षु ! हमसे भी बढ़० याम नामक देवता हैं। वे शायद ०।"

'केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ याम देवता थे ०।—० जहाँ सुयाम नाम देवपुत्र था ०।—० जहाँ तुषित नामक देवता थे ०।—० जहाँ सन्तुषित नामक देवपुत्र था ०।।—० जहाँ निर्म्माण-रति नामक देवता थे ०।—० जहाँ सुनिर्म्मित नामक देवपुत्र था।० —० जहाँ परनिर्मितवशवर्त्ती नामक देवता थे ०।—० जहाँ वशवर्ती नामक देवपुत्र था ०।—० जहाँ ब्रह्मकायिक नामक देवता थे ०—"० हे भिक्षु ! हमसे बहुत बढ़ चढ़कर ब्रह्मा हैं, (वे) महाब्रह्मा, विजयी (=अभिभू), अपराजित (=अनभिभूत), परार्थ द्रष्टा, वशी, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, और सभी हुए और होनेवाले (पदार्थों)के पिता (हैं)। शायद वे जान सकें, कि ये चार महाभूत —० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? (भिक्षुने कहा—) 'तो आवुसो ! वे ब्रह्मा अभी कहाँ हैं ?'—'हे भिक्षु ! हम नहीं जानते हैं कि वह ब्रह्मा कहाँ रहते हैं। किन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि बहुत आलोक और प्रभाके प्रकट होनेके बाद ब्रह्मा प्रकट होते हैं। ब्रह्माके प्रकट होनेके ये पूर्व-लक्षण हैं, कि (उस समय) बहुत प्रकाश होता है और बड़ी भारी प्रभा उत्पन्न होती है'।

२—अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्मवंचना

'केवट्ट ! इसके बाद शीघ्र ही महाब्रह्मा भी प्रकट हुआ। केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ महाब्रह्मा था वहाँ गया। जाकर (उसने) महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! ये चार महाभूत ०? ' केवट्ट ! ऐसा कहने पर महाब्रह्माने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर०पिता हूँ। केवट्ट ! दूसरी बार भी उस भिक्षुने उस महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! मैं तुमसे यह नहीं पूछता हूँ कि तुम ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हो। आवुसो ! मैं तुमसे यह पूछता हूँ—ये चार महाभूत—० कहाँ ० ?' केवट्ट ! दूसरी बार भी उस महाब्रह्माने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हूँ।' केवट्ट ! तीसरी बार भी ०।

"केवट्ट ! तब उस महाब्रह्माने उस भिक्षुकी बाँह पकड़, एक ओर ले जाकर उस भिक्षुसे कहा—हे भिक्षु ! ये ब्रह्मलोकके देवता मुझे ऐसा समझते हैं—ब्रह्मासे कुछ अज्ञात नहीं है, ब्रह्मासे कुछ अदृष्ट नहीं है, ब्रह्मासे कुछ अविदित नहीं है, ब्रह्मासे कुछ असाक्षात्कृत नहीं है, इसी लिये मैंने उन लोगोंके सामने नहीं कहा। भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता हूँ, जहाँ कि ये चार महाभूत ०। अतः हे भिक्षु ! यह

तुम्हारा ही दोष है, यह तुम्हारा ही अपराध है कि तुम भगवान्को छोळकर बाहरमें इस बातकी खोज करते हो। हे भिक्षु ! उन्ही भगवान्के पास जाओ, जाकर यह प्रश्न पूछो। जैसा भगवान् कहे वैसा ही समझो'।

३—बुद्धही जानकार

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जैसे कोई बलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकमे अन्तर्धान होकर मेरे सामने प्रकट हुआ। केवट्ट ! तब वह भिक्षु मुझे प्रणामकर एक ओर बैठ गया। केवट्ट ! एक ओर बैठकर उस भिक्षुने मुझसे यह कहा—'भन्ते ! ये चार महाभूत—०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! (उस भिक्षुके) ऐसा पूछने पर मैने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! पूर्व समयमे कुछ सामुद्रिक व्यापारी किनारा देखनेवाले पक्षीको साथ ले, नावपर चढ समुद्रके बीच गये। नावसे तट नही दिखाई देनेके कारण उन्होने तट देखनेवाले पक्षीको छोळा। (वह पक्षी) पूर्व-दिशाकी ओर गया, दक्षिण ०, पश्चिम ०, उत्तर ०, ऊपर ०, अनुदिशाओमे ०। यदि वह कही तट देखता तो वही चला जाता। चूंकि किसी ओर उसने तट नही देखा, इस लिये फिर उसी नाव पर चला आया। भिक्षु ! तुम भी इसी तरह इस प्रश्नको सुलझानेके लिये ब्रह्मलोक तक खोजते हुये गये, फिर मेरे ही पास चले आये।

"भिक्षु ! यह प्रश्न ऐसे नही पूछना चाहिये— ० भन्ते ! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते है। भिक्षु ! यह प्रश्न इस प्रकार पूछना चाहिये—

कहाँ जल, पृथ्वी, तेज और वायु नही स्थित रहते है ?

कहा दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, (और) शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल खतम हो जाते है ? ॥१॥

"इसका उत्तर यह है —

"अनिदर्शन (उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी जहाँ बात नही है), अनन्त, और अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है, वहाँ, जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नही रहते ॥२॥

"वहाँ दीर्घ-ह्रस्व अणु-स्थूल, शुभ-अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल खतम हो जाते है। विज्ञान के निरोधमे सभी वहाँ खतम हो जाते है ॥३॥"

भगवान्ने यह कहा। केवट्ट गृहपतिपुत्रने प्रसन्नचित्त हो भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

———

१२—लोहिच्च-सुत्त (१।१२)

१—धर्मोंपर आक्षेप। २—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं। ३—झूठे गुरु। ४—सच्चे गुरु—(१) शील; (२) समाधि; (३) प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके बळे भिक्षुसघके साथ को स ल (देश) में चारिका करते हुए जहाँ सा ल व ति का थी वहाँ पहुँचे। उस समय लो हि च्च (लौहित्य) ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसल द्वारा प्रदत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ उदक-धान्य-सम्पन्न राज्य-भोग्य सालवतिकाका स्वामी होकर रहता था।

१—धर्मोंपर आक्षेप

उस समय लोहिच्च ब्राह्मणको यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी। 'ससारमें (ऐसा कोई) श्रमण या ब्राह्मण नही, जो अच्छे धर्मको जाने, (और) जानकर अच्छे धर्मको दूसरेको समझावे। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा? जैसे एक पुराने बन्धनको काटकर दूसरा एक नया बन्धन डाल दे, इसी प्रकार मैं इस (श्रमणो या ब्राह्मणोंके समझाने)को पाप(=बुरा) और लोभकी बात समझता हूँ। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा?"

लोहिच्च ब्राह्मणने सुना—'श्रमण गौतम, शाक्यपुत्र, शाक्यकुलसे प्रव्रजित हो पाँच सौ भिक्षुओंके बळे भिक्षुसघके साथ ० सालवतिकामें आये हुए हैं। उन गौतमकी ऐसी कल्याणकारी कीर्ति फैली हुई है—'वे भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।'

तब लोहिच्च ब्राह्मणने रोसिक नामक नाईको बुलाकर कहा—"सुनो भद्र रोसिक! जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ जाओ। जाकर मेरी ओरसे श्रमण गौतमका कुशल क्षेम पूछो—'हे गौतम! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान् गौतमका कुशल मगल पूछता है', और ऐसा कहो—'भगवान् अपने भिक्षुसघके साथ कल लोहिच्च ब्राह्मणके घरपर भोजन करना स्वीकार करे।'"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान—'बहुत अच्छा' कह जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोसिक नाईने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्‌का कुशल मगल पूछता है, और यह कहता है—'भगवान् अपने भिक्षु-सघके साथ ० स्वीकार करें।'

भगवान्‌ने मौन रह स्वीकार कर लिया। तब रोसिक नाई भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ लोहिच्च ब्राह्मण था वहाँ गया। जाकर

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

लोहिच्च ब्राह्मणसे बोला—'मैंने आपकी ओरसे भगवान्‌से कहा—'भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्‌का ०। भगवान् अपने भिक्षु-संघके साथ ०।' और भगवान्‌ने स्वीकार कर लिया।"

तब लोहिच्च ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें अच्छी अच्छी खाने पीनेकी चीजें तैयार कराके रोसिक नाईको बुलाकर कहा—'सुनो भद्र रोसिक ! जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ जाओ, जाकर श्रमण गौतमको समयकी सूचना दो—'हे गौतम ! (भोजनका) समय हो गया। भोजन तैयार है।"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो रोसिक नाईने भगवान्‌से कहा—'भन्ते ! समय हो गया, भोजन तैयार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय तैयार हो, पात्र और चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ सालवतिका थी, वहाँ गये। उस समय रोसिक नाई भगवान्‌के पीछे पीछे आ रहा था।

तब रोसिक नाईने भगवान्‌से कहा.—"भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मणको इस प्रकारकी बुरी धारणा (=पापदृष्टि) उत्पन्न हुई है—यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो अच्छे धर्मको जाने०। भन्ते ! भगवान् लोहिच्च ब्राह्मणको इस पापदृष्टिसे अलग करा दें।'

"ऐसा ही हो रोसिक ! ऐसा ही हो रोसिक !"

तब भगवान् जहाँ लोहिच्च ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब लोहिच्च ब्राह्मणने बुद्धसहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे अच्छी अच्छी खानें और पीनेकी चीज परोस परोसकर खिलाई। तब लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्‌के भोजन समाप्तकर पात्रसे हाथ हटा लेनेके बाद स्वयं एक दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे लोहिच्च ब्राह्मणसे भगवान्‌ने यह कहा—

२—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं

"लोहिच्च ! क्या यह सच्ची बात है कि तुम्हे इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई है—'यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो अच्छे धर्मको जाने० दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?"

"हे गौतम ! हाँ ऐसीही बात है।"

"लोहिच्च ! तब क्या समझते हो तुम सालवतिकाके स्वामी हो न ?" "हाँ, हे गौतम।"

"लोहिच्च ! जो कोई ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण सालवतिकाका स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च ब्राह्मण अकेला ही उपभोग करे, दूसरोंको (कुछ) नहीं देवे।' तो ऐसा कहनेवाला मनुष्य, जो लोग तुमपर आश्रित होकर जीते हैं, उनका हानिकारक है या नहीं ?"

"हाँ, वह हानिकारक है, हे गौतम !"

"हानिकारक होनेसे वह उनका हित चाहनेवाला होता है या अहित चाहनेवाला ?"

"अहित चाहनेवाला, हे गौतम !"

"अहित चाहनेवालेके मनमें उनके प्रति मित्रताका भाव रहता है या शत्रुताका ?"

"शत्रुताका, हे गौतम !"

"शत्रुताका भाव रहनेमें बुरी धारणा (=मिथ्या-दृष्टि) रहती है या अच्छी धारणा (=सम्यग्-दृष्टि) ?" "मिथ्या दृष्टि, हे गौतम !"

"हे लोहिच्च ! मिथ्या-दृष्टि रखनेवालेकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं—नरक या नीच योनिमें जन्म।"

"लोहिच्च ! तब क्या समझते हो, राजा प्रसेनजित् कोसल और काशी कोसल (देशों) का स्वामी है कि नहीं ?"

"हाँ, हे गौतम !"

"लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'राजा प्रसेनजित् काशी और कोसलका स्वामी है। काशी और कोसलकी जो आय है ०।

"अत लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण सालवतिकाका स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च अकेला ही उपभोग करे, किसी दूसरेको नही देवे। ऐसा कहनेवाला वह जो उसके आश्रित होकर जीते हैं उनका हानिकारक होता है। हानिकारक होनेसे अहित चाहनेवाला होता है, अहित चाहनेसे शत्रुताके भाव उत्पन्न होते हैं, (और) शत्रुताके भाव उत्पन्न होनेसे वह *मिथ्यादृष्टि* होती है।

"इसी तरहसे, लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'*यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नही, जो कुशल धर्म जानें, और कुशल धर्म जानकर दूसरेको कहे। भला ! दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ? जैसे पुराने बन्धनको* काटकर नया बन्धन दे दे। मैं इसको उनका पाप और लोभधर्म समझता हूँ। (भला !) दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोका हानिकारक होता है ,जो (कुलपुत्र कि) ससार (=भव)से निवृत्त होनेके लिये तथागतके बताये गये धर्ममें आकर इस प्रकारकी विशारदताको पाते है—स्रोतआपत्तिफलका साक्षात्कार करते हैं, सकृदागामीफलका साक्षात्कार करते है,अनागामी-फलका साक्षात्कार करते हैं, अर्हत्वका भी साक्षात्कार करते हैं, और दिव्यगर्भका परिपाक करते हैं। हानिकारक होनेसे वह अहित चाहनेवाला होता है ० मिथ्यादृष्टिवालोकी दो ही गतियाँ होती हैं ०। "लोहिच्च ! उसी तरह जो कोई, राजा प्रसेनजित कोसलको काशी और कोसल०। वह उनका हानिकारक ०। हानिकारक होनेसे उनका अहित चाहनेवाला० मिथ्यादृष्टिवाला होता है।

"लोहिच्च ! इसी तरह जो ऐसा कहे—यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नही जो अच्छे धर्म जानें०।' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोका ०। हानिकारक होनेसे० मिथ्यादृष्टिवाला होता है। मिथ्यादृष्टि-वालोकी दोही गतियाँ ०।

३–झूठे गुरु

"*लोहिच्च ! तीन प्रकारके ही गुरु (=शास्ता) ससारमे कहे सुने जा सकते है जिनके ऊपर यदि* आक्षेप लगावे, तो वह आक्षेप सत्य, यथार्थ, धर्मानुकूल और निर्दोष होता है। वे कौनसे तीन ?—लोहिच्च ! कितने शास्ता यशके लिये घरसे बेघर होकर साधु (=प्रव्रजित) होते हैं, यह श्रमण-भावके लिये उचित नही है। वे श्रमण भावको बिना प्राप्त किये श्रावको(=शिष्यो)को धर्मोपदेश करते हैं—यह (तुम्हारे) हितके लिये है, यह सुखके लिये है। उनके श्रावक उसे सुननेकी चाह (=सुश्रूषा) नही करते, कान नही देते, चित्त नही लगाते, और उनके उपदेश (=शासन)से विरत रहते है। उसे ऐसा कहना चाहिये—आपने जिस निमित्तसे प्रव्रज्या ली थी वह श्रमणभावके लिये नही है, और आप श्रमणभावको बिना प्राप्त किये श्रावकोको उपदेश देते है,—'यह हितके लिये०।' इसीलिये आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नही०। जैसे, दूर हट गयेको उत्सुक बनानेकी कोशिश करे, मुँह फेर लिये मनुष्यको आलिङ्गन करे। ऐसा करनेको मैं पापपूर्ण लोभकी बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेको क्या करेगा ?—लोहिच्च ! यह पहले प्रकारका शास्ता है। उस शास्ताके लिये इस प्रकार कहना, सत्य, यथार्थ, धर्मानुसार और निर्दोष कथन है।

"और फिर लोहिच्च ! (दूसरे) कितने शास्ता श्रमणभावको बिना पाये हुए ०। उनके श्रावक उसके प्रति सुश्रूषा नहीं०।—उस (शास्तार्को) ऐसा कहना चाहिये—'आप जिस निमित्तसे०। आप श्रमणभाव बिना प्राप्त किये०—यह हितके लिये० अब आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नहीं ०।—जैसे कोई अपने खेतको छोड़कर दूसरेके खेतके घासपातको साफ करे, इसे मैं पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेका ०? (उस) शास्ताको जो इस प्रकार कहना, वह निर्दोष, सत्य, यथार्थ, और धार्मिक वचन है।

"लोहिच्च ! फिर भी कितने (दूसरे) शास्ता धर्मके लिये घरसे बेघर हो०[1]।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा,—"हे गौतम ! संसारमें ऐसे भी कोई शास्ता हैं जो कहे सुने जानेके योग्य नहीं हैं (जिनपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता है) ?"

"लोहिच्च ! ऐसे शास्ता हैं जिन्हें कोई ऐसा नहीं कह सकता।"

"हे गौतम ! वे कौनसे शास्ता हैं जिन्हें कोई० ?

४—सच्चे गुरु

१—शील—"लोहिच्च ! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[2] उत्पन्न होते हैं, लोहिच्च ! इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।

२—समाधि—०[3] प्रथम ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्म (=शासन)में श्रावक विशारदताको पाता है, लोहिच्च ! वही शास्ता है जिसे कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये कुछ कहना सुनना है, वह कहना असत्य, अयथार्थ, अधार्मिक और दोषपूर्ण है। "लोहिच्च ! और फिर भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेके बाद अपने भीतरकी शान्ति (=सम्प्रसाद), चित्तकी एकाग्रतासे वितर्क और विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुखवाले दूसरे ध्यान ० तीसरे ध्यान और ०[4] चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें श्रावक इस प्रकारकी विशारदताको पाते हैं, वह भी लोहिच्च ! शास्ता है जिसे कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

३—प्रज्ञा—"वह इस प्रकारके समाहित परिशुद्ध, स्वच्छ, पराहित, क्लेशोंसे रहित मृदु, सुन्दर और एकाग्र हुए चित्तसे अपने चित्तको ज्ञानदर्शनकी ओर नवाता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें श्रावक ० यह भी लोहिच्च ! शास्ता है जिसके लिये कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।—वह इस प्रकार समाहित परिशुद्ध ० आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको ०। वह 'यह दुःख है' अच्छी तरह जानता है ०[5] आवागमनके किसी कारणको नहीं देखता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें ०। लोहिच्च ! यह भी शास्ता है जिसे कोई नहीं०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—"हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष नरक-प्रपात (नरकके खड्ड)में गिरते किसी पुरुषको उसका केश पकड़कर ऊपर खींच ले और भूमिपर रख दे, उसी तरहसे मैं आप गौतमके द्वारा नरक-प्रपातमें गिरते हुए ऊपर खींचा जाकर भूमिपर रख दिया गया। आश्चर्य हे गौतम ! अद्भुत हे गौतम ! जैसे उलटेको सीधा कर दे०[1]। इस तरह अनेक प्रकारसे आप गौतमने धर्म प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्की शरण०[2]। आजसे जीवन भरके लिये मुझे उपासक ०[1]।

---

[1] देखो पृष्ठ २३। [2] देखो पृष्ठ २३-२८। [3] देखो पृष्ठ २९। [4] पृष्ठ २९। [5] देखो पृष्ठ ३२।

१३–तेविज्ज-सुत्त (१।१३)

ब्रह्मा की सलोकताका मार्ग १––ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ।
२––बुद्धका बतलाया मार्ग––(१) मैत्री भावना; (२) करुणा ०;
(३) मुदिता ०; (४) उपेक्षा०।

ऐसा मैंने सुना––एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ कोसल देशमें विचरते, जहाँ मनसाकट नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ अ चि र व ती नदीके तीर आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) अभिज्ञात महा धनिक (=महाशाल) ब्राह्मण मनसाकटमें निवास कर रहे थे, जैसे कि––चकि ब्राह्मण, तारुक्ख (=तारक्ष) ब्राह्मण, पोक्खर-साति (=पौष्करसाति) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल।

ब्रह्माकी सलोकताका मार्ग

तब चहलकदमीके लिये रास्तेमें टहलते हुए, विचरते हुए, वाशिष्ट और भारद्वाज दो माणवकों (=ब्राह्मण तरुणों)में बात उत्पन्न हुई। वाशिष्ट माणवकने कहा––

"यही मार्ग (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है।"

भारद्वाज माणवकने कहा––"यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण तारक्षने कहा है।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझ सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझ सका। तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकसे कहा––

"भारद्वाज! यह शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (=राप्ती) नदीके तीर, आम्रवनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है––वह भगवान् ०[1] बुद्ध भगवान् है। चलो भारद्वाज! जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ चलें। चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछें। जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे।"

"अच्छा भो!" कह भारद्वाज माणवकने . उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर. (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा––

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

"हे गौतम ! ० रास्तेमें हम लोगोंमें यह वाद उत्पन्न हुई ०। यही हे गौतम ! विग्रह है, विवाद है, नानावाद है।"

१—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ

"क्या वाशिष्ट ! तू ऐसा कहता है—'यही मार्ग ० है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसाति कहता है?' और भारद्वाज माणवक यह कहता है—० जिसे कि ब्राह्मण तारुक्ष कहता है। तब वाशिष्ट ! किस विषयमें तुम्हारा विग्रह ० है?"

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण, छन्दावा ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं। तो भी वह (सभी उपदेशवाद) ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं। जैसे हे गौतम ! ग्राम या कस्बेके पास (अन्दर) बहुतसे नाना मार्ग होते हैं, तो भी वे सभी ग्रामम ही जानेवाले होते हैं। ऐसे ही हे गौतम ! ० ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, ०।० ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं' कहते हो?" 'पहुँचाते हैं' कहता हूँ।

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं०' कहते हो?"

"पहुँचाते हैं ०।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं' कहते हो?

"पहुँचाते हैं ०।"

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें क्या एक भी ब्राह्मण है जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो?

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य प्राचार्य है ०?

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंके आचार्योंकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ०?

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्वज, मन्त्रोंके कर्ता मन्त्रोंके प्रवक्ता ऋषि (थे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मन्त्र-पदको आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान अनुभाषण करते हैं, भाषितका अनुभाषण करते हैं, वाचेका अनुवाचन करते हैं, जैसे कि अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु। उन्होंने भी (क्या) यह कहा—जहाँ ब्रह्मा है जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमें ब्रह्मा है, हम उसे जानते हैं, हम उसे देखते हैं?

"नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो। ० एक आचार्य भी ०। एक आचार्य-प्राचार्य भी ०।० सातवीं पीढ़ी तकके आचार्योंमें भी ०। जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि ०। और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं !—'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके लिये हम मार्ग उपदेश करते हैं—यही मार्ग ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, है!!' तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन क्या अ-प्रामाणिकताको नहीं प्राप्त हो जाता?"

"अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन अ प्रामाणिकताको प्राप्त हो जाता है।"

"अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते है, जिसको न देखते है, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते है ! !—'यही ० सीधा मार्ग है—यह उचित नही है। जैसे वाशिष्ट ! अन्धोकी पाँती एक दूसरेसे जुळी हो, पहलेवाला भी नही देखता, बीचवाला भी नही देखता, पीछेवाला भी नही देखता। ऐसे ही वाशिष्ट ! अन्ध वेणीके समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन है, पहलेवालेने भी नही देखा ०। (अत) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन प्रलाप ही ठहरता है, व्यर्थ ०, रिक्त ०=तुच्छ ठहरता है। तो वाशिष्ट ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसरे बहुतसे जनोको देखते है, कि कहाँसे वह उगते है, कहाँ डूबते है, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते है, स्तुति करते है, हाथ जोळ नमस्कार कर घूमते है ?"

"हाँ, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र, सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोको देखते है। ०"

"तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र, सूर्य या दूसरे बहुत जनोको, देखते है, कहाँसे ०। क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र-सूर्यकी सलोकता (=सहव्यता=एक स्थान निवास)के लिये मार्गका उपदेश कर सकते है—'यही वैसा करनेवाले को, चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये ० सीधा मार्ग है ?।"

'नही, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते है,० प्रार्थना करते है ०। उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि ० यही सीधा मार्ग है , तो फिर ब्रह्माको—जिस न त्रैविद्य ब्राह्मणोने अपनी आँखोसे देखा, ० ० न त्रैविद्य ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषियोने ०। तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन अ प्रामाणिक (=अप्पाटिहीरक) नही ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते है, जिसे न देखते है, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते है—० यही सीधा मार्ग है'। ० यह उचित नही। जैसे कि वाशिष्ट ! पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश)में जो जनपद-कल्याणी (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मै उसको चाहता हूँ उसकी कामना करता हूँ। उससे यदि (लोग) पूछें—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, कामना करता है, जानता है, वह क्षत्राणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य स्त्री है, या शूद्री है'? ऐसा पूछने पर 'नही' कहे। तब उससे पूछें—हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, जानता है, वह अमुक नामवाली, अमुक गोत्रवाली है ? लम्बी, छोटी या मझोली है ? काली, श्यामा या मगुर (मछलीके) वर्णकी है ? अमुक ग्राम निगम या नगर में रहती है ?' ऐसा पूछने पर 'नही' कहे। तब उससे यह पूछे—'हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता जिसको तूने नही देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है'? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण अ प्रामाणिक नहीं ठहरता ?'

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"ऐसे ही हे वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोने ब्रह्माको अपनी आँखसे नहीं देखा०। अहो ! यह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते है—'जिसे हम नही जानते ० उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते है०'। तो क्या वाशिष्ट ! ० भाषण अ प्रामाणिक नहीं होता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको नहीं जानते० उपदेश करते है। यह युक्त नहीं। जैसे वाशिष्ट ! कोई पुरुष चौरस्तेपर महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बनाये। उससे

(लोग) पूछे—'हे पुरुष ! जिस महलपर चढनेके लिये सीढी बना रहा है, जानता है वह महल पूर्व दिशामें है या दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें है या उत्तर दिशामें, ऊँचा या नीचा, या मझोला है ?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे। उससे ऐसा पूछें—'हे पुरुष ! जिसे तू नही जानता, नहीं देखता, उस महलपर चढनेके लिये सीढी बना रहा है ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो वाशिष्ट ! ०।"

"अवश्य, हे गौतम ! ०"

"साधु, वाशिष्ट ! ०। यह युक्त नही। जैसे वाशिष्ट ! इस **अचिरवती** (=राप्ती) नदीकी धार उदकसे पूर्ण (=समतित्तिक) काकपेया (=करारपर बैठकर कौआ भी जिसमें पानी पी ले) हो, तब पार अर्थी=पारगामी=पार गवेषी=पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे, वह इस किनारेपर खळे हो दूसरे तीरको आह्वान करे—'हे पार इस पार चले आओ।' 'हे पार ! इस पार चले आओ', तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! क्या उस पुरुषके आह्वानके कारण, याचनाके कारण, प्रार्थनाके कारण, अभिनन्दनके कारण अचिरवती नदीका पारवाला तीर इस पार आ जायगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"इसी प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण—जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं उनको छोळकर जो अ-ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है, उनसे युक्त होते हुए कहते है—'(हम) **इन्द्र**को आह्वान करते है, **ईशान**को आह्वान करते है, **प्रजापति**को आह्वान करते है, **ब्रह्मा**को आह्वान करते है, **महर्द्धि**को आह्वान करते है, **यम**को आह्वान करते है।' वाशिष्ट ! अहो ! त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानवाले धर्म है० उनको छोळकर, आह्वानके कारण० काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त हो जायगे, यह सभव नही है।

'जैसे वाशिष्ट ! इस **अचिरवती** नदीकी धार उदक-पूर्ण, (करारपर बैठे) कौवेका भी पीने लायक हो।० पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे। वह इसी तीरपर दृढ साकलसे पीछे बाँह करके मजबूत बन्धनसे बँधा हो। वाशिष्ट ! क्या वह पुरुष अचिरवतीके इस तीरसे परले तीर चला जायेगा ?'

'नही, हे गौतम !"

'इसी प्रकार वाशिष्ट ! यह पाँच काम-गुण (=कामभोग) आर्य-विनय(=बुद्धधर्म)मे जजीर कहे जाते है, बधन कहे जाते है। कौनसे पाँच ? (१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कात=मनाप=प्रिय कामना-युक्त, रूप रागोत्पादक है। (२) श्रोत्रसे विज्ञेय शब्द०। घ्राणसे विज्ञेय० गध। (३) जिह्वासे विज्ञेय रस०। (४) काय (=त्वक्)से विज्ञेय० स्पर्श। वाशिष्ट ! ये पाँच काम गुण० बधन कहे जाते है। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच काम-गुणोसे मूर्च्छित, लिप्त, अ-परिणाम-दर्शी है, इनसे निकलनेका ज्ञान न करके (=अनिस्सरणपञ्ञा) भोग कर रहे है। वाशिष्ट ! अहो !! यह त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है उन्हे छोळकर ०, पाँच काम-गुणोको० भोगते हुए, कामके बधनमें बँधे हुए, काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माओकी सलोकताको प्राप्त होगे, यह सभव नही।

'जैसे वाशिष्ट ! इस अचिरवती नदीकी धार०, पुरुष आवे, वह इस तीरपर मुँह ढाँककर लेट जावे। तो० परले तीर चला जायेगा ?"

"नही, हे गौतम !"

"ऐसे ही, वाशिष्ट ! यह पाँच **नीवरण** आर्य-विनय (=आर्य-धर्म, बौद्ध धर्म)में आवरण भी कहे जाते है, नीवरण भी कहे जाते है, परि-अवनाह (=बधन) भी कहे जाते है। कौनसे पाँच ? (१) कामच्छद (=भोगकी इच्छा) नीवरण, (२) व्यापाद (=द्रोह)०, (३) स्त्यान-मृद्ध (=आलस्य)०, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धतपना, खेद)०, (५) विचिकित्सा (=दुविधा)०।

वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आर्य-विनयमें आवरण भी० कहे जाते है। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरणो(से) आवृत (=ढँके)=निवृत, अवनद्ध=पर्यवनद्ध (=बँधे) है। वाशिष्ट ! अहो ! ! त्रैविद्य ब्राह्मण जो ब्राह्मण बनानेवाले ०। पाँच नीवरणोमे आवृत० बँधे०, मरनेके वाद ब्रह्माओकी सलोकताको प्राप्त होगे, यह सभव नही।

"तो वाशिष्ट ! क्या तुमने ब्राह्मणोके वृद्धों=महल्लको आचार्य प्राचार्योंको कहते सुना है—ब्रह्मा स-परिगृह (=बटोरनेवाला) है, या अ-परिग्रह ?"

"अ-परिग्रह, हे गौतम !"

"स वैर-चित्त, या वैर-रहित चित्तवाला ?"

"अवैर-चित्त, हे गौतम !"

"स-व्यापाद (=द्रोहयुक्त) या अ-व्यापाद चित्तवाला ?"

"अव्यापाद चित्त, हे गौतम !"

"सक्लेश(=चित्त मल)-युक्त या सक्लेश-रहित चित्तवाला ?"

"सक्लेश रहित चित्तवाला, हे गौतम !"

"वशवर्ती (=अपरतत्र, जितेन्द्रिय) या अ वश वर्ती ?"

"वशवर्ती, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह है या अ-परिग्रह ?"

"स-परिग्रह, हे गौतम !"

"० सवैर चित्त ० ? ०। ? ० सव्यापाद-चित्त ० ? ०। ? ० सक्लेश-युक्त चित्त० ? ०। ० वशवर्ती ० ?" "अ-वशवर्ती, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह है, और ब्रह्मा अ-परिग्रह है। क्या स-परिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मणोका परिग्रह-रहित ब्रह्माके साथ समान होना, मिलना, हो सकता है ?"

"नही, हे गौतम !"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! ! सपरिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मण काया छोळ मरनेके वाद परिग्रह रहित ब्रह्माके साथ सलोकताको प्राप्त करेग, यह सभव नही।"

"० स-वैर चित्त त्रैविद्य ब्राह्मण ०, अवैर चित्त ब्रह्माक साथ सलोकता ० सभव नही। ० सव्यापाद चित्त ०। ० सक्लेश-युक्त चित्त ०। ० अवशवर्ती ०।

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण वे रास्ते जा फँसे है, फँसकर विपादको प्राप्त है, सूखेमे जैसे तैर रहे है। इसलिये त्रैविद्य ब्राह्मणोकी त्रिविद्या वीरान (=कातार) भी कही जा(सक)ती है, विपिन (=जगल) भी कही जा(सक)ती है, व्यसन (=आफत) भी कही जा (सकती) है।"

२–बुद्धका बतलाया मार्ग

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—"मैने यह सुना है, हे गौतम ! कि श्रमण गौतम ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग जानता है ?"

"तो वाशिष्ट ! मनसाकट यहाँसे समीप है, मनसाकट यहाँसे दूर नही है न ?"

"हाँ, हे गौतम ! मनसाकट यहाँसे समीप है ०, यहाँसे दूर नही है।"

"तो वाशिष्ट ! यहाँ एक पुरुष है, (जो कि) मनसाकटहीमें पैदा हुआ है, बढा है। उससे मनसाकटका रास्ता पूछें। वाशिष्ट ! मनसाकटमें जन्मे, बढे, उस पुरुषको, मनसाकटका मार्ग पूछनेपर (उत्तर देनेमें) क्या देरी या जळता होगी ?"

"नही, हे गौतम !"

"सो किस कारण ?"

"हे गौतम ! वह पुरुष मनसाकटमें उत्पन्न और बढा है, उसको मनसाकटके सभी मार्ग सु-विदित है।"

"वाशिष्ट ! मनसाकटमे उत्पन्न और बढे हुए उस पुरुषको मनसाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जळता हो सकती है, किन्तु तथागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछनेपर, देरी या जळता नही हो सकती। वाशिष्ट ! मै ब्रह्माको जानता हूँ, ब्रह्मलोकको, और ब्रह्मलोक-गामिनी-प्रतिपद् (=ब्रह्मलोकके मार्ग)को भी, और जैसे मार्गारूढ होनेसे ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है, उसे भी जानता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम ! मैने सुना है, श्रमण गौतम ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग उपदेश करता है। अच्छा हो आप गौतम हमे ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करे, हे गौतम ! आप (हम) ब्राह्मण-सन्तानका उद्धार करे।"

'तो वाशिष्ट ! सुनो, अच्छी प्रकार मनम (धारण) करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—"वाशिष्ट ! यहाँ ससारम तथागत उत्पन्न होते है।०[1] इस प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर, और पेटके भोजनसे सन्तुष्ट होता है। इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील सम्पन्न होता है। ० वह अपनेको इन पाँच नीवरणोसे मुक्त देख, प्रमुदित होता है। प्रमुदित हो प्रीति प्राप्त करता है, प्रीति-मानको शरीर स्थिर, शान्त होता है। प्रश्रब्ध (=शान्त) शरीरवाला सुख अनुभव करता है, सुखितका चित्त एकाग्र होता है।

(१) मैत्री भावना

"वह मैत्री (=मित्र भाव) युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० दूसरी दिशा ०, ० तीसरी दिशा ०, ० चौथी दिशा० इसी प्रकार ऊपर नीचे आळे बेळे सम्पूर्ण मनसे, सबके लिये, मित्र-भाव (०मैत्री=)-युक्त विपुल, महान्=अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करता विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शख ध्मा (=शख बजानेवाला) थोळी ही मिहनतसे चारो दिशाओको गुँजा देता है। वाशिष्ट ! इसी प्रकार मित्र-भावनासे भावित, चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणम काम किया गया है, वह वही अवशेष=खतम नही होता। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग है।

(२) करुणा भावना

और फिर वाशिष्ट ! करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको ०।

(३) मुदिता भावना

मुदिता-युक्त चित्तसे ० ०,

(४) उपेक्षा भावना

उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० विपुल, महान्, अप्रमाण, वैररहित, द्रोहरहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करके विहरता है। जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शख-ध्मा ०। वाशिष्ट ! इसी प्रकार उपेक्षासे

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२७।

भावित चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वही अवशेष=खतम नही होता। यह भी वाशिष्ट! ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग है।

"तो वाशिष्ट! इस प्रकारके विहारवाला भिक्षु, स-परिग्रह है, या अ-परिग्रह?" "अ-परिग्रह, हे गौतम!"

"स-वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त?" "अ-वैर-चित्त, हे गौतम!"

"स-व्यापाद-चित्त या अ-व्यापाद-चित्त?"

"अ-व्यापाद-चित्त, हे गौतम!"

"सक्लिष्ट(=मलिन)-चित्त या अ-सक्लिष्ट-चित्त?"

"अ-सक्लिष्ट-चित्त, हे गौतम!"

"वश-वर्ती(=जितेन्द्रिय) या अ-वश वर्ती?"

"वश-वर्ती, हे गौतम!"

"इस प्रकार वाशिष्ट! भिक्षु अ-परिग्रह है, ब्रह्मा अ परिग्रह है, तो क्या अ-परिग्रह भिक्षुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, मेल है?"

"हाँ, हे गौतम!"

"साधु, वाशिष्ट! वह अ-परिग्रह भिक्षु काया छोळ मरनेके बाद, अ-परिग्रह ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होगा, यह सभव है। इस प्रकार भिक्षु अ-वैर चित्त है०।० वश-वर्ती भिक्षु काया छोळ मरनेके बाद वश-वर्त्ती ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होगा, यह सभव है।"

ऐसा कहने पर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकोने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य हे गौतम! अद्भुत हे गौतम! ०[१] आजसे आप गौतम हम (लोगोको) अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

(इति सीलक्खन्ध-वग्ग ॥१॥)

---

[१] देखो पृष्ठ ३२

२–महावग्ग

१४–महापदान-सुत्त (२।१)

१—विपश्यी आदि पुराने छँ बुद्धोंकी जाति आदि। २—विपस्सी बुद्धकी जीवनी—(१) जाति गोत्र आदि; (२) गर्भमें आनेके लक्षण; (३) बत्तीस शरीर-लक्षण; (४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण—वृद्ध, रोगी, मृत और सन्यासीका देखना; (५) सन्यास; (६) बुद्धत्व-प्राप्ति; (७) धर्मचक्र प्रवर्तन; (८) शिष्यों द्वारा धर्मप्रचार; (९) देवता साक्षी। देवतागण।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनकी करेरी कुटीमें विहार करते थे।

तब भिक्षासे लौट भोजन कर लेनेके बाद करेरी(कुटी)की पर्णशाला (=बैठक)में इकट्ठे होकर बैठे बहुतसे भिक्षुओंके बीच पूर्वजन्मके विषयमें धार्मिक-कथा चली—पूर्वजन्म ऐसा होता है, वैसा होता है। भगवान्ने विशुद्ध और अलौकिक दिव्य-श्रोत्रसे उन भिक्षुओंकी इस बातचीतको सुन लिया। तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ करेरी पर्णशाला(=मंडलमाल) थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्ने उन भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुक गये ?"

ऐसा कहनेपर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! भिक्षासे लौटे० हम भिक्षुओं-के बीच पूर्व-जन्मके विषयमें धार्मिक-कथा चल रही थी—पूर्व जन्म ऐसा है, वैसा है। भन्ते! यही बात-हममें चल रही थी, कि भगवान् चले आये।"

"भिक्षुओ! पूर्व-जन्म-संबंधी धार्मिक-कथाको क्या तुम सुनना चाहते हो ?"

"भगवान्! इसीका काल है। सुगत! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्व-जन्म-संबंधी धार्मिक-कथा कहें। भगवान्की बातको सुनकर भिक्षु लोग धारण करेंगे।"

"भिक्षुओ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमें करो। कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते"—कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१–विपश्यी आदि छै बुद्धोंकी जाति आदि

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! आजसे इकानवे कल्प पहले विपस्सी(=विपश्यी) भगवान्, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! आजसे एकतीस कल्प पहले सिखी (=शिखी) भगवान्०। भिक्षुओ! उसी एकतिसवें कल्पमें वेस्सभू (=विश्वभू) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी भद्रकल्प (वर्तमान कल्प)में "ककुसन्ध (=क्रकुच्छन्द) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी भद्रकल्पमें कोणागमन भगवान्०। भिक्षुओ! इसी०में कस्सप (=काश्यप) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी०में मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० क्षत्रिय जातिके थे, क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! सिखी भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! ककुसन्ध भगवान्०

ब्राह्मण ०। भिक्षुओ ! कोणागमन भगवान्० ब्राह्मण०। भिक्षुओ ! कस्सप भगवान्० ब्राह्मण०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध क्षत्रिय जातिका, क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ ! **विपस्सी** भगवान्०कोण्डञ्ञ (=कौडिन्य) गोत्रके थे।०**सिखी** भगवान्० कौण्डिन्य गोत्र०।० वेस्सभू भगवान्० कौण्डिन्य गोत्र०।० ककुसन्ध भगवान्० काश्यप गोत्रके थे।० कोणागमन भगवान्० काश्यप गोत्र०।० कस्सप भगवान्० काश्यप गोत्र०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध गोतम गोत्रका हूँ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० का आयुपरिमाण अस्सी हजार वर्षका था।० सिखी भगवान्० सत्तर हजार वर्ष०।० वेस्सभू भगवान्० साठ हजार वर्ष०।० ककुसन्ध भगवान्० चालीस हजार वर्ष०।० कोणागमन भगवान्० तीस हजार वर्ष०।० कस्सप भगवान्० बीस हजार वर्ष०। भिक्षुओ ! और मेरा आयुप्रमाण बहुत कम और छोटा है, (इस समय) जो बहुत जीता है वह कुछ कम या अधिक सौ वर्ष (जीता है)।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० पाडर वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध (=बुद्धत्वको प्राप्त) हुये थे।० सिखी० भगवान्० पुण्डरीकके नीचे ०।० वेस्सभू भगवान्० साल वृक्ष०।० ककुसन्ध भगवान्० सिरीस वृक्ष०।० कोणागमन भगवान्० गूलर वृक्ष०।० कस्सप भगवान्० बर्गद०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध पीपल वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध हुआ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के **खण्ड** और **तिस्स** नामक दो प्रधान शिष्य हुये।० सिखी भगवान्० के **अभिभू** और **सम्भव** नामक०।० वेस्सभू भगवान्० के **सोण** और **उत्तर** नामक०।० ककुसन्ध भगवान्० के **विधुर** और **सञ्जीव** नामक०।० कोणगमन भगवान्० के **भीयोसु** और **उत्तर** नामक०।० कस्सप भगवान्० के **तिस्स** और **भारद्वाज** नामक०। भिक्षुओ ! और मेरे **सारिपुत्त** और **मोग्गलान** नामक दो प्रधान शिष्य हैं।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक सन्निपात) हुये। अळसठ लाख भिक्षुओंका एक शिष्य-सम्मेलन था। एक लाख भिक्षुओंका एक०। (और) अस्सी हजार भिक्षुओंका एक०। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के यही तीन शिष्य सम्मेलन थे, सभी (भिक्षु) अर्हत् थे।० सिखी भगवान्० के तीन०। एक लाख भिक्षुओंका एक०। अस्सी हजार भिक्षुओंका एक०। सत्तर हजार भिक्षुओंका एक०। भिक्षुओ ! सिखी भगवान्०के यही तीन० सभी अर्हत्०।—० वेस्सभू भगवान्० के तीन०। अस्सी हजार०। सत्तर हजार०। साठ हजार०। भिक्षुओ ! वेस्सभू भगवान्०के यही तीन०। ककुसन्ध भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन चालीस हजार भिक्षुओंका था। भिक्षुओ ! ककुसन्ध भगवान्० के यही एक०।० कोणागमन भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन तीस हजार भिक्षुओंका था। भिक्षुओ ! कोणागमन० का यही एक०।० कस्सप भगवान् ० बीस हजार०।० कस्सपका यही०— भिक्षुओ ! और मेरा एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ, बारह सौ पचास भिक्षुओंका। भिक्षुओ ! मेरा यही एक शिष्य-सम्मेलन० अर्हत्०।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० का **अशोक** नामक भिक्षु उपस्थाक (=सहचर सेवक) प्रधान उपस्थाक था।० सिखी भगवान्० का **खेमंकर** भिक्षु उपस्थाक०।० वेस्सभू भगवान्० का **उपसन्त**०।० ककुसन्ध भगवान्० का **बुद्धिज**०।० कोणागमन भगवान्० का **सोत्थिज**०।० कस्सप भगवान्० का **सर्वमित्र**०। भिक्षुओ ! और मेरा आनन्द नामक भिक्षु उपस्थाक० हुआ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के **बन्धुमान्** नामक राजा पिता (और) **बन्धुमती** देवी नामकी माता थी। बन्धुमान् राजाकी राजधानी **बन्धुमती** नामक नगरी थी। ० सिखी भगवान्० के **अरुण** नामक राजा पिता और **प्रभावती** देवी नामकी माता०। अरुण राजाकी राजधानी **अरुणवती** नामक नगरी थी।० वेस्सभू भगवान्० के **सुप्रतीत** नामक राजा० **यशोवती** देवी नामक०। सुप्रतीत राजाकी राजधानी **अनोमा**०।० ककुसन्ध भगवान्० के **अग्निदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **विशाखा** नामक ब्राह्मणी

माता०। भिक्षुओ! उस समय खेम नामक राजा था। खेम राजाकी राजधानी खेमवती नामक नगरी थी। ० कोणागमन भगवान्० यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण पिता, उत्तरा नामक ब्राह्मणी माता०। भिक्षुओ! उस समय सोभ नामक राजा था। सोभ राजाकी राजधानी सोभवती नामक नगरी थी।० कस्सप भगवान्० ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण पिता, धनवती नामक ब्राह्मणी माता०। उस समय किकी नामक राजा था। भिक्षुओ! किकी राजाकी राजधानी वाराणसी (=बनारस) थी। भिक्षुओ! और मेरा शुद्धोदन नामक राजा पिता, मायादेवी नामक माता०। कपिलवस्तु नामक नगरी राजधानी रही।

भगवान्ने यह कहा। सुगत इतना कह आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्के जाते ही उन भिक्षुओमें यह बात चली—"आवुसो! आश्चर्य है, आवुसो! अद्भुत है—तथागतका ऐश्वर्य्य और उनकी महानुभावता, कि (इस तरह) तथागतोंने अतीत कालमें निर्वाण प्राप्त किया, ससारके प्रपञ्चपर विजय प्राप्त किया, अपने मार्गको समाप्त किया, और सब दुखोंका अन्त कर दिया। (वह) बुद्धोको जन्मसे भी स्मरण करते है, नामसे भी स्मरण करते है, गोत्रसे भी स्मरण करते है, आयु-परिमाणसे भी०, प्रधान शिष्यके पुद्गल (=व्यक्ति)से भी०, शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक सन्निपात)से भी। वे भगवान् इस जातिके थे यह भी, इस नामके, इस गोत्रके, इस शीलके, इस धर्मके, इस प्रज्ञाके, इस प्रकार रहनेवाले, इस प्रकार विमुक्त थे यह भी।

"तो आवुसो! क्या यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न हो तथागत अतीतमें निर्वाण प्राप्त किये, ससारके प्रपञ्चो० बुद्धोको जन्मसे भी, नामसे भी०, वे भगवान् इस जन्मके०? या देवता तथागतको यह सब कह देते है, जिसमे तथागत अतीत कालमें निर्वाण प्राप्त किये० बुद्धोको जन्मसे, नामसे० वे भगवान् इस जातिके०।—यही बात उन भिक्षुओमें चल रही थी।

तब भगवान् सध्या समय ध्यानसे उठ कर जहाँ कारेरीकी पर्णशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुक गये?"

एसा पूछनेपर उन भिक्षुओने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान्के जाते ही हम लोगोके बीच यह बात चली—आवुसो! तथागतका ऐश्वर्य और उनकी महानुभावता, आश्चर्य है, आवुसो! अद्भुत है, कि तथागत अतीत कालमे निर्वाण प्राप्त किये ० बुद्धोको जन्मसे ०, वे भगवान् इस जातिके थे ०'। तो आवुसो! क्या यह तथागतकीही शक्ति ०। या देवता तथागतको यह सब कह देते है जिसमे तथागत अतीत कालमें ०'। भन्ते! हम लोगोके बीच यही बात चल रही थी, कि भगवान् आ गये।"

'भिक्षुओ! यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न होकर तथागत अतीत कालमे निर्वाण पाये ० बुद्धोको जन्मसे ०, 'वे भगवान् इस जातिके ०' यह भी। देवताने भी तथागतको कह दिया था जिससे तथागत अतीत कालमे ०बुद्धोको जन्मसे स्मरण ०, वे भगवान् इस जन्मके ० यह भी। भिक्षुओ! क्या तुम पूर्वजन्म सम्बन्धी धार्मिक कथाको अच्छी तरह सुनना चाहते हो?"

"भगवान्! इसीका काल है। सुगत! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्वजन्म-सम्बन्धी धार्मिक कथा अच्छी तरह कहे, भगवान्की बातोको सुनकर भिक्षु लोग उसे धारण करेंगे।"

'भिक्षुओ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।" "अच्छा भन्ते" उन्होने उत्तर दिया।

२—विपस्सी बुद्धकी जीवनी

(१) जाति गोत्र आदि

भगवान्ने यह कहा—"आजसे इकानवे कल्प पहले (१) विपस्सी भगवान् ० क्षत्रिय जाति ०। भिक्षुओ! विपस्सी भगवान् अर्हत् ० कौण्डिन्य गोत्रके थे। ० विपस्सी भगवान् ० का आयुपरिमाण अस्सी हजार वर्षोका था। ० विपस्सी भगवान् ० पाटलि वृक्षके नीचे बुद्ध हुए थे। ० विपस्सी भगवान् ०

के खण्ड और तिस्स नामक दो प्रधान श्रावक (=शिष्य) थे। ० विपस्सी भगवान् ० के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। एक शिष्यसम्मेलन अळसठ लाख भिक्षुओंका था। एक ० एक लाख भिक्षुओंका ०। एक ० अस्सी हजार भिक्षुओंका। विपस्सी भगवान्‌के यही तीन शिष्य सम्मेलन हुए, जिनमें सभी अर्हत् (भिक्षु) थे। विपस्सी भगवान्०का अशोक नामक भिक्षु प्रधान उपस्थाक था। ० विपस्सी भगवान्०का बन्धुमान् नामक राजा पिता और बन्धुमती नामकी देवी माता थी। बन्धुमान् राजाकी राजधानी बन्धुमती नामक नगरी थी।

(२) गर्भमें आनेके लक्षण

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व तुषित नामक देवलोकसे च्युत होकर होशके साथ अपनी माताकी कोखमें प्रविष्ट हुए। उसके ये (पूर्व-)लक्षण हैं। (१) भिक्षुओ! लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत होकर माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं तब देवता, मार और ब्रह्मा, श्रमण ब्राह्मण, और देव मनुष्य सहित इस लोकमें देवोंके देवतेजसे भी बढकर बळा भारी प्रकाश होता है। नीचेके नरक—जो अन्धकारसे, अन्धकारकी कालिमासे परिपूर्ण है, जहाँ बळी ऋद्धि=बळे महानुभाववाले ये चाँद और सूरज भी अपनी रोशनी नहीं पहुँचा सकते, वहाँ भी—देवोंके देवतेजसे बढकर भारी प्रकाश होता है। जो प्राणी वहाँ उत्पन्न हुए हैं, वे भी उस प्रकाशमें एक दूसरेको देखते हैं—'अरे! यहाँ दूसरे भी प्राणी उत्पन्न हैं'। यह दस हजार लोक धातु (=ब्रह्माड) कँपने और हिलने लगती है। संसारमें देवोंके देवतेजसे भी बढकर बळा भारी प्रकाश फैल जाता है, यह लक्षण होता है।

"भिक्षुओ! (२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं, तब चारों देव-पुत्र उन्हे चारों दिशाओंसे रक्षा करनेके लिये आते हैं, जिसमें कि बोधिसत्वको या बोधिसत्वकी माताको कोई मनुष्य या अमनुष्य न कष्ट दे सके। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं, तब बोधिसत्वकी माता प्रकृतिसे ही शीलवती होती है। हिंसासे विरत रहती है। चोरीसे ०। दुराचारसे ०। मिथ्या-भाषणसे ०। सुरा या नशीली वस्तुओंके सेवनसे ०। यह भी लक्षण है।"

"भिक्षुओ! (४) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माताका चित्त पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं होता। कामवासनाओंके लिये, बोधिसत्वकी माता किसी पुरुषके द्वारा रागयुक्त चित्तसे जीती नहीं जा सकती। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (५) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माता पाँच भोगों (=काम-गुणों)को प्राप्त करती है, वह पाँच भोगोंसे समर्पित और सेवित रहती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (६) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नहीं उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सुखपूर्वक रहती है। बोधिसत्वकी माता अ-क्लान्त शरीर-वाली रह अपनी कोखमें स्थित, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गसे पूर्ण (=अहीनेन्द्रिय) बोधिसत्वको देखती है। भिक्षुओ! जैसे अच्छी जातिवाली, आठ पहलुओंवाली, अच्छी खरादी शुद्ध, निर्मल (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि (=हीरा) (हो)। उसमेंका सूत्र उजला, नीला, या पीला, या लाल, या धूसर (हो) उसे आँखवाला मनुष्य हाथमें लेकर देखे—'यह ० वैदूर्यमणि, ०। यह इसमेंका सूत्र ०। भिक्षुओ! उसी तरह जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नहीं उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सुख-पूर्वक रहती है ० बोधिसत्वको देखती है ०। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (७) लक्षण यह है कि बोधिसत्वके उत्पन्न होनेके एक सप्ताह बाद बोधि-सत्वकी माता मर जाती है, और तुषित देवलोकमें उत्पन्न होती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (८) लक्षण यह है कि जैसे दूसरी स्त्रियाँ नव या दस महीना कोखमें बच्चे-

को रखकर प्रसव करती हैं, वैसे बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको नही प्रसव करती। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको पूरे दस महीने कोखमे रखकर प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (९) लक्षण यह है कि जैसे और स्त्रियाँ बैठी या सोई प्रसव करती है, वैसे बोधिसत्वकी माता० नहीं०। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको खळी खळी प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१०) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमे बाहर आते है, (तो उन्हे) पहले पहल देवता लोग लेते है, पीछे मनुष्य लोग। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (११) लक्षण यह है कि बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलकर पृथ्वीपर गिरने भी नही पाते, कि चार देवपुत्र उन्हे उपरसे लेकर माताके सामने रखते हैं, (और कहते है—) प्रसन्न होवे, आपको बळा भग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलते हैं तब, बिलकुल निर्मल पानीसे अलिप्त, कफसे अलिप्त, रुधिरसे अलिप्त, और किसी भी अशुचिसे अलिप्त, शुद्ध=विशद निकलते हैं। जैसे भिक्षुओ! मणिरत्न काशीके वस्त्रमें लपेटा हुआ हो, तो न (वह) मणिरत्न काशीके वस्त्रमे चिपट जाता है और न काशीका वस्त्र मणिरत्नमें चिपट जाता है। सो क्यो? दोनोंकी शुद्धताके कारण। इसी तरहसे भिक्षुओ! जब० निकलते है, ० विशद ही निकलते है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व० निकलते है तब आकाशसे दो जल-धारायें छूटती हैं, एक शीत (जल)की, एक उष्ण (जल)की, जिनसे बोधिसत्व और माताका प्रक्षालन (=उदककृत्य) होता है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१४) लक्षण यह है कि बोधिसत्व उत्पन्न होते ही, समान पैरोंपर खळे हो उत्तरकी ओर मुँह करके सात पग चलते हैं। श्वेत छत्रके नीचे सभी दिशाओको देखते हैं, और इस श्रेष्ठ वचनको घोषित करते हैं—'इस लोकमे मैं श्रेष्ठ हूँ। इस लोकमें मैं अग्र हूँ। इस लोकमें मैं सबसे ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब (मेरा) फिर जन्म नही होगा।' यह ही लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१५) लक्षण यही है कि जब बोधिसत्व० निकलते है तब, देव, मार०[१] लोकमे० अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाश होता है। ससारकी बुराइयाँ दूर हो जाती है, अन्धकारकी कालिमा हट जाती हैं, जहाँ इन चाँद-सूरज० वहाँ भी देवोके०। जो वहाँ उत्पन्न हुए प्राणी०, 'दूसरे भी प्राणी०।' यह दस हजार लोकधातु (=ब्रह्माण्ड) कँपता०।०। यह भी लक्षण है।

(३) बत्तीस शरीर-लक्षण

"भिक्षुओ! उत्पन्न होनेपर विपस्सी कुमारने बन्धुमान् राजासे यह कहा—'देव! आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव, आप उसे देखें।। भिक्षुओ! बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारको देखा। देखकर ज्योतिषी (=नैमित्तिक) ब्राह्मणोको बुलाकर यह कहा—'आप लोग ज्योतिषी ब्राह्मण (मेरे) कुमारके लक्षण देखे।' उन ज्योतिषी ब्राह्मणोने लक्षण विचारा। गणना देखकर बन्धुमान् राजासे यह कहा—'देव! प्रसन्न होवें। आपका पुत्र बळा भाग्यवान् है। महाराज आपको बळा लाभ है, कि आपके कुलमें ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव! यह कुमार महापुरुषोंके बत्तीस लक्षणोंसे युक्त है, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोही गतियाँ होती है, तीसरी नहीं—(१) यदि वह घरमें रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारो ओर विजय पानेवाला, शाति स्थापित करनेवाला (और) सात रत्नोंसे युक्त चक्रवर्ती

---

[१] देखो पृष्ठ ९७।

राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—चक्र-रत्न,-हस्ति रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न, गृहपति रत्न, और सातवाँ पुत्र रत्न। एक हजारसे भी अधिक सूर, वीर, शत्रुकी सेनाओंको मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते हैं। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) ससारके आवरणको हटा सम्यक् सम्बुद्ध अर्हत् होता है।

"देव! यह कुमार महापुरुषोंके क्नि, बत्तीस लक्षणों[१]से युक्त है, जिनसे युक्त होनसे० ? यदि वह घरमें रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाता है०। (१) देव! यह कुमार सुप्रतिष्ठित-पाद (जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी देव! इस कुमारके महापुरुष लक्षणोंमें एक है। (२) देव! इस कुमारके नीचे पैरके तलवेमें सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=घुट्ठी)-युक्त सहस्र आरोवाले चक्र है। (३) देव! यह कुमार आयत-पार्ष्णि (=चौळी घुट्ठीवाला) है। (४) ० दीर्घ-अगुल ०। (५) ० मृदु तरुण हस्त-पाद०। (६) ० जाल-हस्त-पाद (=अंगुलियोंके बीच यही छेद नही दिखाई देता) ०। (७) ० उस्सखपाद (=गुल्फ जिस पादमें ऊपर अवस्थित है) ०। (८) ० एणी-जघ (=पेंडुलीवाला भाग मृग जैसा जिसका हो) ०। (९) (सीधे) खळे बिना झुके देव! यह कुमार दोनों घुटनोको अपने हाथके तलवेसे छूता है (=आजानुबाहु) ०। (१०) कोषाच्छादित (=चमळेसे ढँकी) वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) ०। (११) सुवर्ण वर्ण० काचन समान त्वचावाले०। (१२) सूक्ष्मछवि (छवि=ऊपरी चमळा) है० जिससे कायापर मैल-धूल नहीं चिपटती०। (१३) एकैकलोम, एक एक रोम कूपमें एक एक रोम है०। (१४) ० ऊर्ध्वाग्र-लोम० अजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (बायेंसे दाहिनी ओर) मे कुडलित लोमोंके सिरे ऊपरको उठे हैं०। (१५) ब्रह्म-ऋजु-गात्र (=लम्बे अकुटिल शरीरवाला) ०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातों अगोंमें पूर्ण आकारवाला) ०। (१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति जिसका विशाल हो) ०। (१८) चितान्तराम (दोनों कधोका बिचला भाग जिसका चित=पूर्ण हो) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमडल है० जितनी शरीरकी ऊँचाई, उतना व्यायाम (=चौळाई), (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कधेवाला) ०। (२१) रसग्ग-सग्ग (=सुन्दर शिराओंवाले) ०। (२२) सिंह-हनु (=सिंह समान पूर्ण ठोळीवाला) ०। (२३) चत्वालीस-दन्त०। (२४) सम-दन्त०। (२५) अविवर-दन्त (=दाँतोंके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ (=खूब सफेद दाढवाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ०। (२८) ब्रह्म-स्वर करविक (पक्षीसे) स्वरवाला०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली आँखोंवाला) ०। (३०) गो-पक्ष्म (=गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) देव, इस कुमारकी भौंहोंके बीचमें श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगळी जैसे सामने उभळे शिरवाला) ० है। देव! यह भी इस कुमारके महापुरुष-लक्षणोंमें है।

'देव! यह कुमार महापुरुषोंके इन बत्तीस लक्षणोंसे युक्त है, जिन (लक्षणों)से युक्त होनेसे उस महापुरुषकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं। यदि यह घरमें०। यदि यह घरसे बेघर०।'

"भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने ज्योतिषी ब्राह्मणोंको नये कपड़ोंसे आच्छादितकर (उनकी) सभी इच्छाओंको पूरा किया। भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये धाइयाँ नियुक्त कीं। कोई दूध पिलाती थी, कोई नहलाती थी, कोई गोदमें लेती थी, कोई गोदमें लेकर टहलाती थी। भिक्षुओ! विपस्सी कुमारको जन्म कालसे दिन रात श्वेत छत्र धारण कराया जाता था,

---

[१] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त (मज्झिमनिकाय ९१) पृष्ठ ३७४-७५।

जिसमें कि उसे शीत, उष्ण, तृण, धूली या ओस कष्ट न दे। भिक्षुओ! विपस्सी कुमार उत्पन्न होकर सभीका प्रिय=मनाप हुआ। भिक्षुओ! जैसे उत्पल, पद्म, या पुण्डरीक (होता है) वैसे ही विपस्सी कुमार सभीका प्रिय=मनाप हुआ। वह (कुमार) एककी गोदसे दूसरेकी गोदमें घूमता रहता था। भिक्षुओ! कुमार विपस्सी उत्पन्न होकर मञ्जु (=कोमल) स्वरवाला, मधुर स्वरवाला (और) प्रियस्वरवाला था। भिक्षुओ! जैसे हिमालय पहाड़ पर करविक नामका पक्षी मञ्जुस्वरवाला, मनोज्ञ०, मधुर०, प्रिय० (होता है), भिक्षुओ! उसी तरह विपस्सी कुमार मञ्जुस्वरवाला० था। भिक्षुओ! तब उस उत्पन्न हुये विपस्सी कुमारको (पूर्व) कर्मके विपाकसे उत्पन्न दिव्य-चक्षु उत्पन्न हुआ, जिस (दिव्य-चक्षु)से वह रात दिन चारों ओर एक योजन तक देखता था। भिक्षुओ! उत्पन्न हो वह विपस्सी कुमार त्रायस्त्रिंश देवताओंकी भाँति एकटक देखता था। 'कुमार एकटक देखता (=विपस्सति) है।' इसीसे भिक्षुओ! विपस्सी विपस्सी कहके विपस्सी कुमार नाम पड़ा।

"भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजा कचहरी (=अधिकरण)में बैठ, विपस्सी कुमारको गोदमें ले न्याय करता था। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार पिताकी गोदमें बैठे विचार विचारकर न्यायसे फैसला करता था। 'कुमार विचार विचारकर०' अतः भिक्षुओ! और भी विपस्सी विपस्सी (विपस्सति) कहके विपस्सी कुमार नाम पड़ा। भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये तीन महल बनवा दिये। एक वर्षाके लिये, एक हेमन्त ऋतुके लिये, एक ग्रीष्म कालके लिये। पाँच भोगों (=काम गुणों)का प्रबन्ध करवा दिया। भिक्षुओ! वहाँ विपस्सी कुमार वर्षा कालमें वर्षाके महलमें चार महीना, निष्पुरुष (=केवल स्त्री) वादिकाओंसे सेवित हो महलसे नीचे कभी नहीं उतरता था।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

(४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण

भिक्षुओ! विपस्सी कुमारने बहुत वर्षों कई सौ वर्षों, कई सहस्र वर्षोंके बीतनेपर (एक दिन) सारथीसे कहा—'भद्र सारथि! अच्छे-अच्छे रथोंको जोतो। (मैं) उद्यानभूमि को वहाँकी सुन्दरता देखनेके लिये जाऊँगा। भिक्षुओ! तब सारथीने 'अच्छा देव!' कहकर विपस्सी कुमारको उत्तर दे अच्छे अच्छे रथोंको जोतकर विपस्सी कुमारको इसकी सूचना दी—देव! अच्छे अच्छे रथ जुत तैयार हैं, अब जो आप उचित समझें। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार एक अच्छे रथपर चढ़कर अच्छे अच्छे रथोंके साथ उद्यानभूमिके लिये निकला।

१—वृद्ध—"भिक्षुओ! उद्यानभूमि जाते हुये विपस्सी कुमारने एक गतयौवन पुरुषको बूढ़े बँडेरी जैसे झुके टेढ़े दण्डका सहारा ले काँपते जाते हुये देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'भद्र सारथि! यह पुरुष कौन है? इसके केश भी दूसरोंके जैसे नहीं हैं, शरीर भी दूसरोंके जैसा नहीं है।' 'देव! यह बूढ़ा कहा जाता है।' 'भद्र सारथि! बूढ़ा क्या होता है'? 'देव, यह बूढ़ा कहा जाता है, इसे अब बहुत दिन जीना नहीं है।' 'भद्र सारथि! तो क्या मैं भी बूढ़ा होऊँगा, क्या यह अनिवार्य है?' 'देव! आप, हम और सभी लोगोंके लिये बुढ़ापा है, अनिवार्य है।' 'तो भद्र सारथि! बस उद्यानभूमि जाना रहने दो, यहाँहीसे (फिर रथको) अन्तःपुर लौटाकर ले चलो।' भिक्षुओ! 'अच्छा देव'! कह-कर सारथी विपस्सी कुमारको उत्तर दे (रथको) वहींसे लौटाकर, अन्तःपुर ले गया।

"भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार अन्तःपुरमें जाकर दुःखी (और) दुर्मना हो चिन्तन करने लगा—इस जन्म लेनेको धिक्कार है, जब कि जन्मे हुयेको जरा सताती है'।"

"भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने सारथीको बुलाकर ऐसा कहा—'भद्र सारथि! क्या कुमार उद्यानभूमिमें टहल चुका, क्या कुमार उद्यानभूमिसे प्रसन्न हुआ?' 'देव! कुमार उद्यानभूमि-

मे टहलने नही गये, न देव ! कुमार उद्यानभूमिमे प्रसन्न हुये।' 'भद्र सारथि ! उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने क्या देखा ?' 'देव ! उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने एक वृद्ध० पुरुषको जाते देखा। देखकर मुझसे कहा '० यह पुरुष ० ?' देव ! अन्तःपुरमें जाकर चिन्तन कर रहे है—'इस जन्म लेनको धिक्कार०'।

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाके मनमें यह हुआ—'ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार राज्य न करे, ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार घरसे बेघर होकर प्रव्रजित हो जावे। ज्योतिषी ब्राह्मणोका कहा हुआ कहीं ठीक न हो जावे।' भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारकी प्रसन्नताके लिये और भी अधिक पाँचो भोगो (= काम गुणो)मे उसकी सेवा करवाई, जिसमें कि विपस्सी कुमार राज्य करे, जिसमे कि विपस्सी कुमार घरमे० न प्रव्रजित हो। जिसमें कि ब्राह्मणोंके कहे० मिथ्या होवें। भिक्षुओ ! तब विपस्सी कुमार पाँचो भोगो (=काम गुणो)मे सेवित किया जाने लगा।

२—रोगी—"तब विपस्सी कुमार बहुत वर्षोके०। उद्यानभूमि जाते विपस्सी कुमारने एक *अपने ही मल-मूत्रमें पड़े, दूसरोंसे उठाये जाते, दूसरोंसे बैठाये जाते एक रोगी, दुःखी, बहुत बीमार पुरुषको* देखा। देखकर सारथीसे कहा—'० यह पुरुष कौन है ? इसकी आँखें भी दूसरोंकी जैसी नहीं है, स्वर भी०।' 'देव ! यह रोगी है।—'० रोगी क्या होता है ?' 'देव ! यह बीमार है। इस रोगसे अब शायद ही उठे।'—० 'क्या मै भी व्याधिधर्मा हूँ, क्या व्याधि अनिवार्य है ?' 'देव ! आप, हम और सभी लोग व्याधि-धर्मा है, व्याधि अनिवार्य है।' 'तो० बस आज अब टहलना ० चिन्तन करने लगा—"इस जन्म लेनेको धिक्कार ०।'

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजा सारथीको०। देव, कुमारने उद्यानभूमि जाते रोगी० को देखा। देख कर०। *अन्तःपुरमें चिन्तन कर रहे हैं—'इस जन्म लेनेको धिक्कार०।'*

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाके मनमे ऐसा हुआ—'ऐसा न हो विपस्सी० राज्य न० सच हो जावे !'—*'भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजा० मिथ्या हो। तब भिक्षुओ ! विपस्सी कुमार पाँच* भोगो (=काम गुणो)मे सेवित किया जाने लगा।

बन्धुमान् राजा विपस्सी कुमारके लिये और भी अधिक० जिससे० कुमार राज्य करे, न घरसे बेघर०। भिक्षुओ! इस प्रकार० कुमार सेवित किया जाने लगा।

४—संन्यास—"भिक्षुओ! तब बहुत वर्षोंके०। विपस्सी कुमारने उद्यानभूमि जाते एक मुण्डित, काषाय-वस्त्रधारी, प्रव्रजित (=साधु) को देखा। देखकर सारथीसे पूछा,—'० यह पुरुष कौन है, इसका सिर भी मुँळा है, वस्त्र भी दूसरो जैसे नही?'—'देव, यह प्रव्रजित है।'—'० यह प्रव्रजित क्या चीज है'?—'देव, अच्छे धर्माचरणके लिये, शान्ति पानेके लिये, अच्छे कर्म करनेके लिये, पुण्य-सचय करनेके लिये, अहिंसा, भूतो पर अनुकम्पा करनेके लिये यह प्रव्रजित हुआ है'—'० तब जहाँ वह प्रव्रजित है वहाँ रथको ले चलो।'—'अच्छा देव!' कह सारथी०। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने उस प्रव्रजितसे यह कहा—'हे! आप कौन है, आपका शिर भी० आपके वस्त्र भी०?'—'देव, मै प्रव्रजित हूँ।'—'आप प्रव्रजित है, इसका क्या अर्थ?'—'देव, मै, अच्छे धर्माचरणके लिये ० प्रव्रजित हुआ हूँ।'

(५) संन्यास

"भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने सारथीसे कहा—'तो० रथको अन्त पुर लौटा ले जाओ। मै तो यही शिर दाढी मुंळवा, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'अच्छा देव!' कहकर सारथी० वहीसे रथको अन्त पुर लौटा ले गया। और विपस्सी कुमार वही शिर और दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये।

"भिक्षुओ! बन्धुमती राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योंने सुना कि० कुमार शिर दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये। सुनकर उन लोगोके मनमें ऐसा हुआ—'वह धर्म मामूली नही होगा, वह प्रव्रज्या भी मामूली नही होगी, जहाँ विपस्सी कुमार शिर दाढी मुँळा० प्रव्रजित हुये है। यदि विपस्सी कुमार शिर दाढी मुँळा० प्रव्रजित हो गये तो हम लोगोको अब क्या है?' भिक्षुओ! तब वे सभी चौरासी हजार लोग शिर और दाढी मुँळा० विपस्सीके पीछे प्रव्रजित हो गये। भिक्षुओ! उसी परिषद्के साथ विपस्सी बोधिसत्व ग्राम, निगम (=कस्वा), जनपद (=दीहात) और राजधानियोमें विचरण करने लगे।

(६) बुद्धत्व-प्राप्ति

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको एकान्तम ध्यान करते हुए इस प्रकार चित्तमे वितर्क (=ख्याल) उत्पन्न हुआ—'यह मेरे लिये अच्छा नही है कि मै लोगोकी भीळके साथ विहार करूँ।' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व उसके बादसे अपने गणको छोळ अकेले रहने लगे। वे चौरासी हजार प्रव्रजित दूसरी ओर चले गये और विपस्सी बोधिसत्व दूसरी ओर। भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको (एक दिन) एकान्तमें ध्यान करते समय इस प्रकार चित्त में विचार उत्पन्न हुआ—'यह ससार बहुत कष्टमे पळा है, जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, च्युत होता है और उत्पन्न होता है। और इस दु खसे जरा और मृत्युसे नि सरण (=दु खसे छूटनेके उपाय)को नही जानता है। इस दु खसे जरा और मृत्युसे नि सरण कैसे जाना जायेगा?

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—(१) 'क्या होनेसे जरा-मरण होता है, किस प्रत्यय (=कारण)से जरा-मरण होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको ठीकसे विचारनेके बाद प्रज्ञासे बोध हुआ—ज न्म के हो ने से ज रा म र ण हो ता है, जन्मके प्रत्ययसे जरा-मरण होता है।

(२) "भिक्षुओ! तब० बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'क्या होनेसे जन्म होता है, किस प्रत्ययसे जन्म होता है?" तब० बोध हुआ—भव (=आवागमन)के होनेसे जन्म होता है, भवके प्रत्ययसे जन्म होता है।

(३) '० बोध हुआ,—उपादानके होनेसे भव होता है, उपादानके प्रत्ययसे भव होता है।

(४) '० बोध हुआ—तृष्णाके होनेसे उपादान होता है, तृष्णाके०

(५) '० बोध हुआ—वेदना[1] (=अनुभव)के होनेसे तृष्णा होती है, वेदना०

(६) '० बोध हुआ—स्पर्श (=इन्द्रिय और विषयके मेल)के होनेसे तृष्णा होती है, स्पर्श०

(७) '० 'षडायतनके होनेसे स्पर्श होता है, षडायतन०।

(८) '० नामरूपके होनेसे षडायतन[2] होता है, नामरूपके०

(९) '० विज्ञानके होनेसे नामरूप होता है, विज्ञानके०।

(१०) '० नामरूपके होनेसे विज्ञान होता है, नामरूप०।

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'विज्ञानसे फिर लौटना शुरू होता है, नामरूपसे फिर आगे (क्रम) नही चलता। इसीसे सभी जन्म लेते है, वृद्ध होते है, मरते है, च्युत होते, है। जो यह नामरुपके प्रत्ययसे विज्ञान, (और) विज्ञानके प्रत्ययसे नामरूप, नामरूपके प्रत्ययसे षडा-*यतन, षडायतनके प्रत्ययसे स्पर्श, स्पर्शके प्रत्ययसे वेदना, वेदनाके प्रत्ययसे तृष्णा, तृष्णाके प्रत्ययसे उपा-*दान, उपादानके प्रत्ययसे भव, भवके प्रत्ययसे जाति, जातिके प्रत्ययसे जरा, मरण, शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख=दौर्मनस्य, और परेशानी होती है। इस प्रकार इस केवल दुःख पुजकी उत्पत्ति(=समुदय) होती है।

"भिक्षुओ! ० बोधिसत्वको समुदय समुदय करके, पहले कभी नही सुने (जाने) गये धर्म (=विषय)में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। भिक्षुओ! तब विपस्सी०के मनमें ऐसा हुआ—

(१) 'किसके नही होनेसे जरामरण नही होता, किसके विनाश (=निरोध)से जरामरणका निरोध होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको बोध हुआ—जन्मके नहीं होनेसे जरामरण नहीं होता, जन्मके निरोधसे जरामरणका निरोध हो जाता है।

(२) '० बोध हुआ—भवके नहीं होनेसे जन्म नही होता, भवके निरोधसे जन्मका निरोध हो जाता है

(३) '० बोध हुआ—उपादान (=भोगग्रहण)के नहीं होनेसे भव भी नहीं होता, उपादानके निरोध से०

(४) '० बोध हुआ—तृष्णाके नहीं होनेसे उपादान भी नहीं होता, तृष्णाके निरोध०।

(५) '० बोध हुआ—वेदनाके नहीं होनेसे तृष्णा भी नहीं होती, वेदनाके निरोधसे०।

(६) '० बोध हुआ—स्पर्शके नही होनेसे वेदना भी नही होती, स्पर्शके निरोधसे०।

(७) '० बोध हुआ—षडायतनके नही होनेसे स्पर्श भी नही होता, षडायतनके निरोधसे०।

(८) '० बोध हुआ—नामरूपके नही होनेसे षडायतन भी नही होता, नामरूपके निरोधसे०।

(९) '० बोध हुआ—विज्ञानके नही होनेसे नामरूप भी नही होता, विज्ञानके निरोधसे०।

(१०) '० बोध हुआ—नामरूपके नही होनेसे विज्ञान भी नही होता, नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध हो जाता है।

---

[1] इन्द्रिय और विषयके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख सुख आदि विकार उत्पन्न होते है, वही वेदना है।

[2] चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन—यही षड् आयतन-छ आयतन है।

'भिक्षुओ ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'मुक्तिका मार्ग मैंने समझ लिया नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध, विज्ञानके निरोधसे नामरूपका निरोध, नामरूपके निरोधसे षडायतनका निरोध, षडायतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध, तृष्णाके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जन्मका निरोध, जन्मके निरोधसे जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य और परेशानी, सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दुःखोंका निरोध (=नाश) हो जाता है।

'भिक्षुओ ! विपस्सी बोधिसत्वको 'निरोध' 'निरोध' करके पहले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान०, प्रज्ञा०, विद्या०, आलोक०। भिक्षुओ ! तब विपस्सी बोधिसत्व उसके बाद पाँच उपादान-स्कन्धो[१]में उदय और व्यय (=उत्पत्ति और विनाश)के देखने वाले हुये। यह रूप है, यह रूपका समुदय (=उत्पत्ति) यह रूपका अस्त हो जाना हैं। यह वेदना, यह वेदनाका समुदय, यह वेदनाका अस्त हो जाना है। यह संज्ञा०। यह संस्कार०। यह विज्ञान०। पाँच उपादान स्कन्धोंके उत्पत्ति विनाशको देख-कर विहार करनेसे उनका चित्त शीघ्र ही चित्तमलों (=आस्रवों)से बिल्कुल मुक्त हो गया।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

(७) धर्मचक्रप्रवर्तन

भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके मनमें यह हुआ—क्या मैं अवश्य ही धर्मका उपदेश करूँ ? 'भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान् ० के मनमें यह हुआ—मैंने इस गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध, शान्त, प्रणीत (=उत्तम), तर्कसे अप्राप्य, निपुण और पण्डितोंसे ही समझने योग्य धर्मको जाना है। (और) यह प्रजा (=सांसारिक लोग) आलय (=भोगो)में रमनेवाली आलयमें रत, और आलयसे उत्पन्न है। आलयमें रमने आलयमें रत रहनेवाले और आलयमें ही प्रसन्न रहनेवालेका यह समझना कठिन है कि अमुक प्रत्ययसे अमुककी उत्पत्ति होती है। यह भी समझना कठिन है कि सभी संस्कारोंके शान्त हो जानेसे, सभी उपाधियोंके अन्त हो जानेसे, (और) तृष्णाके नाशसे, राग-रहित होना ही निर्वाण है। मैं भी धर्मका उपदेश करूँ, और दूसरे न समझें तो यह मेरा व्यर्थका प्रयास और श्रम होगा। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० को इन अश्रुतपूर्व आश्चर्यजनक गाथाओंका भान हुआ—

बहुत कष्टसे मैंने इस धर्मको पाया है, इसका उपदेश करना ठीक नहीं।
राग और द्वेषमें लिप्त लोगोंको यह धर्म जल्दी समझमें नहीं आवेगा ॥ १ ॥
उल्टी धारवाले, निपुण, गम्भीर, दुर्ज्ञेय और सूक्ष्म बातको रागमें रत,
और अविद्या के अंधकारमें पड़े (लोग) नहीं समझ सकते ॥ २ ॥

'भिक्षुओ ! इस प्रकार चिन्तन करते विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मके उपदेश करनेमें उत्साह-रहित हो गया। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० के चित्तको (अपने) चित्तसे जान महाब्रह्माके मनमें यह हुआ—'अरे ! लोक नष्ट हो जायगा, लोक विनष्ट हो जायगा, यदि विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मोपदेशके लिये उत्साह रहित हो गया।' भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा, जैसे कोई बलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी बाँहको पसारे और पसारी हुई बाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो विपस्सी भगवान्० के सामने प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा चादरको एक कंधेपर करके दाहिने घुटनेको पृथ्वीपर टेक, जिधर विपस्सी भगवान्० थे उधर हाथ जोळ प्रणामकर, विपस्सी भगवान्० से यह बोला—

---

[१] विषयके तौरपर उपयुक्त होनेवाले भौतिक अभौतिक पदार्थ।

'भन्ते! भगवान् धर्मका उपदेश करे, सुगत धर्मका उपदेश करे, (ससारमें) चित्तमल-रहित लोग भी है, धर्म नही सुननेसे उनकी बळी हानि होगी; धर्मके जाननेवाले (प्राप्त) होगे।'

"भिक्षुओ! तब विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे कहा—'ब्रह्मा! मैंने यह समझा था—यह धर्म गम्भीर०[1]।

'ब्रह्मा! इस तरह चिन्तन करते हुये मेरा चित्त० उत्साह-रहित हो गया।'

"दूसरी बार भी महाब्रह्मा०। तीसरी बार भी महाब्रह्माने विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'भन्ते! भगवान् धर्मका उपदेश करें० धर्मके जाननेवाले होगे।' भिक्षुओ! तब विपस्सी भगवान्० ने ब्रह्माके भाव (=अध्याश) को समझ, प्राणियोंपर करुणा करके बुद्ध-चक्षुसे ससारको देखा। भिक्षुओ! विपस्सी भगवान् ० ने बुद्ध-चक्षुसे ससारका विलोकन करते हुये, प्राणियोमें चित्तमल(=क्लेश)-रहित अधिक क्लेशवालो, तीक्ष्ण इन्द्रिय (प्रज्ञा) वाले, मृदु इन्द्रिय वाले, अच्छे आकार वाले, किसी बातको जल्दी समझने वाले और परलोकका भय खानेवाले लोगोको देखा। जैसे उत्पलके वनमें, या पद्मके वनमें, या पुण्डरीकके वनमें, कितने ही जलसे उत्पन्न, जलमें बढे, जलसे निकले कोई कोई उत्पल पद्म या पुण्डरीक जलके भीतर डूबे रहते है।० कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक जलके बराबर रहते हैं; तथा ० कोई० जलके ऊपर निकल कर जलसे अलिप्त खडे रहते है, वैसे ही भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्ने ससारको बुद्ध-चक्षुसे अवलोकन करते हुये अल्प क्लेश-रहित, चित्तमल-रहित प्राणियोको० देखा। भिक्षुओ! तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्०के चित्तकी बातको जानकर विपस्सी भगवान्०से गाथाओंमें बोला—

"जैसे (कोई) पथरीले पहाळकी चोटीपर चढ, चारो ओर मनुष्योंको देखे,
उसी तरह हे शोकरहित! धर्म रूपी प्रासादपर चढ़कर चारो ओर शोकसे पीडित,
जन्म और जरासे पीडित लोगोंको देखो॥ ३॥
'उठो वीर! हे सग्रामजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋण! जगमें विचरो,
धर्म प्रचार करो, भगवान्! समझने वाले मिलेंगे॥ ४॥'

"भिक्षुओ! तब विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे गाथामें कहा—

'ब्रह्मा! अमृतका द्वार उनके लिये खुल गया, जो श्रद्धापूर्वक (उपदेश) सुनेंगे। मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा,
यही समझकर मैं लोगोंको अपने सुन्दर और प्रणीत धर्मका उपदेश नहीं करना चाहता था॥५॥'

"भिक्षुओ! तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० से धर्मोपदेश करनेका वचन ले विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर और प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

हुये हैं, खेमा मृगदावमें विहार कर रहे हैं। वे आप लोगोंसे मिलना चाहते हैं।' भिक्षुओ ! उद्यानपालने भी 'अच्छा भन्ते !' कह विपस्सी भगवान्० को उत्तर दे बन्धुमती राजधानीमें जाकर खण्ड०और तिस्स० से यह कहा—'भन्ते ! विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमें आये हुये हैं, खेमा मृगदावमें विहार कर रहे हैं। वह आप लोगोंसे मिलना चाहते हैं।'

"भिक्षुओ ! तब खण्ड० और तिस्स० अच्छे अच्छे रथोंको जोतवा अच्छे अच्छे रथोंपर चढ़, अच्छे अच्छे रथोंके साथ बन्धुमती राजधानीसे निकलकर जहाँ खेमा मृगदाव था वहाँ गये। जितना रथसे जाने लायक रास्ता था उतना रथसे जाकर (फिर) रथसे उतर पैदल ही जहाँ विपस्सी भगवान्० थे वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उनको आनुपूर्वी (=क्रमानुकूल) कथा कही—जैसे कि, दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगोंके दोष, हानि और क्लेश तथा भोग-त्यागके गुण। जब भगवान्ने जान लिया कि वे अब स्वच्छ चित्त, मृदुचित्त नीवरणोंसे-रहित-चित्त उदग्रचित्त और प्रसन्न-चित्त हैं, तब उन्होंने बुद्धोंके स्वयं जाने हुये ज्ञान दुःख, समुदय, निरोध और मार्गका उपदेश किया। जैसे कालिमा रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरहसे रंग पकड़ता है, उसी तरह खण्ड० और तिस्स० को उसी समय उसी आसनपर रागरहित निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—'जो कुछ समुदयधर्मा (=उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध धर्मा (=नाश होनेवाला) है।' उन्होंने धर्मको देखकर, धर्मको प्राप्तकर, धर्मको जानकर, धर्ममें अच्छी तरह स्थित हो विचिकित्सा-दुविधा-रहित हो, शंकाओंसे रहित हो, और शास्ताके धर्म (=शासन)में परम विशारदताको प्राप्त हो विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत, भन्ते ! जैसे उलटेको सीधा०[1] उसी तरह भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते ! हम लोग आपकी शरण जाते हैं और धर्मकी भी। भन्ते ! भगवान्के पास हम लोगोंको प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।'

'भिक्षुओ ! खण्ड० और तिस्स० ने विपस्सी० भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। विपस्सी भगवान्० ने उन दोनोंको धार्मिक कथाओंसे सच्चे धर्मको दिखाया प्रमुदित किया, उत्साहित किया और सन्तुष्ट किया। संस्कारोंके दोष अपकार और क्लेश, और निर्वाणके गुण प्रकाशित किये। विपस्सी भगवान्० के सच्चे धर्मको दिखानेसे० शीघ्र ही उनके चित्त आस्रवोंसे बिल्कुल रहित हो गये।

"भिक्षुओ ! बन्धुमती राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योंने सुना— विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमें आकर खेमा मृगदावमें विहारकर रहे हैं। खण्ड० और तिस्स० विपस्सी भगवान्० के पास सिर दाढ़ी मुड़ा० प्रव्रजित हो गये हैं।' सुनकर उन लोगोंके मनमें यह हुआ— वह धर्म मामूली नहीं होगा, वह प्रव्रज्या भी मामूली नहीं होगी, जहाँ खण्ड० और तिस्स० सिर और दाढ़ी मुंड़ा० प्रव्रजित हो गये हैं। जब खण्ड० और तिस्स० सिर और दाढ़ी मुड़ा० प्रव्रजित हो गये हैं, तो हम लोगोंको क्या है ?'

'भिक्षुओ ! तब वे चौरासी हजार लोग बन्धुमती राजधानीसे निकल, जहाँ खेमा मृगदाव था (और) जहाँ विपस्सी भगवान्० थे, वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उन लोगोंको आनुपूर्वी कथा कही—जैसे दानकथा०[2]। जब भगवान्ने जान लिया कि ये अब स्वच्छ-चित्त० हो गये हैं, तब उन्होंने बुद्धोंके स्वयं जाने हुये ज्ञान—दुःख० मार्गका प्रकाश किया। जैसे शुद्ध वस्त्र० धर्म चक्षु उत्पन्न हो गया। धर्मको देख० विशारदताको प्राप्तकर विपस्सी भगवान्० से यह कहा—आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत, भन्ते ! ० हम लोग भगवान्की शरणमें जाते हैं, धर्म और संघकी भी, भन्ते ! प्रव्रज्या०।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२। [2] देखो पिछला पृष्ठ।

"भिक्षुओ ! उन चौरासी हजार लोगोने विपस्सी भगवान्० के पास प्रव्रज्या ० पाई। विपस्सी भगवान्० ने उनको धार्मिक कथासे० चित्तके आस्रव बिल्कुल नष्ट (=क्षीण) हो गये।

"भिक्षुओ ! तब पहलेवाले चौरासी हजार प्रव्रजितोने (जो विपस्सी कुमारके साथ प्रव्रजित हुये थे) सुना—'विपस्सी भगवान्०' भिक्षुओ ! तब वे ० अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उनको०। ०० चित्तके आस्रव बिल्कुल नष्ट हो गये।

(८) शिष्यों द्वारा धर्मप्रचार

'भिक्षुओ ! उस समय बन्धुमती राजधानीमे अठसठ लाख भिक्षुओका महासघ निवास करता था। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्को एकान्तमें ध्यानावस्थित होते समय चित्तमे यह विचार उत्पन्न हुआ—'इस समय बन्धुमती राजधानीमें अठसठ लाख० निवास करता है। अत मैं भिक्षुओंको कहूँ—भिक्षुओ ! चारिकाके लिये जाओ, लोगोके हितके लिये, लोगोंके सुखके लिये, ससारके लोगोंपर अनुकम्पा करनेके लिये, देव और मनुष्योंके लाभ हित (और) सुखके लिये विचरो। एक मार्गमें दो मत जाओ। भिक्षुओ ! आदि कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण, अर्थयुक्त, स्पष्ट अक्षरोमे धर्मका उपदेश करो, बिल्कुल परिपूर्ण, (और) परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करो। ऐसे निर्मल मनुष्य हैं, जिनकी धर्मके नही सुननेसे हानि होगी। वह धर्मके समझनेवाले होगे। और, छै, छै वर्षोंके बाद बन्धुमती राजधानीम प्रातिमोक्षके वाचनके लिये आना।' तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० के चित्त० को जान० प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा चादरको एक कधे पर० यह बोला।—'ऐसा ही है भगवान् ! ऐसा ही है सुगत ! बन्धुमती राजधानीमें (अभी) अठसठ लाख० निवास करता है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओको कहे—भिक्षुओ ! चारिका करनेके लिये जावो० बन्धुमती राजधानीमें प्रातिमोक्ष वाचनके लिये आना।' भिक्षुओ ! महाब्रह्माने ऐसा कहा। यह कहकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वही अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने सायकाल ध्यानसे उठकर भिक्षुओको सबोधित किया—'भिक्षुओ ! यहाँ एकान्तमे० विचार उत्पन्न हुआ—अभी बन्धुमती राजधानीमे अठसठ लाख०। तो मैं भिक्षुओको कहूँ,—'भिक्षुओ ! चारिकाके लिये ०। ०प्रातिमोक्ष-वाचनके लिये आना। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा०। यह कह मेरा अभिवादनकर (और) प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ ! मैं कहता हूँ —'चारिकाके लिये ०। प्रातिमोक्ष० आना'।

"भिक्षुओ ! तब उन भिक्षुओने एक ही दिनमें देहात (=जनपद) मे चारिका करनेके लिये चल दिया। भिक्षुओ ! उस समय जम्बूद्वीपमें चौरासी हजार आवास (=मठ) थ। एक वर्ष के बीतन पर देवताओने (आकाश-) वाणी सुनाई—'हे मार्षो[1] ! एक वर्ष निकल गया, अब पाँच वर्ष और बाकी है। पाँच वर्षोंके बीतनेपर प्रातिमोक्षके वाचनके लिय बन्धुमती राजधानी जाना'। दो वर्षोंके बीतने पर०। ०तीन वर्षोंके ०।० चार वर्षोंके ० ० पाँच वर्षोंके ०। ० छै वर्षोंके बीतनेपर देवताओने० सुनाई—'मार्षो ! छै वर्ष बीत गये। समय हो गया, प्रातिमोक्षके वाचनके लिये० जायें'।—भिक्षुओ ! तब कितने भिक्षु अपनी ऋद्धिके बलसे, कितने देवताओंकी ऋद्धिके बलसे एक ही दिनमें बन्धुमती राजधानीमें प्रातिमोक्षके वाचनके लिये चले आये। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने भिक्षु सघके लिये इस प्रकार प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) किया।

तितिक्षा और क्षमा परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाणको सर्वोत्तम बतलाते है।

---

[1] समान व्यक्तिके सबोधनके लिये देवताओका यह खास शब्द है।

प्रव्रजित श्रमण न तो दूसरेको हानि पहुँचाता है और न दूसरेको कष्ट देता है ॥ ६ ॥
'सभी पापोंका न करना, पुण्य कर्मोंका करना,
(और) अपने चित्तकी शुद्धि, यही बुद्धोंका उपदेश है ॥ ७ ॥
'कठोर, दुर्वचनका न कहना, दूसरोंकी हिंसा न करना, प्रातिमोक्षम संयम,
मात्रासे भोजन अरण्यमें निवास, समाधि-अभ्यास, यही बुद्धोंका शासन है ॥ ८ ॥

(९) देवता साक्षी

"भिक्षुओ ! एक समय मैं उक्कट्ठाके पास सुभगवनमें शालराज वृक्षके नीचे विहार कर रहा था। भिक्षुओ ! उस समय एकान्तमें ध्यान करते मेरे चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'शुद्धावास देवोंको छोळकर कोई ऐसी योनि (=सत्त्वावास) नहीं है, जिसमें मैंने इस दीर्घ कालमें जन्म नहीं लिया। अतः मैं वहाँ जाऊँ जहाँ शुद्धावास देवता रहते हैं। भिक्षुओ ! तब मैं जैसे बलवान् पुरुष० अबृह (अविह)-देवोंमें[1] प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! उस देवनिकायमें अनेक सहस्र देवता मेरे पास आये। आकर मुझे अभिवादन कर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो उन देवताओंने मुझसे कहा—मार्ष ! आजसे इकानवे कल्प पहले[2] विपस्सी भगवान्० संसारमें उत्पन्न हुये थे। विपस्सी० क्षत्रिय जाति०। विपस्सी० कौण्डञ्ञगोत्रके०।० अस्सी हजार वर्ष आयु परिमाण०।० पाटलि वृक्षके नीचे बोधि०। ० उनके खण्ड और तिस्स नामक श्रावक ०।० तीन शिष्य-सम्मेलन०, अशोक नामक भिक्षु उपस्थाक। ० बन्धुमान् नामक राजा पिता, बन्धुमती देवी माता ०।० बन्धुमती नाम नगरी राजधानी। विपस्सी भगवान्० के इस प्रकार निष्क्रमण, इस प्रकार प्रव्रज्या इस प्रकार प्रधान (=बुद्धत्व प्राप्तिके लिये तप), इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति, और इस प्रकार धर्म-चक्र-प्रवर्तन हुये थे। मार्ष ! सो हम लोग विपस्सी भगवान्के शासनमें ब्रह्मचर्यका पालन कर, सांसारिक भोग-इच्छाओं (=काम छन्दों)से विरक्त हो, यहाँ उत्पन्न हुये हैं।०

'भिक्षुओ ! उसी देवलोकमें जो अनेक सहस्र और अनेक लक्ष देवता थे वे मेरे पास आये।० खळे हो गये।० कहा—मार्ष इसी भद्रकल्पमें आप स्वयं भगवान्० उत्पन्न हुये हैं। मार्ष ! भगवान् क्षत्रिय जाति०।० गौतम गोत्र०। ० कम और छोटी आयु-परिमाण जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, कुछ कम या अधिक।० पीपल वृक्ष ०।० सारिपुत्त और मोग्गलान प्रधान शिष्य०० बारह सौ पचास भिक्षुओंका एक शिष्य-सम्मेलन ०।० आनन्द भिक्षु उपस्थाक ०।० शुद्धोदन नामक राजा पिता मायादेवी माता ०।० कपिलवस्तु राजधानी ०।० इस प्रकार निष्क्रमण००। हे मार्ष ! सो हम लोग आपके शासनमें ब्रह्मचर्य पालनकर ० यहाँ उत्पन्न हुये हैं।

भिक्षुओ ! तब मैं अबृह देवोंके साथ जहाँ अतप्य देव थे, वहाँ गया।०

'भिक्षुओ ! तब मैं अबृह और अतप्य देवोंके साथ जहाँ सुदर्श देव थे वहाँ गया ०।० जहाँ अकनिष्ट देव थे वहाँ गया।० खळे हो गये। भिक्षुओ ! एक ओर खळे हो उन देवताओंने मुझसे कहा, '०विपस्सी भगवान्०। भिक्षुओ ! उसी देवलोकमें जो अनेक सहस्र० आये० ने कहा—'मार्ष ! आजसे इकतीस कल्प पहले सिखी भगवान्०।० उसी कल्पमें वेस्सभू भगवान्०, ० ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप०,० यहाँ उत्पन्न हुये हैं। ०० ने कहा, हे मार्ष ! इसी भद्रकल्पमें आप स्वयं भगवान्०।

"भिक्षुओ ! चूँकि तथागतने धर्मधातुको अवगाहन कर लिया है जिस धर्मधातुके अवगाहन (=सुप्रतिवेध)के कारण तथागत निर्वाण प्राप्त अतीत बुद्धोंको, ० जन्मसे भी, नामसे भी०।'

भगवान्ने यह कहा। प्रसन्नचित्त हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] शुद्धावासदेवताओंमेंसे एक समुदाय।   [2] देखो पृष्ठ ९५।

१५—महानिदान-सुत्त (२।२)

१—प्रतीत्य-समुत्पाद। २—नाना आत्मवाद। ३—अनात्मवाद।
४—प्रज्ञाविमुक्त। ५—उभयतो भाग विमुक्त।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरुदेशमें, कुरुओंके निगम (=कस्बे) कम्मास दम्म (=कल्माषदम्य)में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

१—प्रतीत्य समुत्पाद

"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कितना गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता है. . यह प्रतीत्य-समुत्पाद परन्तु मुझे साफ साफ (=उत्तान) जान पळता है।"

"ऐसा मत कहो आनन्द! ऐसा मत कहो आनन्द! आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता (भी) है। आनन्द इस धर्मके न जाननेसे=न प्रतिवेध करनेसे ही, यह प्रजा (=जनता) उलझे सूतसी, गाँठें पळी रस्सीसी, मूँज-वल्वज (=भाभळ)सी, अप्-आय=दुर्गति=पतन (=वि-निपात)को प्राप्त हो, संसारमें नहीं पार हो सकती।

"आनन्द! 'क्या जरा-मरण स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जरा-मरण होता है' यह पूछे तो, 'जन्मके कारण जरा-मरण होता है' कहना चाहिये। 'क्या जन्म (=जाति) स-कारण है' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जन्म होता है' पूछनेपर, 'भव-(=आवागमन)के कारण जन्म' कहना चाहिये। 'क्या भव स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे भव होता है' पूछे, तो 'उपादान (=आसक्ति)के कारण भव०'। 'क्या उपादान स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' ०। 'किस कारणसे उपादान होता है' पूछे तो, 'तृष्णाके कारण उपादान' ०।० वेदनाके कारण तृष्णा ०।० स्पर्श (=इन्द्रिय-विषय-संयोग)के कारण वेदना ०।० नामरूपके कारण स्पर्श ०।० विज्ञानके कारण नाम-रूप ०।० नाम-रूपके कारण विज्ञान ०।

"इस प्रकार आनन्द! नाम-रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है। नाम-रूपके कारण स्पर्श है। स्पर्शके कारण वेदना है। वेदनाके कारण तृष्णा है। तृष्णाके कारण उपादान है। उपादानके कारण भव है। भवके कारण जन्म (=जाति) है। जन्मके कारण जरा-मरण है। जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख, दौर्मनस्य (=मन सताप) उपायास (=परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस केवल (=सम्पूर्ण)-दुःख-पुंज (=सारी दोष)का समुदय (=उत्पत्ति) होता है।

"आनन्द! 'जन्मके कारण जरा-मरण' यह जो कहा, इसे इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द! जन्म न होता तो सर्वथा बिल्कुल ही सब किसीको कुछ भी जाति न होती, जैसे—देवा-

का देवत्व, गन्धर्वोका गन्धर्वत्व, यक्षोका यक्षत्व, भूतोंका भूतत्व, मनुष्योंका मनुष्यत्व, चतुष्पदों (=चौपायों)का चतुष्पदत्व, पक्षियोंका पक्षित्व, सरीसृपों (=रेंगनेवालों)का सरीसृपत्व, उन उन प्राणियों (=सत्वों)का वह होना। यदि जन्म न होता, सर्वथा जन्मका अभाव होता' जन्मका निरोध (=विनाश) होता; तो क्या आनन्द! जरा-मरण दिखलाई पळेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जरा-मरणका यही हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है, जो कि यह जन्म।

" 'भवके कारण जाति होती है', यह जो कहा इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (=आवागमनका स्थान) न होता, जैसे कि काम-भव,[1] रूप-भव, अ-रूप-भव; तो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनन्द! जन्म दिखाई पळता?"

"नहीं भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जन्मका यही हेतु है०, जो कि यह भव।"

" 'उपादान(=आसक्ति)के कारण भव होता है' यह जो कहा, इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता, जैसे कि—काम-उपादान (=भोगमें आसक्ति), दृष्टि-उपादान (=धारणा०), शील-व्रत-उपादान या आत्मवाद-(=आत्माके नित्यत्वका) उपादान; उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! भव होता?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान।

" 'तृष्णाके कारण उपादान होताहै' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० तृष्णा न होती, जैसे कि—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा रस-तृष्णा, स्प्रष्टव्य(=स्पर्श)-तृष्णा, धर्म (=मनका विषय)-तृष्णा, तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! उपादान जान पळता?'

"नहीं, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा।

" 'वेदनाके कारण तृष्णा है' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० वेदना न होती, जैसे कि—चक्षु-सस्पर्श (=चक्षु और रूपके योग)से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द! तृष्णा जान पळती?'

"नहीं, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि यह वेदना।

"इस प्रकार आनन्द! वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण पर्येषणा (=खोजना), पर्येषणाके कारण लाभ, लाभके कारण विनिश्चय (=दृढ़-विचार), विनिश्चयके कारण छन्द-राग (=प्रयत्नकी इच्छा), छन्द-रागके कारण अध्यवसान (=प्रयत्न), अध्यवसानके कारण परिग्रह (=जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (=कंजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (=हिफाजत), आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू मैं मैं' (=तुव तुव), चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप=बुराइयाँ (=अ-कुशल-धर्म) होती हैं।

"आनन्द! 'आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण०० बुराइयाँ होती हैं' यह जो कहा, उसे इस

---

[1] कामभव=पार्थिवलोक, रूपभव=अ-पार्थिव साकार लोक, अरूपभव=निराकार लोक।

प्रकारसे भी जानना चाहिये०। यदि सर्वथा० आरक्षा न होती, तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर०, क्या आनन्द! दड-ग्रहण० बुराइयाँ होतीं?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! यह जो आरक्षा है, यही इस दड-ग्रहण० पापो=बुराइयोकी उत्पत्तिका हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है।

"'मात्सर्य (=कजूसी)के कारण आरक्षा है' यह जो कहा, सो इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीको, कुछ भी मात्सर्य न होता, तो सब तरह मात्सर्यके अभाव-में=मात्सर्य=कजूसीके निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमें आती?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! आरक्षाका यही हेतु०, जो कि यह कजूसी।

"'परिग्रह (=जमा करना)के कारण कजूसी है०'। यदि आनन्द! सर्वथा किसीका कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कजूसी दिखाई पळती? ०।०।

"'अध्यवसानके कारण परिग्रह है'०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीका कुछ भी अध्यवसान न होता०, क्या परिग्रह (=बटोरना) देखनेमें आता? ०।०।

"'छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है'०। क्या अध्यवसान देखनेमे आता? ०।०।

"विनिश्चयके कारण छन्द राग होता है ०।

"'लाभके कारण विनिश्चय है'०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीको कही कुछ भी लाभ न होता०, क्या विनिश्चय दिखाई देता? ०।०।

"पर्येषणाके कारण लाभ होता है'०। ०क्या लाभ दिखाई देता? ०।०।

"'तृष्णाके कारण पर्येषणा होती'०। ०क्या पर्येषणा दिखाई देती? ०।०।

"'स्पर्शके कारण तृष्णा होती है'०। ०क्या तृष्णा दिखाई देती? ०।०।

"'नाम रूपके कारण स्पर्श होता है'०। यह जो कहा, इसको आनन्द! इस प्रकारसे जानना चाहिये—जैसे नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है, जिन आकारो=जिन लिंगो=जिन निमित्तो=जिन उद्देशोसे नाम-काय (=नाम-समुदाय)का ज्ञान होता है, उन आकारो, उन लिंगो, उन निमित्तो, उन उद्देशोंके न होनेपर, क्या रूप-काय (=रूप-समुदाय)का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता?"

"नही, भन्ते।"

"आनन्द! जिन आकारो, जिन लिंगो, ०से रूप-कायका ज्ञान होता है, उन आकारो०के न होनेपर, क्या नाम कायमे प्रतिघ-सस्पर्श (=रोकका योग) दिखाई पळता?"

'नही, भन्ते!"

"आनन्द! जिन आकारो०से नाम-काय और रूप-कायका ज्ञान होता है, उन आकारो०के न होनेपर, क्या अधिवचन-सस्पर्श या प्रतिघ-सस्पर्श दिखाई पळता?"

'नही, भन्ते!'

"आनन्द! जिन आकारो, जिन लिगो, जिन निमित्तो, जिन उद्देशोसे नाम-रूपका बोलना (=प्रज्ञापन) होता है, उन आकारो, उन लिगो, उन निमित्तो, उन उद्देशोके अभावमे क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पळता?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! स्पर्शका यही हेतु=यही निदान=यही समुदय–यही प्रत्यय है, जो कि नाम-रूप।

"'विज्ञानके कारण नाम रूप होता है०'। यदि आनन्द! विज्ञान (=चित्त धारा, जीव) माताकी कोखमें नही आता, तो क्या नाम रूप सचित होता?"

"नहीं, भन्ते !"

"आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञान ही माताकी कोखमें प्रवेश कर निकल जावे, तो क्या नाम-रूप (बहना) इसके लिये बनेगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"कुमार या कुमारीके अति-शिशु रहते ही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये; तो क्या नाम-रूप वृद्धि=विरूढि=विपुलताको प्राप्त होगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! नाम-रूपका यही हेतु० है, जो कि विज्ञान।"

" 'नाम-रूपके कारण विज्ञान होता है' ०।०। आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमें प्रतिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमें (=आगे चलकर) जन्म, जरा-मरण, दुःख-उत्पत्ति दिखाई पड़ते ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु० है, जो कि नाम रूप। आनन्द ! यह जो विज्ञान-सहित नाम-रूप है, इतनेहीसे जन्मता, बूढ़ा होता, मरता=च्युत होता, उत्पन्न होता है, इतनेहीसे अधि-वचन(=नाम=संज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरुक्ति (=भाषा)-व्यवहार, इतनेहीसे प्रज्ञा(=ज्ञान)-विषय है, इतनेहीसे 'इस प्रकार' का जतलानेके लिये मार्ग वर्तमान है।

२—नाना आत्मवाद

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन (=जतलाना) करनेवाला (पुरुष) कितनेसे (कैसे) प्रज्ञापन (=जताना) करता है ? (१) रूपवान् सूक्ष्म आत्माको प्रज्ञापन करते हुए—'मेरा आत्मा रूप-वान् (=भौतिक) और सूक्ष्म (=क्षुद्र=अणु) है' प्रज्ञापन करता है। (२) रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये 'मेरा आत्मा रूपवान् और अनन्त है' प्रज्ञापन करता है। (३) रूप-रहित अणु (=परिमित) आत्मा कहते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप(=अभौतिक) अणु है' कहता है। (४) रूप-रहित अनन्तको आत्मा मानते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अनन्त है' कहता है।

(१) "वहाँ जो आनन्द ! आत्माका प्रज्ञापन करते हुये आत्माको रूप-वान् अणु (=परिमित) कहता है, सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता हुआ, रूप-वान् अणु कहता है, या भावी आत्माको० रूप-वान् अणु कहता है, या उसको होता है कि, 'वैसा नहीं (=अ-तथ)को उस प्रकारका करूँ।' ऐसा होनेपर आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है—यही कहना योग्य है।

(२) "वह जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त आत्मा' कहता है, सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त' कहता है, या भावी आत्माको० रूप-वान् अनन्त कहता है, या उसके (मनमें) होता है 'वैसा नहींको वैसा करूँ'। ऐसा होनेपर वह आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है— यही कहना योग्य है।

(३) "वह जो आनन्द !० 'आत्मा रूप-रहित अणु है' कहता है । वह वर्तमानके आत्माको० कहता है, या भावीको०, या उसको होता है, कि—'वैसा नहींको वैसा करूँ' ।०।

(४) "वह जो आनन्द !० 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' कहता है।०।०।

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला इन्हीं (चारोंमेंसे एक प्रकारसे) प्रज्ञापन करता है।

३—अनात्मवाद

"आनन्द ! आत्माको न प्रज्ञापन करनेवाला, कैसे प्रज्ञापन नहीं करता ?—आनन्द ! 'आत्माको रूप-वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला (तथागत) 'मेरा आत्मा रूप-वान् अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-वान् अनन्त है' नहीं कहता।

आत्माको 'रूप-रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अणु हैं' नहीं कहता। आत्माको 'रूपरहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अनन्त हैं' नहीं कहता।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान्-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला, ० प्रज्ञापन नहीं करता; सो या तो आजकल (=वर्तमान)के आत्माको रूप-वान् अणु प्रज्ञापन नहीं करता, या भावी आत्माको० प्रज्ञापन नहीं करता, या 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! *'आत्मा रूप-वान् अणु हैं' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता—यही कहना चाहिये।*

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता, सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-वान् अनन्त प्रज्ञापन नहीं करता०, ०। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त हैं' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता, यही कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-रहित-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला ० प्रज्ञापन नहीं करता; सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अणु न माननेसे, प्रज्ञापन नहीं करता है, ० भावी०। ऐसा होनेसे आनन्द! वह 'आत्मा रूप-रहित अणु हैं' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता, यहीं कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-रहित अनन्त' न बतलानेवाला, (कुछ) नहीं कहता; सो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला हो, नहीं कहता है, ० भावी ०; 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे आनन्द! यहीं कहना चाहिये, कि वह 'आत्मा रूप-रहित अनन्त हैं' इस दृष्टिको वह नहीं पकड़ता।

"इन कारणोंसे आनन्द! अनात्म-वादी (आत्माकी प्रज्ञप्ति) नहीं करता।

"आनन्द! किस कारणसे आत्मवादी (आत्माको) देखता हुआ देखता है? आत्मदर्शी देखते हुये वेदनाको ही *'वेदना मेरा आत्मा है' समझता है। अथवा 'वेदना मेरा आत्मा नहीं,* अ-संवेदन (=न अनुभव) मेरा आत्मा है' ऐसा समझता है...अथवा—'न वेदना मेरा आत्मा है, न अप्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है.(अत)वेदना-धर्म-वाला मेरा आत्मा है।" आनन्द! (इस कारणसे) आत्मवादी देखता हुआ देखता है।

"आनन्द! वह जो यह कहता है–'वेदना मेरा आत्मा है' उसे पूछना चाहिये—'आवुस! तीन वेदनायें हैं, सुख-वेदना, दुःख-वेदना, अदुःख-असुख-वेदना, इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो?' जिस समय आनन्द! सुख-वेदनाको वेदन (=अनुभव) करता है, उस समय न दुःख-वेदनाको अनुभव करता है, नहीं अदुःख-असुख-वेदनाको अनुभव करता है। सुख वेदनाको उस समय अनुभव करता है। जिस समय दुःख-वेदनाको०। जिस समय अदुःख-असुख-वेदनाको०।

है,' उससे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! जहाँ सब कुछ अनुभव (=वेदयित) है, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होता है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं—'वेदना आत्मा नहीं है, अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है।'

"आनन्द ! जो वह यह कहता है—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है (=अनुभव किया जाता है), वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।' उसे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! यदि वेदनायें सारी सर्वथा बिल्कुल नष्ट हो जायें, तो वेदनावें सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं कि—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना० वेदना धर्मवाला मेरा आत्मा है।'

"चूँकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदनाको०, और नहीं 'आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना धर्मवाला मेरा आत्मा है' समझता है। इस प्रकार समझ, लोकमें किसीको (मैं और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। न ग्रहण करने वाला होनेसे त्रास नहीं पाता। त्रास न पानेसे स्वयं परि-निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब)—जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य-वास (पूरा) हो चुका, करना था कर चुका, और कुछ यहाँ (करणीय) नहीं (—इसे)जानता है। ऐसे मुक्त-चित्त भिक्षुके बारेमें जो कोई ऐसा कहे—'मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है' सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अ-युक्त है। 'मरनेके बाद तथागत होता भी है, नहीं भी होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। सो किस कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (=नाम, संज्ञा), जितना वचन व्यवहार जितनी निरुक्ति (=भाषा), जितना भी भाषा व्यवहार, जितनी प्रज्ञप्ति (=रूढ़ि), जितना भी प्रज्ञप्ति व्यवहार जितनी भी प्रज्ञा (=ज्ञान), जितना भी प्रज्ञाका विषय, संसारम है, उस (सबको) जानकर भिक्षु मुक्त हुआ है। उसे जानकर मुक्त हुये भिक्षुको 'नहीं जानता है, नहीं देखता है—यह इसकी दृष्टि है'—(कहना) अयुक्त है।

४—प्रज्ञा विमुक्त

"आनन्द ! विज्ञान (=जीव)की सात स्थितियाँ (=योनियाँ) हैं, और दो ही आयतन। कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व (=जीव) नाना कायावाले और नाना संज्ञा (=नाम) वाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (=काम धातुके छै) और कोई कोई विनिपातिक (=नीच योनि-वाले=पिशाच) यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व नाना कायावाले, किंतु एक संज्ञा (=नाम) वाले होते है, जैसे कि, प्रथम ध्यानके साथ उत्पन्न **ब्रह्म-कायिक** (=ब्रह्मा लोग) देवता। यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है। (३) आनन्द ! ० एक काया किंतु नाना संज्ञावाले देवता है, जैसे कि **आभास्वर** देवता। यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है। (४) ० एक कायावाले एक संज्ञावाले देवता, जैसे कि **शुभकृत्स्न** (=सुभ किण्ण) देवता। यह चौथी विज्ञान-स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व हैं, (जो कि) रूप-संज्ञाके अतिक्रमणसे, प्रतिघ(=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानापनकी संज्ञा को मनमें न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस **आकाश-आयतन** (=*निवास स्थान*)को प्राप्त हैं। यह पाँचवीं विज्ञान स्थिति है। (६) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व आकाश-आयतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है,' इस **विज्ञान-आयतनको** प्राप्त हैं। *यह छठी विज्ञान-स्थिति है।* (७)

आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व विज्ञान-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतन (=०निवास-स्थान)को प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है। (दो आयतन हैं) असंज्ञि-सत्त्व-आयतन (=संज्ञा-रहित सत्त्वोंका आवास), और दूसरा नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=न संज्ञावाला, न अ-संज्ञावाला आयतन)।

"आनन्द ! जो यह प्रथम विज्ञान स्थिति 'नाना काया नाना संज्ञा' है, जैसे कि०। जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति) को जानता है, उसकी उत्पत्ति (=समुदय)को जानता है, उसके अस्तगमन (=विनाश)को जानता है, उसके आस्वादको जानता है, उसके दुष्परिणाम (=आदिनव) को जानता है, उसके निस्सरण (=छूटनेके मार्ग) को जानता है, क्या उस (जानकारको) उस (=विज्ञान-स्थिति)का अभिवादन करना युक्त है?" "नहीं, भन्ते!"

"० दूसरी विज्ञान स्थिति—० सातवीं विज्ञान-स्थिति०। ० असंज्ञी-सत्त्वायतन ०, ० नैव-संज्ञा-न-असंज्ञायतन०।

"आनन्द ! जो इन सात सत्त्व-स्थितियों और दो आयतनोंके समुदय, अस्त-गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जान कर, (उपादानोंको) न ग्रहण कर मुक्त होता है, वह भिक्षु प्रज्ञा विमुक्त (=जानकर मुक्त) कहा जाता है।

"आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं। कौन से आठ? (१) (स्वयं) रूप-वान् (दूसरे) रूपोंको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है। (२) भीतर (=अध्यात्म)में रूप रहित संज्ञावाला, बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है। (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (—विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाके अतिक्रमण, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेस, नाना-त्वकी संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस (अनन्त) आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है। (५) सर्वथा (अनन्त) आकाशके आयतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पाँचवाँ विमोक्ष है। (६) सर्वथा विज्ञान आयतन-को अतिक्रमण कर, 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठाँ विमोक्ष है। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर, नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। यह सातवाँ विमोक्ष है। (८) सर्वथा नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको अतिक्रमण कर संज्ञा-वेदना (=अनुभव)के निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आठवाँ विमोक्ष है। आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं।

१६—महापरिनिब्बाण सुत्त-(२।३)

१—वज्जियोके विरुद्ध अजातशत्रु। २—हानिसे बचने के उपाय। ३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा—(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्गार (२) पाटलिपुत्रका निर्माण। (३) धर्म-आदर्श। (४) अम्बपाली गणिकाका भोजन। (५) सख्त बीमारी। (६) जीवनशक्तिका निर्वाणकी तैयारी। (७) महाप्रदेश (कसौटी)। (८) चुन्दका दिया अन्तिम भोजन। ४—जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ—(१) चार दर्शनीय स्थान। (२) स्त्रियोके प्रति भिक्षुओंका बर्ताव। (३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया। (४) आनन्दके गुण। (५) चक्रवर्तीके चार गुण। (६) महासुदर्शन जातक। (७) सुभद्रकी प्रव्रज्या। (८) अन्तिम उपदेश। ५—निर्वाण। ६—महाकाश्यपको दर्शन। ७—दाह क्रिया। ८—स्तूपनिर्माण।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमे गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र[1] वज्जीपर चढ़ाई (=अभियान) करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन ऐसे महर्द्धिक (=वैभव-शाली),—ऐसे महानुभाव, वज्जियोंको[2] उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा।'

१—वज्जियोंके विरुद्ध अजातशत्रु

तब ०अजातशत्रु०ने मगधके महामात्य (=महामंत्री) वर्षकार ब्राह्मणसे कहा—

"आओ ब्राह्मण! जहाँ भगवान् है, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्के पैरोमे शिरसे वन्दना करो। आरोग्य=अल्प-आतंक, लघु-उत्थान (=फुर्ती), सुख-विहार पूछो—'भन्ते! राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है।' और यह कहो—'भन्ते! राजा० वज्जियोपर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—'मैं इन ०वज्जियोको उच्छिन्न करूँगा०।' भगवान् जैसा तुमसे बोले, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ-यथार्थ (=वितथ) नहीं बोला करते।"

---

[1] गंगा (?)के घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोंका।...। वहाँ पर्वतके पाद (=जड़)से बहुमूल्य सुगन्ध-वाला माल उतरता था। उसको सुनकर अजातशत्रुके—'आज जाऊँ कल जाऊँ' करते ही, लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला आता था। वह दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो...ऐसा सोचा—'गण (=प्रजातंत्र)के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता। किसी एक पंडितके साथ मंत्रणा करके करना अच्छा होगा।...'। (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मणको भेजा।—(अट्ठकथा)

[2] वर्तमान मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभंगाके जिले।

"अच्छा भो।" वह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोंको जुतवाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निकला, (और) जहां गृध्रकूट-पर्वत था, वहां चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही, जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌के साथ संमोदनकर एक ओर बैठा, एक ओर बैठकर भगवान्‌से बोला—"भो गौतम! राजा ० आप गौतमके पैरोंमें शिरसे वन्दना करता है ०। ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा०'।"

२—हानिसे बचनेके उपाय

"उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पीछे (खड़े) भगवान्‌को पंखा झल रहे थे। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! क्या तूने सुना है, (१) वज्जी (सम्मतिके लिये) बराबर बैठक (=संनिपात) करते हैं=संनिपात-बहुल हैं?"

"सुना है, भन्ते! वज्जी बराबर०।"

"आनन्द! जब तक वज्जी बैठक करते रहेंगे=सन्निपात-बहुल रहेंगे, (तब तक) आनन्द! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

(२) "क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक हो बैठक करते हैं, एक हो उत्थान करते हैं, वज्जी एक हो करणीय (=कर्तव्य)को करते हैं?"

"सुना है, भन्ते! ०।"

"आनन्द! जब तक ०।

(३) "क्या ० सुना है, वज्जी अ-प्रज्ञप्त[1] (=गैरकानूनी)को प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित)का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने वज्जि-धर्म (=०नियम) को ग्रहण कर, वर्तते हैं?"

"भन्ते! सुना है।"

"आनन्द ०! जब तक वि ०।

(४) "क्या आनन्द! तूने सुना है—वज्जियोंके जो महल्लक (=वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं,=गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं।"

"भन्ते! सुना है ०।"

"आनन्द! जब तक वि ०।"

---

[1]"पहले न किये गये, शुल्क या बलि (=कर) या दंड लेनेवाले अप्रज्ञप्त (काम) करते हैं।...। पुराना वज्जिधर्म... यहां पहले वज्जिराजा लोग—'यह चोर है-अपराधी है' (कह) लाकर दिखलानेपर, 'इस चोरको बांधो'—न कह विनिश्चय-महामात्य (=न्यायाधीश)को देते थे, वह विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कहकर व्यवहारिकको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते थे, यदि चोर होता तो सूत्रधारको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते, यदि चोर होता तो अष्टकुलिकको दे देते। वह भी वैसाही कर सेनापतिको, सेनापति उपराजको, और उपराज राजा (=गण-पति)को। राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोड़ देता। यदि चोर (=अपराधी) होता, तो प्रवेणी-पुस्तक बँचवाता। उसमें—जिसने यह किया, उसको ऐसा दंड हो—लिखा रहता है। राजा उसके अपराधको उससे मिलाकर उसके अनुसार दंड करता।"—अट्ठकथा।

(५) "क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हे (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते ?"

"भन्ते ! सुना है ०।"

"आनन्द ! ० जब तक ०।"

(६) "क्या ० सुना है—वज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं। उनके लिये पहिले किये गये दानको, पहिले-की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति)को, लोप नहीं करते ?"

"भन्ते ! सुना है ० ?"

"जब तक ०।"

(७) "क्या सुना है,—वज्जी लोग अर्हता (=पूज्यों)की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मानुसार) रक्षा=आवरण=गुप्ति करते हैं। किसलिये ? भविष्यमें अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।"

"सुना है, भन्ते ! ०।"

"जब तक ०।"

तब भगवान्ने ० वर्षकार ब्राह्मणको संबोधित किया—

"ब्राह्मण ! एक समय मैं वैशालीके सारन्दद-चैत्यमें विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियोंको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतनके नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण ! यह सात अपरि-हाणीय-धर्म वज्जियोंमें रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय-धर्मोंमें वज्जी (लोग) दिखलाई पळेंगे, (तब तक) ब्राह्मण ! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।"

ऐसा कहने पर० वर्षकार ब्राह्मण भगवान्से बोला—

'हे गौतम ! (इनमेंसे) एक भी अपरिहाणीय-धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मोंकी तो बात ही क्या ? हे गौतम ! राजा ०को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमें फूटको छोळ, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुत कामवाले) हैं०"

"ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है।"

"तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठकर, चला गया[१]।

---

[१] अ क "राजाके पास गया। राजाने उससे पूछा—'आचार्य ! भगवान्ने क्या कहा ?'। उसने कहा—'भो ! श्रमण०के कथनसे तो वज्जियोको किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता, हाँ, उपलापन (=रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजाने कहा—'उपलापनसे हमारे हाथी घोळे नष्ट होंगे, भेद (=फूट)से ही पकळना चाहिये। ०।"

"तो महाराज ! वज्जियोको लेकर तुम परिषद्में बात उठाओ। तब मैं—'महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राजा (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें'—कहकर चला जाऊँगा। तब तुम बोलना—'क्योजी ! यह ब्राह्मण वज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है'। उसी दिन मैं उन (=वज्जियों)के लिये भेंट (=पर्णाकार) भेजूंगा, उसे भी पकळकर मेरे ऊपर दोषा-रोपणकर, बधन, ताळन आदि न कर, छुरेसे मुंडन करा मुझे नगरसे निकाल देना। तब मैं कहूँगा—

तब भगवान्‌ने ० वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोळी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते है, उन सबको उपस्थान-शालामे एकत्रित करो।"

"अच्छा, भन्ते !"

"भन्ते ! भिक्षुसघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।"

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—'भिक्षुओ ! तुम्हे सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हे सुनो कहता हूँ।'

"अच्छा, भन्ते !'

मैंने तेरे नगरमें प्राकार और परिखा (=खाई) बनवाई है, मै दुर्बल . तथा गभीर स्थानोको जानता हूँ, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूँगा'। ऐसा सुनकर बोलना—'तुम जाओ'।

"राजाने सब किया। लिच्छवियोने उसके निकालने (=निष्क्रमण)को सुनकर कहा—'ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गगा न उतरने दो।' तब किन्हीं किन्हींके—'हमारे लिये कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है' कहनेपर,—'तो भणे ! आने दो'। उसने जाकर लिच्छवियो द्वारा—'किस-लिये आये ?' पूछनेपर, वह (सब) हाल कह दिया। लिच्छवियोने—'थोळीसी बातके लिये इतना भारी दड करना युक्त नहीं था' कहकर—'वहाँ तुम्हारा क्या पद=(स्थानान्तर) था'—पूछा। 'मैं विनिश्चय महामात्य था'—(कहनेपर)—'यहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे'—कहा। वह सुन्दर तौरसे विनिश्चय (=इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या (=शिल्प) ग्रहण करते थे। अपने गुणोसे प्रतिष्ठित हो जानेपर उसने एक दिन एक लिच्छविको एक ओर लेजाकर—'खेत (=केदार, क्यारी) जोतते हैं'? 'हाँ जोतते हैं'। 'दो बैल जोतकर?' 'हाँ, दो बैल जोतकर'—कहकर लौट आया। तब उसको दूसरेके—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?'—पूछनेपर, उसने वह कह दिया। (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नहीं बतलाता है' (सोच) उसने बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छवीको एक ओर लेजाकर 'किस व्यजन (=तेमन, तरकारी)से भोजन किया' पूछकर लौटनेपर, उससे भी दूसरेने पूछकर, न विश्वासकर वैसेही बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवीको एकान्तमें लेजाकर—'बळे गरीब हो न ?'—पूछा। 'किसने ऐसा कहा ?' 'अमुक लिच्छवीने।' दूसरेको भी एक ओर लेजाकर—'तुम कायर हो क्या ?' 'किसने ऐसा कहा' 'अमुक लिच्छवीने'। इस प्रकार दूसरेके न कहे हुएको कहते तीन वर्ष (४८३—४८० ई पू)में उन राजाओंमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो आदमी एक रास्तेसे भी न जाते थे। वैसा करके, जमा होनेका नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया।

लिच्छवी—'मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हों'—कहकर नहीं जमा हुए। तब उस ब्राह्मणने राजाको जल्दी आनेके लिये खबर (=शासन) भेजी। राजा सुनकर सैनिक नगारा (=बलभेरी) बजवाकर निकला। वैशालीवालोंने सुनकर भेरी बजवाई—'(आओ चलें) राजाको गगा न उतरने दें'। उसको भी सुनकर—'देव-राज (=सुर-राज) लोग जायें' आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए। (तब) भेरी बजवाई—'नगरमें घुसने न दें, (नगर-)द्वार बन्द करके रहें'। एक भी नहीं जमा हुआ। (राजा अजातशत्रु) खुले द्वारोंसे ही घुसकर, सबको तबाह कर (=अनय-व्यसन पापेत्वा) चला गया।

(=सेवनीय), विद्वानोसे प्रशसित, अ-निन्दित, समाधिकी ओर (ले) जानेवाले शील है, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे ०। (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे ०। भिक्षुओ ! जब तक यह अपरिहाणीय-धर्म ०।

वहाँ राजगृहमे गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओको यही धर्म-कथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शीलसे परिभावित समाधि महा-फलवाली =महा-आनृशसवाली होती है। समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महा-आनृशसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवो[1],—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

३–बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

तब भगवान्ने राजगृहमे इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ अम्बलट्ठिका[2] है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते !"

भगवान् महान् भिक्षु-सघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामे राजगारकमें विहार करते थे। वहाँ ० राजगारकमें भी भगवान् भिक्षुओको बहुधा यही धर्म कथा कहते थे—०।

भगवान्ने अम्बलट्ठिकाम यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते !"

(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्गार

नालन्दा—

तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा[3] में प्रावारिक-आम्रवनमे विहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र[4] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! मेरा ऐसा विश्वास है—'सबोधि (=परमज्ञान)में भगवान्से बढ़कर=भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद किया—'मेरा ऐसा०।' सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहार-वाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे ?"

"नहीं, भन्ते !"

---

[1] आस्रव (=चित्त-मल)—भोग(=काम)-सबधी, आवागमन(=भव)-सबधी, धारणा (=दृष्टि)-सबधी। [2] सम्भवत वर्तमान सिलाव। [3] वर्तमान बळगाँव, जिला पटना।

[4] पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होनेसे सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है।

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया ०?"

"नहीं, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ?"

"नहीं, भन्ते !"

"(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धोंके विषयमें चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्या यह बहुत उदार =आर्षभी वाणी कही ०?"

"भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धोंमें मुझे चेत-परिज्ञान नहीं है, किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते ! राजाका सीमान्त-नगर दृढ नींव-वाला, दृढ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करानेवाला पंडित=व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरको चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमशः) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततः बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगरमें प्रवेश करते हैं, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकालमें अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले पाँचों नीवरणोंको छोळ, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यंगोंको यथार्थ भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान)का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।"

वहाँ नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही कहते थे ०।

पाटलि-ग्राम—

तब भगवान्ने नालन्दामें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि-ग्राम है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान् भिक्षुसंघके साथ, जहाँ पाटलिग्राम[1] था, वहाँ गये। पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

'भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमें चारों ओर बिछौना बिछाकर आसन स्थापितकर, जलके बर्तन स्थापितकर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो पाटलिग्रामके उपासकोंने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! अब सथागारमें चारों ओर बिछौना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझें।"

[1] वर्तमान पटना।

(=सेवनीय), विद्वानोंसे प्रशंसित, अ-निन्दित, समाधिकी ओर (ले) जानेवाले शील है, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे०। (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे०। भिक्षुओ! जब तक यह अपरिहाणीय धर्म०।

वहाँ राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओंको यही धर्म-कथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है।, शीलसे परिभावित समाधि महा फलवाली =महा-आनृशंसवाली होती है। समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महा-आनृशंसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवों[1],—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

३–बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

तब भगवान्‌ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ अम्बलट्ठिका[2] है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामें राजगारकमें विहार करते थे। वहाँ० राजगारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही धर्म-कथा कहते थे—०।

भगवान्‌ने अम्बलट्ठिकाम यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

×(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्‌गार

नालन्दा—

तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा[3] में प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र[4] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है—'संबोधि (=परमज्ञान)में भगवान्‌से बढ़कर=भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद किया—मेरा ऐसा०।' सारिपुत्र! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहार-वाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?'

'नहीं, भन्ते!"

---

[1] आस्रव (=चित्त-मल)—भोग(=काम)-संबंधी, आवागमन(=भव)-संबंधी, धारणा (=दृष्टि)-संबंधी। [2] सम्भवतः वर्तमान सिलाव। [3] वर्तमान बळगाँव, जिला पटना।

[4] पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होनेसे सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है।

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया० ?"

"नहीं, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ ?"

"नहीं, भन्ते !"

"(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धोंके विषयमें चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार =आर्षभी वाणी कही ० ?"

"भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धोंमें मुझे चेत-परिज्ञान नहीं है, किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते ! राजाका सीमान्त-नगर दृढ़ नींव-वाला, दृढ़ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातो (=अपरिचितो)को निवारण करनेवाला, ज्ञातो (=परिचितो)को प्रवेश करानेवाला पंडित=व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरकी चारो ओर, अनुपर्याय (=क्रमश) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमें प्रवेश करते है, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—जो वह अतीतकालमें अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचो नीवरणो को छोळ, चारो स्मृति प्रस्थानोंमें चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यगोको यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान)का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते ! अनागतमे भी जो अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।'

वहाँ नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओको बहुधा यही कहते थे ०।

पाटलि-ग्राम—

तब भगवान्ने नालन्दामें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि-ग्राम है, वहाँ चलें।

"अच्छा, भन्ते !'

तब भगवान् भिक्षुसघके साथ, जहाँ पाटलिग्राम[1] था, वहाँ गये। पाटलिग्रामके उपासकोने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये है। तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उपासकोने भगवान्से यह कहा—

'भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमे चारो ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगाकर, जलके बर्तन स्थापितकर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो पाटलिग्रामके उपासकोने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! आवसथागारमें चारो ओर बिछौना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझें।"

---

[1] वर्तमान पटना।

(=सेवनीय), विद्वानोंसे प्रशसित, अ-निन्दित, समाधिकी ओर (ले) जानेवाले शील है, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे ०। (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दु:ख-क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे ०। भिक्षुओ ! जब तक यह अपरिहाणीय-धर्म ०।

वहाँ राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओको यही धर्म-कथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शीलसे परिभावित समाधि महा-फलवाली =महा-आनृशसवाली होती है। समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महा-आनृशसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवो[1],—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

तब भगवान्ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ अम्बलट्ठिका[2] है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते !"

भगवान् महान् भिक्षु-सघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामे राजागारकमें विहार करते थे। वहाँ ० राजागारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही धर्म-कथा कहते थे—०।

भगवान्ने अम्बलट्ठिकामे यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते !"

(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्‌गार

नालन्दा—

तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा[3] में प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र[4] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! मेरा ऐसा विश्वास है—'संबोधि (=परमज्ञान)में भगवान्से बढकर=भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद किया—'मेरा ऐसा०।' सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहार-वाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नही, भन्ते !"

---

[1] आस्रव (=चित्त-मल)—भोग(=काम)-सबधी, आवागमन(=भव)-सबधी, धारणा (=दृष्टि)-सबधी। [2] सम्भवत वर्तमान सिलाव। [3] वर्तमान बळगाँव, जिला पटना।

[4] पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होनेसे सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है।

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया ० ?"

"नहीं, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ ?"

"नहीं, भन्ते !"

"(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंके विषयमें चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बड़ी उदार =आर्षभी वाणी कही ० ?"

"भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंमें मुझे चेत-परिज्ञान नहीं है, किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते ! राजाका सीमान्त-नगर दृढ़ नींव-वाला, दृढ़ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करानेवाला पंडित=व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरके चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमशः) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमें प्रवेश करते हैं, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकालमें अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचों नीवरणोंको छोळ, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सुप्रतिष्ठितकर, सात बोध्यंगोंकी यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान)का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।"

वहाँ नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही कहते थे ०।

पाटलि-ग्राम—

तब भगवान्‌ने नालन्दामें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि-ग्राम है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान् भिक्षुसंघके साथ, जहाँ पाटलिग्राम[1] था, वहाँ गये। पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उपासकोंने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्‌की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमें चारों ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगाकर, जलके बर्तन स्थापितकर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो पाटलिग्रामके उपासकोंने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! आव-सथागारमें चारों ओर बिछौना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझें।"

---

[1] वर्तमान पटना।

तब भगवान् सायंकालको पहिनकर पात्र चीवर ले, भिक्षु-संघके साथ ० आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षुसंघ भी पैर पखार आवसथागारमें प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर पच्छिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगेकर बैठा। पाटलिग्रामके उपासक भी पैर पखार आवसथागारमें प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके बैठे। तब भगवान्ने . उपासकोंको आमंत्रित किया—

"गृहपतियो! दुराचारके कारण दुःशील (=दुराचारी)के लिये यह पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पाँच? गृहपतियो! (१) दुराचारी आलस्य करके बहुतसे अपने भोगोंको खो देता है, दुराचारीका दुराचारके कारण यह पहला दुष्परिणाम है। (२) और फिर दुराचारीकी निन्दा होती है ०। (३) दुराचारी आचारभ्रष्ट (पुरुष) क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभामें जाता है प्रतिभारहित, मूक होकर ही जाता है ०। (४) ० मूढ रह मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो! दुराचारी आचारभ्रष्ट काया छोड़ मरनेके बाद अपाय=दुर्गति=पतन=नरकमें उत्पन्न होता है। दुराचारीके दुराचारके कारण यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। ०।

"गृहपतियो! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण पाँच सुपरिणाम हैं। कौनसे पाँच?—(१) गृहपतियो! सदाचारी अप्रमाद (=गफलत न करना) न कर बड़ी भोगराशिको (इसी जन्ममें) प्राप्त करता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पहला सुपरिणाम है। (२) ० सदाचारीका मंगल यश फैलता है ०। (३) ० जिस किसी सभामें जाता है मूक न हो विशारद बन कर जाता है ०। (४) ० मूढ न हो मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो! सदाचारी सदाचारके कारण काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पाँचवाँ सुपरिणाम है। गृहपतियो! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण यह पाँच सुपरिणाम हैं।"

तब भगवान्ने बहुत रात तक . उपासकोंको धार्मिक कथासे संदर्शन . समुत्तेजित [illegible] . उद्योजित किया—"गृहपतियो! रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते!" . पाटलिग्राम-वासी ..[1] उपासक...आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये।

(२) पाटलिपुत्रका निर्माण

उस समय सुनीध (=सुनीथ) और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्जियोंको रोकनेके लिये नगर बसा रहे थे। उस समय अनेक हजार देवता पाटलिग्राममें वास ग्रहण कर रहे थे। जिस स्थानमें महाप्रभावशाली (=महेशाख्य) देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें महा-

---

[1]"भगवान् कब पाटलिग्राम गये? ...श्रावस्तीमें धर्मसेनापति (सारिपुत्र)का चैत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहाँसे निकल अम्बलट्ठिकामें वासकर; अस्खलित चारिकासे देशमें विचरते; वहाँ वहाँ एक एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे।...पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओंके आदमी समय समयपर आकर घरोंके मालिकोंको घरसे निकालकर (एक) मास भी आधे मास भी वास करते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीड़ित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वासस्थान होगा—(सोच)...नगरके बीचमें महाशाला बनवाई। उसीका नाम था आवसथागार। वह उसी दिन समाप्त हुआ था।"—अट्ठकथा।

प्रभावशाली राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है। जिस स्थानमें मध्यम श्रेणी-के देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें मध्यमश्रेणीके राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है। जिस स्थानमें नीच देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें नीच राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है।

भगवान्‌ने रातके प्रत्यूप-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंको रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं।"

"आनन्द ! जैसे त्रायस्त्रिंश देवताओंके साथ सलाह करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्षकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं। आनन्द ! मैंने अमानुप दिव्य नेत्रसे देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (=घर, वास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महाशक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहणकर रहे हैं, वहाँ महा-शक्ति शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहणकर रहे हैं वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द ! जितने (भी) आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं, जितने भी वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=शत्रु) होंगे—आग, पानी, और आपसकी फूट।

तब मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌के साथ संमोदनकर एक ओर खळे हुए भगवान्‌से बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब० सुनीथ वर्षकार भगवान्‌की स्वीकृति जान, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्‌को समयकी सूचना दी।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित=संप्रवारित किया। तब० सुनीथ वर्ष-कार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मगध महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्‌ने इन गाथाओंसे (दान-)अनुमोदन किया—

'जिस प्रदेश(में) पंडितपुरुष, शीलवान्, संयमी,
ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है॥१॥
"वहाँ जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये।
वह देवता पूजित हो पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं॥२॥
'तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करते हैं।
देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है॥३॥"

तब भगवान्० सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय० सुनीथ, वर्षकार भगवान्‌के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेंगे, वह **गौतम-द्वार** होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से गंगा नदी पार होंगे, वह **गौतम-तीर्थ** होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतमद्वार हुआ। भगवान् जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये।

उस समय गंगा करारो बराबर भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई ० बेळा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई ० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैलादे, फैलाई बाँहको समेट ले, वैसे ही भिक्षु-संघके साथ गंगा नदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खळे हुए। भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे ०। तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पंडित) छोटे जलाशयों (=पल्वलों)को छोळ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं।
(जब तक) लोग कूला बाँधते रहते हैं, (तब तक) मेधावी जन तर गये रहते हैं॥४॥"

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

कोटिग्राम—

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटि-ग्राममें विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! चारों आर्य-सत्योंके अनुबोध=प्रतिवेध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौळना=संसरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' हो रहा है। कौनसे चारोंसे? भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्यके अनुबोध=प्रतिबोध न होनेसे ० दुःख-समुदय ०। दुःख-निरोध ०। दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् ०। भिक्षुओ! सो इस दुःख आर्य-सत्यको अनु-बोध=प्रतिबोध किया ०, (तो) भव-तृष्णा उच्छिन्न हो गई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई"

यह कहकर सुगत (=बुद्ध)ने और यह भी कहा—"चारों आर्य-सत्योंको ठीकसे न देखनेसे,
उन उन योनियोंमें दीर्घकालसे आवागमन हो रहा है॥५॥
जब ये देख लिये जाते हैं, तो भवनेत्री नष्ट हो जाती है,
दुःखकी जळ कट जाती है, और फिर आवागमन नहीं रहता॥६॥"

वहाँ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०। ०

नादिका—

तब भगवान्ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ नादिका[1] (=नातिका) है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये। वहाँ नदिकामें भगवान् गिंजकावसथमें विहार करते थे।

(३) धर्म-आदर्श

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! साळ्ह भिक्षु नादिकामें मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय (=परलोक) हुआ? नन्दा भिक्षुणी ० सुदत्त उपासक ० सुजाता उपासिका ० ककुध उपासक ० कालिंग उपासक ० निकट उपासक ० कटिस्सभ उपासक ० तुट्ठ उपासक ० सन्तुट्ठ उपासक ० भद्द उपासक ० भन्ते!

---

[1] मिलाओ जनवसभसुत्त पृष्ठ १६०।

सुभद्द उपासक नादिकामे मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय हुआ ?"

"आनन्द ! साल्ह भिक्षु इसी जन्ममें आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति)को स्वय जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर विहार कर रहा था। आनन्द ! नन्दा भिक्षुणी पाँच अवरभागीय सयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनेवाली (अनागामी)हो वहीं (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक आनन्द ! तीन सयोजनोंके क्षीण होनेसे, राग-द्वेष-मोहके दुर्बल होनेसे सकृदागामी हुआ, एक ही बार इस लोकमें और आकर दुःखका अन्त करेगा। सुजाता उपासिका तीन सयोजनोंके क्षयसे न-गिरनेवाले बोधिके रास्ते पर आरूढ हो स्रोतआपन्न हुई। ककुध ० अनागामी ०। कालिंग०। निकट ०। कटिस्सभ ०। तुट्ठ ०। सन्तुट्ठ ०। भद्द ०। सुभद्द उपासक आनन्द ! पाँच अवरभागीय सयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनेवाला (=अनागामी) हो वही (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करनेवाला है। आनन्द ! नादिकामें पचाससे अधिक उपासक मरे हैं, जो सभी ० अनागामी० हैं। ० नब्बेसे अधिक उपासक ० सकृदागामी ०। ० पाँचसौसे अधिक उपासक० स्रोत-आपन्न०। आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरनेपर तथागतके पास आकर इस बातको पूछा जाय। आनन्द ! यह तथागतको कष्ट देना है। इसलिये आनन्द ! धर्म-आदर्श नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश)को उपदेशता हूँ। जिससे युक्त होनेपर आर्यश्रावक स्वय अपना व्याकरण (=भविष्य-कथन)कर सकेगा—'मुझे नर्क नहीं, पशु नहीं, प्रेत-योनि नहीं, अपाय=दुर्गति=विनिपात नहीं। मैं न गिरनेवाला बोधिके रास्तेपर आरूढ स्रोतआपन्न हूँ।' आनन्द ! क्या है वह धर्मादर्श धर्मपर्याय ० ?—(१)[1]आनन्द ! जो आर्यश्रावक बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सबुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोकविद्, पुरुषोंके दमन करनेमें अनुपम चाबुक-सवार, देवताओ और मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं।' (२) ० धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) है, वह सादृष्टिक (=इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमें नहीं सद्य फलप्रद), एहिपस्सिक (=यहीं दिखाई देनेवाला), औपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला) विज्ञ (पुरुषो)को अपने अपने भीतर (ही) विदित होनेवाला है।' (३) ० सघमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का श्रावक (=शिष्य)-सघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का श्रावक-सघ सरल मार्गपर आरूढ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ है,० ठीक मार्गपर आरूढ है. यह चार पुरुष-युगल (स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्) और आठ पुरुष=पुद्गल हैं, यही भगवान्का श्रावक-सघ है, (जोकि) आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है।' (४) और अखंडित, निर्दोष, निर्मल, निष्कल्मष, सेवनीय, विज्ञ-प्रशसित, आर्य (=उत्तम) कान्त, शीलो (=सदाचारो)से युक्त होता है। आनन्द ! यह धर्मादर्श धर्मपर्याय है ०।' वहाँ नादिकामें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको यही धर्मकथा ०।

वैशाली—

× (४) अम्बपाली गणिकाका भोजन

० तब भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ वैशालीमें अम्ब-पाली-वनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! स्मृति और सप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। कैसे. भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जब भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें काय-अनुपश्यी (=शरीरको उसकी बनावटके अनु-

---

[1]यही तीनो वाक्य-समूह त्रिरत्न (=बुद्ध-धर्म-संघ)की अनुस्मृति (=स्मरण), कही जाती है।

मार केश-नख-मल-मूत्र आदिके रूपमें देखना) हो, उद्योगशील, अनुभवज्ञान-(=सप्रजन्य) युक्त, स्मृतिमान्, लोकके प्रति लोभ और द्वेष हटाकर विहरता है। वेदनाओ (=सुख दु ख आदि) में वेदनानुपश्यी हो ०। चित्तमे चित्तानुपश्यी हो।० धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो ०। इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान्, होता है। कैसे . सप्रज्ञ (=सपजान) होता है। जब भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन-विलोकन करता है। ० सिकोळना-फैलाना ०। ० सघाटी-पात्र-चीवरको धारण करता है। ० आसन, पान, खादन, आस्वादन करता है। ० पाखाना, पेशाब करता है। चलते, खळे होने, बैठने, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु सप्रजानकारी होता है। इस प्रकार . सप्रज्ञ होता है। भिक्षुओ ! भिक्षुको स्मृति और सप्रजन्य-युक्त विहरना चाहिये, यही हमारा अनुशासन है।"

अम्बपाली गणिकाने सुना—भगवान् वैशालीमे आये है, और वैशालीमे मेरे आम्रवनमें विहार, करते हैं। तब अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोको जुळवाकर, एक सुन्दर यानपर चढ सुन्दर यानोके साथ वैशालीसे निकली; और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्से यह बोली—

"भन्ते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वैशालीके लिच्छवियोंने सुना—'भगवान् वैशालीमे आये हैं ०'। तब वह लिच्छवि ० सुन्दर यानोपर आरूढ हो ० वैशालीसे निकले। उनमे कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरोसे धुरा, चक्कोसे चक्का, जूयेसे जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियोने अम्बपाली गणिकासे कहा—

"जे ! अम्बपाली ! क्यों तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोके धुरोसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो ! क्योकि मैने भिक्षु-सघके साथ कलके भोजनके लिये भगवान्को निमत्रित किया है।"

"जे ! अम्बपाली ! सौ हजार (कार्षापण)से भी इस भात (=भोजन) को (हमें करनेके लिये) देदे।"

"आर्यपुत्रो ! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तब उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया, अरे। हमें अम्बिकाने वचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि जहाँ अम्बपाली-वन था, वहाँ गये। भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोको आते देखा। देखकर भिक्षुओको आमत्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोकी परिषद्को। अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोकी परिषद्को। भिक्षुओ ! लिच्छवि-परिषद्को त्रायस्त्रिश (देव)-परिषद् समझो (=उपसहरथ)।"

तब वह लिच्छवि ० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ . जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छवियोको भगवान्ने धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० किया। तब वह लिच्छवि ० भगवान्से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करे।"

"लिच्छवियो ! कल तो, मैंने अम्बपाली-गणिकाका भोजन स्वीकार कर लिया है।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया। अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया　।

भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ अम्बपालीका परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित=सप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्से बोली—

"भन्ते ! मै इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको देती हूँ।'

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली ०को धार्मिक-कथासे ० समुत्ते-जित०कर, आसनसे उठकर चले गये।

वहाँ वैशालीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

वेलुव-ग्राम—

० तब भगवान् महाभिक्षु सघके साथ जहाँ वेलुव-गामक (=वेणु-ग्राम) था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् वेलुव-गामकमें विहरते थे। भगवान्ने वहाँ भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीके चारो ओर मित्र, परिचित　देखकर वर्षावास करो। मैं यही वेलुव-गामकमे वर्षावास करूँगा। "अच्छा, भन्ते !'

(५) सख्त बीमारी

वर्षावासमे भगवान्को कळी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणान्तक पीळा होने लगी। उसे भग-वान्ने स्मृति-सप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार (=सहन) किया। उस समय भगवान्को ऐसा हुआ—'मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मै उपस्थाको (=सेवको)को बिना जतलाये, भिक्षु-सघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ। क्यो न मै इस आबाधा (=व्याधि)को हटाकर, जीवन-सस्कार (=प्राणशक्ति)को दृढतापूर्व धारणकर, विहार करूँ। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल)से हटाकर प्राण-शक्तिको दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे। तब भगवान्की वह बीमारी शान्त हो गई।

भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (बाहर) निकलकर विहारकी छायामे बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान्को सुखी देखा ! भन्ते ! मैंने भगवान्को अच्छा हुआ देखा ! भन्ते ! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशायें भी सूझ न पळती थी। भगवान्की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=बात)

भी नही भान होते थे। भन्ते ! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था, कि भगवान् तबतक परिनिर्वाण नही प्राप्त करेंगे, जबतक भिक्षु-सघको कुछ कह न लेंगे।"

"आनन्द ! भिक्षु-सघ मुझसे क्या चाहता है ? आनन्द ! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द ! धर्मोमें तथागतकी (कोई) **आ चा र्य मु ष्टि** (=रहस्य) नही है। आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षु-सघको धारण करता हूँ, भिक्षु-सघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरूर आनन्द ! भिक्षु-सघके लिये कुछ कहे। आनन्द ! तथागतको एसा नही है आनन्द ! तथागत भिक्षु-सघके लिये क्या कहेंगे ? आनन्द ! मैं जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय प्राप्त हूँ। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द ! जैसे पुरानी गाळी (=शकट) बाँध-बूँधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द ! मानो तथागतका शरीर बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द ! जिस समय तथागत सारे निमित्तो (=लिगो)को मनमे न करनेसे, किन्ही किन्ही वेदनाओके निरुद्ध होनेसे, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता)को प्राप्त हो विहरते है, उस समय तथागतका शरीर अच्छा (=फासुकत) होता है। इसलिये आनन्द ! आत्मदीप=आत्मशरण=अनन्यशरण, धर्मदीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरण होकर विहरो। कैसे आनन्द ! भिक्षु आत्मशरण ० होकर विहरता है ? आनन्द ! भिक्षु कायामे कायानुपश्यी ०[1]।"

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले वैशालीमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। वैशालीमें पिंडचारकर, भोजनोपरान्त आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द ! आसनी उठाओ, जहाँ चापाल-चैत्य है, वहाँ दिनके विहारके लिये चलेंगे।'

"अच्छा भन्ते !"—वह आयुष्मान् आनन्द आसनी ले भगवान्के पीछे पीछे चले। तब भगवान् जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने यह कहा—

"आनन्द ! *जिसने चार* **ऋद्धिपाद** *(=योगसिद्धियाँ) साधे है, बढा लिये है, रास्ता कर लिये है,* घर कर लिये है, अनुष्ठित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये है, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्पके बचे (काल) तक। तथागतने भी आनन्द ! चार ऋद्धिपाद साधे है ०, यदि तथागत चाहे तो कल्प भर ठहर सकते है या कल्पके बचे (काल) तक।'

ऐसे स्थूल सकेत करनेपर भी, स्थूलत प्रकट करनेपर भी आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उन्होने भगवान्से न प्रार्थना की—"भन्त ! भगवान् बहुजन हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ देव मनुष्योके अर्थ-हित सुखके लिय कल्प भर ठहरें', क्योकि **मारने** उनके मनको फेर दिया था।

दूसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! *जिसने चार ऋद्धिपाद ०।*

तीसरी बार भी भगवान्ने कहा—'आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद ०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—"जाओ, आनन्द ! जिसका काल समझते हो।"

"अच्छा, भन्ते !"—वह आयुष्मान् आनन्द भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, न-बहुत-दूर एक वृक्षके नीचे बैठ।

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९०।

(६) निर्वाणकी तैयारी

तब आयुष्मान् आनन्दके चले जानेके थोळे ही समय बाद पापी (=दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे पापी मारने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाणको प्राप्त हों। भन्ते! यह भगवान्के परिनिर्वाणका काल है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मैं तबतक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जबतक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त (=पंडित), विनययुक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर, धर्मानुसार धर्म मार्गपर आरूढ, ठीक मार्गपर आरूढ, अनुधर्मचारी न होंगे, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक)को सीखकर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (=समझाना), प्रतिष्ठापन, विवरण=विभजन, सरलीकरण न करने लगेंगे, दूसरेके उठाये आक्षेपको धर्मानुसार खंडन करके प्रातिहार्य (=युक्ति)के साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगे।' इस समय भन्ते! भगवान्के भिक्षु श्रावक० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश करते हैं। भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणी श्राविकायें० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगी।' इस समय ०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे उपासक श्रावक ०।' इस समय ०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी उपासिका श्राविकाय ०।' इस समय ०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं— पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक कि यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) ऋद्ध (=उन्नत)=स्फीत, विस्तारित, बहुजनगृहीत, विशाल, देवताओं और मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायगा।' इस समय भन्ते! भगवानका ब्रह्मचर्य ०।'

ऐसा कहनेपर भगवान्ने पापी मारसे यह कहा— पापी! बेफिक्र हो, न-चिर ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होंगे।'

तब भगवान्ने चापाल-चैत्यमें स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ आयुसंस्कार (=प्राण शक्ति)को छोळ दिया। जिस समय भगवान्ने आयु-संस्कार छोळा उस समय भीषण रोमांचकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियाँ बजीं। इस बातको जानकर भगवान्ने उसी समय यह उदान कहा—

"मुनिने अतुल-तुल उत्पन्न भव-संस्कार (=जीवन-शक्ति)को छोळ दिया।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो (उन्होंने) अपने साथ उत्पन्न कवचको तोळ दिया॥७॥"

तब आयुष्मन् आनंदको ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! अद्भुत है!! यह महान् भूचाल है। सु-महान् भूचाल है। भीषण रोमांचकारी है। देव-दुन्दुभियाँ बज रही हैं। (इस) महान् भूचालके प्रादुर्भावका क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! यह महान् भूचाल आया ० क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

"आनन्द! महान् भूचालके प्रादुर्भावके ये आठ हेतु=आठ प्रत्यय होते हैं। कौनसे आठ? (१) आनन्द! यह **महापृथिवी** जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायुपर प्रतिष्ठित है, वायु आकाशमें स्थित है। किसी समय आनन्द! महावात (=तूफान) चलता है। महावातके चलनेपर पानी कंपित होता है। हिलता पानी पृथिवीको डुलाता है। आनन्द! महाभूचालके प्रादुर्भावका यह प्रथम हेतु=

प्रथम प्रत्यय है। (२) और फिर आनन्द! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्व (=योगबल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यबलधारी=महानुभाव देवता होता है; उसने पृथिवी-सज्ञाकी थोळीसी भावनाकी होती है, और जल-सज्ञाकी बळी भावना। वह (अपने योगबलसे) पृथिवीको कंपित=सक-पित=सप्रकंपित=सप्रवेपित करता है। ० यह द्वितीय हेतु है। (३) ० जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत हो होश-चेतके साथ माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं। ० यह तृतीय ०। (४) ० जब बोधिसत्व होश-चेतके साथ माताके गर्भसे बाहर आते हैं। ० यह चतुर्थ हेतु है। (५) ० जब तथागत अनुपम बुद्ध-ज्ञान (=सम्यक् सबोधि) का साक्षात्कार करते हैं। ० यह पचम हेतु है। (६) ० जब तथागत अनुपम धर्मचक्र (=धर्मोपदश) को (प्रथम) प्रवर्तित करते हैं। ० यह षष्ठ हेतु है। (७) और आनन्द! जब तथागत होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळते हैं। आनन्द! यह महाभूचालके प्रादुर्भावका सप्तम हेतु=सप्तम प्रत्यय है। (८) और फिर आनन्द! जब तथागत सपूर्ण निर्वाणको प्राप्त होते हैं। ० यह अष्टम हेतु है। आनन्द! महा-भूचालके यह आठ हेतु=प्रत्यय हैं।

"आनन्द! यह आठ (प्रकारकी) परिषद् (=सभा) होती हैं। कौनसी आठ? क्षत्रिय-परिषद्, ब्राह्मण-परिषद्, गृहपति-परिषद्, श्रमण-परिषद्, चातुर्महाराजिक-परिषद्, त्रायस्त्रिश-परिषद्, मार-परिषद् और ब्रह्म-परिषद्। आनन्द! मुझे अपना सैकळो क्षत्रिय-परिषदोंमें जाना याद है। और वहाँ भी (मेरा) पहिले भाषण किये जैसा, पहिले आये जैसा साक्षात्कार (होता है)। आनद! ऐसी कोई बात देखनेका कारण नहीं मिला, जिससे कि मुझे वहाँ भय या घबराहट हो। क्षेमको प्राप्त हो, अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ। आनद! मुझे अपना सैकळो ब्राह्मण-परिषदोंमें जाना याद है ०।० गृहपति-परिषदोंमें ०। ० श्रमण-परिषदोंमें ०। ० चातुर्महा-राजिक-परिषदोंमें ०। ० त्रायस्त्रिश-परिषदोंमें ०। ० मार-परिषदोंमें ०। ० ब्रह्मपरिषदोंमें ०।

'आनन्द! यह आठ अभिभू-आयतन (=एक प्रकारकी योग क्रिया) हैं। कौनसे आठ? (१) अपने भीतर अकेला रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उन्हे दबाकर (=अभिभूय) जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह प्रथम अभिभू-आय-तन है। (२) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर अपरिमित सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उन्हे दबाकर जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह द्वितीय ०। (३) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है ०। (४) अपने भीतर अ-रूपका ख्याल ० बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण अपरिमित रूपोंको देखता है ०। (५) अपने भीतर अरूपका ख्याल० बाहर नीले, नीले जैसे, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपोंको देखता है। जैसे कि अलसीका फूल नील=नीलवर्ण=नीलनिदर्शन=नील-निभास होता है, (वैसा) रूपोंको देखता है। जैसे दोनो ओरसे चिकना नील ० बनारसी वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अ-रूप ०। (६) अपने भीतर अरूप ०, बाहर पीत (=पीले) ० देखता है। जैसे कि कर्णिकारका फूल पीत०, जैसे कि दोनो ओरसे चिकना पीत ० काशीका वस्त्र ०। (७) अपने भीतर अरूप ०, बाहर लोहित (=लाल)० देखता है। जैसे कि बधुजीवक (=अँढ्हुल) का फूल लोहित ०, जैसे कि० लाल ० काशीका वस्त्र ०। (८) अपने भीतर अरूप ०, बाहर सफेद ० देखता है। जैसे कि शुक्रतारा सफेद०; जैसे कि ० सफेद ० काशीका वस्त्र ०। आनन्द! यह आठ अभिभू-आयतन हैं।

"और फिर आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं। कौनसे आठ? (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भीतर अरूपका ख्याल रखनेवाला हो बाहर रूपोंको देखता है ०। (३) शुभ (=शुभ्र) ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं ०। (४) सर्वथा रूपके ख्यालको अतिक्रमणकर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नानापनके ख्यालको मनमें न करनेसे

'आकाश अनन्त है'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्य-आयतनका अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञान आनन्त्यको अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है'—इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतन-का अतिक्रमणकर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=जिस समाधिके आभासको न चेतना ही कहा जा सके, न अचेतना ही) को प्राप्त हो विहरता है०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतनको अतिक्रमणकर प्रज्ञावेदितनिरोध (=प्रज्ञाकी वेदनाका जहाँ निरोध हो) को प्राप्त हो विहरता है, यह आठवाँ विमोक्ष है।

"एक बार आनन्द ! मैं प्रथम प्रथम बुद्धत्वको प्राप्त हो उरुवेलामें नेरंजरा नदीके तीर अजपाल बर्गदके नीचे विहार करता था। तब आनन्द ! दुष्ट (=पाप्मा) मार जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर एक ओर खळा होगया। और बोला—'भन्ते ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हो, सुगत ! परिनिर्वाण-को प्राप्त हो।' ऐसा कहनेपर आनन्द ! मैंने दुष्ट मारसे कहा—'पापी ! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु श्रावक निपुण (=व्यक्त), विनय युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर (=उपदेशोंको कंठस्थ रखनेवाले), धर्मके मार्गपर आरूढ़, ठीक मार्गपर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करनेवाले, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक) को ठीकसे पढ़ कर न व्याख्यान करने लगेंगे, न उपदेश करेंगे, न प्रज्ञापन करेंगे, न स्थापन करेंगे, न विवरण करेंगे, न विभाजन करेंगे, न स्पष्ट करेंगे, दूसरों द्वारा उठाये अपवादको धर्मके साथ अच्छी तरह पकळ कर युक्ति (=प्रतिहार्य) के साथ धर्मका उपदेश न करेंगे। जब तक कि मेरी भिक्षुणी श्राविकायें (=शिष्या) निपुण ०।० उपासक श्रावक ०।० उपासिका श्राविकायें ०। जब तक यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) समृद्ध=वृद्धिगत, विस्तारको प्राप्त, बहुजन-सम्मानित, विशाल और देव-मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायगा।' आनन्द ! अभी आज इस चापाल चैत्यमें मार पापी मेरे पास आया। आकर एक ओर खळा हो बोला—भन्ते ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हो ०। ऐसा कहनेपर मैंने आनन्द ! पापी मारसे यह कहा—'पापी ! बेफिक्र हो, आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होंगे।' अभी आनन्द ! इस चापाल-चैत्यमें तथागतने होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळ दिया।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनदने भगवान्से यह कहा— भन्ते ! भगवान् बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव मनुष्यों के अर्थ हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरें।"

"बस आनद ! मत तथागतसे प्रार्थना करो ! आनद ! तथागतसे प्रार्थना करनेका समय नहीं रहा।

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनदने ०।

तीसरी बार भी ०।

आनद ! तथागतकी बोधि (=परमज्ञान) पर विश्वास करते हो ?"

"हाँ, भन्ते !"

तो आनद ! क्यों तीन बार तक तथागतको दबाते हो ?"

"भन्ते ! मैंने यह भगवान्के मुखसे सुना, भगवान्के मुखसे ग्रहण किया—'आनद ! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है ०[1]।"

"विश्वास करते हो आनन्द ! "

---

[1] देखो पृष्ठ ३०

"हाँ, भन्ते !"

"तो आनंद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है, जो कि तथागतके वैसा उदार-(=स्थूल) भाव प्रकट करनेपर, उदार भाव दिखलानेपर भी तुम नही समझ सके। तुमने तथागतसे नही याचना की—'भन्ते ! भगवान् ० कल्प भर ठहरें'। यदि आनंद ! तुमने याचना की होती, तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बातको अस्वीकृत करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिये, आनंद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत (=दुक्कट) है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनंद ! एक वार मैं राजगृहके गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करता था। वहाँ भी आनंद ! मैंने तुमसे कहा—आनन्द ! राजगृह रमणीय है। गृध्रकूट-पर्वत रमणीय है। आनंद ! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है ०। तथागतके वैसा उदार भाव प्रकट करने पर ० भी तुम नही समझ सके ०। आनंद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनंद ! एक वार मैं वही राजगृहके गौतम-न्यग्रोधमें विहार करता था ०। ० राजगृहके चोरतपा पर ०। ० राजगृहमे वैभार-पर्वतकी बगलमेंकी सप्तपर्णी(=सत्तपण्णी)गुहामे ०। ० ऋषिगिरिकी बगलमे कालशिलापर ०। ० सीतवनके सर्पशौंडिक (=सप्पसोंडिक) पहाळ (=पब्भार) पर ०। ० तपोदारामने ०। ० वेणुवनमें कलन्दक-निवापमें ०। ० जीवकाम्रवनमें ०। ० मद्रकुक्षि-मृगदावमें विहार करता था। वहाँ भी आनंद। मैंने तुमसे कहा—आनन्द ! रमणीय है राजगृह। रमणीय है गौतमन्यग्रोध ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द ! एक वार मैं इसी वैशालीके उदयनचैत्यमे विहार करता था ०। ० गौतमक-चैत्य ०। ० सप्ताम्र(=सत्तम्ब)चैत्य ०। ० बहुपुत्रक-चैत्य ०। ० सारन्दद-चैत्य ०। अभी आज मैंने आनन्द ! तुम्हे इस चापाल-चैत्यमें कहा—आनंद ! रमणीय है वैशाली ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द ! क्या मैंने पहिले ही नही कह दिया—सभी प्रियो=मनापोसे जुदाई वियोग=अन्यथाभाव होता है। सो वह आनन्द कहाँ मिल सकता है, कि जो उत्पन्न=भूत=सस्कृत, नाशमान है, वह न नष्ट हो। यह सभव नहीं। आनन्द ! जो यह तथागतने जीवन-सस्कार छोळा, त्यागा, प्रहीण=प्रतिनिसृष्ट किया, तथागतने बिल्कुल पक्की बात कही है—जल्दी ही ० आजसे तीन मास बाद तथागतका परिनिर्वाण होगा। जीवनके लिये तथागत क्या फिर वमन कियेको निगलेगे ! यह सभव नही !

"आओ आनन्द ! जहाँ महावन-कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते।"

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कूटागार-शाला थी, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—"आनन्द ! जाओ वैशालीके पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उनको उपस्थानशालामे एकत्रित करो।"

तब भगवान् जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"इसलिये भिक्षुओ ! मैंने जो धर्म उपदेश किया है, तुम अच्छी तौरसे सीखकर उसका सेवन करना, भावना करना, बढाना, जिसमे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो, यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकपार्थ, देव मनुष्योके अर्थ हित-सुखके लिये हो। भिक्षुओ ! मैंने यह कौनसे धर्म, अभिज्ञानकर, उपदेश किये हैं, जिन्हे अच्छी तरह सीखकर ०? जैसे कि (१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (६) पाँचबल, (७) सात बोध्यग, (८) आर्य अष्टांगिक-मार्ग। ' ।

"हन्त ! भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ—संस्कार (=कृतवस्तु), नाश होने वाले (=व्ययधर्मा) हैं, प्रमादरहित हो (आदर्शको) सम्पादन करो। अचिरकालमें ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

भगवान्ने यह कहा। सुगत शास्ताने यह कह फिर यह भी कहा—

"मेरा आयु परिपक्व हो गया, मेरा जीवन थोड़ा है।

"तुम्हें छोड़कर जाऊँगा, मैंने अपने करने लायक (काम)को कर लिया ॥८॥

भिक्षुओ ! निरालस, सावधान, सुशील होओ।

संकल्पको अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्तकी रक्षा करो ॥९॥

जो इस धर्ममें प्रमादरहित हो उद्योग करेगा,

वह आवागमनको छोड़ दुःखका अन्त करेगा ॥१०॥

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

कुसीनाराकी ओर—

तब भगवान्ने पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमा कर देखना) से वैशालीको देखकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! तथागतका यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द ! जहाँ भण्डग्राम है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते !"

भण्डगाम—

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ भंडग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राममें विहार करते थे।" वहाँ भंडग्राममें विहार करते भी भगवान् ०।

० जहाँ अम्बगाम (=आम्रग्राम) ०। ० जहाँ जम्बूगाम (=जम्बूग्राम) ०। ० जहाँ भोगनगर ०

भोगनगर—

(७) महाप्रदेश (कसौटी)

वहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द-चैत्यमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'भिक्षुओ ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।

"अच्छा भन्ते !" कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—(१) "भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो ! मैंने इसे भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है। तो भिक्षुओ ! उस दिन भिक्षुके भाषणका न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यंजनोंको अच्छी तरह सीखकर, सूत्रसे तुलना करना, विनयमें देखना। यदि वह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमें देखनेपर, न सूत्रमें उतरते हैं, न विनयमें दिखाई देते हैं, तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोड़ देना। यदि वह सूत्रमें तुलना करनेपर, विनयमें देखनेपर, सूत्रमें

भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना—अवश्य यह भगवान्‌का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगृहीत है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना।

"(२) और फिर भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु)-संघ विहार करता है। मैंने उस संघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।०।तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्‌का वचन है, इसे संघने सुगृहीत किया। भिक्षुओ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

"(३) ०भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो! अमुक आवासमें बहुतसे बहुश्रुत, आगत-आगम—(=आगमज्ञ), धर्म धर, विनय धर, मातृका-धर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह मैंने उन स्थविरो के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है।०।०।

"(४) भिक्षुओ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे—अमुक आवासमें एक बहुश्रुत ०स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय ०। भिक्षुओ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना।

भिक्षुओ! इन चार महाप्रदेशोंको धारण करना।"

वहाँ भोगनगरमें विहार करते समय भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०।

पावा—

(८) चुन्दका अन्तिम भोजन

०तब भगवान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये। वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्मार-(=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

चुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं, पावामें मेरे आम्रवनमें विहार करते हैं। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान्‌ने धार्मिक कथासे ०समुत्तेजित० किया। तब चुन्द ०ने भगवान्‌की धार्मिक-कथासे ०समुत्तेजित०हो भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (=सूकर-मद्दव)[१] तैयार करवा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु-संघके साथ, जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। । (भोजनकर) एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान् धार्मिक-कथासे ०समुत्तेजित०कर आसनसे उठकर चल दिये।

तब चुन्द कर्मार पुत्रके भात (=भोजन)को खाकर भगवान्‌को खून गिरनेकी, कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुये, सहन किया। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

'आओ आनन्द! जहाँ कुसीनारा है, वहाँ चलें।" 'अच्छा भन्ते।"

---

[१] सुअरका मांस या शूकरकन्दका पाक।

"मैंने सुना है—चुन्द कर्मारके भातको भोजनकर,
धीरको मरणान्तक भारी रोग हो गया॥१३॥
शूकर-मार्दवके खानेपर शास्ताको भारी रोग उत्पन्न हुआ।
विरेचनोंके होते समय ही भगवान्‌ने कहा—चलो, कुसीनारा चलें ॥१४॥
तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा—
"आनन्द मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दो, मैं थक गया हूँ, बैठूँगा।

"अच्छा भन्ते!" आयुष्मान् आनन्दने चौपेती संघाटी बिछा दी, भगवान् बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ। प्यासा हूँ, आनन्द! पानी पिऊँगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! अभी अभी पाँच सौ गाड़ियाँ निकली हैं। चक्कोंसे मथा हिला पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते! यह सुंदरजलवाली, शीतलजलवाली, सफेद, सुप्रतिष्ठित रमणीय ककुत्था नदी नजदीकमें है। वहाँ (चलकर) भगवान् पानी पीयेंगे, और शरीरको ठंडा करेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने०। तीसरी बार भी भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ०।"

"अच्छा, भन्ते!" कह भगवान्‌को उत्तर दे पात्र लेकर जहाँ वह नदी थी, वहाँ गये। तब वह चक्कोंसे मथे हिले मैले थोड़े पानीके साथ बहनेवाली नदी, आयुष्मान् आनन्दके वहाँ पहुँचने पर स्वच्छ निर्मल (हो) बहने लगी। तब आयुष्मान् आनन्दको ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! तथागतकी महा-ऋद्धि, महानुभावताको अद्भुत है! यह नदिका (=छोटी नदी) चक्कोंसे मथे हिले मैले थोड़े पानीके साथ बह रही थी, सो मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल बह रही है।' और पात्रमें पानी भरकर भगवान्‌के पास ले गये। लेजाकर भगवान्‌से यह बोले—"०आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है भन्ते० निर्मल बह रही है। भन्ते! भगवान् पानी पियें, सुगत पानी पियें।"

तब भगवान्‌ने पानी पिया।

उस समय आलारकालामका शिष्य पुक्कुस मल्ल-पुत्र कुसीनारा और पावाके बीच, रास्ते मे जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-पुत्रने भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पुक्कुस०ने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! प्रव्रजित (लोग) शांततर विहारसे विहरते हैं। भन्ते! पूर्वकालमे (एक बार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्गसे हटकर पासमें दिनके विहारके लिये एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय पाँच सौ गाड़ियाँ आलार कालामके पीछेसे गईं। तब उस गाड़ियोंके सार्थ (=कारवाँ)के पीछे पीछे आते एक आदमीने आलार कालामके पास जाकर पूछा—'क्या भन्ते! पाँच सौ गाड़ियाँ (इधरसे) निकलते देखा है?'

'आवुस! मैंने नहीं देखा।"

"क्या भन्ते! आवाज सुनी?"

"नहीं आवुस! मैंने आवाज नहीं सुनी।"

"क्या भन्ते! सो गये थे?"

"नहीं आवुस! सोया नहीं था।"

"क्या भन्ते! होशमें थे?"

"हाँ, आवुस!"

"तो भन्ते ! आपने होशमें जागते हुए भी पीछेसे निकली पाँच सौ गाळियोंको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना ? किन्तु (यह जो) आपकी संघाटी पर गर्द पळी है ?"

"हाँ ! आवुस।"

"तब भन्ते ! उस पुरुषको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं, जो कि (इन्होंने) होशमे, जागते हुये भी पाँच सौ गाळियोंको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना।'—कह आलार कालामके प्रति बळी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

"तो क्या मानते हो पुक्कुस ! कौन दुष्कर है, दु सम्भव है—जो कि होशमे जागते हुये पाँच सौ गाळियोंका न देखना, न आवाज सुनना, अथवा होशमें जागते हुये, पानीके बरसते बादल के गळगळाते, बिजलीके निकलते और अशनि (=बिजली)के गिरनेके समय भी न (चमक) देखे न आवाज सुने ?"

"क्या है भन्ते पाँच सौ गाळियाँ, छै सौ०, सात सौ ०, आठ सौ ०, नौ सौ ०, दस सौ ०, दस हजार ०, या सौ हजार गाळियाँ, यही दुष्कर दु सम्भव है जो कि होशमे जागते हुये, पानीके बरसते ० बिजलीके गिरनेके समय भी न (चमक) देखे, न आवाज सुने।"

"पुक्कुस ! एक समय मैं **आतुमाके भुसागारमे** विहार करता था। उस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मरे। तब आतुमासे आदमियोकी भीळ निकल कर वहाँ पहुँची, जहाँपर कि वह दो भाई किसान और चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कुस ! मैं भुसागारसे निकलकर द्वारपर टहल रहा था। तब पुक्कुस ! उस भीळसे निकल कर एक आदमी मेरे पास आ खळा होकर बोला—'भन्ते ! इस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मर गये। इसीलिये यह भीळ इकट्ठी हुई है। आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे।'

'आवुस ! यही था।'

'क्या भन्ते ! आपने देखा ?'

'नही, आवुस ! नही देखा।'

'क्या भन्ते ! शब्द सुना ?'

'नही आवुस ! शब्द (भी) नही सुना।'

'क्या भन्ते ! सो गये थे ?'

'नही आवुस ! सोया नही था।

'क्या भन्ते ! होशमे थे ?'

'हाँ, आवुस !'

'तो भन्ते ! आपने होशमें जागते हुये भी देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेको न देखा, न शब्द-को सुना ?'

'हाँ, आवुस !'

'तब पुक्कुस ! उस आदमीको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं ० न आवाज सुने।'—कह मेरे प्रति बळी श्रद्धा प्रकटकर चला गया।"

ऐसा कहनेपर पुक्कुस मल्लपुत्तने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह मैं, जो मेरा आलार कालाममें श्रद्धा (=प्रसाद) थी, उसे हवामें उळा देता हूँ, या शीघ्र धारवाली नदीमें बहा देता हूँ। आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेको खोलदे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधेरेमें चिराग रखदे, कि आँखवाले रूपको देख, ऐसे ही भन्ते !

भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भन्ते ! भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

तब पुक्कुस मल्लपुत्रने (अपने) एक आदमीसे कहा—"आ रे ! मेरे इंगुरके वर्ण वाले चमकते दुशालेको ले आ।"

"अच्छा, भन्ते !"—वह उस आदमीने पुक्कुस मल्लपुत्रको कह, ० दुशालेको ला दिया। तब पुक्कुस मल्लपुत्रने ० दुशाला भगवान्को अर्पित किया—

"भन्ते ! कृपाकरके इस मेरे ० दुशालेको स्वीकार करें।"

"तो पुक्कुस ! एक मुझे ओढ़ा दे, एक आनदको।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह, पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्को उत्तर दे, एक ० शाल भगवान्को ओढ़ा दिया, एक ० आयुष्मान् आनदको।

तब भगवान्ने पुक्कुस मल्लपुत्रको धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित=समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ० सप्रहर्षित हो पुक्कुस मल्लपुत्र आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब पुक्कुस मल्ल-पुत्रके जानेके थोळीही देर बाद आयुष्मान् आनदने उस (अपने) ० शालको भगवान्के शरीरपर ढाँक दिया। भगवान्के शरीरपर किरणसी फूटी जान पळती थी। तब आयुष्मान् आनदने भगवान्से यह कहा—

'आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! कितना परिशुद्ध=पर्यवदात तथागतके शरीरका वर्ण है ! ! भन्ते ! यह ० दुशाला भगवान्के शरीरपर किरणसा जान पळता है।'

"ऐसा ही है आनन्द ! ऐसा ही है आनन्द ! दो समयोंमें आनन्द ! तथागतके शरीरका वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध=पर्यवदात जान पळता है। किन दो समयोंमें ? जिस समय तथागतने अनुपम सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किया, और जिस रात तथागत उपादि (=आवागमनके कारण) रहित निर्वाणको प्राप्त होते हैं। आनन्द ! इन दो समयोंमें ०। आनन्द ! आज रातके पिछले पहर कुसीनाराके उपवर्त्तन (नामक) मल्लोंके शालवनमें जोळे शालवृक्षोंके बीच तथागतका परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द ! जहाँ ककुत्था नदी है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते !" कह आयुष्मान् आनदने भगवान्को उत्तर दिया।

इंगुर वर्णवाले चमकते दुशालेको पुक्कुसने अर्पण किया।
उनसे आच्छादित बुद्ध सोनेके वर्ण जैसे शोभा देते थे॥१५॥

"अच्छा भन्ते !"

तब महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहाँ अम्बवन (आम्रवन) था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् चुन्दकसे बोले—

'चुन्दक ! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दे। चुन्दक थक गया हूँ, लेटूँगा।"

"अच्छा भन्ते।"

तब भगवान् पैरपर पैर रख, स्मृतिसंप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे। आयुष्मान् चुन्दक वहीं भगवान्के सामने बैठे।

बुद्ध उत्तम, सुंदर स्वच्छ जलवाली ककुत्था नदी पर जा,
लोकमें अद्वितीय, शास्ताने अ-क्लान्त हो स्नान किया॥१६॥
स्नानकर, पानकर चुन्दको आगे कर भिक्षु-गणके बीचमें (चलने)

धर्मके वक्ता प्रवक्ता महर्षि भगवान् आम्रवनमें पहुँचे ॥१७॥
चुन्दक भिक्षुसे कहा—चौपेती सघाटी बिछाओ, लेटूँगा।
आत्मसयमीसे प्रेरित हो तुरन्त चौपेती (सघाटी)को बिछा दिया।
अक्लान्त हो शास्ता लेट गये, चुन्द भी वहाँ सामने बैठ गये ॥१८॥
तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! शायद कोई चुन्द कर्मारपुत्रको चिंतित करे (=विप्पटिसार उपदहेय) (और कहे)—'आवुस चुन्द! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आनद! चुन्द कर्मार पुत्रकी इस चिंताको दूर करना (और कहना)—'आवुस! लाभ है तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आवुस चुन्द! मैंने यह भगवान्‌के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया—'यह दो पिंड-पात समान फलवाले=समान विपाकवाले हैं, दूसरे पिंडपातोंसे बहुतही महाफल-प्रद=महानृशसतर हैं। कौनसे दो? (१) जिस पिंडपात (=भिक्षा) को भोजनकर तथागत अनुत्तर सम्यक्-सबोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्त हुये, (२) और जिस पिंडपातको भोजनकर तथागत अन्-उपादिशेष निर्वाणधातु (=दुःख-कारण-रहित निर्वाण) को प्राप्त हुये। आनन्द! यह दो पिंडपात०। चुन्द कर्मारपुत्रने आयु प्राप्त करानेवाले कर्मको सचित किया, ०वर्ण०, ०सुख०, ०यश०, ० स्वर्ग०, ० आधिपत्य प्राप्त करानेवाले कर्मको सचित किया।' आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्रकी चिन्ताको इस प्रकार दूर करना।"

तब भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—
"(दान) देनेसे पुण्य बढ़ता है, सयमसे वैर नहीं सचित होता।
सज्जन बुराईको छोळता है, (और) राग-द्वेष मोहके क्षयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है॥१७॥

(इति) चतुर्थ माणवार ॥४॥

M. N.

४—जीवनकी अन्तिम घळियाँ

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनदको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ हिरण्यवती नदीका परला तीर है, जहाँ कुसीनाराके मल्लोंका शालवन उपवत्तन है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ हिरण्यवती० मल्लोंका शालवन था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द! यमक (=जुळवे)-शालोंके बीचमें उत्तरकी ओर सिरहानाकर चारपाई (=मचक) बिछा दे। थका हूँ, आनन्द! लेटूँगा।" "अच्छा भन्ते!"

तब भगवान्० दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे।

उस समय अकालहीमें वह जोळे शाल खूब फूले हुये थे। तथागतकी पूजाके लिये वे (फूल) तथागतके शरीरपर बिखरते थे। दिव्य मन्दार-पुष्प आकाशसे गिरते थे, वह तथागतके शरीर पर बिखरते थे। दिव्य चदन चूर्ण०। तथागतकी पूजाके लिये आकाशमें दिव्य वाद्य बजते थे। ० दिव्य सगीत०।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—"आनद! इस समय अकालहीमें यह जोळे शाल खूब फूले हुये हैं। ०। किन्तु, आनन्द! इनसे तथागत सत्कृत गुरुकृत, मानित-पूजित नहीं होते। आनन्द! जो कि भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्मके मार्गपर आरूढ हो विहरता

है, यथार्थ मार्गपर आरूढ़ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है; उसमें तथागत ० पूजित होते है। ऐसा आनंद। तुम्हें सीखना चाहिये।"

उस समय आयुष्मान् उपवान भगवान्‌पर पंखा झलते भगवान्‌के सामने खळे थे। तब भगवान्‌ने आयुष्मान उपवानको हटा दिया—

"हट जाओ, भिक्षु! मत मेरे सामने खळे होओ।"

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्‌के समीप चारी=सन्तिकावचर उपस्थाक रहे है। किन्तु, अन्तिम समयमें भगवान्‌ने उन्हे हटा दिया—हट जाओ! भिक्षु ०। क्या हेतु=प्रत्यय है, जो कि भगवान्‌ने आयुष्मान् उपवानको हटा दिया—०?'

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्‌के ० उपस्थाक रहे हैं। ० क्या हेतु ० है?"

"आनंद! बहुतसे दसो लोक-धातुओंके देवता तथागतके दर्शनके लिये एकत्रित हुये हैं। आनंद! जितना (यह) कुसीनाराका उपवर्तन मल्लोंका शालवन है, उसकी चारों ओर बारह योजन तक बालके नोक गळाने भरके लिये भी स्थान नही है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हो। आनन्द! देवता परेशान हो रहे हैं—'हम तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये हैं। तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध कभी ही कभी लोकमें उत्पन्न होते है। आज ही रातके अन्तिम पहरमें तथागतका परिनिर्वाण होगा। और यह महेशाख्य (=प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान्‌के सामने खळा है। अन्तिम समयमें हमें तथागतका दर्शन नही मिल रहा है।'

'भन्ते! भगवान् देवताओंके बारेमें कैसे देख रहे है?'

"आनंद! देवता आकाशको पृथिवी ख्यालकर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ पकळकर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष) की भाँति भूमिपर गिर रहे है। (यह कहते) लोट पोट रहे हैं— बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाणको प्राप्त हो रहे है। बहुत शीघ्र चक्षुमान् (=बुद्ध) लोकमें अन्तर्धान हो रहे हैं। और जो देवता होश-चेतवाले हैं, वह होश-चेत स्मृति सप्रजन्यके साथ सह रहे हैं—'संस्कृत (=कृत वस्तुयें) अनित्य है। सो कहाँ मिल सकता है'।"

"भन्ते! पहिले दिशाओंमें वर्षावास कर भिक्षु भगवान्‌के दर्शनार्थ आते थे। उन मनो-भावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्सग हम मिलता था। किन्तु भन्ते! भगवान्‌के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्सग नही मिलेगा।"

"आनन्द! श्रद्धालु कुल-पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (=वैराग्यप्रद) हैं। कौनसे चार? (१) 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये (=**लुम्बिनी**)' यह स्थान श्रद्धालु ०! (२) 'यहाँ तथा-गतने अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको प्राप्त किया' (=**बोधगया**) ०। (३) यहाँ तथागतने अनुत्तर (=सर्व श्रेष्ठ) धर्मचक्रको प्रवर्तन किया (=**सारनाथ**) ०। (४) 'यहाँ तथागत अनुपादि-शेष निर्वाण-धातुको प्राप्त हुये (=**कुसीनारा**) ०। ० यह चार स्थान दर्शनीय ० हैं। आनन्द! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक उपासिकायें (भविष्यमें यहाँ) आवेंगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये', ० 'यहाँ तथागत ० निर्वाण ० को प्राप्त हुये ।"

(२) स्त्रियोंके प्रति भिक्षुओंका बर्ताव

"भन्ते! स्त्रियोंके साथ हम कैसा बर्ताव करेंगे?"

"अ-दर्शन (=न देखना), आनन्द!"

"दर्शन होनेपर भगवान् कैसे बर्ताव करेंगे?"

"आलाप (=बात) न करना, आनन्द !"
"बात करनेवालेको कैसा करना चाहिये ?"
"स्मृति(=होश)को सँभाले रखना चाहिये ?"

(३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया

"भन्ते ! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे ?" "आनन्द ! तथागतकी शरीर-पूजासे तुम बेपर्वाह रहो। तुम आनन्द सच्चे पदार्थ (=सदर्थ)के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थके लिये उद्योग करना। सत्-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसंयमी हो विहरना। हैं, आनन्द ! क्षत्रिय पंडित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहपति पडित भी, तथागतमे अत्यन्त अनुरक्त, वह तथागतकी शरीर-पूजा करेंगे।"

"भन्ते ! तथागतके शरीरको कैसे करना चाहिये ?" "जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये !"

"भन्ते ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है ?"

"आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते है, नये वस्त्रसे लपेटकर धुनी रुईसे लपेटते हैं। धुनी रुईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते हैं। इस प्रकार लपेटकर तेलकी लोहद्रोणी(=दोन) मे रखकर, दूसरी लोह-द्रोणीसे ढाँककर, सभी गधो (वाले काष्ठ)की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीरको जलाते है, जलाकर बळे चौरस्ते पर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते है।"

"वहाँ आनन्द ! जो माला, गध या चूर्ण चढायेंग, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे, तो वह दीर्घ काल तक उनके हित-सुखके लिये होगा। आनद ! चार स्तूपार्ह(=स्तूप बनाने योग्य)हैं। कौनसे चार ? (१) तथागत सम्यक् सबुद्ध स्तूप बनाने योग्य है। (२) प्रत्येक सबुद्ध ०। (३) तथागतका श्रावक (=शिष्य) ०। (४) चक्रवर्ती राजा आनद, स्तूप बनाने योग्य है। सो क्यो आनद ? तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध स्तूपार्ह है ? यह उन भगवान् ० सबुद्धका स्तूप है—(सोचकर) आनद ! बहुतसे लोग चित्तको प्रसन्न करेंगे चित्तको प्रसन्न कर मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होगे। इस प्रयोजनसे आनद। तथागत ० स्तूपार्ह है। ०। किस लिये आनद ! राजा चक्रवर्ती स्तूपार्ह है ? आनन्द ! यह धार्मिक धर्मराजका स्तूप है, सोच आनद ! बहुतसे आदमी चित्तको प्रसन्न करेंगे ०। ० आनद ! यह चार स्तूपार्ह है।

(४) आनन्दके गुण

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमे जाकर कपिसीस (=खूँटी)को पकळकर रोते खळे हुये— 'हाय ! मै शैक्ष्य=सकरणीय हूँ। और जो मेरे अनुकपक शास्ता है, उनका परिनिर्वाण हो रहा है !!"

भगवान्ने भिक्षुओको आमत्रित किया—"भिक्षुओ ! आनन्द कहाँ है ?"

"यह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार(=कोठरी)मे जाकर ० रोते खळे है ०।"

"आ ! भिक्षु ! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आवुस आनन्द ! शास्ता तुम्हे बुला रहे है।" "अच्छा, भन्ते !"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने कहा—

"नही आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ ! मैंने तो आनन्द ! पहिले ही कह दिया है—सभी प्रियो=मनापोसे जुदाई ० होनी है, सो वह आनन्द ! कहाँ मिलनेवाला है। जो कुछ जात (=उत्पन्न) =भूत=सस्कृत है, सो नाश होनेवाला है। 'हाय ! वह नाश न हो।' यह सभव नही। आनन्द ! तूने

दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवा की है। मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे ०। ० मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे ०। आनन्द ! तू कृतपुण्य है। प्रधान (=निर्वाण-साधन)में लग जल्दी अनास्रव(=मुक्त) हो जा।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो तथागत अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध अतीतकालमें हुए, उन भगवानोंके भी उपस्थाक (=चिरसेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा (उपस्थाक) आनन्द। भिक्षुओ ! जो तथागत ० भविष्यमें होंगे ०। भिक्षुओ ! आनन्द पंडित है। भिक्षुओ ! आनन्द मेधावी है। वह जानता है—यह काल भिक्षुओंका तथागतके दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियोंका है, यह काल उपासकोंका है, यह काल उपासिकाओंका है। यह काल राजाका ० राज-महामात्यका ० तीर्थिकोंका ० तीर्थिक-श्रावकोंका है।

"भिक्षुओ ! आनन्दमें यह चार आश्चर्य अद्‌भुत बातें (=धर्म) है। कौनसी चार ? (१) यदि भिक्षु-परिषद् आनन्दका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द **धर्मपर** भाषण करता है, भाषणसे भी सन्तुष्ट हो जाती है, भिक्षुओ ! भिक्षु-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। (२) यदि भिक्षुणी-परिषद् ०। (३) यदि उपासक-परिषद् ०। (४) यदि उपासिका-परिषद् ०। भिक्षुओ ! यह चार ०।

(५) चक्रवर्तीके चार गुण

'भिक्षुओ ! चक्रवर्ती राजामें यह चार आश्चर्य, अद्‌भुत बातें है। कौनसी चार ? (१) यदि भिक्षुओ ! क्षत्रिय-परिषद् चक्रवर्ती राजाका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, तो भाषणसे सन्तुष्ट हो जाती है, और भिक्षुओ ! क्षत्रिय-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि चक्रवर्ती राजा चुप होता है। (२) यदि ब्राह्मण-परिषद् ०। (३) यदि गृहपति-परिषद् ०। (४) यदि श्रमण-परिषद् ०। इसी प्रकार भिक्षुओ ! यह चार आश्चर्य, अद्‌भुत बाते आनन्दमें है। (१) यदि भिक्षु-परिषद् ०। ०। भिक्षुओ ! यह चार आश्चर्य अद्‌भुत बाते आनन्दमे है।'

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक)में, जगली नगलेमें शाखा-नगरकमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवे। भन्ते ! और भी महानगर है, जैसे कि **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी**। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करे। वहाँ बहुतसे क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशाल तथागतके भक्त है, वह तथागतके शरीरकी पूजा करेगे।"

(६) महासुदर्शनजातक[1]

"मत आनन्द ! ऐसा कह, मत आनन्द ! ऐसा कह—'इस क्षुद्र नगले ०।' आनन्द ! पूर्वकालमें **महासुदर्शन** नामक चारो दिशाओंका विजेता, देशोंपर अधिकारप्राप्त, सात रत्नोंसे युक्त धार्मिक धर्मराजा चक्रवर्ती राजा था। आनन्द ! यह कुसीनारा राजा महासुदर्शनकी **कुशावती** नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाईमें बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तारमें सात योजन थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=जनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द ! देवताओं-

---

[1] देखो महासुदस्सन-सुत्त पृ० १५२।

की आलकमदा नामक राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=यक्ष-आकीर्ण और सुभिक्ष है, इसी प्रकार ०। आनन्द ! कुशावती राजधानी दिन-रात, हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शंख-शब्द, ताल-शब्द, 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दोंसे शून्य न होती थी। आनन्द ! कुसीनारामें जाकर कुसीनारावासी मल्लोंको कह—'वाशिष्टो ! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्टो ! चलो वाशिष्टो ! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये।" "अच्छा भन्ते !"

आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिनकर, पात्रचीवर ले, अकेले ही कुसीनारामें प्रविष्ट हुए। उस समय कुसीनारावासी मल्ल किसी कामसे सस्थागारमें जमा हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मल्लोंका सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनारावासी मल्लोंसे यह बोले—'वाशिष्टो ! ०।'

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल भार्यायें दुःखित दुर्मना दुःख-समर्पित चित्त हो, कोई कोई बालोंको बिखेर रोते थे, बाँह पकळकर क्रन्दन करते थे, कटे (वृक्ष)से गिरते थे, (भूमिपर) लोटते थे—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं ०। बहुत जल्दी लोक-चक्षु अन्तर्धान हो रहे हैं। तब मल्ल ० दुःखित ० हो, जहाँ उपवत्तन मल्लोंका शालवन था, वहाँ गये।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यदि मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कर भगवान्‌की वन्दना करवाऊँ, तो भगवान् (सभी) कुसीनाराके मल्लोंसे अवन्दित ही होंगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यों न मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्‌की वन्दना करवाऊँ—'भन्ते ! अमुक नामक मल्ल स-पुत्र, स-भार्य, स-परिषद्, स-अमात्य भगवान्‌के चरणोंको शिरसे वन्दना करता है।' तब आयुष्मान् आनन्दने कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भागवान्‌की वन्दना करवाई—०। इस उपायसे आयुष्मान् आनन्दने, प्रथम याम (=छैसे दस बजे राततक) में कुसीनाराके मल्लोंसे भगवान्‌की वन्दना करवा दी।

(७) सुभद्रकी प्रव्रज्या

उस समय कुसीनारामें सुभद्र नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजकने सुना, आज रातको पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा। तब सुभद्र परिव्राजकको ऐसा हुआ—"मैंने वृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकोंको यह कहते सुना है—कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं।' और आज रातके पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह संशय (=कंखा-धम्म) उत्पन्न है, इस प्रकार मैं श्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है, जिससे मेरा यह संशय हट जायेगा।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लोंका शाल-वन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोला—'हे आनन्द ! मैंने वृद्ध=महल्लक ० परिव्राजकोंको यह कहते सुना है ०। सो मैं श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ?"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

"नहीं आवुस ! सुभद्र ! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए हैं।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने ०। ०। तीसरी बार भी ०। ०।

भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा-सलाप सुन लिया। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"तो आनन्द ! सुभद्रको प्रव्रजित करो।" "अच्छा भन्ते !"

तब सुभद्र परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! लाभ हैं तुम्हें, सुलाभ हुआ तुम्हें, जो यहाँ शास्ताके सम्मुख अन्तेवासी (=शिष्य)के अभिषेकसे अभिषिक्त हुए।"

सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसपदा पाई। उपसपन्न होनेके अचिरहीमें आयुष्मान् सुभद्र आत्मसयमी हो विहार करते, जल्दी ही, जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें स्वय जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरने लगे। ०। सुभद्र अर्हतोंमेंसे एक हुए। वह भगवान्‌के अन्तिम शिष्य हुए।

(इति) पचम भाणवार ॥५॥

(८) अन्तिम उपदेश

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत-शास्ता (=चलेगये गुरु)का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द ! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त (=विहित) किये हैं, मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है।—(२) आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द ! स्थविरतर (=उपसपदा प्रव्रज्यामें अधिक दिनका) भिक्षु नवक-तर (=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या आवुस, कहकर पुकारे। नवकतर भिक्षु स्थविरतरको 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारे। (३) इच्छा होनेपर सघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदो (=भिक्षुनियमो)को छोळदे। (४) आनन्द ! मेरे बाद छन्न भिक्षुको ब्रह्मदण्ड करना चाहिये।"

"भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है ?"

"आनन्द ! छन्न, भिक्षुओको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओको उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश=अनुशासन करना चाहिये।'

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

'भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, सघमें एक भिक्षुको भी कुछ शका हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान्‌के सामने कुछ पूछ न सके'।"

ऐसा कहनेपर वह भिक्षु चुप रहे। दूसरी बार भी भगवान्‌ने ०।०। तीसरी बार भी ०। ०। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—'आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! मैं भन्ते ! इस भिक्षु-सघमें इतना प्रसन्न हूँ। (यहाँ) एक भिक्षुको भी बुद्ध, धर्म, सघ, मार्ग, या प्रतिपद्‌के विषयमें सदेह (=काक्षा)=विमति नहीं है।"

"आनन्द ! 'प्रसन्न हूँ' कह रहा है ? आनन्द ! तथागतको मालूम है—इस भिक्षु-सघमें एक भिक्षुको भी बुद्ध०के विषयमें सदेह=विमति नहीं है। आनन्द ! इन पाँचसौ भिक्षुओंमें जो सबसे छोटा भिक्षु है। वह भी न गिरनेवाला हो, नियत सबोधि-परायण है।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—"हन्त ! भिक्षुओ अब तुम्हे कहता हूँ—"सस्कार (=कृतवस्तु) व्यय धर्मा (=नाशमान) हैं, अप्रमादके साथ (=आलस न कर) (जीवनके लक्ष्यको) सपादन करो।"—यह तथागतका अन्तिम वचन है।"

५–निर्वाण

तब भगवान् प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ० तृतीय ध्यानको ०। ० चतुर्थ ध्यानको ०। ० आकाशानन्त्यायतनको ०। ० विज्ञानानन्त्यायतनको ०। ० आकिंचन्यायतनको ०। ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको ०। ० संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए। तब आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरुद्धसे कहा—"भन्ते अनुरुद्ध ! क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये ?"

"आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए। संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए हैं।"

तब भगवान् संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चारों ध्यानोंसे ऊपरकी समाधि)से उठकर नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हुए। ०। द्वितीय ध्यानसे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ०। चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुए। भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होनेके साथ भीषण, लोमहर्षण महाभूचाल हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बजीं। भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होनेके साथ सहापति ब्रह्माने यह गाथा कही—

"संसारके सभी प्राणी जीवनसे गिरेंगे।
जबकि ऐसे लोकमें अद्वितीय पुरुष बलप्राप्त,
तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाणको प्राप्त हुए" ॥२१॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० देवेन्द्र शक्रने यह गाथा कही—
"अरे ! संस्कार (=उत्पन्न वस्तुयें) उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं।
(जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, उनका शान्त होना ही सुख है" ॥२२॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् अनुरुद्धने यह गाथा कही—
"स्थिर-चित्त तथागतको (अब) श्वास प्रश्वास नहीं रहा।
शान्तिके लिये निष्कम्प हो मुनिने काल किया" ॥२३॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् आनन्दने यह गाथा कही—
"जब सर्वश्रेष्ठ आकारसे युक्त सम्बुद्ध परिनिर्वाणको प्राप्त हुए,
तो उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ" ॥२५॥

भगवान्के परिनिर्वाण हो जानेपर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह पकड़कर क्रन्दन करते थे, कटे (वृक्ष) के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत हो गये ०। किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य हैं, सो कहाँ मिलेगा ?'

तब आयुष्मान् अनुरुद्धने भिक्षुओंसे कहा—

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान्ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—'सभी प्रियो०से जुदाई ० होती है ०'।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्दने वह बाकी रात धर्म-कथामें बिताई। तब आयुष्मान् अनुरुद्धने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द ! कुसीनारामें जाकर, कुसीनाराके मल्लोंसे कहो—'वासिष्ठो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये। अब जिसका तुम काल समझो (वह करो)।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले कुसीनारामें प्रविष्ट हुए। उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मल्ल, संस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन)में जमा थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लोंका संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनाराके मल्लों-से बोले—

"वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल-भार्यायें दु खित हो० कोई केशोको बिखेरकर क्रदन करती थी, दुर्मना चित्तमें सतप्त हो कोई कोई केशोको बिखेर कर रोती थी, बाँह पकळकर रोती थी, कटे (वृक्ष)की भाँति गिरती थी, (धरतीपर) लुठित विलुठित होती थी—"बळी जल्दी भगवान्का निर्वाण हुआ, बळी जल्दी सुगतका निर्वाण हुआ, बळी जल्दी लोकनेत्र अतर्धान हो गये।"

तब कुसीनाराके मल्लोने पुरुषोको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कुसीनाराकी सभी गध-माला और सभी वाद्योको जमा करो।"

तब कुसीनाराके मल्ल गध-माला, सभी वाद्यो, और पाँच हजार थान (=दुस्स)-जोळोको लेकर जहाँ [1]उपवत्तन ० था, जहाँ भगवान्का शरीर था, वहाँ गये। जाकर उन्होने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गधसे सत्कार करते,=गुरुकार करते,=मानते=पूजते कपळेका वितान (=चँदवा) करते, मडप बनाते उस दिनको बिता दिया। तब कुसीनाराके मल्लोको हुआ—'भगवान्के शरीरके दाह करनेको आज बहुत विकाल हो गया। अब कल भगवान्के शरीरका दाह करेंगे।' तब कुसीनाराके मल्लो-ने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गधसे सत्कार करते=गुरुकार करते=मानते=पूजते, चँदवा तानते, मडप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया। तीसरा दिन भी ०। ० चौथा दिन भी ०। ० पाँचवाँ दिन भी ०। छठाँ दिन भी ०। तब सातवें दिन कुसीनाराके मल्लोको यह हुआ—'हम भगवान्के शरीरको नृत्य० गधसे सत्कार करते नगरके दक्षिणसे लेजाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्के शरीरका दाह करें। उस समय मल्लोके आठ प्रमुख (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्के शरीरको उठाना चाहते थे, लेकिन वह नही उठा पाते थे। तब कुसीनाराके मल्लोने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—

"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या कारण है, जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख ० नही उठा सकते ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओका अभिप्राय दूसरा है।"

"भन्ते ! देवताओका अभिप्राय क्या है ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्के शरीरको नृत्य०से सत्कार करते ० नगरके दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्के शरीरका दाह करें। देवताओका अभिप्राय है—हम भगवान्के शरीरको दिव्य नृत्यसे० सत्कार करते ० नगरके उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वारसे नगरमें ० प्रवेशकर, नगरके बीच ले जा, पूर्व-द्वारसे निकल, नगरके पूर्व ओर (जहाँ) [2]**मुकुट-बधन** नामक मल्लोका चैत्य (=देवस्थान) है, वहाँ भगवान्के शरीरका दाह करें।"

"भन्ते ! जैसा देवताओका अभिप्राय है—वैसा ही हो।"

उस समय कुसीनारामें जाँघभर मन्दारव-पुष्प (=एक दिव्य पुष्प) बरसे हुए थे।

तब देवताओ और कुसीनाराके मल्लोने भगवान्के शरीरको दिव्य और मानुष नृत्य०के साथ सत्कार करते ० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर० (जहाँ) मुकुट-बधन नामक मल्लोका चैत्य था, वहाँ भगवान्का शरीर रक्खा। तब कुसीनाराके मल्लोने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"भन्ते ! आनन्द ! हम तथागतके शरीरको कैसे करे ?"

---

[1] **वर्तमान मायाकुअर कसया (जि गोरखपुर)।**

[2] **वर्तमान रामाभार, कसया (जि. गोरखपुर)।**

"वाशिष्टो! जैसे चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं, वैसे ही तथागतके शरीरको करना चाहिये।"

"कैसे भन्ते! चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं।"

"वाशिष्टो! चक्रवर्ती राजाके शरीरको नये कपळेसे लपेटते हैं०। (डाहकर) बळे चौरस्ते पर तथागतका स्तूप बनवाना चाहिये। वहाँ जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्तको प्रसन्न करेंगे, उनके लिये वह चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने आदमियोंको आज्ञा दी—"जाओ रे! धुनी रुईको एकत्रित करो।

तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको कोरे वस्त्रमें लपेटा। कोरे वस्त्रमें लपेटकर धुने कपाससे लपेटा। धुने कपाससे लपेटकर, कोरे वस्त्रमें लपेटा। इसी प्रकार पाँच सौ जोळेमें लपेटकर ताँबे(=लोह)की तेलवाली कळाही (=द्रोणी)में रख सारे गंध (काष्ठों)की चिता बनाकर, भगवान्‌के शरीरको चितापर रक्खा।"

६—महाकाश्यपको दर्शन

उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ पावा और कुसीनारा बीचमें, रास्तेपर जा रहे थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक कुसीनारामें मदारका पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवकको दूरसे आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा—

"आवुस! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो?"

"हाँ, आवुस! जानता हूँ, श्रमण गौतमको परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह होगया, मैंने यह मदार-पुष्प वहींसे पाया।"

यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बाँह पकळकर रोते०। उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्धप्रव्रजित (=बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिषद्‌में बैठा था। तब वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंसे यह कहा—'मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त होगये। उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है।' अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो! मत सोचो, मत रोओ। आवुसो! भगवान्‌ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई० होती है, सो वह आवुसो! कहाँ मिलनेवाला है? जो जात(=उत्पन्न)=भूत० है, वह नाश होनेवाला है। 'हाय! वह नाश मत हो'—यह सम्भव नहीं।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिरसे नहाकर, नया वस्त्र पहिन, भगवान्‌की चिताको लीपना चाहते थे, किन्तु नहीं (लीप) सकते थे। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—"भन्ते! अनुरुद्ध! क्या हेतु है=क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख० नहीं (लीप) सकते हैं।"

"वाशिष्टो! ० देवताओंका दूसरा ही अभिप्राय है। आयुष्मान् महाकाश्यप पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें आ रहे हैं। भगवान्‌की चिता तब तक न जलेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्‌के चरणोंको शिरसे वन्दना न कर लेंगे।"

"भन्ते! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लोंका मुकुटबन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान्‌की चिता थी, वहाँ पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोळ, तीन बार चिताकी परिक्रमाकर,

तब (१) राजा०[1] अजातशत्रु०ने राजगृहमें भगवान्‌की अस्थियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) की। वैशालीके लिच्छवियोंने भी०। (३) कपिलवस्तुके शाक्योंने भी०। (४) अल्ल-कप्पके बुलियोंने भी०। (५) रामगामके कोलियोंने भी०। वेठदीपके ब्राह्मणनेभी०। (७) पावाके मल्लोंने भी०। (८) कुसीनाराके मल्लोंने भी०। (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका०। (१०) पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अंगारोंका०।

इस प्रकार आठ शरीर(=अस्थि)के स्तूप और एक कुम्भ-स्तूप पूर्वकालमें (=भूतपूर्व) मे थे।

'चक्षुमान्‌का शरीर आठ द्रोण था, (जिसमें) सात द्रोण जम्बूद्वीपमें पूजित होते हैं।

(और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण रामगाममें नागोंसे पूजा जाता है॥२८॥

एक दाढ़ (=दाठा) स्वर्ग-लोकमें पूजित है, और एक गंधारपुरमें पूजी जाती है।

एक कलिंगराजाके देशमें है, और एकको नागराज पूजते हैं॥२९॥

उसी तेजसे पटुकाकी भाँति यह वसुधरा मही अलंकृत है।

इस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध)का शरीर सत्कृतों द्वारा सुसत्कृत हुआ॥३०॥

देवेन्द्रों नागेन्द्र नरेन्द्रोंसे पूजित तथा श्रेष्ठ मनुष्योंसे पूजित हुआ।

उसे हाथ जोळकर वंदना करो, सौ कल्पमें भी बुद्ध होना दुर्लभ है॥३१॥

चालीस केश रोम आदिको चारों ओर,

एक एक करके नाना चक्रवालोंमें देवता ले गये॥३२॥

---

[1] अ० क० "कुसीनारासे राजगृह पचीस योजन है। इस बीचमें आठ ऋषभ चौळा समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओंने मुकुट-बंधन और सस्थागारमें जैसी पूजा की थी, वैसीही पूजा पचीस योजन मार्गमें की। (उसने) अपने पाँचसौ योजन परिमंडल (=घेरेवाले) राज्यके मनुष्योंको एकत्रित करवाया। उन धातुओंको ले, कुसीनारासे धातु(-निमित्त)-क्रीळा करते निकलकर (लोग) जहाँ सुन्दर पुष्पोंको देखते, वहीं पूजा करते थे। इस प्रकार धातु लेकर आते हुए, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये। लाई गई धातुओंको लेकर (अजातशत्रुने) राजगृहमें स्तूप बनवाया, पूजा कराई।

इस प्रकार स्तूपोंके प्रतिष्ठित होजानेपर महाकाश्यप स्थविरने धातुओंके अन्तराय (=विघ्न) को देखकर, राजा अजातशत्रुके पास जाकर कहा—"महाराज! एक धातु निधान (=अस्थि धातु रखनेका तहखाना) बनाना चाहिये।" "अच्छा भन्ते!"

स्थविर उन-उन राज-कुलोंको पूजा करने मात्रकी धातु छोळकर बाकी धातुओंको ले आये। रामग्राममें धातुओंके नागोंके ग्रहण करनेसे अन्तराय न था, 'भविष्यमें लंका-द्वीपमें इसे महाविहारके महाचैत्यमें स्थापित करेंगे'—(के ख्यालसे भी) न ले आये। बाकी सातों नगरोंसे ले आकर, राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें (जो स्थान है); राजाने उस स्थानको खुदवाकर, उससे निकली मिट्टीसे ईंटें बनवाईं। 'यहाँ राजा क्या बनवाता है', पूछनेवालोंको भी 'महाश्रावकोंका चैत्य बनवाता है' यही कहते थे, कोई भी धातु-निधानकी बात न जानता था।

१७-महासुदस्सन-सुत्त (२।४)

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन-जातक)। १—कुशावती राजधानी। २—राजाके सात रत्न। ३—राजाकी चार ऋद्धियाँ। ४—धर्म प्रासाद (महल)। ५—राजा ध्यानमें रत। ६—राजाका ऐश्वर्य। ७—सुभद्रादेवीका दर्शनार्थ आना ८—राजाकी मृत्यु। ९—बुद्धही महासुदर्शन राजा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय अपने परिनिर्वाणके[1] वक्त भगवान् कुसिनाराके पास उपवत्तन नामक मल्लोंके सालवनमें दो साल वृक्षोंके बीच विहार करते थे।

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन जातक)

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मत इस छुद्र नगलेमें, जगली नगलेमें, शाखा-नगलेमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवें। भन्ते! और भी महानगर है, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी, वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करें। वहाँ बहुत से क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण महाशाल, गृह-पति महाशाल तथागतके भक्त हैं, वे तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे।"

"नही आनन्द! ऐसा न कहो, मत इस क्षुद्र नगले ०।

१–कुशावती राजधाना

"आनन्द! पूर्वकालमें महासुदस्सन नामक चारो दिशाओपर विजय पाने वाला, दृढ शासक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। आनन्द! महासुदस्सन राजाकी यही कुसिनारा कुशावती नामकी राजधानी थी। आनन्द! वह कुशावती पूरबसे लेकर पश्चिमकी ओर लम्बाईमें बारह योजन थी, चौळाईमें उत्तरसे दक्षिण सात योजन। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध थी, उन्नतिशील थी, बहुत आबादी वाली थी, गुलज़ार थी, और सुभिक्ष थी। आनन्द! जैसे देवताओं की आलकमन्दा नाम राजधानी समृद्ध ० है, वैसे ही आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध ० थी। आनन्द! कुशावती राजधानी दस शब्दोसे रात दिन सदा भरी रहती थी, जैसे हाथीके शब्द, अश्व शब्द, रथ शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत शब्द, झाझ शब्द, ताल शब्द, शख-शब्द, "खाओ" "पीओ" के शब्द।

"आनन्द! कुशावती राजधानी सात प्राकारोंसे घिरी थी। एक प्राकार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्य, एक स्फटिकका, एक पद्मराग, एक मसारगल्ल और एक सब प्रकारके रत्नोंका।

---

[1] मिलाओ पृष्ठ १४३ (महासुदर्शन जातक)।

"आनन्द! कुशावती राजधानीमें चार रंगके दर्वाजे लगे थे। एक द्वार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्यका और एक स्फटिकका। प्रत्येक द्वारमें तीन पोरसा (एक पोरसा=५ हाथ) गळे, तीन पोरसा गळे हुये, सब मिलाकर बारह पोरसा लम्बे सात सात खम्भे गळे थे। एक खम्भा सोनेका ० एक सब प्रकारके रत्नोंका।

"आनन्द! कुशावती राजधानी सात ताल-पंक्तियोंसे घिरी थी। एक ताल-पंक्ति सोने की ० एक सब प्रकारके रत्नोंकी। सोनेके तालका स्कन्ध (=तना,धळ) सोनेका (और) पत्ते और फल चाँदीके थे। चाँदीके तालका स्कन्ध चाँदीका (और) पत्ते और फल सोनेके थे। वैदूर्यके तालका ० पत्ते और फल स्फटिकके थे। स्फटिकके ताल ० पत्ते और फल वैदूर्यके थे। लोहि-ताङ्कके ताल ० फल और पत्ते मसारगल्लके थे। मसारगल्लके ताल ० फल और पत्ते लोहिताङ्कके थे। सब प्रकारके रत्नोंके पत्ते और फल ताल ० सर्वरत्न-मय थे।—आनन्द! हवामें हिलनेपर उन ताल-पंक्तियोंसे सुन्दर, प्रसन्नकर, प्रिय (और) मदनीय (=मोह लेने वाला) शब्द निकलता था। आनन्द! जैसे (वाद्य-विद्यामें) चतुर लोग जब अच्छी तरह सजे हुये और तालमें मिलाये पाँच अंगोंसे युक्त बाजेको बजाते है, तो उससे सुन्दर ० शब्द निकलता है, वैसेही उन ताल-पंक्तियोंसे ०। आनन्द! उस समय जो कुशावती राजधानीके गुण्डे, जुआरी और शराबी थे, वे उन हवासे हिलती ताल पंक्तियोंके शब्दसे (मस्त हो) नाचते और खेलते थे।

२—चक्रवर्तीके सात रत्न

'आनन्द! राजा महासुदस्सनके पास सात रत्न, और चार ऋद्धियाँ थीं। कौनसे सात रत्न? (१) आनन्द! एक उपोसथ-पूर्णिमाकी रातको उपोसथ व्रत रख शिरसे स्नानकर, जब राजा महासुदस्सन प्रासादके सबसे ऊपरके तल्लेपर था, तो उसके सामने सहस्र अरों वाला, नाभि नेमि (=पुट्ठी)से युक्त और सर्वाकार परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रगट हुआ। उसे देखकर राजा महासुदस्सनके मनमें ऐसा हुआ—"ऐसा सुना है—उपोसथ पूर्णिमाकी रात शिरसे नहा उपोसथ व्रतकर, प्रासादके ऊपरले तल्लेपर गये जिस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाके सामने सहस्र अरों वाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रगट होता है, वह चक्रवर्ती (राजा) होता है। मैं चक्रवर्ती राजा होऊँगा। आनन्द! तब वह महा-सुदस्सन राजा आसनसे उठ, चादरको एक कंधेपर कर बायें हाथमें सोनेकी झारी ले, दाहिने हाथमें चक्र-रत्नका अभिषेक करने लगा—हे चक्र-रत्न! आपका स्वागत हो, आपकी जय हो!" आनन्द! तब वह चक्र-रत्न पूर्व दिशाकी ओर चला। राजा महासुदस्सनके पास चतुरङ्गिनी सेना थी। आनन्द! जिस प्रदेश-में चक्र-रत्न ठहरता, वहीं राजा महासुदस्सन अपनी चतुरङ्गिनी सेनाके साथ पळाव डालता। आनन्द! जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर कहने लगे—'महाराज! आपका स्वागत हो, (हम लोग सभी) आपके (आधीन) हैं। महाराज! आप आज्ञा दीजिये'। राजा महासुदस्सन ने यह कहा—'जीव नहीं मारना चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, काम (=भोग)में पळकर दुराचार नहीं करना चाहिये, मिथ्या-भाषण नहीं करना चाहिये, शराब आदि नशीली चीज नहीं पीना चाहिये। उचित भोग करना चाहिये।' आनन्द! (इस प्रकार) जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महा-सुदस्सनके अनुयुक्तक (=माडलिक) हुये।

"आनन्द! तब वह चक्र-रत्न पूर्वके समुद्रमें डुबकी लगा, निकल दक्षिण दिशामें ठहरा। ० दक्षिण दिशावाले समुद्रमें ०। ० पश्चिम दिशामें ०। ० उत्तर दिशामें ०। राजा महासुदस्सन के पास चतुर-ङ्गिनी सेना थी। आनन्द! जिस प्रदेशमें चक्र-रत्न ठहरता वहीं राजा ० पळाव डालता था। आनन्द! जो उत्तर दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर ०। ० अनुयुक्तक हुये।

"आनन्द ! तब वह चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत कुशावती राजधानी लौट कर राजा महासुदस्सनके अन्त:पुरके द्वारके पास न्याय करनेके आँगनमें कीलमें ठोकासा ठहर गया। उससे राजा महासुदस्सनका अन्त:पुर बळा शोभायमान होने लगा। इस प्रकार आनन्द ! राजा महासुदस्सनको चक्र-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(२) "आनन्द ! फिर राजाको बिलकुल उजला, चौपहल, ऋद्धियुक्त=अन्तरिक्षमें भी गमन करनेवाला उपोसथ हस्ति-राज नामक हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ। उसे देख राजा० का चित्त बळा प्रसन्न हुआ। यदि हाथी अच्छी तरह सिखाया रहे तो उसकी सवारी बळी अच्छी होती है। आनन्द ! तब वह हस्ति-रत्न, उत्तम जातिका हाथी जैसे बहुत दिनोमे सिखाया गया हो, वैसा शिक्षित था। आनन्द ! तब राजा महासुदस्सनने उस हस्ति रत्नकी परीक्षा करनेके विचारसे पूर्वाह्न (प्रात) समय उसपर चढकर समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका चक्कर लगाके कुशावती राजधानीमें लौटकर प्रातराश किया। आनन्द ! राजा० को इस प्रकारका हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(३) "और फिर आनन्द राजा महासुदस्सनको बिलकुल उजला, काले शिर और मुञ्जके ऐसे केशोवाला, ऋद्धि-युक्त, आकाशमे गमन करनेवाला **बलाहक** अश्वराज नामक अश्वरत्न प्रकट हुआ। उसे देख० प्रसन्न हुआ। यदि अश्व अच्छी तरह सिखाया०० प्रातराश किया। आनन्द ! राजा० अश्वरत्न०।

(४) "और फिर आनन्द ! ० मणि रत्न प्रादुर्भूत हुआ। वह शुभ्र, अच्छी जातिका, आठ पहलुओ वाला, अच्छा खरादा, स्वच्छ, विप्रसन्न (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि था। आनन्द ! उस मणि-रत्नकी आभा चारो ओर एक योजन तक फैलती थी। आनन्द ! राजाने० उस मणि-रत्न की परीक्षा करनेके विचारसे चतुरंगिनी सेनाको सजाकर उस मणिको झडेके ऊपर बाँध रातकी काली अँधियारीमें प्रस्थान किया। आनन्द ! जो चारो ओर गाँव थे वहाँ के लोग उसके प्रकाशसे 'दिन होगया' समझ अपने अपने कामोमें लगने लगे। आनन्द ! राजा० मणि-रत्न०।

(५) "और फिर आनन्द ! ०अभिरूप, दर्शनीय, चित्तको प्रसन्न करनेवाली, परमसौन्दर्य-सम्पन्न, न अधिक लम्बी—न अधिक नाटी, न बहुत दुबली—न बहुत मोटी, न बहुत काली—न बहुत उजली, मनुष्योंके वर्णसे बढकर और देवोके वर्णसे कम (की) स्त्रीरत्न०। आनन्द ! उस स्त्री रत्नका ऐसा कायसस्पर्श था, जैसे मानो रूईका फाहा या कपासका फाहा। आनन्द ! उस० का गात्र शीत-कालमें उष्ण और उष्ण-कालमें शीतल रहता था। आनन्द ! उस०के शरीरसे चन्दनकी (और) मुँहसे कमल की सुगन्ध निकलती थी। आनन्द ! वह स्त्री रत्न राजा०से पहले ही उठ जाती थी और पीछे सोती थी। आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहती थी। मनके अनुकूल आचरण करनेवाली और प्रिय बोलने वाली थी। आनन्द ! वह० राजा० को मनसे भी नही छोळती थी (दूसरे पुरुषके प्रति मनसे भी राग नही करती थी), शरीरसे तो कहाँ तक ? आनन्द० स्त्री-रत्न०।

(६) "और फिर आनन्द ! ० गृहपति (=वैश्य)-रत्न०। उसके अच्छे कर्मोके फलसे उसे दिव्य चक्षु उत्पन्न हुआ। वह उससे स्वामी या बिना स्वामी वाले खजानो (=निधियों) को देख लेता था। उसने राजा० के पास जाकर यह कहा—देव ! आप कोई चिन्ता न करें, मैं आपका धनका कारबार करूँगा। आनन्द ! राजा०ने इस गृहपतिकी परीक्षा करनेके विचारसे नावपर चढकर गङ्गानदीकी बीच धारामें जा उस गृहपति रत्नसे यह कहा—'गृहपति ! मुझे सोने और चाँदी की आवश्यकता है'। 'तो महाराज ! नावको एक किनारे पर ले चले।' 'गृहपति ! यही पर मुझे सोने और चाँदीकी आवश्यकता है।' आनन्द ! तब वह गृहपति-रत्न दोनो हाथोसे जलको छू सोने चाँदी भरे घळे निकाल राजा० से बोला—'महाराज, क्या यह पर्याप्त है ? क्या इतने से

काम हो जायगा ? क्या इतनेसे महाराज सतुष्ट है ?' राजा ० ने कहा—'गृहपति ! यह पर्याप्त ० ।
आनन्द ! ० गृहपति-रत्न ०।

(७) "आनन्द ! ० पण्डित, व्यक्त, मेधावी, और स्वीकरणीय (चीजों) को स्वीकार, तथा त्याज्य (चीजों) के त्यागमें समर्थ परिणायक (=कारबारी) रत्न प्रकट हुआ। उसने राजा ० के पास जाकर यह कहा—देव ! आप चिन्ता न करे, मैं अनुशासन करूँगा।' आनन्द ! ० परिणायक-रत्न ०। आनन्द ! राजा ० इन सात रत्नोंसे युक्त था।

३—चार ऋद्धियाँ

"और फिर आनन्द ! राजा० चार ऋद्धियोंसे युक्त था। किन चार ऋद्धियोंसे ? (१) आनन्द ! राजा० दूसरे मनुष्योसे बहुत अभिरूप=दर्शनीय, प्रिय, परम-सौन्दर्य-सम्पन्न था। आनन्द ! राजा० इसी पृथ्वीमें ऋद्धिसे सम्पन्न था। (२) और आनन्द ! राजा० दीर्घायु था। दूसरे मनुष्योसे बहुत बढ चढकर चिरायु था। आनन्द ! राजा० इस दूसरी ऋद्धिसे युक्त था। (३) और आनन्द ! राजा० नीरोग बना था, आगेकी भाँति न अति शीत, और न अति-उष्ण समान प्रकृतिका था। आनन्द ! राजा० इस तीसरी ऋद्धिसे युक्त था। (४) और आनन्द ! राजा ब्राह्मण और गृहस्थोका प्रिय=मनाप था। आनन्द ! जैसे पिता पुत्रोका प्रिय=मनाप (होता है), उसी तरह राजा० ब्राह्मण और गृहस्थोका ०। आनन्द ! वे ब्राह्मण और गृहस्थ भी राजा० के प्रिय मनाप थे। आनन्द ! जैसे पुत्र पिताके०। आनन्द ! एक समय राजा ० चतुरंगिणी सेनाके साथ उद्यान-भूमिको गया। आनन्द ! उस समय ब्राह्मण और गृहस्थोंने जाकर राजासे यह कहा—'देव ! आप निर्भय जावे, हम लोग आपकी सदा रक्षा करेंगे'। आनन्द ! राजा०ने भी सारथीसे कहा—'सारथि ! बिना किसी भयके रथको हाँको, क्योकि ब्राह्मण० मेरी सदा रक्षा करेंगे'। आनन्द ! राजा० इस चौथी ऋद्धि०।

"आनन्द ! तब राजा०के मनमें यह हुआ—'इन तालोके बीच सौ सौ धनुष (=४०० हाथ) पर पुष्करणी खुदवाऊँ । आनन्द ! राजा०ने उन तालोके बीच सौ सौ धनुषपर पुष्करणियाँ खुदवाई। आनन्द ! वह पुष्करणियाँ चार रंगोंकी ईटोकी बनी थी, एककी ईटे सोनेकी, एककी चाँदीकी, एककी वैदूर्यकी, एककी स्फटिककी। आनन्द ! उन पुष्करणियोमें चार (दिशाओंमे) चार रंगोकी चार सीढियाँ थी—एक की सीढी सोनेकी, एककी चाँदीकी, एककी वैदूर्यकी एककी स्फटिककी। सोनेकी सीढीमें सोनेका खम्भा (और) चाँदीकी काँटियाँ तथा छत थी। चाँदीकी सीढीमे चाँदीका खम्भा और सोनेकी काँटियाँ और छत थी। वैदूर्यकी ० स्फटिककी काँटियाँ ०। स्फटिककी० वैदूर्यकी काँटियाँ०। आनन्द ! वे पुष्करणियाँ दो वेदिकाओंसे घिरी थी, एक वेदिका सोनेकी, दूसरी चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामें सोनेके खभे, चाँदीकी काँटियाँ, और छत थी। चाँदीकी वेदिका ०।—आनन्द ! तब, राजा०के मनम यह हुआ—'इन पुष्करणियोमें सभी डालियोंसे फूल-लगे सभीको चर्चित करने-वाले उत्पल, पद्म, कुमुद, पुण्डरीकके फूल रोपूँ।' आनन्द ! राजा०ने उन पुष्करणियोंमे उस प्रकारके उत्पल० फूल रोपे। आनन्द ! तब राजा०के मनमें ऐसा हुआ—'उन पुष्करणियोके तीर पर नहलाने-वाले पुरुष नियुक्त होने चाहिये, जो आये हुये लोगोंको नहलाया करे।' आनन्द ! राजा०ने० नियुक्त किये। आनन्द ! तब राजा०के मनमें ऐसा हुआ—'इन पुष्करणियोके तीरपर इस प्रकारके दान स्थापित होने चाहिये, जिससेकि अन्न चाहनेवालेको अन्न, पेय (=पान) चाहनेवालेको पेय, वस्त्र०, सवारी०, शय्या०, स्त्री०, सोना०। आनन्द ! राजा०ने० इस प्रकारके दान स्थापित किये०।

'आनन्द ! तब ब्राह्मणो और गृहस्थोंने बहुत धनले राजा०के पास जाकर यह कहा—देव ! यह बहुतसा धन (हम लोग) आपहीकी सेवामें लाये है, इसे आप स्वीकार करे।' 'बस रहने दो, मैंने

भी बहुत धन धर्मसे और बलसे उपार्जित किया है, वह तो है ही। (यदि आप लोग चाहे तो) यहाँहीसे और धन ले जावें।' राजाके स्वीकार न करनेपर उन लोगोने एक ओर जाकर विचारा—'यह हम लोगोको उचित नही है कि इस धनको फिर अपने घर लौटाकर ले चले, अत (चलो) हम लोग राजा०के लिये प्रासाद तैयार करें।' उन लोगोने राजाके पास जाकर यह कहा—देव! (हम लोग) आपके लिये एक प्रासाद तैयार करवायेंगे।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया।

४—धर्मप्रासाद (महल)

"आनन्द! तब देवेन्द्र शक्रने राजा०के चित्तको अपने चित्तसे जानकर देवपुत्र विश्वकर्माको सबोधित किया—'जाओ, भद्र विश्वकर्मा! राजाके लिये धर्म नामक प्रासाद तैयार करो। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा भी 'अच्छा, भदन्त!' कह, शक्र देवेन्द्रको उत्तर दे, जैसे बलवान् पुरुष० वैसे त्रायस्त्रिश देवलोकमें अन्तर्धान हो राजा०के सामने प्रादुर्भूत हुआ। आनन्द! तब देवपुत्र०ने राजा०से यह कहा—'देव! धर्म नामक प्रासाद आपके लिये तैयार करूँगा।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा०ने० प्रासाद तैयार किया।

"आनन्द! धर्म प्रासाद पूरबसे पश्चिम लम्बाईमें एक योजन, और उत्तरसे दक्षिण चौडाईमें आधा योजन था। आनन्द! धर्म प्रासादकी इमारत ऊँचाईमें तीन पोरसाकी थी। वह चार रगोवाली ईंटोंसे चिनी गई थी, एक ईंट सोनेकी० एक स्फटिककी। आनन्द! धर्म-प्रासादमें चार रगोके चौरासी हजार खम्भे लगे थे—एक खभा सोनेका० एक स्फटिकका।—आनन्द! धर्म-प्रासादमें चार रगोंके पट्टे लगे थे—एक पट्टा सोनेका०। आनन्द! धर्म प्रासादमें चार रगोकी चौबीस सीढियाँ थी—एक सीढी सोनेकी०। स्फटिकवाली सीढीमें स्फटिकके खम्भे लगे थे (और) वैदूर्यकी बाँटियाँ और छत। आनन्द! ०चार रगोंके चौरासी हजार कोठे थे। एक कोठा सोनेका०। सोनेके कोठेमें चाँदीके पलग बिछे थे। चाँदीके०में सोनेके पलग०। वैदूर्यके कोठेमें (हाथी)के दाँतके पलग बिछे थे। स्फटिकके कोठे-में मसारगल्लके पलग बिछे थे। सोनेके कोठेके द्वारमें चाँदीके ताल (वृक्ष) बने हुये थे, उस (ताल वृक्ष) का तना चाँदीका, पत्ते और फल सोनेके। चाँदीके कोठेके द्वारमें सोनेका ताल०। वैदूर्यके कोठेके द्वारमें स्फटिकके ताल० वैदूर्यके पत्ते०। स्फटिकके कोठेके द्वारमें वैदूर्यका ताल०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमें यह हुआ—'मैं इस बडे कोठेके द्वार पर दिनमें विहारके लिये बिल्कुल सोनेका एक ताल-वन बनवाऊँ। आनन्द! राजा० (ने)० बनवाया। आनन्द! धर्म प्रासाद दो वेदिकाओंसे घिरा था, एक वेदिका सोनेकी, एक चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामें सोनेके खम्भे०। आनन्द! धर्म-प्रासाद दो घुंघरू-के-जालोंसे घिरा था, एक जाल सोनेका, एक चाँदीका। सोनेके जालमें चाँदीकी घटियाँ थीं, (और) चाँदीके जालमें सोनेकी०। आनन्द! हवाके झोंकेसे हिलनेपर उन घटिया-से सुन्दर, रागोत्पादक० शब्द निकलता था। आनन्द! उस समय जो कुशावती राजधानीमें गुण्डे, शराबी और जुआरी रहते थे, वे उस० शब्दसे (मस्त हो) नाचते खेलते थे। आनन्द! (सार समयके) उस प्रासाद पर आँख नहीं ठहरती थी, आँखोको वह मानो हर लेता था। आनन्द! जैसे वर्षाके अन्तिम मासमें, शरद् ऋतुके प्रारम्भ होनेपर, मेघरहित आकाशके ऊपर चढते सूर्यपर आँखें नहीं ठहरतीं वह मानो आँखोको हर लेता है, उसी तरह आनन्द! वह धर्म प्रासाद०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमें हुआ—'धर्म प्रासादके सामने धर्म नामक पुष्करणी बनवाऊँ।' ० बनवाया। आनन्द! धर्म पुष्करणी पूरबसे पश्चिम लम्बाईमें एक योजन, उत्तरसे दक्षिण चौडाईमें आधा योजन थी। आनन्द! ० चार रगकी ईंटोसे०, एक ईंट सोनेकी०। ०चार रगकी चौबीस सीढियाँ०। सोनेकी सीढीमें सोनेके खम्भे०। ०दो वेदिकाओंसे घिरी थी, ० सात ताल-पंक्तियोंसे घिरी

निन्दनीय होती है। देव! कुशावती राजधानी आदि आपके चौरासी हजार नगर है। देव! उनमें लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना मनमें न करें० थालियाँ है० उनमें लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना मनमें न करें।'

"आनन्द! ऐसा कहनेपर सुभद्रा देवी रोने लगी, आँसू बहाने लगी। आँसू पोछ०। यह कहा—देव! सभी प्रियो=मनापोंसे नानाभाव, विनाभाव, अन्यथाभाव होता है। देव! आप कामनायुक्त प्राण न त्यागें०० थालियाँ है० उनमे लिप्त न होवे, जीवित रहनेकी कामना न करें।'

"आनन्द! तब कुछ ही देरके बाद राजा०की मृत्यु हो गई। आनन्द! जैसे गृहपति या गृहपति-पुत्रको अच्छे अच्छे भोजन कर लेनेके बाद भत्तसम्मद (=भोजनोपरान्त आलस) होता है, वैसेही राजा०को मरणके समय पीळा हुई। आनन्द! राजा० मरकर अच्छी गतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। आनन्द! राजा महासुदर्शनने चौरासी हजार वर्षों तक बच्चोंके खेल खेले, चौरासी हजार वर्षों तक युवराज रहा, (चौरासी हजार वर्षों तक राज्य करता रहा), चौरासी० हजार वर्ष गृहस्थ होते (भी उसने) धर्म-प्रासादमें ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन किया। वह (मैत्री आदि) चारों ब्रह्म-विहारोंकी साधना करके शरीर छोळ मरनेके बाद ब्रह्मलोकमे उत्पन्न हुआ।

६—बुद्धही महासुदर्शन राजा

"आनन्द! यदि तुम ऐसा समझो कि यह राजा महासुदर्शन० उस समय कोई दूसरा राजा रहा होगा, तो आनन्द! तुम्हे ऐसा नहीं समझना चाहिये। मै ही उस समय राजा महासुदर्शन था। मेरे ही वे कुशावती राजधानी आदि चौरासी हजार नगर थे० मेरी ही वे चौरासी हजार थालियाँ०।

"आनन्द! उस समय चौरासी हजार नगरोमे वही एक कुसावती नगर राजधानी थी जहाँ कि मै रहता था। आनन्द! उस समय० प्रासादोमे वही एक धर्म-प्रासाद था जहाँ मै रहता था०।

"आनन्द! देखो, वे सभी संस्कार (=कृत वस्तुयें) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत (=बदल) हो गये। आनन्द! इसी तरह सभी संस्कार अ-नित्य हैं। आनन्द! इसी तरह सभी संस्कार अ-ध्रुव है। आनन्द! इसी तरह सभी संस्कार विश्वासके अ-योग्य हैं। आनन्द! इसलिये संस्कारोंकी चाह व्यर्थ है, उनमें राग करना व्यर्थ है, उनमें आसक्त होना व्यर्थ है। आनन्द! मैं जानता हूँ, इसी स्थानमें मेरी छै बार मृत्यु हो चुकी है—(पहले छै बार) चारो दिशाओंको जीतनेवाला, शान्त धार्मिक, धर्मराज और स्थिरता स्थापित करनेवाला, सातों रत्नोंसे युक्त चक्रवर्त्ती राजा होकर, यह सातवी बार यहाँ मेरा शरीरपात हो रहा है। आनन्द! मैं देवताओ सहित सारे लोकमें० कोई दूसरा स्थान नहीं देखता, जहाँ तथागत आठवीं बार भी शरीरको छोळेंगे।'

भगवान्ने यह कहा, यह कह सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"सभी संस्कार (=कृत वस्तुयें)अनित्य, उत्पत्ति और क्षय स्वभाववाले हैं,

होकर मिट जानेवाले हे, उनका शान्त हो जाना ही सुखमय है॥१॥"

१८–जनवसभ-सुत्त (२ । ५)

१—सभी देशोके मृत भक्तोकी गतिका प्रकाश। २—मगधके भक्तोको गतिका प्रकाश क्यो नहीं। ३—जनवसभ (बिंबिसार) देवताका सलाप। ४—शक्रद्वारा बुद्धधर्मकी प्रशसा। ५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशसा। ६—मगधके भक्तोकी सुगति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नादिकामे गिजकावसथमें विहार कर रहे थे।

१—सभी देशोंके मृत भक्तोंकी गतिका प्रकाश

उस समय भगवान् चारो ओरके प्रदेशोमें सभी ओर (घूमकर बुद्ध, धर्म और सघकी) सेवा करनेवाले अतीत कालमे मरे लोगोकी, गति (=परलोक), का व्याकरण[1] (=अदृष्ट कथन) कर रहे थे। काशी[2] और कोसलमें, वज्जी और मल्लमे, चेति और वत्समे, कुरु और पञ्चालमें, तथा मत्स्य और सूरसेनमें—अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है, और अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है। पचाससे कुछ अधिक नादिका ग्रामके रहनेवाले परिचारक (=बुद्ध, धर्म, और सघकी सेवा करनेवाले भक्त) अतीत कालमें मर कर अवरभागीय (=पाँच कामलोकके) वन्धनो (=सयोजनो) के क्षय हो जानेके कारण औपपातिक (=देवता) हो उस लोकसे फिर कभी नही लौटेंगे। नब्बेसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक अतीत कालमें मरकर तीन वन्धनो (=सयोजनो) के क्षय हो जानेके कारण राग, द्वेष, और मोहके तनु (=कमजोर, क्षीण) हो जानेके कारण सकृदागामी हो गये हैं—वे एक ही बार इस लोकमे आकर अपने सारे दु:खोका अन्त करेंगे। पाँच सौसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक ० तीन वन्धनोके क्षय हो जानेसे स्रोतआपन्न हो गये हैं, अब वे फिर गिर नही सकते हैं, उनकी सम्बोधि प्राप्ति नियत है।" नादिकाके परिचारकोने सुना—'भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोमें सभी ओर ० स्रोतआपन्न० सम्बोधि प्राप्ति नियत है।' उससे प्रमुदित, प्रीति और सौमनस्य युक्त नादिका ग्रामके परिचारक भगवान्के व्याकरणको सुनकर बळे सतुष्ट हुये।

२—मगधके भक्तोंकी गतिका प्रकाश क्यों नहीं

आयुष्मान् आनन्दने सुना,—भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोमें०। उससे नादिका ग्रामके परिचारक ०बळे सन्तुष्ट हुये। तब आयुष्मान् आनन्दके मनमें यह हुआ—"ये अग मगधके परिचारक भी अतीत कालमें मर चुके हैं। अतीत कालमें मरे हुये अग और मगधके परिचारकोमे मानो अग और मगध शून्य

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२६)
[2] इन देशोंके लिये देखो मानचित्र।

"आनन्द ! शब्द सुना जनवसभ यक्षने अत्यन्त कान्तिमय बन मेरे सामने प्रकट हो, दूसरी बार भी शब्द सुनाया—'भगवान् ! मै बिम्बिसार हूँ, सुगत ! मै बिम्बिसार हूँ। भन्ते ! यह सातवीं बार वैश्रवण महाराजका मित्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ, सो मै यहाँसे च्युत होकर मनुष्य-राजा हो सकता हूँ।

'इससे सात (और) उससे भी सात चौदह जन्मोको,

जिन में मैने पहले वास किया है, मै उन्हे अच्छी तरह स्मरण करता हूँ॥ १॥

'भन्ते ! मै जानता हूँ कि बहुत वर्ष पहले भी मैने चार प्रकारके अपायो (=नरको)में कभी नही जन्म लिया। सकृदागामी होनेके लिये मुझे उत्साह भी है।'

'आश्चर्य ! आयुष्मान् जनवसभ यक्षको अद्भुत'०। और बोला—मैने पहिले वास०। सकृदागामी होनेके०। यह आयुष्मान् जनवसभ यक्ष कैसे इस महान् विशेष लाभ=(मार्गफल प्राप्ति)को पाये ?'

'भगवान् ! आपके धर्म (=शासन)को छोळ और किसी दूसरी तरहसे नही। सुगत ! आपके०। भन्ते ! जबसे मै भगवान्का सुभक्त बना तबसे चिरकाल तक मैने चार अपायोमे नही जन्म लिया। सकृदागामी होने०। भन्ते ! अभी मुझे वैश्रवण (=कुवेर) महाराजने विरूढक महाराजके पास देवताओके किसी कामसे भेजा था। रास्तेमें जाते हुये भगवान्को गिंजकावसथमें प्रवेशकर मगधके परिचारकोके विषयमें० विचार करते हुये (मैने) देखा। भन्ते ! आश्चर्य नही। कुवेर महाराजको उस सभामें बोलते हुये सामनेसे सुना, सामनेसे ग्रहण किया, कि क्या उनकी गति हुई है, क्या उनके परलोक है। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह आया—(चलो) भगवान्का दर्शन भी करूँगा, भगवान्से यह कहूँगा भी। भन्ते ! भगवान्के दर्शनार्थ मेरे आनेके यही दो कारण है।

४—शक्र द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

'भन्ते ! पहले बीते उपोसथको बैसाख पूर्णिमाकी रातमे सभी त्रायस्त्रिंश देवता सुधर्मा सभामें इकट्ठे होकर बैठे थे। चारो ओर बळी भारी देवताओकी सभा लगी थी। चारो दिशाके चारो महाराज बैठे थे। पूर्व दिशाके धतरट्ठ (=धृतराष्ट्र) महाराज देवोको सामने करके पश्चिम मुख किये बैठे थे। दक्षिण दिशाके विरूळ्हक (=विरूढक) महाराज देवोको० उत्तर०। पश्चिम०के विरूपक्ख (=विरूपाक्ष) पूर्व०। उत्तरके० वैश्रवण (कुवेर) दक्षिण०। भन्ते ! जब सभी त्रायस्त्रिंश देवता सुधर्मा सभामें० ०चारो महाराज बैठे थे। उन लोगोका आसन इस प्रकार था। उसके पीछे हम लोगोका आसन था। भन्ते ! वे देव जो भगवान्के धर्म (=शासन)मे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके हालमें त्रायस्त्रिंश लोकमें उत्पन्न हुए है, वे दूसरे देवताओसे कान्ति तथा यशमें बढे चढे है। भन्ते ! उससे वे त्रायस्त्रिंश देवता सन्तुष्ट है, प्रमुदित, प्रीति=सौमनस्यसे युक्त है—देव-लोक भर रहा है, अ-सुर-लोक क्षीण हो रहा है।

'भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवताओको प्रसन्न देखकर इन गाथाओसे अनुमोदन किया।—

'इन्द्रके साथ सभी (हम) त्रायस्त्रिंश देवता,

तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुये प्रमुदित है ॥२॥

सुगतके (शासन)में ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके,

यहाँ आये हुए नये देवोको कान्तियुक्त और यशस्वी देख कर ॥३॥

भूरिप्रज्ञ (=बुद्ध)के वे श्रावक यहाँ बळप्पनको प्राप्त है।

वे कान्ति आयु और यशमें दूसरोसे बढ चढकर है ॥४॥

इन्हे देखकर तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुए,
इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिंश (देव) आनन्दित हो रहे हैं ॥५॥

'भन्ते ! उससे त्रायस्त्रिंश देवता अत्यधिक प्रसन्न, सन्तुष्ट, प्रमुदित तथा प्रीति और सौमनस्यसे युक्त हो (कहते थे)—देवलोक भर रहा ०। भन्ते ! तब जिस कामके लिये त्रायस्त्रिंश देव सुधर्मा-सभामें इकट्ठे हुये थे, उस कामको यादकर, उस कामके विषयमें मन्त्रणाकी। चारों महाराजने भी कहा, समर्थन किया। वे चारों महाराज फिर न जा करके अपने अपने आसनपर खड़े थे—

'वे राजा अपनी अपनी बात कहके आज्ञा लेकर।'

प्रसन्न मनसे शान्त हो अपने अपने आसनपर खळे थे ॥६॥

'भन्ते ! तब उत्तर दिशामें देवोंके देवानुभावसे बढ़कर बळा प्रकाश उत्पन्न हुआ, तीव्र प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवोंको संबोधित किया—मार्ष ! जैसा लक्षण दिखाई दे रहा है, बळा प्रकाश ० ब्रह्मा प्रकट होंगे। ब्रह्माहीके प्रकट होनेके लिये यह पूर्व-निमित्त है, जिससे कि यह बळा प्रकाश उत्पन्न हो रहा है।

५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा

'जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है, उससे ब्रह्मा प्रकट होंगे।
यह ब्रह्माका ही लक्षण है, जो कि यह बळा प्रकाश हो रहा है ॥७॥'

'भन्ते ! तब त्रायस्त्रिंश देव अपने अपने आसनपर वैसे ही बैठ गये, कि उस बळे प्रकाश को जान, और जो उसका फल होगा उसे देख ही कर जायगे। चारो महाराजा भी ०। इसे सुनकर त्रायस्त्रिंश देवता सभी एकत्र हो गये, उस बळे प्रकाश ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने प्रकट होता है, तो वह अपने बळे तेजको प्रकाशित करके ही प्रकट होता है, जिसमें कि भन्ते ! जो ब्रह्माकी स्वाभाविक दुष्प्राप्य कान्ति है, उसे त्रायस्त्रिंश देव देख लें। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा ० प्रकट होता है, तब वह दूसरे देवोंसे वर्ण और यशमें बहुत बढ़ा रहता है। भन्ते ! जैसे, सोनेकी मूर्त्ति मनुष्यके विग्रहसे अधिक तेजसी होती है, वैसे ही भन्ते ! जब ब्रह्मा प्रकट ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ० प्रकट होता है, उस सभामें कोई भी देव उसे न तो अभिवादन करते हैं, न उठकर अगवानी करते हैं, न आसनके लिये निमन्त्रित करते हैं। सभी चुप होकर, हाथ जोळ, पल्थी मारे बैठे रहते हैं। ब्रह्मा सनत्कुमार जिस देवके आसन में चाहता है उसी देवके पर्यङ्कपर बैठ जाता है। भन्ते ! ब्रह्मा ० जिस देवके पर्यङ्कमें बैठ जाता है, वह देव बळा विशाल हो जाता है, सौमनस्यको लाभ करता है। भन्ते ! जैसे हालमें मूर्धाभिषिक्त, क्षत्रिय राजा, बहुत अधिक सतोष पाता है, ० सौमनस्य लाभ करता है, उसी तरह जिस देवके पर्यङ्कमें ब्रह्मा सनत्कुमार बैठता है, वह देव ०। भन्ते ! तब ब्रह्मा सनत्कुमार अपने विशाल शरीरको निर्माणकर पाँच शिखाओवाले एक बच्चेका रूप धर त्रायस्त्रिंश देवोके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमें उळ अन्तरिक्षमें पल्थी लगाकर बैठ गया। भन्ते ! जैसे कोई बलवान् पुरुष ठीकसे बिछे आसन या समतल भूमिपर पलथी मारकर बैठे, वैसे ही ब्रह्मा सनत्कुमार आकाशमें उळकर, आकाशमें पल्थी लगाके बैठा। त्रायस्त्रिंश देवोको प्रसन्न देख इन गाथाओसे अनुमोदन किया—'इन्द्रके साथ ० ॥२—५॥

'भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अगोंसे युक्त था—(१) स्पष्ट (=साफ साफ), (२) समझने लायक, (३) मञ्जु, (४) श्रवणीय, (५) एक घन (=फटा नहीं), (६) क्रमानुकूल, (७) गम्भीर, (८) ऊँचा। भन्ते ! ० ब्रह्मा सभाके अनुकूल ही स्वरसे भाषण

करता था। उसका घोष सभाके बाहर नहीं जाता था। भन्ते! जिसका स्वर इस प्रकार आठ अंगोंसे युक्त होता है वह ब्रह्मस्वर कहलाता है। भन्ते! तब ब्रह्मा ०ने त्रायस्त्रिंशीय शरीरका निर्माणकर त्रायस्त्रिंश देवोंके पर्यङ्कोंमें प्रत्येक पर्यङ्कमें बैठकर तावतिंस देवोंको संबोधित किया—आप तावतिंस (=त्रायस्त्रिंश) देव लोग इसे क्या नहीं जानते, कि भगवान् लोगोंके हितके लिये लगे हैं, लोगोंके सुखके लिये ०। जितने बुद्धकी शरणमें गये, धर्मकी शरणमें गये, संघकी शरणमें गये, और जिन्होंने शीलोंको पूरा किया, मरनेके बाद, उनमेंसे कितने ही परनिर्म्मितवशवर्ती देवोंमें उत्पन्न हुए, कितने निर्म्माणरति देवोंमें ०, कितने तुषित देवों ०, ० याम देवों ०, ० त्रायस्त्रिंश देवों ०, ० चातुर्महाराजिक देवों ०। (उनमें) सबसे हीन शरीर पानेवालेने, गन्धर्वके शरीरको पाया। ब्रह्मा ०ने यह कहा। भन्ते! ब्रह्मा०के घोषको सभी देवोंने जाना कि मानों वह उन्हींके आसनसे हो रहा है—

'एकके भाषण करनेपर (दिव्य-बल द्वारा) निर्मित सभी शरीर भाषण करते हैं।
एकके चुप बैठनेपर, वे सभी चुप हो जाते हैं ॥८॥
"इन्द्रके साथ सभी त्रायस्त्रिंश देव समझते थे,
कि ब्रह्मा उन्हींके आसनमें है और वहींसे भाषण कर रहा है ॥९॥

सस्कारोके ०, ० चित्त-सस्कारोके शान्त होनेसे सुख उत्पन्न होता है। सुखसे सौमनस्य। जैसे मोदमे ०। यह उन भगवान्०को सुखकी प्राप्तिके लिये दूसरा अवकाश प्राप्त है।

"और फिर, कोई 'यह कुशल है' ऐसा ठीकसे नही जानता है, 'यह अकुशल है' ऐसा ठीकसे नही जानता है, 'यह निन्द्य है, यह अनिन्द्य है, यह करने के योग्य है, यह न करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, इसमे अच्छाई बुराई दोनो है' ऐसा ठीकमे नही जानता है। वह किसी समय आर्यधर्मको सुनता है ०। वह आर्यधर्म सुननेके बाद ० प्रवृत्त होता है। 'यह कुशल है ० ऐसा (सभी) ठीक ठीक जान जाता है। उसके ऐसा जानने, ऐसा देखनेसे अविद्या क्षीण हो जाती है, और विद्या उत्पन्न होती है। अविद्याके हट जाने और विद्याके उत्पन्न होनेसे उसे सुख उत्पन्न होता है, सुखसे सौमनस्य। जैसे ०। ० यह तीसरा अवकाश प्राप्त ०। उन भगवान्०को सुखप्राप्तिके लिये ये तीनो अवकाश प्राप्त है।

"भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कही। भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कहके तावतिंस (=त्रायस्त्रिश) देवोको सबोधित किया—'तब आप त्रायस्त्रिश देव लोग क्या जानते है कुशल प्राप्तिके लिये जो चार **स्मृति-प्रस्थान** कहे गये है, ये भगवान्०को अच्छी तरह ज्ञात है। कौनसे चार? भिक्षु अपने कायामें कायानुपश्यी होकर विहरता है, उद्योगी, सावधान, स्मृतिमान्, अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=मनकी अशान्ति)को दबाकर, अपनी कायामे कायानुपश्यी होकर विहरते हुए उसके धर्म समाधिमे आते है, निर्मल होते है। वह अच्छी तरह समाहित और प्रसन्न हो बाहर, दूसरोके शरीरको निमित्त करके अपने ज्ञानदर्शनमें प्रवृत्त होता है।—भीतरी वेदनाओमे वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है ० बाहर दूसरोकी वेदनाओमें ०।—भीतरी चित्तमे चित्तानुपश्यी ०।—अपने भीतरी धर्मोमे धर्मानुपश्यी ०। ये चार स्मृतिप्रस्थान कुशल प्राप्तिके लिये भगवान्० से बतलाये गये है।

६—मगधके भक्तोंकी सुगति

"ब्रह्माने ०—क्या आप त्रायस्त्रिश देव लोग जानते है कि सम्यक्-समाधिकी भावना और परिशुद्धिके लिये सात समाधि-परिष्कारोको भगवान्०ने अच्छी तरह बतलाया है? कौनसे सात? सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-सकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति। जो इन सात अगोसे अङ्ग प्रत्यङ्गोके साथ, (और) सभी परिष्कारोके साथ चित्तकी एकाग्रता रूपी परिष्कृति है वही सम्यक्-समाधि कही० जाती है। सम्यक्-दृष्टिवाला मनुष्य सम्यक्-सकल्पमें समर्थ होता है, सम्यक्-सकल्पवाला मनुष्य सम्यक्-वाक्मे समर्थ होता है ०। सम्यक्-स्मृति से ०। सम्यक् समाधिमे समर्थ होता है। सम्यक् समाधि ० सम्यक् ज्ञानमें समर्थ होता है। सम्यक् ज्ञानवाला मनुष्य सम्यक् विमुक्तिमे समर्थ होता है। जिसे भली भाँति कहनेवाले मनुष्य कहते है—भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर प्रकारसे कहा गया) है, सान्दृष्टिक (=इसी ससारमें फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमे नही, सद्य फलप्रद), एहिपस्सिक (=परीक्षा किया जा सकनेवाला), औपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला), विज्ञ (पुरुषो)को अपने अपने विदित होनेवाला है—जो लोग बुद्धमें स्थिर रूपसे प्रसन्न है, धर्ममें स्थिर ० और सघमें ०, उत्तम प्रिय शीलसे युक्त है उनके लिये अमृत (=स्वर्ग)का द्वार खुल गया। (जैसे) ये औपपातिक (=देवता) धर्मविनीत चौबीस लाखसे भी अधिक मगधके परिचारक अतीतकालमें मारके तीन बन्धनोके कट जानेसे स्रोतआपन्न हो गये है, वह फिर कभी तीन अपायोमे नही गिर सकते है और वह नियत रूपसे सम्बोधि प्राप्तिमे लगे है। और यहाँ सकृदागामी भी है—

'मै जानता हूँ कि यहाँ और दूसरे लोग (भी) पुण्यके भागी है।

'कहीं मिथ्या-भाषण न हो जावे !' इस डरसे उनकी गणना भी नही कर सका ॥१०॥'

"भन्ते ! ब्रह्मा०ने यह कहा। भन्ते ! ब्रह्मा०के इतना कहनेपर वैश्रवण महाराजके मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—आश्चर्य है, अद्भुत है; इस प्रकारके उदार (=महान्, श्रेष्ठ) शास्ता (फिर भी कभी) उत्पन्न हो, तो इस प्रकारके उदार धर्मोपदेश, (और) इस प्रकारके ऊँचे ज्ञान देखे जायें। भन्ते ! ब्रह्माने० वैश्रवण (=कुबेर) महाराजके चित्तको अपने चित्तसे जान यह कहा—वैश्रवण महाराज ! क्या जानते हैं कि अतीतकालमें भी इस प्रकार उदार शास्ता० देखे गये थे; भविष्य में भी इस प्रकारके उदार शास्ता० होंगे० देखे जायेंगे।

"भन्ते ! ब्रह्मा०ने त्रायस्त्रिंश देवोंसे यह कहा। त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने जो कुछ ब्रह्मा०ने कहा, उसे सामने सुन और ग्रहणकर वैश्रवण महाराजने अपनी सभामें कह सुनाया।'

जनवसभ देवता (=यक्ष)ने वैश्रवण महाराज द्वारा अपनी सभामें कहे गये इस वचनको सुन, और ग्रहणकर भगवान्से कह दिया। भगवान्ने जनवसभके मुँहसे सुन, ग्रहणकर, तथा स्वय जानकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा। आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के मुँहसे० भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओंको कह सुनाया। वही ब्रह्मचर्य ऋद्धियुक्त, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल होकर देव मनुष्योंमें प्रकाशित हुआ।

———

उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकारके कुशलाकुशल, निन्द्यानिन्द्य० धर्मोके बतलानेवाले शास्ता ०। (४) उन भगवान्‌ने श्रावकोको निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा (=मार्ग) ठीक ठीक बतलाई है। निर्वाण और उसके मार्ग बिल्कुल अनुकूल है। जैसे गगाकी धारा यमुनामें गिरती है, और (गिरकर) एक हो जाती है, उसी तरह श्रावकोको उन भगवान्‌की बतलाई निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा निर्वाणके साथ मेल खाती है। *उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकारकी निर्वाण-गामिनी प्रतिपदाका बतलानेवाला ०।* (५) उन भगवान्‌को महालाभ हुआ है, उनकी गुणकीर्ति भी बळी भारी है। क्षत्रिय आदि सभीके वे समान रूपसे प्रिय है। वे भगवान् जो आहार ग्रहण करते है वह मदके लिये नही होता। उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकार मदकेलिये०। (६) भगवान्‌ने शैक्ष, निर्वाणके मार्गपर आरूढ, क्षीणास्रव(=अर्हत्), तथा ब्रह्मचर्य व्रतको पूरा करनेवाले (भिक्षुओ)की सहायताको पाया है। भगवान् उन्हे छोळकर एकान्तमें भी विहार करते है। उन भगवान्‌को छोळ० एकान्तमें विहार करनेवाले०। (७) भगवान् यथावादी (=जैसा बोलनेवाले) तथाकारी (=वैसा करनेवाले) है, यथाकारी तथावादी है। अत, यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकार धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न (=धर्मके अनुसार मार्गपर आरूढ) ०। (८) भगवान् तीर्णविचिकित्स (=जिन्हे कोई सन्देह नही रह गया हो) है, विगतशक (=जिनकी सारी शकायें दूर हो गई है), पर्यवसित-सकल्प (=जिनके सारे सकल्प पूरे हो चुके है), और ब्रह्मचर्य पूरा कर चुके है। भगवान्‌को छोळ०।— भन्ते! शक्र देवेन्द्रने तावतिस देवोंसे भगवान्‌के इन्ही यथार्थ आठ गुणोको कहा।

"भन्ते! भगवान्‌के आठ यथार्थ गुणोको सुनकर तावतिस देव अत्यन्त सतुष्ट, प्रमुदित (तथा) प्रीति-सौमनस्य-युक्त हुए।' भन्ते! तब कुछ देवोने यह कहा—'मार्ष! भगवान्‌से यदि चार सम्यक् सम्बुद्ध ससारमें उत्पन्न हो और धर्मका उपदेश करें, तो वह लोगोके हितके लिये, लोगोके सुखके लिये ० हो।'

"दूसरे देवोने ऐसा कहा—'मार्ष! चार तो जाने दीजिये, यदि तीन सम्यक् सम्बुद्ध भी ससारम ० लोगोके सुखके लिये० हो।' "दूसरे देवोने ऐसा कहा—'मार्ष! तीन जाने दीजिये, यदि दो० भी०।'

"भन्ते! उनके ऐसा कहनेपर देवेन्द्र शक्रने ० देवोसे यह कहा—

'ऐसा नही मार्षो! एक ही लोकधातुमें एक ही समय दो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध नही होते। ऐसा नही होता। मार्ष! यही भगवान् नीरोग, सानन्द, और दीर्घजीवी होवे, जो कि लोगोके हितके लिये ०।

"भन्ते! उसके बाद जिस कामसे ० देव लोग सुधर्मा-सभामें इकट्ठे होकर बैठे थे, उस कामके विषयमें विचार करके, मन्त्रणा करके उन चारो महाराजके भी कहन और समर्थन करनेपर अपने अपने आसनोपर खळे थे।

वे चारो महाराज भी कहकर और अनुशासनी ग्रहणकर,
प्रसन्नमनसे अपने अपने आसनोपर खळे थे ॥५॥

३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

"भन्ते! तब उत्तर दिशामें एक बळा विशाल (=उदार) आलोक उत्पन्न हुआ। देवोके देवानु-भावसे भी बढकर तीव्र प्रकाश (उत्पन्न) हुआ। *भन्ते! तब शक्र०ने त्रायस्त्रिंश देवोंसे सबोधित किया—* मार्ष! जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है ०[1] ब्रह्माके ये निमित्त ० ॥६॥"

---

[1] देखो पृष्ठ १६३।

"भन्ते ! त्रायस्त्रिंश देव अपने अपने ०।

"तब ब्रह्मा०ने अन्तर्हित (=अदृश्य) होकर इन गाथाओंसे त्रायस्त्रिंश देवोंका अनुमोदन किया—

'इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिंश देव ० ॥१-४॥'

"भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते ! वहाँ सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अंगोंसे युक्त था, वह विस्पष्ट, विज्ञेय, मंजु, श्रवणीय, बिन्दु (=ठोस), अविसारी, गंभीर, और निनादी परिषद्के अनुसार (तीव्र मन्द) स्वरसे ब्रह्मा सनत्कुमार परिषद्को जताता है, उसका स्वर परिषद्से बाहर नहीं जाता। भन्ते ! जिसका स्वर इन आठ अंगों से युक्त होता है, वह ब्रह्मस्वर कहा जाता है। भन्ते ! तब ० देवोंने ब्रह्मा ०से यह कहा—'साधु महाब्रह्मा ! इसीलिये हम लोग प्रसन्न हो रहे हैं। शक्र०के द्वारा भगवान्‌के यथाभूत =यथार्थ आठ गुण कहे गये हैं। उसीसे हम लोग प्रसन्न हो रहे हैं।'

"भन्ते ! तब ० ब्रह्माने शक्र०से यह कहा—साधु देवेन्द्र ! मैं भी भगवान्‌के आठ० सुनूँ। भन्ते ! तब शक्रने ०ब्रह्मा०को भगवान्‌के ० गुणोंको कह सुनाया।

'तो आप महाब्रह्मा क्या जानते हैं कि भगवान् लोगोंके हित०[1]।'

"भन्ते ! शक्र०ने ब्रह्मा०को ये भगवान्‌के आठ यथार्थ गुण कह सुनाये। उससे ब्रह्मा ० सन्तुष्ट ०। भन्ते ! तब ब्रह्मा ० अपना उदार स्वरूप धारणकर, कुमारके वेशमें, पाँच शिखाओंवाला बन त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमें ०[2] देवोंको संबोधित किया—

४—महागोविन्द जातक

'आप त्रायस्त्रिंश देव लोग क्या नहीं जानते कि भगवान् बहुत दिन पहले भी महाप्रज्ञावान् थे।—बहुत दिन पहले दिशांपति नामक एक राजा रहता था। दिशांपति राजाका गोविन्द नामक ब्राह्मण पुरोहित था। गोविन्द ब्राह्मणका जोतिपाल नामक माणवक पुत्र था। रेणु राजपुत्र, जोतिपाल माणवक और दूसरे छै क्षत्रिय—ये आठों बड़े मित्र थे।

'तब बहुत दिनोंके बीतनेपर गोविन्द ब्राह्मण मर गया। गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेपर राजा ० विलाप करने लगा—जो गोविन्द ब्राह्मण (हमारे) सभी कृत्योंको करता पाँच भोगों (=काम गुणों)में हमारी सेवा करता था वह गोविन्द ब्राह्मण मर गया'।

'(राजाके) ऐसा कहनेपर रेणु राजपुत्रने राजा ०से यह कहा—देव ! आप गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेसे अधिक विलाप न करें। देव ! गोविन्द ब्राह्मणका जोतिपाल नामक माणवक पुत्र है, वह अपने पितासे भी बढ़कर पण्डित है, अपने पितासे भी बढ़कर अर्थदर्शी है। जिन कामोंकी देख-रेख उसका पिता करता था, उन कामोंकी देख-रेख जोतिपाल माणवक भी कर सकता है।

'कुमार ! ऐसी बात है ?' 'देव ! हाँ।'

'तब उस राजा०ने एक पुरुषसे कहा—सुनो, जहाँ जोतिपाल माणवक है, वहाँ जाओ। जाकर जोतिपाल माणवकसे यह कहो—जोतिपाल माणवकका शुभ हो। राजा ० आप०को बुला रहे हैं, राजा ० आप०से मिलना चाहते हैं।'

'अच्छा देव !' कहकर ०।

'जोतिपाल माणवक 'बहुत अच्छा' कह उस पुरुषको उत्तर दे जहाँ राजा दिशांपति था, वहाँ

[1] देखो पृष्ठ १६७। [2] देखो पृष्ठ १६२।

गया। जाकर (उसने) राजा०का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन. करनेके बाद एक ओर बैठ गया। राजा०ने एक ओर बैठे जोतिपाल माणवकसे कहा—

'आप जोतिपाल मुझे अनुशासन करें (=सभी कामोंमें विचारपूर्वक सलाह दें)। आप जोतिपाल० अनुशासन करनेसे मत हिचकें। आपको आपके पिताके स्थानमे नियुक्त करता हूँ। गोविन्दके आसनपर आपको अभिषिक्त करता हूँ।'

'बहुत अच्छा' कह जोतिपाल०ने राजा०को उत्तर दिया।

"तब राजा०ने जोतिपाल०को गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त किया, पिताके स्थानपर नियुक्त किया।

(१) महागोविन्दकी दक्षता

"जोतिपाल०गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त हो, अपने पिताके स्थानपर नियुक्त हो, उन कृत्योंकी देख रेख करने लगे जिनकी देख रेख उनका पिता करता था, (और) जिनकी देख रेख उनका पिता नही करता था उनकी भी देख रेख करने लगे। जिन कामोका प्रबन्ध उनका पिता करता था, उनका प्रबन्ध करने लगे (और) जिन कामोका प्रबन्ध उनका पिता नही कर सकता था, उनका भी प्रबन्ध करने लगे। इसलिये उन्हे लोग कहने लगे—यह गोविन्द ब्राह्मणसा है, महागोविन्द ब्राह्मण है। इस प्रकार जोतिपाल माणवकका गोविन्द या महागोविन्द नाम पळा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये, जाकर उन छै क्षत्रियोसे बोले—दिशापति राजा जीर्ण=वृद्ध=महल्लक, पुराने और वयस्क हो गये हैं। जीवनके विषयमें कौन जानता है। बात ऐसी है कि ० राजाके मर जानेपर (कदाचित्) राज्य-कर्त्ता लोग रेणु राजपुत्रको राज्याभिषिक्त करें। आप लोग आवें, जहाँ रेणु राजपुत्र है वहाँ चलें, और जाकर रेणु राजपुत्रसे यह कहे—'हम लोग आपके सहायक, प्रिय=मनाप, (और) अप्रतिकूल (=आपहीके पक्षमे रहनेवाले) हैं। आपको जिसमें सुख है, उसीमें हम लोगोको भी सुख है, आपको जिसमें दुःख है ०। दिशाम्पति राजा जीर्ण० हो गये हैं। जीवनके ०। बात यह है कि ० राजाके मरनेपर कदाचित् राज्यकर्ता लोग आप हीका राज्याभिषेक करें। यदि आप राज्य पावें तो हम लोगोको भी राज्यका (उचित) भाग दें।'

'बहुत अच्छा' कह, छै क्षत्रिय महागोविन्द ०को उत्तर दे, जहाँ रेणु थे, वहाँ ० गय। ० यह बोले—हम लोग आपके सहायक ०।'

'हाँ, मेरे राज्यमें आप लोगोको छोळकर और दूसरा कौन सुखी होगा! यदि मैं राज्य पाऊँगा तो आप लोगोको भी राज्यका भाग दूँगा।'

"तब बहुत दिनोंके बाद राजा ० मर गया। राजाके मर जानेपर राजकर्ताओने रेणु राजपुत्रका राज्याभिषेक किया। रेणु राज्याभिषिक्त हो पाँचो भोगोका सेवन करने लगा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे, वहाँ गये। जाकर बोले—राजा ० मर गया। राज्याभिषिक्त हो रेणु पाँच भोगोको सेवन कर रहा है। मदवर्धक भोगोंका कौन ठिकाना? आप लोग आवें, जहाँ रेणु राजा है, वहाँ जावें (और) जाकर रेणु राजासे यह कहे—दिशाम्पति राजा मर गया। आप राज्याभिषिक्त हुये हैं। आप उस वचनको स्मरण करते हैं?'

'बहुत अच्छा' कह ०। ० स्मरण करते है?'

(२) जम्बूद्वीपका सात राज्योंमें विभाग

'हाँ! उस वचनको मैं स्मरण करता हूँ। सो कौन है जो उत्तरमें तो चौळी और दक्षिणमें शकटके मुखके समान सकीर्ण इस महापृथिवी (=भारत)को सात बराबर भागोमें बाँट सकता है।

'महागोविन्द०को छोड़कर भला और दूसरा कौन (यह) कर सकता है ?'

"तब राजा रेणुने एक पुरुषको बुलाकर कहा—सुनो ! जहाँ महागोविन्द ० हैं वहाँ जाओ, ० कहो—भन्ते ! रेणु राजा आपको बुलाते हैं।" 'बहुत अच्छा' कह ० । ० बुलाते हैं।

'बहुत अच्छा' कह वह ० पुरुषको उत्तर दे जहाँ रेणु राजा ० । ० बैठ गये। एक ओर बैठे महागोविन्द ब्राह्मणसे रेणु राजाने यह कहा—

'आप ० इस महापृथ्वीको सात बराबर बराबर भागोंमें बाँटें।'

'बहुत अच्छा' कह महागोविन्दने रेणु०को उत्तर दे, इस महापृथ्वीको ० बाँट दिया ०। बीचमें रेणुका भाग रहा।

[1]कलिंगमें दन्तपुर, अश्वक (देश)में पोतन,
अवन्ती(देश)में माहिष्मती, सौवीर(देश)में रोरुक।
विदेह (देश)में मिथिला, अंगमें चम्पा,
और काशी (देश)में वाराणसी—इन्हें महागोविन्दने बसाया ॥७॥

तब वे छै क्षत्रिय अपने अपने भागसे सन्तुष्ट हुए, उनका संकल्प पूरा हुआ—जो हम लोगोंका इच्छित, जो आकांक्षित, जो अभिप्रेत (और) जो अभिप्रार्थित था, सो हम लोगोंने पा लिया।

सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत,
रेणु और दो धृतराष्ट्र उस समय यह सात भारत (=राजा) थे ॥८॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

तब वे छै क्षत्रिय जहाँ महागोविन्द थे, वहाँ गये। जाकर महागोविन्दसे बोले—जैसे आप रेणु राजाके सहायक, प्रिय, मनाप और अप्रतिकूल हैं, वैसे ही आप हम लोगोंके भी सहायक हों। हम लोगोंको अनुशासन करें। आप अनुशासन करनेमें मन लगावें। 'बहुत अच्छा' कह ०।

"तब महागोविन्द ० सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओंको अनुशासन करने लगे। सात ब्राह्मण-महाशालो (=महाधनी)को और सातसौ स्नातकोंको मन्त्र (=वेद) पढ़ाने लगे। तब कुछ समय बीतनेपर महागोविन्दकी ऐसी ख्याति फैल गई—

'महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्माको देखता है। महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्मासे बात करता है, सलाप करता है, (और) मन्त्रणा करता है।'

"तब महागोविन्द०के मनमें यह आया—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है—'महागोविन्द ० साक्षात् ० मन्त्रणा करता है।' मैं तो ब्रह्माको नहीं देखता, न ब्रह्माके साथ बातें करता हूँ, न ० संलाप ०, न ० मन्त्रणा ०।'

'मैंने वृद्ध=महल्लक, आचार्य, प्राचार्य ब्राह्मणोंको ऐसा कहते सुना है कि, जो वर्षाकालके चौमासे में समाधि लगाता तथा करुणा भावनाको करता है, वह ब्रह्माको देखता है ० बातें करता है ०। अत मैं वर्षाकालके चौमासेमें ध्यान ० करूँगा।

---

१ (१) कलिंग=उड़ीसा। (२) अश्वक=औरंगाबादसे पैठन तक (हैदराबाद)। (३) अवन्ती=मालवा। (४) सौवीर=वर्तमान सिंध। (५) विदेह=तिर्हुत। (६) अंग=भागलपुर-मुंगेर जिले। (७) काशी=बनारस कमिश्नरी। यही भारतके सात पुराने भाग हैं। पोतन,=पैठन (हैदराबाद), माहिष्मती=महेश्वर (इन्दौर), रोरुक=रोरी (सिन्ध), चम्पा=चम्पा (भागलपुर)।

"तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था, ० वहाँ गये। ० बोले—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है, 'महागोविन्द ० साक्षात्०। (किन्तु) मै ० नही देखता हूँ ०। ० कहते सुना है ०। अत मै वर्षाकालके चौमासेमें ध्यान ० करना चाहता हूँ। एक भोजन ले जानेवालेको छोळकर मेरे पास और कोई दूसरा न आवे।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें वैसा करें।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे ० वहाँ गये। ० बोले—'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मण महाशाल और सातसौ स्नातक ०।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझे।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी एक जातिकी चालीस स्त्रियाँ थी ०।

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें।'

"तब महागोविन्द ० नगरके पूरब नया सन्थागार (=ध्यान, आदिके अनुकूल स्थान) बनवाकर वर्षाकालके चार मास समाधि लगाने लगे, करुणा-भावनाका अभ्यास करने लगे। भोजन ले जानेवालेको छोळकर और कोई दूसरा वहाँ नही जाता था। तब चार मासके बीतनेपर महागोविन्द०को एक पुण्य की उत्सुकता होने लगी—० 'ब्राह्मणोको कहते सुना था—वर्षाकालके ०। (किन्तु) मै ब्रह्माको न देखता हूँ, ० न (उससे) बाते करता हूँ ०।'

(३) *ब्रह्माका दर्शन*

"तब *ब्रह्मा सनत्कुमार* महागोविन्द०के चित्तको अपने चित्तसे जान जैसे बलवान् पुरुष ० वैसे ही ब्रह्मलोकमें अन्तर्धान हो महागोविन्द ० के सामने प्रकट हुआ। तब उस अदृष्टपूर्व रूपको देखकर महागोविन्दको कुछ भय होने लगा, स्तब्धता होने लगी, रोमाञ्च होने लगा। तब महागोविन्दने ० भयभीत=सविग्न, रोमाञ्चित हो ब्रह्मा सनत्कुमारसे गाथाओमें कहा—

'मार्ष! सुन्दर, यशस्वी, श्रीमान् आप कौन है, नही जानकर ही
मै आपको पूछ रहा हूँ। आपको हम लोग भला कैसे जानें ॥९॥'

'ब्रह्मलोकमें सनत्कुमारके नामसे
मुझे सभी देव जानते है, गोविन्द! तुम वैसा ही जानो ॥१०॥'

'आसन, जल, पैरमें लगानेके लिये तेल, (और) मधुर शाक से
मै आप ब्रह्माकी पूजा करता हूँ, कृपया इन्हे आप स्वीकार करें ॥११॥'

'गोविन्द! इसी जन्म (=दृष्टधर्म)के हितके लिये, स्वर्गप्राप्तिके लिये और सुखके लिये
जो तुम कहते हो,
उन अर्घ्योको मै स्वीकार करता हूँ। मै आज्ञा देता हूँ, जो चाहो पूछ सकते हो ॥१२॥

"तब महागोविन्द०के मनमे यह आया—ब्रह्मा०ने आज्ञा दे दी है। ब्रह्मा०को मै क्या पूछूँ—इसी ससारकी बातें या परलोककी बातें? तब महागोविन्दके मनमें यह आया—इस जन्म (=दृष्टधर्म)के अर्थोंमें (=सासारिक बातोमें) तो मै स्वय कुशल हूँ, दूसरे लोग भी मुझसे दृष्टधर्मके अर्थको पूछते हैं। अत मै ब्रह्मासे परलोककी ही बात पूछूँ। तब महागोविन्द०ने ब्रह्मा०से गाथामें कहा—

'श्रेष्ठो द्वारा ज्ञातव्य बातोमें मुझे शका है, इसलिये उन्हे मै, शकारहित ब्रह्मा सनत्कुमारसे पूछता हूँ।'

'कहाँ रहकर और क्या अभ्यासकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है? ॥१३॥'

'ब्राह्मण ! मनुष्योंमें ममत्वको छोळ एकान्तमें रहना, करुणा-भावयुक्त होना।'
पापोंसे अलग रहना (तथा) मैथुन-कर्मसे विरत रहना;
इन्हींका अभ्यासकर, और इन्हींको सीखकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥१४॥'

'मैं जानता हूँ कि तुमने ममत्वको छोळ दिया है। कोई पुरुष कम या बहुत भोगविलासको, बन्धु बान्धवोंको छोळ शिर और दाढी मुँळ ० प्रव्रजित हो जाता है। मै जानता हूँ कि तुमने उस ममत्वको छोळ दिया है। मैं जानता हूँ कि तुम सबसे अकेले भी हो गये हो।

'कोई कोई मनुष्य विविक्त (=एकान्त, निर्जन) स्थानमें वास करता है। अरण्य, वृक्षके नीचे पर्वत-कन्दरा, पहाळकी गुफा, श्मशान, जंगल, खुले मैदान, या ० पुआलके ढेरमें वास करता है। मैं जानता हूँ कि तुम भी इसी तरह विविक्त स्थानमें वास करते हो। मैं जानता हूँ कि तुम करुणासे भी युक्त हो।

'कोई कोई मनुष्य करुणायुक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान कर विहार करता है, वैसे ही दूसरी दिशा० ० तीसरी ० चौथी दिशा, ऊपर, नीचे, आळे, बेळे सभी तरहसे सभी ओर सारे संसारको वैररहित द्रोह-रहित विपुल, अत्यधिक, सच्चे चित्तसे विहार करता है। मैं जानता हूँ कि तुम्हे भी इसी तरह करुणाका योग है। किंतु तुम्हारे कहनेसे भी तुम्हारा आमगन्ध मैं नहीं जानता।'

"ब्रह्मा ! मनुष्योंमें वे कौनसे आमगन्ध हैं? उन्हें मैं नहीं जानता, कृपया कहें।
ब्रह्मलोकसे गिरकर नारकीय लोग किन मलोंसे लिप्त हो दुर्गन्धिको प्राप्त होते हैं? ॥१५॥'
"क्रोध, मिथ्याभाषण, वञ्चना मित्र-द्रोह, कृपणता, अभिमान,
ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, परपीळा, लोभ, दोष, मद और मोह,
'इन्हींसे युक्त होकर नारकीय लोग ब्रह्मलोकसे गिरकर दुर्गन्धको प्राप्त होते हैं ॥१६॥'

'आपके कहनेसे मैं आमगन्धोंको जान गया। वे गृहस्थमें जल्दी दूर नहीं किये जा सकते, अतः, मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'महागोविन्द, जैसा उचित समझो।'

(४) महागोविन्दका सन्यास

'तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था वहाँ गये। जाकर रेणु राजासे बोले—अब आप अपना दूसरा पुरोहित खोज लें, जो कि आपके राज्यका अनुशासन करेगा। मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। ब्रह्माके कहनेसे जो आमगन्ध मैंने सुने हैं, वे गृहस्थ रहकर आसानीसे दूर नहीं किये जा सकते, मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।

'भूपति रेणु राजाको मैं संबोधित करता हूँ, आप अपने राज्यको देखें,
मैं अब पुरोहितके कामोंको नहीं कर सकता ॥१७॥
'यदि आपको भोगोंकी कमी है, मैं उसे पूरा करूँगा। जो आपको कष्ट देता है,
उसे मैं वारण कर दूँगा, मैं भूमि और सेनाका पति हूँ, तुम पिता हो, मैं पुत्र हूँ,
गोविन्द, हम लोगोंको आप मत छोळें ॥१८॥'
'मुझे भोगोंकी कमी नहीं है और न मुझे कोई कष्ट देता है।
अ-मनुष्य (=देवता) की बातको सुननेके बाद मैं गृहस्थ रहना नहीं चाहता' ॥१९॥
'अ-मनुष्य कैसा था, उसने आपको क्या कहा है, जिसे सुनकर कि
आप अपने घर तथा हम सभीको छोळ रहे हैं? ॥२०॥'
'पहले, यज्ञ करनेकी इच्छासे मैंने अग्नि प्रज्वलित की, कुश और पत्ते बिछाये।
उसी समय ब्रह्मा सनत्कुमार ब्रह्मलोकसे आकर प्रकट हुए ॥२१॥'
'उन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया।

उसे सुनकर मैं गृहस्थ रहना नही चाहता ॥२२॥'

'हे गोविन्द ! आप जो कहते हैं उसमें मेरी श्रद्धा है। देवकी बातको सुनकर

अब आप कोई दूसरा काम कैसे कर सकते हैं ? ॥२३॥

'(किन्तु) हम लोग भी आपके अनुगामी होंगे। गोविन्द ! आप हम लोगोंके गुरु होवें।

जैसे चिकना, निर्मल और शुभ्र हीरा होता है

उसी तरह गोविन्दके अनुशासनमें हम लोग शुद्ध हो विचरण करेंगे ॥२४॥'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे, तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायेंगे। जो आपकी गति होगी वही हम लोगोंकी गति होगी।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये। ० बोले—'आप लोग अपना दूसरा पुरोहित खोज लें ०।'

'तब छै क्षत्रियोंने एक ओर जाकर ऐसा विचारा—ये ब्राह्मण धनके लोभी होते हैं, अत हम लोग महागोविन्द०को धनका लोभ देकर रोकें। उन लोगोंने महागोविन्द०के पास जाकर यह कहा—इन सात राज्योंमें बहुत धन है। आप जितना धन चाहे ले ले।'

'मेरी भी प्रचुर धन-राशि आप लोगोंकी ही सम्पत्ति होवे। मैं सभीको छोळकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा ०।'

"तब छै क्षत्रियोंने एक ओर जाकर ० स्त्रीके लोभी ० स्त्रीका लोभ देकर ०। उन लोगोंने ० यह कहा—इन सात राज्योंमें बहुतसी स्त्रियाँ हैं ०।'

'बस रहने दें। मेरी जो चालीस एक वंश (गोरी आर्य जाति)की स्त्रियाँ हैं, उन सभीको छोळकर मैं घरसे बेघर ०। क्योंकि मैंने ब्रह्मासे सुना है ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर ० तो हम लोग भी ० प्रव्रजित होवेंगे। जो आपकी गति होगी, वही हम लोगोंकी गति होगी।'

'यदि आप उन भोगोंको त्याग रहे हैं जिनमें सासारिक लोग लग्न रहते हैं,

(तो) दृढ़ता पूर्वक आरम्भ करें, क्षत्रियोचित बलसे युक्त होवें ॥२५॥

"यही मार्ग सीधा मार्ग है, यही अनुपम मार्ग है।

सभी (बुद्धो)से रक्षित यह धर्म ब्रह्मलोकको प्राप्त करानेवाला होता है ॥२६॥'

'तो आप गोविन्द, सात वर्ष प्रतीक्षा करें। सात वर्षके बाद हम लोग भी घरसे बेघर ०। जो आपकी गति ०।'

'सात वर्ष बहुत लम्बा होता है। सात वर्ष मैं आप लोगोंकी प्रतीक्षा नही कर सकता। जीवनका कौन ठिकाना ! मरना (अवश्य) है, (अत) ज्ञानप्राप्ति करनी चाहिये, अच्छा कर्म करना चाहिये, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। जन्म लेकर अमर कोई नही रहता। ब्रह्मासे मैंने सुना है ० प्रव्रजित होऊँगा।'

'तो गोविन्द ! छै वर्ष प्रतीक्षा करें ०। पाँच वर्ष, ०। चार वर्ष, ०। तीन वर्ष, ०। दो वर्ष, ०। एक वर्ष ०।'

"एक वर्ष बहुत लम्बा होता है ० प्रव्रजित होऊँगा।'

'तो गोविन्द ! सात महीना ०।'

"सात महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, छै महीना ०। पाँच ०। चार ०। तीन ०। दो ०। एक ०। आधा महीना ०।'

'आधा महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, सात दिन ० कि हम लोग अपने भाई-बेटोको राज्य सौंप दें। एक सप्ताह बीतनेके बाद हम लोग भी ०।'

'एक सप्ताह अधिक नहीं होता। एक सप्ताह तक आप लोगोकी प्रतीक्षा करूँगा।'

'तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मणमहाशाल और सातसौ स्नातक थे वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अब अपना दूसरा आचार्य खोज ले, जो कि आप लोगोको मन्त्र (=वेद) पढावेगा। मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ। क्योंकि ब्रह्मासे मैंने सुना है ०।'

'गोविन्द! आप मत घरसे बेघर ०। प्रव्रज्या अच्छी चीज नही है, उससे लाभ भी अल्प ही है। ब्राह्मणपन अच्छी चीज है, और उससे लाभ भी बहुत है।'

'मुझे अब अच्छी चीजसे या महालाभसे क्या! मैं आज तक राजाओका राजा, ब्राह्मणोका ब्राह्मण, (और) गृहस्थोके लिये देवता स्वरूप था। (लेकिन अब) उन सभीको छोळकर मैं घरसे बेघर हो ० प्रव्रजित हो जाऊँगा। क्योकि मैंने ब्रह्मासे ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे, तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायेंगे ०

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी समानवशवाली चालीस स्त्रियाँ थी वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अपनी इच्छाके अनुसार पीहर चली जावें, या दूसरे पतिको खोज ले। मैं घरसे बेघर ०। ब्रह्मासे मैंने सुना है ०।'

'आप ही हम लोगोके सम्बन्धी है, आप ही हम लोगोके पति है। यदि आप घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो हम लोग भी ०।'

'तब महागोविन्द ० उस सप्ताहके बीत जानेपर शिर और दाढी मुँछा प्रव्रजित हो गये। महागोविन्द०के प्रव्रजित हो जानेपर सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, सात ब्राह्मणमहाशाल, सातसौ स्नातक, समानवशवाली चालीस स्त्रियाँ, अनेक सहस्र क्षत्रिय, अनेक सहस्र ब्राह्मण, अनेक सहस्र वैश्य (=गृहपति) और अनेक सहस्र स्त्रियाँ ० प्रव्रजित हुए। उन लोगोके साथ महागोविन्द ० गाँव, कस्बा, और राजधानीमें चारिका करने लगे। उस समय महागोविन्द ० जिस गाँव या कस्बेमें पहुँचते थे वहाँ ही वह राजोके राजा, ब्राह्मणोके ब्राह्मण और गृहपतियोके लिये देवता स्वरूप हो जाते थे।

' उस समय मनुष्य लोग ठेस लगने या छीक आनेसे यह कहा करते थे—'नमोऽस्तु महागोविन्दाय ब्राह्मणाय। नमोऽस्तु सप्तपुरोहिताय।'

"महागोविन्द०ने मैत्री-सहित चित्तसे एक दिशाको ओर ध्यान लगाया, वैसे ही दूसरी दिशा, तीसरी ०। करुणायुक्त चित्तसे ०। मुदिता ०। उपेक्षा ०। श्रावको (=शिष्यो)को ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया।

"उस समय महागोविन्द०के जितने श्रावक थे, उनमें जिन्होंने धर्म को जाना था। वे मरकर सुगतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हुए। जिन लोगोने धर्मको पूरा पूरा नही समझ पाया, वे मरकर कुछ तो परनिर्मितवशवर्ती देवलोकमें उत्पन्न हुए, कुछ निर्माणरत देवोके बीचमें उत्पन्न हुए, कुछ तुषित देवो ०, कुछ याम देवो ० त्रायस्त्रिश (=त्रायस्त्रिंश) देवो ० चातुर्महाराजिक देवो ०। जिन्होंने सबसे हीन शरीर पाया, वे गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रोकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत हुई। 'भगवान्‌को वह स्मरण है?"

५–बुद्ध-धर्मकी महिमा

"पञ्चशिख ! हां, मुझे स्मरण है। मैं ही उस समय महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकोंको ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया था। पञ्चशिख ! मेरा वह ब्रह्मचर्य न निर्वेदके लिये,=न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (=परमशान्ति)के लिये, न ज्ञान-प्राप्तिके लिये, न सम्बोधिके लिये, और न निर्वाणके लिये था। वह केवल ब्रह्मलोक-प्राप्तिके लिये था। पञ्चशिख ! मेरा यह ब्रह्मचर्य ऐकान्त (बिलकुल) निर्वेदके लिये, विराग० और निर्वाणके लिये है।

"पञ्चशिख ! तो कौनसा ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये, ० और निर्वाणके लिये होता है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। पञ्चशिख ! यही ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये ० है। पञ्चशिख ! जो मेरे श्रावक पूरा पूरा धर्म जानते हैं, वे आस्रवोंके क्षय होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति (=चेतोविमुक्ति), प्रज्ञाविमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर विहार करते हैं। (और) जो पूरा पूरा धर्म नहीं जानते, वे कामलोकके क्लेश (=चित्त-मल) रूपी बन्धनोंके क्षय होनेसे देवता (=औपपातिक) होते हैं। जो पूरा पूरा धर्म नहीं जानते, उनमें कितने ही तीन बन्धनोंके क्षय हो जानेसे राग, द्वेष, और मोहके दुर्बल हो जानेसे सकृदागामी होते हैं। वह एक ही बार इस संसारमें आकर दुःखोंका अन्त करेंगे। कितने ही अविनिपात-धर्मा (जो फिर मार्गसे कभी नहीं गिर सकें) होंगे और जिनकी संबोधि प्राप्ति नियत है ऐसे स्रोत आपन्न होते हैं।

"पञ्चशिख ! अतः इन सभी कुलपुत्रोंकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत है।"

भगवान्‌ने यह कहा। पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र संतुष्ट हो भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर भगवान्‌की वन्दना तथा प्रदक्षिणा करके वहीं अन्तर्धान हो गया।

२०—महासमय-सुत्त (२।७)

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन। २—देवताओंके नाम-गोत्र आदि। ३—मारका भी दलबल पहुँचना।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँचसौ सभी अर्हत् भिक्षुओंके बड़े संघके साथ शाक्य देशमें कपिलवस्तुके महावनमें विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् और भिक्षुसंघके दर्शनके लिये दस-लोकधातुओंके बहुतसे देवता इकट्ठे हुए थे।

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन

तब चारों शुद्धावास लोकके देवताओंके मनमें यह हुआ—यह भगवान् शाक्यदेशमें ० विहार कर रहे हैं। ० इकट्ठे हुए हैं। क्यों न हम भी चलकर भगवान्के पास गाथा कहें।

तब वे देवता, जैसे बलवान् ० वैसे शुद्धावास देवलोकमें अन्तर्धान हो भगवान्के सामने प्रकट हुए। तब वे देवता भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हो एक देवताने भगवान्से गाथामें यह कहा—

"इस वनमें देवताओंका यह महासमूह एकत्रित हुआ है। हम लोग भी
इस अजेय संघके दर्शनार्थ इस धर्म सम्मेलनमें आये हुए हैं ॥१॥"

तब दूसरे देवताने भगवान्के सामने गाथामें यह कहा—

"भिक्षु लोग अपने चित्तको सीधाकर (वैसेही) समाहित (=ध्यानमें लीन) होते हैं,
पण्डित लोग लगाम ताने सारथीकी भाँति अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं ॥२॥"

तब दूसरे देवताने—

"राग आदि रूपी कण्टक, परिघ (=अर्गल) तथा खूँटेको नष्टकर ज्ञानी (जन) शुद्ध,
विमल, दान्त और श्रेष्ठ होकर विचरण करते हैं ॥३॥"

तब दूसरे देवताने—

"जो लोग बुद्धकी शरणमें गये हैं वे नरकमें नहीं पड़ेंगे।
मनुष्य-शरीरको छोड़ कर वे देव-शरीरको पावेंगे ॥४॥"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! तथागत और भिक्षुसंघके दर्शनार्थ दसों लोकधातुके बहुतसे देवता इकट्ठे हुए हैं। भिक्षुओ! अतीतकालमें जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं उन्हें भी (देखनेके लिये) इतने ही देवता इकट्ठे हुए थे, जितने कि इस समय मुझे देखनेके लिये। भिक्षुओ! अनागतकालमें भी जो अर्हत् ० होंगे, उन्हें भी ० इतने ही देवता इकट्ठे होंगे जैसे ०।

"भिक्षुओ! मैं देवशरीरधारियोंके नामको कहता हूँ, ० वर्णन करता हूँ, ० के नामका उल्लेख करता हूँ। उसे सुनो, मनमें लाओ।"

२—देवताओंके नाम-गाँव आदि

"अच्छा भन्ते!" कह, उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दिया।
भगवान्ने कहा—
"पूर्वापर भिन्न भिन्न स्थानोमें, पहाळकी कन्दराओमे रहनेवाले
जो सयमी और समाहित (ध्यानारूढ) देवता है उनके विषयमें मैं कहता हूँ ॥५॥
सिहके समान दृढ़, भयरहित, रोमाचरहित,
पवित्र मनवाले, शुद्ध, प्रसन्न, निर्दोष; ॥६॥
पाँचसौ बुद्धधर्म (=शासन)में रत श्रावकोको
कपिलवस्तुके वनमे बुद्ध (=शास्ता)ने सबोधित किया ॥७॥
'जो देवशरीरधारी आये हुए है, उन्हे भिक्षुओ! जानो (दिव्यचक्षुसे देखो)।'
उन (भिक्षुओं)ने बुद्धकी आज्ञाको सुनकर उत्साह (साहस?) किया ॥८॥
'देवोके देखने योग्य उन्हे ज्ञान उत्पन्न हो गया।
और कितनोने सौ, हजार और सत्तर हजार देवता देखे ॥९॥
कितनोने सौ हजार देवता देखे।
कितनोने सभी दिशाओको अनन्त देवोंसे पूर्ण देखा ॥१०॥
तब सर्वद्रष्टा शास्ताने वह सब देख और जान
धर्म (=शासन)मे रत श्रावकोको सबोधित किया ॥११॥
जितने देवशरीरधारी आये हुए हैं उन्हे भिक्षुओ! जानो,
मैं क्रमानुसार उनके विषयमें कहता हूँ ॥१२॥
"कपिलवस्तुमें रहनेवाले ऋद्धिमान्, द्युतिमान्, सुन्दर और यशस्वी सात हजार भूमि देवता,
यक्ष प्रसन्नतापूर्वक इस वनमें भिक्षुओंके सम्मेलन(को देखनेके लिये) आये हुए है ॥१३॥
"हिमालयपर रहनेवाले ऋद्धिमान् ० रग बिरगके छे हजार यक्ष प्रसन्नतापूर्वक० ॥१४॥
"सातागिरि पहाळपर रहनेवाले ० ॥१५॥
और दूसरे सोलह हजार यक्ष ० ॥१६॥
वेस्सामित्त पर्वतपर रहनेवाले पाँचसौ यक्ष ० ॥१७॥
"राजगृहका कुम्भीर यक्ष, जो वेपुल्लपर्वतपर रहता है,
और एक लाखसे भी अधिक यक्ष जिसकी सेवा करते है,
वह भी वनके इस सम्मेलनमे आया हुआ है ॥१८॥
"गन्धर्वोंके अधिपति यशस्वी महाराज धतरट्ठ (=धृतराष्ट्र) पूर्व दिशामे विराजमान हैं ॥१९॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र (=इन्द) नामधारी उनके अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२०॥
"कुम्भण्डो (=कूष्माड)के अधिपति यशस्वी
महाराज विरूढक दक्षिण दिशामें विराजमान है ॥२१॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२२॥
"नागोके अधिपति ० विरूपाक्ष पश्चिम दिशामे विराजमान है ॥२३॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२४॥
"यक्षोके अधिपति ० वैश्रवण (=कुबेर) उत्तर दिशामें विराजमान है ॥२५॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२६॥
"पूर्वमें धृतराष्ट्र, दक्षिणमे विरुढक, पश्चिममे विरूपाक्ष (और) उत्तरमें वैश्रवण ॥२७॥

'कपिलवस्तुके वनमें ये चारों महाराज चारों दिशाओंमें चमक रहे हैं ॥२८॥
'उनके मायावी, वञ्चक और शठ दासभृत्य भी आये हुए हैं,
जिनके नाम—माया, कूटेण्डु, वेटेण्डु, विटुच्च विटुच ॥२९॥
चन्दन, कामसेट्ठ, किन्नुघण्डु, निघण्डु, पनाद, ओपमञ्ञ
और देवपुत्र मातलि, चित्तसेन और जननायक गन्धर्व नल राजा ॥३०॥
"पञ्चशिख, तिम्बरु, सूर्यवर्चस् तथा और दूसरे गन्धर्वराजा
राजाओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक ० आये हैं ॥३१॥

आकाशवासी और वैशालीमें रहनेवाले नाग अपनी अपनी सभाके साथ आये हैं। कम्बल अश्वतर(=अस्सतर) अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ प्रयाग (प्रयागवाले) भी आये हैं ॥३२॥

यामुन (=यमुनावासी) और धृतराष्ट्र नामक यशस्वी नाग आये हैं।
महानाग ऐरावण भी वनके सम्मेलनमें आये हैं ॥३३॥
वे विशुद्ध दिव्यचक्षुवाले पक्षी, जो नागराजाओंके वाहक हैं,
आकाशमार्गसे इस वनमें पहुँचे हैं। चित्र और सुपर्ण उनके नाम हैं ॥३४॥
"वहाँ नागराजाओंको भय न था। भगवान् बुद्धने गरुडोंसे उन्हें रक्षा प्रदान की थी।
मीठे वचनोंसे परस्पर सल्लाप करते हुए वह नाग और गरुड बुद्धकी शरणमें गये ॥३५॥
समुद्रके आश्रित असुर, जिन्हें इन्द्रने पराजित किया था।
वे ऋद्धिमान् और यशस्वी (असुर) इन्द्रके भाई हो गये ॥३६॥
'कालक (नामक असुर) बड़े भयंकर रूपमें आया।
वेमचित्ति, सुचित्त, पहराद(प्रह्लाद) और नमुचि नामक असुर धनुष लिये हुए आये ॥३७॥

"सभी राहु नामवाले बलिके सौ पुत्र अपनी अपनी सेनाओंको सजाकर राहुभद्रके पास गये। (और बोले) हे भदन्त! वनमें भिक्षुओंकी समिति हो रही है ॥३८॥

जल, पृथ्वी, तेज तथा वायुके देवता वहाँ आये हैं। वरुण, वारण, सोम
और यश यशस्वी, मैत्री तथा करुणा शरीरवाले देव वहाँ आये हैं ॥३९॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग बिरंगे ऋद्धिमान् ० ॥४०॥
"वेण्डुदेव, सहली, असम और दो यम,
चन्द्रमाके देवता चन्द्रमाको आगे करके आये हैं ॥४१॥
"सूर्यके देवता सूर्यको आगे करके आये हैं।
मन्दबलाहक देवता नक्षत्रोंको आगे करके आये हैं।
वसु देवताओंमें श्रेष्ठ वासव, शक्र, इन्द्र भी आये हैं ॥४२॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग बिरंगे ऋद्धिमान् ० ॥४३॥
"अग्नि-शिखासे दहकते सहभू देव आये हैं। अलसीके फूलकी
आभाके सदृश शरीरवाले अरिट्ठक राजा आये हैं ॥४४॥
वरुण, सहधम्म, अच्युत, अनेजक, सूलेय्य,
रुचिर और वासवन-निवासी देवता आये हैं ॥४५॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग बिरंगे ० ॥४६॥
"समान, महासमान मानुस (=मानुष), मानुषोत्तम (=मानुसुत्तम),
क्रीडाप्रदूषिक (=खिड्डापदूसिक) और मनोपदूषिक देवता आये हैं ॥४७॥
"लोहित नगरके रहनेवाले हरि देवता आये हैं।

पारग और महापारग नामक यशस्वी देवता आये हैं ॥४८॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग बिरंगे० ॥४९॥
"सुक्क, करम्भ और अरुण, वेसनसके साथ आये हैं।
अवदातगृह नामक प्रमुख विचक्षण देवता आये हैं ॥५०॥
"सदामत्त, हारगज, और यशस्वी मिस्सक आये हैं।
पज्जुन्न अपने रहनेकी दिशासे गरजते हुए आये हैं ॥५१॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले० ॥५२॥
"खेमिय, तुषित, याम और यशस्वी कट्ठक (आये हैं)। लम्बितक, लोमसेट्ठ,
जोति और आसव नामक निम्माणरति और परनिर्म्मित देवता आये हैं ॥५३॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीर० ॥५४॥
"और दूसरे इसी प्रकारके साठ देव-समुदाय
नाना नाम और जातिके आये हैं ॥५५॥
"जन्मरहित, रागादिरहित, भव-पार (=जिसने चार ओघोंको पार कर लिया है),
आस्रवरहित, कालिमारहित चन्द्रमा जैसे नागको देखेंगे ॥५६॥
"सुब्रह्मा, परमत्य और ऋद्धिमानके पुत्र,
सनत्कुमार और तिस्स भी० आये हैं ॥५७॥
"ब्रह्मलोकवासी हजारोंके ऊपर रहनेवाला ब्रह्मलोकमें उत्पन्न,
द्युतिमान् भीमकायधारी और यशस्वी महाब्रह्मा ॥५८॥
प्रत्येक वशवर्ती लोकके दस स्वामी (=ईश्वर) आये हैं।
उनमें घिरा हारित भी आया है ॥५९॥

३—मारका भी सदलबल पहुँचना

"इन्द्र और ब्रह्माके साथ सभी देवोंके आनेपर मार सेना भी आ धमकी।
मारकी यह मूर्खता देखो ॥६०॥
"आओ, पकळो, बाँधो, रागसे सभीको वशमें कर लो,
चारो ओरसे घेर लो, कोई किसीको न छोळो ॥६१॥
"हाथसे जमीनको ठोंक, भैरव स्वर (महानाद) करके, जैसे वर्षाकालमें
मेघ बिजलीके साथ गरजता है, उस तरह (गर्जकर)
मारने अपनी बळी भारी सेनाको भेजा ॥६२॥
"तब क्रोधसे भरा मार आया। उन सबोंको जानकर सर्वद्रष्टा भगवान्० ॥६३॥
"शास्ताने शासनमें रत श्रावकोंको संबोधित किया—
'मार-सेना आई हुई है। इसे भिक्षुओ! जान लो' ॥६४॥
"बुद्धकी बातको सुनकर वे वीर्यपूर्वक सचेत हो गये।
(मार सेना) वीतराग (भिक्षुओं)से (हारकर) भाग चली।
उनके एक बालको भी टेढा न कर सकी ॥६५॥
"वे सभी प्रसिद्ध, संग्राम-विजयी निर्भय और यशस्वी श्रावक वीतराग आर्योंके साथ मुदित हैं" ॥६६॥

२१—सक्कपञ्ह-सुत्त (२।८)

१—इन्द्रशाल गुहामें शक्र। २—पंचशिखका गान। ३—तिम्बरूकी कन्या पर पंचशिख आसक्त। ४—बुद्ध-धर्मकी महिमा। ५—शक्रके छै प्रश्न।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मगधमें प्राचीन राजगृहसे पूर्व अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण-ग्रामके उत्तर वेदिक (वेदियक) पर्वतकी इन्द्रशाल-गुहामें विहार कर रहे थे, उस समय शक्र देवेन्द्रको भगवान्‌के दर्शनके लिये इच्छा उत्पन्न हुई।

१—इन्द्रशाल गुहामें शक्र

तब देवेन्द्र शक्रके मनमें यह आया—"भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध इस समय कहाँ विहार करते है ?" देवेन्द्र शक्र० ने भगवान्‌को मगधमें० विहार करते देखा। देखकर त्रायस्त्रिंश देवोंको संबोधित किया—"मार्षो! अभी भगवान् मगधमें प्राचीन राजगृहके० विहार कर रहे है। चलो मार्षो! हम लोग उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्‌के दर्शनको चले।"

"अच्छा भन्ते"—कह उन देवोंने देवेन्द्र शक्रको उत्तर दिया। तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख गन्धर्वपुत्रको संबोधित किया—'तात! अभी भगवान् मगधमें० विहार कर रहे है। चलो हम लोग उन०के दर्शनको चले।' "अच्छा भन्ते!" कह देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व उत्तर दे (अपनी) वेलुवपण्डु नामक वीणा ले देवेन्द्र शक्रके पास आ गया।

तब देवेन्द्र शक्र त्रायस्त्रिंश देवोंको साथ ले देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्वको आगेकर जैसे बलवान्० वैसे ही त्रायस्त्रिंश देवलोकमें अन्तर्धान हो मगधमें, राजगृहसे पूर्व० वेदिक पर्वतपर प्रकट हुआ।

उस समय उन देवोंके देवानुभावसे वेदिक पर्वत, और अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे थे। और चारो ओर गाँवके लोग कहते थे—आज वेदिक पर्वत आदिप्त हो रहा है, आज वेदिक पर्वत जल रहा है। आज क्यों वेदिक पर्वत, और अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं ? उद्वेगके मारे उन्हें रोमाञ्च हो रहा था।

तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को संबोधित किया—"पञ्चशिख! ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागतके पास मेरे जैसा कोई सहसा नहीं जा सकता। पञ्चशिख! यदि आप पहले जाकर भगवान्‌को प्रसन्न करें (तो अच्छा हो)। पहले आप प्रसन्न कर लेंगे तब पीछे हम लोग भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध-के दर्शनके लिये आवेंगे।"

२—पंचशिखका गान

"अच्छा भन्ते!" कह पञ्चशिख० देवेन्द्र शक्र०को उत्तर दे, वेलुवपण्डु वीणा ले जहाँ इन्द्र-शाल गुहा थी वहाँ गया। जाकर, इतने फासिलेपर,—जहाँसे कि भगवान् न तो बहुत दूर थे और न बहुत निकट, (खड़े होकर) पञ्चशिख० वेलुवपण्डु वीणाको बजाने लगा। और इन बुद्ध-सम्बन्धी, धर्म-

संबंधी, संघसंबंधी, अर्हत्-संबंधी और भोग-संबंधी गाथाओंको गाने लगा—

"भद्रे! सूर्यवर्चसे! तेरे पिता तिम्बरुकी वंदना करता हूँ।
जिससे हे कल्याणि! मेरी आनन्ददायिनी तू उत्पन्न हुई ॥१॥
जैसे पसीना चूते थके पुरुषके लिये वायु, प्यासेको पानी,
जैसे अर्हतोंको धर्म, आंगिरसे! वैसे ही तू मुझे प्रिय है ॥२॥
जैसे रोगीको दवा, भूखेको भोजन,
जलतेको पानीकी भाँति भद्रे! मुझे शान्ति प्रदान कर ॥३॥
पुष्परेणुसे युक्त शीतलजलवाली पुष्करिणीको
धूपमें संतप्त गजराजकी भाँति मैं तेरे स्तनोदरको अवगाहन करूँ ॥४॥
भाले और अंकुश द्वारा निरंकुश नागकी भाँति मुझे (तूने) जीत लिया।
कारण नहीं जानता, सुन्दरजघीने (मुझे) पागल बना दिया ॥५॥
मेरा मन तेरेमें आसक्त है, मैंने (अपना) चित्त तुझे प्रदान कर दिया है।
पंकमें फँसे कमलकी भाँति मैं लौटनेमें असमर्थ हूँ ॥६॥
वामोरु! भद्रे! मेरा आलिंगन कर, मन्दलोचने! मुझे आलिंगित कर।
कल्याणि! गले मिल, यही मेरी चाह है ॥७॥
वक्रितकेशीने अहो! मेरी कामनाको थोड़ा शान्त किया,
किन्तु (उसने) अर्हतोंमें मेरा अधिक आदर उत्पन्न किया ॥८॥
मैंने अर्हत् तथागतोंके लिये जो पुण्य किया है,
सर्वांगकल्याणी! वह (सब) तेरे साथ भोगनेको मिले ॥९॥
इस पृथ्वी-मंडलपर मैंने जो पुण्य किया है,
सर्वांगकल्याणी! ० ॥१०॥
जैसे शाक्यपुत्र मुनि ध्यानद्वारा एकाग्र, एकांतसेवी, स्मृतियुक्त हो,
अमृत पाना चाहते हैं; वैसे ही सूर्यवर्चसे! मैं तुझे (चाहता हूँ) ॥११॥
जैसे मुनि उत्तम संबोधि (=परमज्ञान)को प्राप्त हो आनंदित होता है,
कल्याणि! उसी तरह तुझसे मिलकर (आलिंगित होकर) मैं आनंदित होऊँगा ॥१२॥
यदि त्रायस्त्रिंश (लोक)के स्वामी शक्र मुझे वर दें,
तो भी मेरा प्रेम इतना दृढ़ है, कि भद्रे! मैं उसे न लूँगा ॥१३॥
हालके फूले शालवनकी भाँति सुमेधे! तेरे पिताको
मैं स्तुतिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिसकी तेरी जैसी संतान है ॥१४॥

इन गाथाओंके गानेके बाद भगवान्‌ने पञ्चशिखसे यह कहा—"पञ्चशिख! तुम्हारे बाजेका स्वर तुम्हारे गीतके स्वरसे बिल्कुल मिला है (और) तुम्हारे गीतका स्वर, तुम्हारे बाजेके स्वरसे बिल्कुल मिला है। पञ्चशिख! न तो तुम्हारे बाजेका स्वर तुम्हारे गीत-स्वरसे इधर-उधर जाता है; और न तुम्हारा गीत-स्वर तुम्हारे बाजेके स्वरसे इधर उधर जाता है। तुमने इन बुद्धसंबंधी ० गाथाओंको कब रचा?"

(=सारथी)के पुत्र शिखंडीको चाहती थी। भन्ते ! जब मैं उसे नहीं पा सका तो किसी बहानेसे अपनी बेलुवपण्डु वीणा लेकर जहाँ तिम्बरु गन्धर्वराजका घर था, वहाँ गया। जाकर वेलुवपण्डु वीणाको बजा, इन बुद्धसबंधी गाथाओंको गाने ० लगा—"भद्रे ! सूर्यवर्चसे ! ० सन्तान है ॥१-१४॥

"भन्ते ! गाना गानेके बाद भद्रा सूर्यवर्चसा मुझसे बोली—'मार्ष ! उन भगवान्‌को मैंने प्रत्यक्ष नहीं देखा है। (किन्तु) त्रायस्त्रिंश देवोंकी धर्मसभामें जब नृत्य करनेके लिये गई थी, तो उन भगवान्‌के विषयमें सुना था। मार्ष ! आप उन भगवान्‌का कीर्तन करते है, इसलिये आज, हम लोगोंका समागम हो।' भन्ते ! उसके साथ वही एक समागम हुआ है। उसके बाद कभी नहीं।"

तब देवेन्द्र शक्रके मनमें यह हुआ—'अब भगवान् प्रसन्न होकर पञ्चशिखसे बातें कर रहे हैं। तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को संबोधित किया—

"पञ्चशिख ! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो—भन्ते ! देवेन्द्र शक्र अपने अमात्यों (=मन्त्री) तथा परिजनोंके साथ भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है।'

"अच्छा, भन्ते !" कह ० पञ्चशिख०ने भगवान्‌को अभिवादनकर कहा—"भन्ते ! देवेन्द्र शक्र० वन्दना करता है।"

"पञ्चशिख ! देवेन्द्र शक्र० अपने अमात्यों तथा परिजनोंके साथ सुखी होवे। देव, मनुष्य असुर, नाग, गन्धर्व सभी सुखी होवें। इन लोगोंको तथागत इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं।"

४—बुद्धधर्मकी महिमा

आशीर्वाद पा देवेन्द्र शक्र० इन्द्रशाल-गुहामें प्रवेशकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। त्रायस्त्रिंश देव भी इन्द्रशाल-गुहामें प्रवेशकर ० खळे हो गये। देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व भी ० खळा हो गया।

उस समय इन्द्रशाल-गुहाका जो भाग टेढा मेढा था, बराबर हो गया, जो संकीर्ण था सो विस्तृत हो गया, और देवोंके देवानुभावसे ही गुहा प्रकाशसे भर गई।

तब भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रसे यह कहा—"अद्‌भुत है, बळा आश्चर्य है, जो आप आयुष्मान् कौशिक (=इन्द्र) जैसे बहुकृत्य, बहुकरणीय पुरुषका यहाँ आगमन हुआ !!"

"भन्ते ! मैं चिरकालसे भगवान्‌के दर्शनार्थ आनेकी इच्छा रखता था। किन्तु, त्रायस्त्रिंश देवोंके कुछ न कुछ काममें लगे रहनेसे भगवान्‌के दर्शनार्थ इतने दिनों तक आनेसे असमर्थ रहा। भन्ते ! एक समय भगवान् श्रावस्तीके पास सललागार[1] में विहार कर रहे थे। उस समय मैं भगवान्‌के दर्शनार्थ श्रावस्ती गया था। भन्ते ! उस समय भगवान् किसी समाधिमें बैठे थे। भुञ्जती नामक वैश्रवणकी परिचारिका उस समय हाथ जोळे भगवान्‌को नमस्कार करती खळी थी। भन्ते ! तब मैंने भुञ्जतीसे यह कहा—'भगिनि ! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो, और कहो कि देवेन्द्र शक्र० अपने अमात्य और परिजनोंके साथ भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे प्रणाम करता है।' ऐसा कहनेपर भुञ्जतीने मुझसे यह कहा—'मार्ष भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है, भगवान् समाधिमें हैं।' 'भगिनि ! तो जब भगवान् इस समाधिसे उठें तब ही उनको मेरी ओरसे अभिवादन करके कहना कि देवेन्द्र शक्र भगवान्‌को प्रणाम करता है।'

"भन्ते ! क्या उसने भगवान्‌को अभिवादन किया था ? भगवान्‌को उसकी बात याद है ?"

---

[1] जेतवनके पीछेकी ओर था। देखो 'जेतवन'; नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९३४।

"देवेन्द्र! हां! उसने अभिवादन किया था। मुझे उसकी बात याद है। बल्कि आपके रथकी घळघळाहटहीसे मेरी समाधि टूटी थी।"

"भन्ते! त्रायस्त्रिंश देवलोकमें मैंने अपनेसे पहले उत्पन्न हुए देवोको कहते सुना है कि जब तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ससारमे उत्पन्न होते हैं, तो असुरोंकी सख्या कम हो देवताओकी बढती है। भन्ते! उसे मैंने आँखो देख लिया कि जब तथागत ०।

"भन्ते! इसी कपिलवस्तुमें बुद्धमें प्रसन्न ० सघमें प्रसन्न और शीलोको पूरा करनेवाली गोपिका नामकी एक शाक्यपुत्री थी। वह स्त्री-चित्तसे विरत रह, और पुरुष-चित्तकी भावनाकर मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्गलोकमे उत्पन्न हुई। त्रायस्त्रिंश देवलोकमें पुत्र होकर पैदा हुई। वहाँ भी उसे 'गोपक देवपुत्र गोपक देवपुत्र' कहते हैं।

"भन्ते! दूसरे भी तीन भिक्षु भगवान्के शासनमे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए। वे पाँच भोगोंसे युक्त हो हम लोगोकी सेवा करनेको आते हैं, हम लोगोकी परिचर्या करनेको आते हैं। एक बार हम लोगोकी सेवामें आनेपर उनसे गोपक देवपुत्रने कहा—मार्ष! आप लोगोने भगवान्के धर्मको क्यो नही सुना? मैं स्त्री होकर भी बुद्धमें प्रसन्न ०। स्त्रीत्वसे विरत रह, पुरुषत्वकी भावना कर ० देवेन्द्र शक्र०का पुत्र होकर उत्पन्न हुई हूँ। यहाँ भी लोग मुझे गोपक देवपुत्र कहते हैं। मार्ष आप लोग भगवान्के शासनमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके भी हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं।

"यह बळा बुरा मालूम होता है, कि एक ही धर्ममें रहकर भी हम लोग हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं।'

"भन्ते! गोपक देवपुत्रके ऐसा कहनेपर उनमेंसे दो देखते देखते स्मृति लाभकर (सचेत हो) ब्रह्मपुरोहित (देवताओके) शरीरको प्राप्त हो गये। एक कामलोकमें ही देव रह गया।

"चक्षुमान् (बुद्ध)की मैं उपासिका थी। मेरा नाम गोपिका था।
बुद्ध और धर्ममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) रहकर प्रसन्न चित्तसे सघकी सेवा करती थी॥१५॥
"उन्ही बुद्धके धर्मबलसे अभी मैं शक्रका महानुभाव पुत्र हूँ।
महातेजस्वी हो स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ हूँ।
यहाँ भी लोग मुझे गोपकके नामसे जानते हैं॥१६॥
"मैंने अपने परिचित भिक्षुओंको गन्धर्व शरीर पाये देखा।
जब पहले हम लोग मनुष्य थे तो वह (भगवान्) गौतमके श्रावक थे॥१७॥
"अपने घरमे पैर धोकर अन्न और पानसे मैंने (उनकी) सेवा की थी,
क्योंकि इन लोगोने बुद्धके धर्मको ग्रहण किया था॥१८॥
'बुद्धके उपदिष्ट धर्मको स्वय अपने समझना चाहिये।
मैं आप लोगोकी ही सेवा करती और आर्य सुभाषित धर्मको सुनकर; ॥१९॥
'स्वर्गमें उत्पन्न हो, महातेजस्वी और महानुभाव हो शक्रका पुत्र हुआ हूँ।
और आप लोग (स्वय) बुद्धकी सेवामें रह
तथा अनुपम ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके (भी) ॥२०॥
'अयोग्य, हीन कायाको प्राप्त हुए हैं। यह देखनेमें बळा बुरा मालूम होता है;
कि एक ही धर्ममें रहकर भी आपने हीन कायाको प्राप्त किया है॥२१॥
'गन्धर्व शरीरको प्राप्तकर आप लोग देवोकी सेवा-टहलके लिये आते हैं
(किन्तु पूर्वमें) गृहस्थ रहकर भी मेरी इस विशेषताको देखिये॥२२॥
'स्त्री होकर भी आज पुरुष देव हो दिव्य भोगों (कामो)से सेवित हूँ।'

गोपकके ऐसा कहने पर वे गौतमके थावा वैराग्यको प्राप्त हुए ॥२३॥
'शोककी बात है कि हम लोग दास हो गये हैं !'
और उनमें दोने गौतमके धर्मका स्मरणकर अपने उद्योग किया ॥२४॥
"कामोंमें आदिनवो (=दोषों)को देख, उनमेंसे चित्तको उचाट,
वे मारके लगाये हुए कामोंके दृढ़ बन्धनको ॥२५॥
हाथी जैसे रस्सीको तोळ देता है, वैसे तोळ, त्रायस्त्रिंश देवलोकमें चले गये।
उस समय इन्द्र और प्रजापतिके साथ सभी देव धर्मसभामें बैठे थे ॥२६॥
वे वैराग्यसे अत्यन्त निर्मल हो बैठे हुए (देवों)से बढ़ गये।
उन्हें देखकर देवगणोंमें बैठे देवाभिभू (जो देवोंको वशमें रखता है) इन्द्रको बड़ा संवेग हुआ ॥२७॥
अहो ! हीन शरीर प्राप्त करके भी यह त्रायस्त्रिंश देवोंसे बढ़ गये हैं।'
(इन्द्रकी) संवेग-पूर्ण बातको सुनकर गोपकने इन्द्रसे कहा ॥२८॥—
"हे इन्द्र ! मनुष्य लोकमें भोगोंपर विजय प्राप्त करनेवाले शाक्यमुनि बुद्ध प्रसिद्ध हैं।
उन्हींके ये पुत्र स्मृतिसे विहीन (हो गये थे, सो), मेरे प्रेरित करनेपर स्मृतिको प्राप्त हुए हैं ॥२९॥
"यह लोग परवशता पार कर गये हैं। (इनमें) एक गन्धर्वशरीरमें रह गया
और दो सम्बोधि (ज्ञान)के मार्गपर चलकर एकाग्र मन हो देवोंसे भी बढ़ गये ॥३०॥
"इस प्रकारके धर्मोपदेशमें किसी शिष्य (=श्रावक)को कोई शंका नहीं रह जाती।
भवसागर पारगत, छिन्न विचिकित्सा=विजयी संदेहरहित, उस जननायक (=जिन) बुद्धको नमस्कार है ॥३१॥
"(उन्हींके) उस धर्मको समझकर ये इस विशेषताको प्राप्त हुए हैं।
दोनोंने ब्रह्मपुरोहित शरीर पाया है ॥३२॥
"मार्ष ! उसी धर्मकी प्राप्तिके लिये हम लोग आये हुए हैं।
भगवान्से आज्ञा लेकर प्रश्न पूछना चाहता हूँ' ॥३३॥
तब भगवान्के मनमें यह हुआ—'यह शक्र बहुत दिनोंसे विशुद्ध है। अवश्य ही सार्थक प्रश्न पूछेगा, निरर्थक नहीं। जिस प्रश्नका उत्तर मैं दूँगा उसे वह शीघ्र ही समझ लेगा। तब भगवान्ने देवेन्द्र शक्रसे गाथामें कहा—
"हे वासव (=इन्द्र) ! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उस प्रश्नको पूछो,
तुम्हारे उन प्रश्नोंका मैं उत्तर दूँगा ॥३४॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—शक्रके छै प्रश्न

(१) भगवान्से आज्ञा लेकर शक्रने भगवान्से यह पहला प्रश्न पूछा—
"मार्ष ! देव, मनुष्य, असुर, नाग, गन्धर्व और दूसरे प्राणी किस बन्धनमें पळे हैं ? वैर, दण्ड, शत्रु और हिंसाके भावको छोळ, वैररहित हो विहार करें ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे दण्ड-सहित, शत्रुता और हिंसाभावसे युक्त होकर वैर-सहित ही रहते हैं।"
इस प्रश्नके पूछनेपर भगवान्ने उत्तर दिया—"देवेन्द्र ! देव, मनुष्य ० सभी ईर्ष्या और मात्सर्यके बन्धनमें पळे हैं। वैर, दण्ड ० अवैरी हो ० ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे वैर-सहित ० ही रहते हैं।"
सन्तुष्ट होकर देवेन्द्र शक्रने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया—"ठीक है भगवान्, ठीक है सुगत। भगवान्के प्रश्नोत्तरको सुनकर मेरी शंका मिट गई।

शक्र०ने भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर, भगवान्‌से दूसरा प्रश्न पूछा—

(२) "मार्ष ! ईर्ष्या और मात्सर्यके कारण (=निदान), समुदय=जन्म=प्रभव क्या हैं ? किसके होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य होते हैं, किसके नहीं होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य नहीं होते ?"

"देवेन्द्र ! ईर्ष्या और मात्सर्य प्रिय-अप्रियके कारण ० होते हैं। प्रिय-अप्रियके होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य होते हैं और प्रिय-अप्रियके नहीं होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य नहीं होते।

"मार्ष ! प्रिय-अप्रियके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! प्रिय-अप्रिय छन्द (=चाह)के कारण०से होते हैं। छन्दके होनेसे ०।"

"मार्ष ! छन्दके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! छन्द वितर्कके कारण०से होता है। वितर्कके होनेसे ०।"

"मार्ष ! वितर्कके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! वितर्क प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके कारण०से होता है०।"

"मार्ष ! प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके निदान क्या हैं ? किसके होनेसे० ? मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके विनाश (=निरोध)के मार्गपर आरूढ होता है ?"

"देवेन्द्र ! सौमनस्य (=मनकी प्रसन्नता, सुख) दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय और दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य (=चित्तके खेद) भी दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय और दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! उपेक्षा भी दो प्रकार ०। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) बढ़ती हैं और अच्छाइयाँ (=कुशल धर्म) कम होती हैं, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय नहीं है। और, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ घटती हैं और अच्छाइयाँ बढ़ती हैं, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय है। वैसे ही उस अवस्थामें सवितर्क और सविचार तथा अवितर्क और अविचारमें, जो अवितर्क और अविचार हैं वही श्रेष्ठ है। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। जो कहा है सो इसी कारणसे।

"देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो जिस दौर्मनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ०[1] वही श्रेष्ठ है। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। जो कहा सो इसी कारणसे।

"देवेन्द्र ! उपेक्षा दो प्रकार ०।

"देवेन्द्र ! इस प्रकारका आचरण करनेवाला भिक्षु प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके निरोधके मार्गपर आरूढ होता है।"

इस प्रकार भगवान्‌ने शक्रके पूछे प्रश्नका उत्तर दिया। सन्तुष्ट होकर शक्र० ने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया।—"ठीक है भगवान् ०।"

(३) तब देवेन्द्र शक्रने ० अनुमोदन करके भगवान्‌से और प्रश्न पूछा—

"मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रातिमोक्ष-संवर (=भिक्षु-संयम)से युक्त होता है ?

"देवेन्द्र ! कायिक आचरण (=कायसमाचार) भी दो प्रकारके होते हैं, एक सेवनीय और दूसरे असेवनीय। देवेन्द्र ! वाचिक आचरण (=वाक्‌समाचार) भी दो ०। देवेन्द्र ! पर्येषण (=भोगाकी चाह) भी दो ०।

"कायिक आचरण दो ०। यह जो कहा गया है सो किस कारणसे ? तो जिस कायिक आचरण-

---

[1] ऊपर जैसा पाठ।

ले जानेके लिये खींचती हैं। इसीके कारण पुरुषकी वृद्धि और हानि होती है।

"भन्ते! जिन प्रश्नोके उत्तरको दूसरे श्रमण और ब्राह्मणोसे पूछ कर मै नही पा सका था, उन्हे भगवान्‌ने स्पष्ट कर दिया। मेरी जो शका और दुबिधा बहुत दिनोसे पूरी न हुई थी, उसे भगवान्‌ने दूरकर दिया।"

"देवेन्द्र! क्या तुमने इन प्रश्नोको कभी किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मणसे पूछा था?"

"भन्ते! हाँ मैंने इन प्रश्नोको दूसरे श्रमण ब्राह्मणोसे पूछा था।"

"देवेन्द्र! जिस प्रकार उन्होंने उत्तर दिया, यदि तुम्हे भार न हो तो, कहो।"

"भन्ते! जहाँ आप जैसे बैठे हो वहाँ मुझे भार क्योकर हो सकता है?"

"देवेन्द्र! तो कहो।"

"भन्ते! जो श्रमण और ब्राह्मण निर्जन वनमे वास करते हैं उनके पास जाकर मैंने इन प्रश्नोको पूछा। पूछनेपर वे लोग उत्तर न दे सके। बल्कि मुझहीसे पूछने लगे—

"आप कौन है?" उनके पूछनेपर मैंने कहा—'मार्ष! मै देवेन्द्र शक्र० हूँ। तब वे मुझहीसे पूछने लगे—'देवेन्द्र! आपने कौन-सा पुण्य करके इस पदको प्राप्त किया है?' उन लोगोको मैंने यथा-ज्ञान यथाशक्ति धर्मका उपदेश किया। वे उतनेहीसे सतुष्ट हो गये—'देवेन्द्र शक्रको हम लोगोंने देख लिया। जो हम लोगोने पूछा उसका उत्तर उसने दे दिया।' (इस प्रकार) वे मेरे ही शिष्य (=श्रावक) बन जाते है, न कि उनका मैं। भन्ते! मै (तो), भगवान्‌का स्रोतआपन्न, अविनिपातधर्मा, नियत सम्बोधिपरायण श्रावक हूँ।"

"देवेन्द्र! तुम्हे स्मरण है क्या इसके पहले तुमको कभी ऐसा सतोष और सौमनस्य हुआ था?"

"भन्ते! स्मरण है, इसके पहले भी मुझे ऐसा सतोष और सौमनस्य हो चुका है।'

"देवेन्द्र! जैसे तुम्हे स्मरण है इसके पहले भी० उसे कहो।"

"भन्ते! बहुत दिन हुये कि देवासुर सग्राम हुआ था। उस सग्राममें देवोंकी विजय हुई और असुरोंकी पराजय। भन्ते! उस सग्रामको जीतकर मेरे मनमें यह हुआ—'अब जो दिव्य-ओज और असुर-ओज है, दोनोका देव लोग भोग करेंगे।' भन्ते! मेरा वह सतोष और सौमनस्य लळाई झगळेके सम्बन्धमे था। निर्वेदके लिये नही, विरागके लिये नही, निरोधके लिय नही, शान्तिके लिये नही, ज्ञानके लिये नही, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये नही। भन्ते! जो यह भगवान्‌के धर्मोपदेशको सुनकर सतोष और सौमनस्य हुआ है वह लळाई-झगळेका नही, किंतु पूर्णतया निर्वेद० के लिये।"

"देवेन्द्र! क्या देखकर यह कह रहे हो, कि तुमने ऐसा सतोष सौमनस्य पाया?'

"भन्ते! छै अर्थोको देखकर० कह रहा हूँ।—मार्ष! देव रूपमे।

यही रहते रहते मैंने फिर आयु प्राप्त की है, इस प्रकार आप जानें ॥३५॥

भन्ते! यह पहला अर्थ है कि जिसे देखकर कि मैंने इस प्रकारका संतोष और सौमनस्य पाया।

'दिव्य आयुके क्षीण हो जानेपर इस शरीरसे च्युत होकर,

मैं अपनी इच्छानुसार जहाँ मन होगा उसी गर्भमें प्रवेश करूँगा।' ॥३६॥

"भन्ते! यह दूसरा अर्थ है कि०।

"सो मै तथागतके शासन (=धर्म)में रत रहकर स्मृतिमान्,

तथा सावधान हो ज्ञानपूर्वक विहार करूँगा ॥३७॥

"भन्ते! यह तीसरा अर्थ०।

"ज्ञानपूर्वक आचरण करते हुये मुझे सम्बोधि प्राप्त होगी।

मैं परमार्थको जानकर विहार करूँगा, यही इसका अन्त होगा ॥३८॥

"भन्ते ! यह चौथा अर्थ० ।
"मनुष्यकी आयु क्षीण होनेके बाद मनुष्य-शरीरसे च्युत होकर।
फिर भी देव-लोकमें उत्पन्न हो जाऊँगा ॥३९॥
"भन्ते ! यह पाँचवाँ० ।
"अकनिष्ठ लोकके श्रेष्ठ यशस्वी देवोंमें।
मेरा अन्तिम जन्म होगा ॥४०॥"
"भन्ते ! यह छठा० ।
"भन्ते ! इन्हीं छै अर्थोंको देखकर मुझे इस प्रकारका सतोष और सौमनस्य प्राप्त हुआ।
"तथागतकी खोजमें बहुत दिनो तक अपूर्ण सकल्प रह
नाना शकाओंमें पळकर भटकता था ॥४१॥
"एकान्तवास करनेवाले श्रमणोंको सबुद्ध समझकर
उनकी उपासनाके लिये जाता था ॥४२॥
"मोक्ष प्राप्तिके कौनसे उपाय हैं और मोक्षके विपरीत ले जानेवाली कौनसी बातें हैं ?
इस तरह पूछनेपर वे न तो मार्गको=न प्रतिपदाको ही बता सकते थे ॥४३॥
"जब उन लोगोने जाना कि देवेन्द्र शक्र आया है, तो मुझहीसे पूछने लगते
कि किस पुण्यको करके आपने इस पदको पाया है ॥४४॥
"भगवान् ! जब मैंने उन लोगोको यथाज्ञान धर्मका उपदेश दिया,
तो वे सतुष्ट हो गये— हम लोगोने इन्द्रको देख लिया ॥४५॥
"जब मैंने सदेहोंको दूर करनेवाले भगवान् बुद्धको देखा
तो आज मैं उनकी उपासना करके भयरहित हो गया ॥४६॥
"यह मैं तृष्णा रूपी शूलको नष्ट करनेवाले, असाधारण,
सूर्यवशमें उत्पन्न, महावीर बुद्धको नमस्कार करता हूँ ॥४७॥
'मार्ष ! अपने देवोंके साथ जो मैं ब्रह्माको नमस्कार किया करता था
वह नमस्कार आजसे आपहीको करूँगा ॥४८॥
"आप ही सम्बुद्ध हैं, आप ही अनुपम उपदेशक (=शास्ता) हैं।
देवताओं सहित सारे लोकमें आपके समान और कोई नहीं है ॥४९॥

तब देवेन्द्र शक्रने देवपुत्र **पञ्चशिख** गधर्व (=गायक) को सबोधित किया—"तात पञ्चशिख ! आपने मेरा बळा उपकार किया है, जो कि पहले भगवान्‌को प्रसन्न किया। आपके प्रसन्नकर देनेपर पीछे हमलोग भगवान्०के पास आये। (अबसे) आपको अपने पिताके स्थानपर रक्खूँगा। आप अब गन्धर्वराज होंगे और आपको वाछित **भद्रा सूर्यवर्चसा** आपको देता हूँ।"

तब देवेन्द्र शक्रने हाथसे पृथ्वीको तीन बार छूकर प्रीतिवाक्य कहे—

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्धको नमस्कार है। उन०। उन०" (नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स)। इतना कहते-कहते देवेन्द्र शक्रको विरज निर्मल=धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया— 'जो कुछ समुदय-धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है सभी निरोधधर्म (=नाश होनेवाला) है।' और दूसरे अस्सी हज़ार देवताओंको भी।

इस प्रकार भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रके पूछे सभी प्रश्नोंका उत्तर दे दिया। अतः इस (सूत्र)का नाम शक्र-प्रश्न (=सक्क-पञ्ह) पळा।

२२—महासतिपट्ठान-सुत्त (२।९)

विषय संक्षेप—१—कायानुपश्यना। २—वेदनानुपश्यना। ३—चित्तानुपश्यना। ४—धर्मानुपश्यना।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरु[1] (देश)मे कुरुओके निगम (=कस्बे) कम्मास-दममें विहार करते थे।

विषय-संक्षेप

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" (कह) भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! यह जो चार स्मृति-प्रस्थान (=सति-पट्ठान) है, वह सत्त्वोंकी विशुद्धिके लिए, शोक कष्टके विनाशके लिए, दु ख=दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन (=अकेला) मार्ग है। कौनसे चार ?—भिक्षुओ ! यहाँ (इस धर्ममें) भिक्षु कायामे [2]कायानुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव (=सप्रजन्य) ज्ञान-युक्त, स्मृति-मान्, लोक (=ससार या शरीर)में अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=दु ख) को हटाकर विहरता है। वेदनाओ (=सुखादि)में [3]वेदनानुपश्यी हो ० विहरता है। चित्तमें चित्तानुपश्यी ०। धर्मोंमें धर्मानुपश्यी ०।

१—कायानुपश्यना

(१) आनापान (=प्राणायाम)

"भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु [4]कायामें, कायानुपश्यी हो विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु अरण्यमें, वृक्षके नीचे, या शून्यागारमें, आसन मारकर, शरीरको सीधाकर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोळता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है। लम्बी साँस छोळते वक्त, 'लम्बी साँस छोळता हूँ'—जानता है। लम्बी साँस लेते वक्त, 'लम्बी साँस लेता हूँ'—जानता है। छोटी साँस छोळते, 'छोटी साँस छोळता हूँ'—जानता है। छोटी साँस लेते 'छोटी साँस लेता हूँ'—जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये, साँस छोळना सीखता है। सारी कायाको

---

[1] कुरुके बारेमें देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८। [2] शरीरको उसके असल स्वरूप केश-नख-मल-मूत्र आदि रूपमें देखनेवाला 'काये कायानुपश्यी' कहा जाता है। [3] सु ख, दु ख, न दु ख न सुख इन तीन चित्तकी अवस्था रूपी वेदनाओको जैसा हो वैसा देखनेवाला 'वेदनामें वेदनानुपश्यी ०।'

[4] यही आनापान (=प्राणायाम) कहलाता है।

जानते हुये साँस लेना सीखता है। कायाके संस्कार (=गति, क्रिया)को शान्त करते साँस छोळना सीखता है। कायाके संस्कारको शान्त करते साँस लेना सीखता है। जैसे कि—भिक्षुओ! एक चतुर खरादकार (=भ्रमकार)या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे (काष्ठ)को रंगते समय 'लम्बा रंगता हूँ'—जानता है। छोटेको रंगते समय 'छोटा रंगता हूँ'—जानता है। ऐसेही भिक्षुओ! भिक्षु लम्बी साँस छोळते ०, लम्बी साँस लेते ०, छोटी साँस छोळते ०, छोटी साँस लेते ० जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोळना सीखता है, ० साँस लेना ०। काय-संस्कारको शान्त करते साँस छोळना सीखता है; ० साँस लेना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। कायाके बाहरी भागमें ०। कायाके भीतरी और बाहरी भागमें-कायानुपश्यी विहरता है। काया-में समुदय (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। कायामें व्यय (=विनाश) धर्मको देखता विहरता है। कायामें समुदय-व्यय (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। 'काया है'—यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिसे) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामें काय-बुद्धि रखते विहरता है।

(२) ईर्या-पथ

"[1]फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ'—जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ'—जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ'—जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है, कायाके बाहरी भागमें काया-नुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोंमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय-(=उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ० व्यय-(=विनाश) धर्म ०, ० समुदय-व्यय धर्म ०।०।

(३) सम्प्रजन्य

"[2]और भिक्षुओ! भिक्षु जानते (=अनुभव करते) हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन=विलोकन करता है।० सिकोळना फैलाना ०[3] संघाटी, पात्र, चीवरको धारण करता है। जानते हुये आसन, पान, खादन, आस्वादन, करता है।० पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=पस्साव) करता है। चलते, खळे होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

(४) प्रतिकूल मनसिकार

"[4]और भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर, केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकार-के मलोंसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (=चमळा), मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, वृक्क, हृदय (=कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत (=अंत-गुण), उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=चर्बी), आँसू, वसा (=चर्वी), लार, नासा-मल, [5]लसिका, और मूत्र।

---

[1] यही ईर्या-पथ है। [2] यही सम्प्रजन्य है। [3] भिक्षुओंकी दोहरी चादर।
[4] प्रतिकूल-मनसिकार। [5] केहुनी आदि जोळोंमें स्थित तरल पदार्थ।

जैसे भिक्षुओ ! नाना अनाज शाली, व्रीही (=धान), मूँग, उळद, तिल, तण्डुलमे दोनो मुखभरी डेहरी (=मुढोली, पुटोली) हो, उसको आँखवाला पुरुष खोलकर देखे—यह शाली है, यह व्रीही है, यह मूँग है, यह उळद है, यह तिल है, यह तडुल है। इसी प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपर केश-मस्तकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोसे पूर्ण देखता है—इस कायामें है ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

(५) धातुमनसिकार

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु इस [1]कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामें है—पृथिवी धातु (=पृथिवी महाभूत), आप (=जल)-धातु, तेज (=अग्नि) धातु, वायु-धातु। जैसे कि भिक्षुओ ! दक्ष (=चतुर) गो घातक या गो-घातकका अन्तेवासी, गायको मारकर बोटी-बोटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है।०।इस प्रकार कायाके भीतरी भागको ०।

(६-१४) श्मशानयोग

१—' [2]और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे, फूले, नीले पळ गये, पीब-भरे, (मृत)-शरीरको श्मशानमें फेंकी देखे। (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया इसी धर्म (=स्वभाव)-वाली, ऐसी ही होनेवाली, इससे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

२—"और भिक्षुओ ! भिक्षु कौओसे खाये जाते, चील्होसे खाये जाते, गिद्धोसे खाये जाते, कुत्तोसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोसे खाये जाते, श्मशानमे फेके (मृत-)शरीरको देखे। वह इसी (अपनी) कायापर घटावै—यह भी काया ०।०।

३—"और भिक्षुओ ! भिक्षु माँस-लोहू-नसोसे बँधे हड्डी-ककालवाले शरीरको श्मशानमे फेंका देखे०।०।

४—"० माँस रहित लोहू-लगे, नसोमे बँधे०।०।० माँस लोहू-रहित नसोसे बँधे०।०।०। बधन-रहित हड्डियोको दिशा विदिशामें फेंकी देखे—कही हाथकी हड्डी है, ० पैरकी हड्डी ०,० जघाकी हड्डी ०, ० उरुकी हड्डी ०,० कमरकी हड्डी ०, ० पीठके काँटे ०, ० खोपळी ०, और इसी (अपनी) कायापर घटावे ०।०।[3]

५—"और भिक्षुओ ! भिक्षु शखके समान सफेद वर्णके हड्डीवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे ०।०।० वर्षों-पुरानी जमाकी हड्डियोवाले ०।०।० सडी चूर्ण होगई हड्डियोवाले ०।०।

२—वेदनानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु [4]वेदनाओमें वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते 'सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। दु ख-वेदनाको अनुभव करते 'दु खवेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। अदु ख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदु ख-असुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। स-आमिष (=भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको

---

[1] धातु-मनसिकार।

[2] श्मशान। [3] चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त। [4] (२) वेदनानुपश्यना।

अनुभव करते०। निर्-आमिष सुख-वेदना०। स-आमिष दुःख-वेदना०। निर्-आमिष दुःख-वेदना०। स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

३–चित्तानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु चित्तमें [1]चित्तानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है'—जानता है। विराग (=राग-रहित) चित्तको 'विराग चित्त है'—जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है'—जानता है। वीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है'—जानता है। स-मोह चित्तको०। वीत-मोह चित्तको०। संक्षिप्त चित्तको०। विक्षिप्त चित्तको०। महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको०। अ-महद्गत चित्तको०। स-उत्तर०। अन्-उत्तर (=उत्तम)०। समाहित (=एकाग्र)०। अ-समाहित०। विमुक्त०। अ-विमुक्त०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

४–धर्मानुपश्यना

(१) नीवरण

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें [2]धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच [3]नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम-च्छन्द (=कामुकता)को 'मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द नहीं विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट काम-च्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी व्यापाद (=द्रोह)को—'मुझमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी स्त्यान-मृद्ध (=थीन-मिद्ध=शरीर-मनकी अलसता)०।०।

०भीतरी औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धच्च-कुक्कुच्च=उद्वेग-खेद,)०।०।

०भीतरी विचिकित्सा (=संशय)०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर०। धर्मोंमें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (=अनुभव करने-वाला) हो विहरता है।०व्यय (=विनाश)-धर्म०।०उत्पत्ति-विनाश-धर्म०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है'—यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं और मेरा) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

---

[1] (३) चित्तानुपश्यना। [2] (४) धर्मानुपश्यना।

[3] पाँच नीवरण हैं—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यान-मृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।

(२) स्कंध

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान[1]स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादानस्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है? भिक्षुओ! भिक्षु (अनुभव करता है)—'यह रूप है', 'यह रूपकी उत्पत्ति (=समुदय)', 'यह रूपका अस्त-गमन (=विनाश) है'।० संज्ञा ०।० संस्कार ०।० विज्ञान ०। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। बहिर्धा (=शरीरसे बाहरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी ०। शरीरके भीतरी-बाहरी धर्मों (=वस्तुओं)में समुदय(=उत्पत्ति)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश(=व्यय)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है'—यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोकमें कुछ भी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (=धर्म-अनुपश्यी) विहरता है।

(४) बोध्यंग

"और भिक्षुओ ! भिक्षु सात बोधि-अग धर्मों(=पदार्थों)मे धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ।०? भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति सबोधि-अगको 'मेरे भीतर स्मृति सबोधि-अग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी स्मृति सबोधि-अगको 'मेरे भीतर स्मृति सबोधि-अग नही है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति सबोधि-अगकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति सबोधि-अंगकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे भी जानता है। ० भीतरी धर्म-विचय (=धर्म-अन्वेषण) सबोधि-अंग ०।० वीर्य ०।० प्रीति ०।० प्रश्रब्धि ०।० समाधि ०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा सबोधि-अगको 'मेरे भीतर उपेक्षा सबोधि-अग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा सबोधि-अगको 'मेरे भीतर उपेक्षा सबोधि-अग नही है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा सबोधि-अग-की उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा सबोधि-अगकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता, शरीरके बाहर ०, शरीरके भीतर-बाहर ०।०। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात सबोधि-अग धर्मोंमे धर्म अनुभव करता विहरता है।

(५) आर्य-सत्य

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु चार [1]आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे ०? भिक्षुओ ! 'यह दु ख है'—ठीक ठीक (=यथाभूत=जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दु खका समुदय (=कारण) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दु खका निरोध (=विनाश) है —ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दु खके निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग (=दु ख-निरोध गामिनी प्रतिपद्) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। ०। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमे किसी (वस्तु)को भी (मै और मेरा) करके नही ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

(क) दु ख-आर्य-सत्य—

"क्या है भिक्षुओ ! दु ख आर्य-सत्य ? जन्म भी दु ख है। बुढापा (=जरा) भी दु ख है। मरण भी दु ख है। शोक, परिदेवन (=रोना-कांदना), दु ख, दौर्मनस्य, उपायास (=हैरानी-परेशानी) भी दु ख है। अ प्रियोका सयोग भी दु ख है। प्रियोका वियोग भी दु ख है। इच्छित वस्तु जो नहीं मिलती वह भी दु ख है। सक्षेपमें पाँचो उपादान-स्कध ही दु ख है।' क्या है, भिक्षुओ ! जन्म (=जाति)? उन उन प्राणियोका उन उन योनियो (=सत्वनिकायों)में जो जन्म=सजाति,=अवक्रमण=अभि-निर्वृत्ति, (भौतिक और अभौतिक) स्कधोका प्रादुर्भाव, आयतनो (=इन्द्रिय-विषयों)का लाभ है, यही भिक्षुओ ! जन्म कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ ! बुढापा (=जरा) ? उन उन प्राणियोका उन उन योनियोमें जो बूढा होना=जीर्णता, खाडित्य (=दाँत टूटना), पालित्य (=बाल पकना), चमड़ा-

---

[1]आर्य-सत्य चार है—दु ख, समुदय, निरोध, निरोध गामिनी-प्रतिपद्।

सिकुळना, आयुकी हानि, इन्द्रियोका परिपाक है, यही भिक्षुओ ! बुढापा कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ ! **मरण** ? उन उन प्राणियोका उन उन योनियोसे जो च्युत होना=च्यवनता, बिलगाव, अन्तर्धान होना, मृत्यु, मरण, काल करना, स्कन्धोका बिलगाव, कलेवरका छूटना, जीवनका विच्छेद है, यही ०। क्या है भिक्षुओ ! **शोक** ? उन उन व्यसनोसे युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का जो शोक=शोचना =शोचितत्व, भीतर शोक, भीतर परिशोक है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **परिदेव** ? उन उन व्यसनोसे युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का जो आदेवन=परिदेवन (=रोना-कॉंदना), आदेव=परिदेव=आदेवितत्त्व=परिदेवितत्त्व है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **दु ख** ? भिक्षुओ ! जो शारीरिक दु ख=शारीरिक पीडा, कायाके स्पर्शसे (हुआ) दु ख=अ-सात अनुभव (=वेदना) है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **दौर्मनस्य** ? भिक्षुओ ! जो मानसिक दु ख=मानसिक पीडा, मनके स्पर्शसे (हुआ) दु ख=अ-सात (=प्रतिकूल) अनुभव है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **उपायास** ? भिक्षुओ ! उन उन व्यसनोसे युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का, जो आयास=उपायास (=हैरानी-परेशानी) =आयासितत्व=उपायासितत्त्व है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'अप्रियोका सयोग भी दु ख' ? किसी (पुरुष)के अन्-इष्ट (=अनिच्छित)=अ-कान्त=अमानाप जो रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुये है, या जो उसके अनर्थाभिलाषी, अ-हिताभिलाषी,=अ-प्रासु-इच्छुक, अ-मगल-इच्छुक (व्यक्ति) है, उनके साथ जो समागम=समवधान, मिश्रण है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'प्रियोका वियोग भी दु ख' ? किसी (पुरुष)के इष्ट=कान्त=मनाप जो रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुयें है, या जो उसके अर्थाभिलाषी, हिताभिलाषी=प्रासु-इच्छुक, मगल-इच्छुक माता, पिता, भ्राता, भगिनी, कनिष्ठा (बहिन), मित्र, अमात्य, या जाति, रक्तसबधी है, उनके साथ अ-सगति=अ-समागम=अ-समवधान =अ मिश्रण है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'इच्छित वस्तु जो नही मिलती, वह भी दु ख' ? भिक्षुओ ! जन्मनेके स्वभाववाले प्राणियोको यह इच्छा उत्पन्न होती है—'अहो ! हम जन्म स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जन्म न आता', किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नही। यह भी 'इच्छित वस्तु जो नही मिलती, वह भी दु ख' है। भिक्षुओ ! जरा-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—अहो ! हम जरा स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जरा न आती', किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नही है। यह भी ०। भिक्षुओ ! व्याधि-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! मरण-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! शोक-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! परिदेव-स्वभाववाले०।० दु ख-स्वभाववाले०।० दौर्मनस्य-स्वभाववाले०।० उपायास-स्वभाववाले०। क्या है, भिक्षुओ ! 'सक्षेपमें पाँचो उपादानस्कध ही दु ख है' ? जैसे कि रूप-उपादान-स्कंध, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कध—यही भिक्षुओ ! 'सक्षेपमें पाँचो उपादानस्कध ही दु ख' कहे जाते है।

"भिक्षुओ ! यह दु ख आर्यसत्य कहा जाता है।

(ख) दु ख-समुदय आर्यसत्य—

"क्या है, भिक्षुओ ! दु ख-समुदय आर्यसत्य ? जो यह राग-युक्त, नन्दी—उन उन (वस्तुओ) में अभिनन्दन करनेवाली, आवागमनकी तृष्णा है, जैसे कि भोग-तृष्णा, भव(=जन्म)-तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! वह तृष्णा उत्पन्न होने पर कहाँ उत्पन्न होती है, स्थित होनेपर कहाँ स्थित होती है ? जो लोकमें (मनुष्यका) प्रिय, सात (=अनुकूल) है, वहाँ यह तृष्णा उत्पन्न होनेपर उत्पन्न होती है, स्थित होनेपर स्थित होती है। क्या है लोकमें प्रिय, सात ? चक्षु लोकमें प्रिय=सात है, यहाँ पर तृष्णा ० उत्पन्न होती है ०। श्रोत्र ०। घ्राण ०। जिह्वा ०। काय ०। मन०। (चक्षुका विषय) रूप ०। शब्द ०। गन्ध ०। रस ०। स्प्रष्टव्य ०। धर्म ०। चक्षुर्विज्ञान (=आँख और रूपके सयोगसे उत्पन्न ज्ञान)०। श्रोत्रविज्ञान ०। घ्राणविज्ञान ०। जिह्वाविज्ञान ०। कायविज्ञान ०। मनोविज्ञान ०।

अलग हो वितर्क और विचारयुक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। ०[1] द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यान ०। यह कही जाती है भिक्षुओ! सम्यक्-समाधि।

"भिक्षुओ! यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य कहा जाता है।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है ०।। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें किसी (वस्तु)को भी (मैं और मेरा) करके नही ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"भिक्षुओ! जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोंमें एक फल (अवश्य) होना चाहिए—इसी जन्ममें आज्ञा(=अर्हत्व)का साक्षात्कार, या [2]उपाधि शेष होनेपर अनागामी-भाव। रहने दो भिक्षुओ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानों-को इस प्रकार छै वर्ष भावना करे ०।० पाँच वर्ष ०।० चार वर्ष ०।० तीन वर्ष ०। ० दो वर्ष ०। ० एक वर्ष ०। ० सात मास ०। ० छै मास ०। ० पाँच मास ०। ० चार मास ०। ० तीन मास ०। ० दो मास ०। ० एक मास ०। ० अर्द्ध मास ०। ० सप्ताह ०।

"भिक्षुओ! 'वह जो चार स्मृति-प्रस्थान है, वह सत्त्वोंकी विशुद्धिके लिए, शोक कष्टके विनाशके लिए; दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया।[3]

१—इति मूलपरियायवग्ग (१।१)

---

[1] कायानुपश्यनाकी भाँति पाठ। [2] देखो पृष्ठ २८-२९।

[3] *थोळेसे अंशकी अधिकतासे यही सूत्र, मज्झिम-निकायका सतिपट्ठान-सुत्त (१०) है।*

२३—पायासिराजञ्ञ-सुत्त (२।१०)

परलोकवादका खंडन-मंडन। १—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न—(१) मरे नहीं लौटते; (२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा, (३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं। २—मत त्यागमें लोक-लाजका भय। ३—सत्कार रहित यज्ञका कम फल।

ऐसा मैंने सुना—एक समय आयुष्मान् कुमार कस्सप (कुमार काश्यप) कोसल देशमें पाँचसौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ विचरते, जहाँ सेतव्या (=श्वेतावी) नामक कोसलोंका नगर था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप सेतव्यामें सेतव्याके उत्तर सिंसपावनमें विहार करते थे।

परलोकवादका खंडन मंडन

उस समय पायासी राजन्य (=राजञ्ञ, माण्डलिक राजा) जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-संपन्न राज भोग्य कोसलराज प्रसेनजित द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय सेतव्याका स्वामी होकर रहता था।

१—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न

उस समय पायासी राजन्यको इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी—यह (लोक) भी नहीं है, परलोक भी नहीं है, जीव मर कर पैदा नहीं होते, अच्छे और बुरे कर्मोंका कोई भी फल नहीं होता।

सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोंने सुना—श्रमण गौतमके श्रावक (=शिष्य) श्रमण कुमार कस्सप कोसल देशमें पाँचसौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ ० सिंसपावनमें विहार करते हैं। उन आप कुमार काश्यपकी ऐसी कल्याणमय कीर्ति फैली है—वह पंडित=व्यक्त, मेधावी, बहुश्रुत, मनकी बातको कहनेवाले, अच्छी प्रतिभावाले, ज्ञानी, और अर्हत् हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ सेतव्यासे निकलकर, झुंड बाँधकर इकट्ठे उत्तरकी ओर जहाँ सिंसपावन था उस ओर जाने लगे।

उस समय पायासी राजन्य दिनमें आराम करनेके लिये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। पायासी-राजन्यने उन ब्राह्मण गृहस्थोंको ० जाते हुए देखा। देखकर अपने क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को संबोधित किया—

"क्यों क्षत्ता! ये सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ ० सिंसपावनकी ओर क्यों जा रहे हैं?"

"भो! श्रमण कुमार काश्यप श्रमण गौतमके श्रावक ० सेतव्यामें आये हुए हैं ०। उन कुमार कस्सपकी ऐसी ० कीर्ति फैली है—वह पण्डित, व्यक्त ०। उन्हीं कुमार कस्सपके दर्शनके लिये ० जा रहे हैं।

"तो क्षत्ता! जहाँ सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ हैं वहाँ जाओ। जाकर ० ऐसा कहो—पायासी राजन्य आप लोगोंको ऐसा कहता है—आप लोग थोळा ठहरें। पायासीराजन्य भी० दर्शनार्थ चलेंगे। श्रमण

कुमार काश्यप सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोको बाल(=मूर्ख)=अव्यक्त समझ(कर कहता) है—यह लोक भी है, परलोक भी है, जीव मरकर होते भी है, अच्छे और बुरे कर्मोके फल भी है। (किन्तु यथार्थमें)—क्षत्ता ! यह लोक नही है, परलोक नही है ०।"

"बहुत अच्छा"—कहकर क्षत्ता० वहाँ गया। जाकर बोला—"पायासी राजन्य आप लोगोको यह कह रहा है—आप लोग थोळा ठहरें ०।

तब पायासी राजन्य सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोको साथ ले जहाँ सिंसपावनमे आयुष्मान् कुमार काश्यप थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् काश्यपके साथ कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गया।

सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोमें, कितने ० कुमार काश्यपको अभिवादन करके एक ओर बैठ गये; कितने० कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गये, कितने कुमार काश्यपकी ओर हाथ जोळकर एक ओर बैठ गये, कितने अपने नाम गोत्र को सुना कर एक ओर बैठ गये, कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए पायासी राजन्यने आयुष्मान् कुमार काश्यपसे यह कहा—"हे काश्यप ! मै ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाला हूँ—यह लोक भी नही है, परलोक भी नही ०।"

"राजन्य ! पहले ऐसी दृष्टि और ऐसे सिद्धान्तके माननेवालेको मैंने न तो देखा था और न सुना था। तुम कैसे कहते हो—यह लोक भी नही है ०। तो राजन्य ! तुम्हींसे पूछता हूँ, जैसा तुम्हे सूझे वैसा उत्तर दो—राजन्य ! तो क्या समझते हो, ये चाँद और सूरज क्या इसी लोकमे है या परलोकम, मनुष्य है या देव ?"

"हे काश्यप ! ये चाँद और सूरज परलोकमें है, इस लोकमें नही, देव है, मनुष्य नही।"

'राजन्य ! इस तरह भी तुम्हे समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।'

'हे काश्यप ! चाहे आप जो कहे, मै तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नही ०।"

"राजन्य ! क्या कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा मानते हो—यह लोक नही ०।?"

"हे काश्यप ! है ऐसा तर्क, जिसके बलपर मै ऐसा मानता हूँ—यह लोक नही ०"

"राजन्य ! वह कैसे ?"

(१) मरे नहीं लौटते

१—"हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र अमात्य, और एक ही खूनवाले बन्धु है जो जीव हिंसा करते है, चोरी करते है, दुराचार करत है, झूठ बोलते है, चुगली खाते है, कठोर बात बोलते है निरर्थक प्रलाप करते रहते है, दूसरेके प्रति द्रोह करते है, द्वेष चित्तवाले तथा बुरे सिद्धान्तोको माननेवाले है। वे कुछ दिनोके बाद रोग ग्रस्त हो बहुत बीमार पळ जाते है। जब मै समझ जाता हूँ कि वे इस बीमारीसे नही उठगे, तो मै उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाले है—जो जीवहिंसा करते है, चोरी करते है ० वे मरनेके बाद नरकमें गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होते है। आप लोग तो जीवहिंसा करते थे, चोरी करते थे ०। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोका कहना सच है, तो आप लोग मरनेके बाद नरकमे गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होग। यदि आप लोग मरनेके बाद ० प्राप्त हो तो मुझसे आकर कहे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग जो स्वय देखकर मुझसे आकर कहेगे मै उसे वैसा ही ठीक समझूंगा।'

"बहुत अच्छा" कहकर भी वे न तो आकर (स्वय) कहते है और न किसी दूतको ही भेजते है। हे काश्यप ! यह एक कारण है जिससे मै ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही है, परलोक भी नहीं०।"

"राजन्य ! तब तुम्हीसे पूछता हूँ ०। तो क्या समझते हो राजन्य ! (यदि) तुम्हारे नौकर एक चोर या अपराधीको पकळकर दिखावें—यह आपका चोर या अपराधी है, आप जैसा उचित समझे इसे दण्ड दें। (तब) तुम उन लोगोंको ऐसा कहो—इस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे हाथ पीछे करके कसकर बाँध, शिर मुंळवा, घोषणा करते एक सळकसे दूसरी सळक, एक चौराहेसे दूसरे चौराहे ले जाकर, दक्खिन द्वारसे निकाल, नगरसे दक्खिन बध्यस्थानमें इसका शिर काट दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे ० बध्यस्थानमें ले जावें। तब चोर उन जल्लादोंसे कहे—'हे जल्लादो ! हे जल्लादो ! इस ग्राम या निगममें मेरे मित्र, अमात्य और रक्तसबधी रहते हैं, आप लोग तब तक ठहरें, जब तक मैं उनसे भेट कर लूँ।' तो क्या उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर नही काट देंगे ?"

"हे काश्यप ! यदि चोर जल्लादोंको कहे ० तो भी उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर काट देंगे।"

"राजन्य ! जब वह चोर मनुष्य मनुष्य-जल्लादोंसे भी छुट्टी नही ले सकता—हे जल्लादो ! आप लोग ठहरें ०—तो तुम्हारे मित्र अमात्य, रक्तसबधी, जीवहिंसा करनेवाले, चोरी करनेवाले ० मरनेके बाद नरकमें पळकर दुर्गतिको प्राप्त हो कैसे नरकके यमोंसे छुट्टी ले सकेंगे—आप लोग ठहरें, जब तक मैं पायासीराजन्यके पास जाकर कह आऊँ—यह लोक भी है, परलोक भी ० ? इसलिये भी राजन्य ! तुम्हे समझना चाहिये — यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहे मैं तो यही समझता हूँ—यह लोक भी नही ०।

२—"राजन्य ! कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा समझते हो—यह लोक भी नही ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है जिसके बलपर मैं ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही ०। हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहते है, चोरी करनेसे विरत रहते है, दुराचारसे विरत रहते हैं ० और अच्छे सिद्धान्तोंको माननेवाले हैं। वे कुछ दिनोंके बाद रोगग्रस्त हो बहुत बीमार पळ जाते हैं। जब मैं समझता हूँ कि वे इस बीमारीसे नही उठेंगे तो ० ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—जो जीवहिंसासे विरत रहते है ० वे मरनेके बाद स्वर्गमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त होते है। आप लोग तो जीवहिंसासे विरत ० रहते थे। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोंका कहना ठीक है, तो आप लोग ० सुगतिको प्राप्त होंगे। यदि ० सुगतिको प्राप्त हों तो आकर मुझसे कहेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोंके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग स्वय देखकर जो कहेंगे मैं उसीको ठीक समझूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर भी न तो वे आकर स्वय कहते है और न किसी दूतको ही भेजते है। हे काश्यप ! इसी कारणसे मैं ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही है ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग बातको झट समझ जाते है—राजन्य ! मान लो कि कोई मनुष्य चोटी तक सडासमें डूबा हो। तुम अपने नौकरोंको आज्ञा दो—'उस पुरुषको उस सडाससे निकाल दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको उस सडाससे निकाल दे। उन (नौकरों)को तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको बाँसके टुकळोंसे अच्छी तरह साफ करो।' ० वे साफ कर द। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको पीली मिट्टीसे तीन बार अच्छी तरह उबटन लगा लगाकर साफ करो'। ० वे साफ करें। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरमें तेल लगाकर पतला स्नान चूर्ण तीन बार लगा लगाकर नहलाओ'। ० वे नहला दें। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके शिर दाढीको मूंळ दो'। ० वे मूंळ दें। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके लिये अच्छी अच्छी मालायें, अच्छा उबटन और अच्छा अच्छा वस्त्र ले आओ'। ० वे ले आवें। उनको तुम फिर भी कहो—'कोठेपर ले जाकर पाँच भोगो (=कामगुणो)से इस पुरुषको सेवित करो'। ० वे सेवित करें।

"तो राजन्य ! क्या समझते हो—अच्छी तरह नहाये, अच्छी तरह ० उबटन लगाये, अच्छी तरह क्षौर किये, माला पहने, साफ वस्त्र धारण किये तथा कोठेपर पाँच भोगोंसे सेवित उस पुरुषको फिर भी उसी संडासमें डूबनेकी इच्छा होगी ?"

"हे काश्यप ! नहीं।"

"सो, क्यों ?"

"हे काश्यप ! संडास (=गूथकूप) अपवित्र है, मैला है, दुर्गन्धसे भरा है, घृणित है, और मनके प्रतिकूल है।"

"राजन्य ! इसी तरह मनुष्ययोनि देवोंके लिये अपवित्र, ० है। राजन्य ! एक सौ योजनकी दूरहीमें देवोंको मनुष्यकी दुर्गंधि लगती है। तब भला तुम्हारे मित्र, अमात्य ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्तकर फिर (लौटकर) तुमसे कहनेके लिये कैसे आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ० ?

"राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हें समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नहीं, परलोक भी नहीं ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० हैं। ० जब मैं समझता हूँ कि इस बीमारीसे ये नहीं उठेंगे तो उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—

'कितने श्रमण और ब्राह्मण ऐसा ० जो जीवहिंसासे विरत ० वे सुगति प्राप्त करते हैं। और आप लोग जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० हैं। यदि उन०का कहना सच होगा तो आप लोग ० सुगति प्राप्त करेंगे। यदि मरनेके बाद आप लोग ० सुगति प्राप्त करें तो मेरे पास आकर कहें—यह लोक भी है, परलोक भी ०। मेरे प्रति ०। वे न तो स्वयं आकर ०।

"हे काश्यप ! इस कारणसे०—यह लोक भी नहीं, परलोक भी नहीं ०।

"राजन्य ! तब तुम्हींसे मैं पूछता हूँ ०। राजन्य ! जो मनुष्योंका सौ वर्ष है, वह त्रायस्त्रिंश देवोंके लिये एक रात-दिन है; वैसी तीस रातका एक मास होता है; वैसे बारह मासका एक संवत्सर (वर्ष) होता है; वैसे-देव-सहस्र वर्ष त्रायस्त्रिंश देवोंका आयुपरिमाण है। जो तुम्हारे ० मित्र, अमात्य मरनेके बाद त्रायस्त्रिंश देवोंके साथ स्वर्गमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त हुए हैं। उन लोगोंके मनमें यदि ऐसा हो, जब तक हम लोग दो या तीन रात दिन पाँच दिव्य भोगोंका सेवन कर लें, फिर हम पायासी राजन्यके पास जाकर कह आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। और वे आकर कहें—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! ऐसा नहीं, तब तक तो हम लोग बहुत पहले ही मर चुके रहेंगे। आप काश्यपसे कौन कहता है, कि त्रायस्त्रिंश ऐसे दीर्घायु देव हैं, ? मैं आप काश्यपमें विश्वास नहीं करता कि इस प्रकारके दीर्घायु त्रायस्त्रिंश देव हैं।"

"हे काश्यप ! ऐसा नही। काला, उजला, पीला ० है और उनको देखनेवाला भी है। 'मैं उसे नही जानता हूँ, मैं उसे नही देखता हूँ, इसलिये वे नही है'—ऐसा कहनेवाला हे काश्यप! ठीक नही कहता है।"

"राजन्य ! मैं समझता हूँ कि तुम भी उसी जन्मान्धके ऐसे हो जो मुझे ऐसा कहते हो—हे काश्यप ! आपसे कौन कहता है ०। राजन्य ! जैसा तुम समझते हो, परलोक वैसा इसी मासकी आँखोंसे नही देखा जा सकता। राजन्य ! जो श्रमण ब्राह्मण निर्जन वनोंमें एकान्तवास करते हैं, वे वहाँ प्रसन्न-चित्त हो संयमसे रहते दिव्यचक्षुको पाते है। वे अलौकिक दिव्यचक्षुसे इस लोकको, परलोकको ० देखते है। राजन्य ! इस तरह परलोक देखा जाता है, न कि इस मासवाली आँखोंसे, जैसा कि तुम समझते हो। राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हे समझना चाहिए—यह लोक है, परलोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहे ०।"

(२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा

"राजन्य ! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

'हे काश्यप ! मैं ऐसे सदाचारी तथा पुण्यात्मा (=कल्याणधर्मि) श्रमण ब्राह्मणोंको देखता हूँ, जो जीनेकी इच्छा रखते है, मरनेकी इच्छा नही रखते, दुःखसे दूर रह सुख चाहते है। हे काश्यप ! तब मेरे मनमें यह होता है—यदि ये सदाचारी, पुण्यात्मा श्रमण ब्राह्मण यह जानते कि मरनेके बाद हमारा श्रेय होगा, तो वे ० इसी समय विष खा, छुरा भाक, गला घोट, गळहेमें गिरकर (आत्मघात) कर लेते। चूँकि ये सदाचारी पुण्यात्मा श्रमण और ब्राह्मण ऐसा नही जानते, कि मरकर उनका श्रेय होगा, इसी लिये वे ० (आत्मघात) नही करते। यह भी काश्यप ! ० न यह लोक, न पर-लोक ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग झट बातको समझ जाते है। राजन्य ! पुराने समयमें एक ब्राह्मणकी दो स्त्रियाँ थी। एकको दस या बारह वर्षका एक लळका था और दूसरी गर्भवती थी। इतनेमें वह ब्राह्मण मर गया। तब उस लळकने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन,धान्य और सोना चाँदी है सभी मेरा है। तुम्हारा कुछ नही है। यह सब मेरे पिता का तर्क (=दाय) है। उसके ऐसा कहने पर ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो जब तक मैं प्रसव कर लूँ। यदि वह लळका होगा तो उसका भी आधा हिस्सा होगा, यदि लळकी होगी तो उसे भी तुम्हे पालना होगा।

"दूसरी बार भी उस लळकेने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन ०।

'दूसरी बार भी ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो ०।

"तीसरी बार भी ०।

"तब उस ब्राह्मणीने (यह सोच) छुरा ले, कोठरीमें जा अपना पेट फाळ डाला, कि अभी प्रसव करना चाहिये, चाहे लळका हो या लळकी। (इस प्रकार) वह स्वयं मर गई और गर्भ भी नष्ट हो गया।

"जिस प्रकार बुरी तरहसे दायकी इच्छा रखनेवाली वह मूर्ख अजान स्त्री नाशको प्राप्त हुई, तुम भी परलोककी इच्छा रखते मूर्ख, अजान हो उसी तरह नाशको प्राप्त होगे, जैसे कि वह ब्राह्मणी ०।

"राजन्य ! इसीलिये वे ० श्रमण ब्राह्मण अपरिपक्व को नहीं पकाते, बल्कि पण्डितोंकी तरह परिपाककी प्रतीक्षा करते हैं। राजन्य ! उन ० श्रमण ब्राह्मणोंको जीनेसे मतलब है। वे ० जितना अधिक जीते है उतना ही अधिक पुण्य करते है। लोगोके हितमें लगे रहते है, लोगोंके सुखमें लगे रहते है।

"राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हे समझना चाहिये ०।"

"हे काश्यप! चाहे आप जो कहे, ० यह लोक नहीं ०।

१—"राजन्य! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य! वह क्या ?"

(३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं

"हे काश्यप! मेरे नौकर लोग चोरको पकळकर मेरे पास ले आते हैं—'स्वामिन्! यह आपका चोर है, इसे जो उचित समझें दण्ड दें।' उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—'तो इस पुरुषको जीते जी एक बळे हंडेमें डाल, मुँह बदकर, गीले चमळेसे बाँध गीली मिट्टी लेपकर चूल्हेपर रख आँच लगावो।'

'बहुत अच्छा' कह वे उस पुरुषको ० आँच लगाते हैं।

"जब मैं जान लेता हूँ कि वह पुरुष मर गया होगा तब मैं उस हंडेको उतार, धीरेसे मुँह खोलकर देखता हूँ; कि उसके जीवको बाहर निकलते देखूँ, किंतु उसके जीवको निकलते हुये नहीं देखता। हे काश्यप! इस कारणसे भी ० यह लोक भी नहीं ०।

"राजन्य! तब मैं तुम्हींसे पूछता हूँ ०।

"राजन्य! दिनमें सोते समय क्या तुमने कभी स्वप्नमें रमणीय आराम, रमणीय वन, रमणीय भूमि या रमणीय पुष्करिणी नहीं देखी है ?"

"हे काश्यप! हाँ, दिनमें ० रमणीय पुष्करिणी देखी है।"

"उस समय कुबळे भी, बौने भी, स्त्रियाँ भी, कुमारियाँ भी क्या तुम्हारे पहरेमें नहीं रहतीं ?"

"हे काश्यप! हाँ, उस समय ० पहरेमें रहती हैं।"

"वे क्या तुम्हारे जीवको (उद्यानके लिये) निकलते और भीतर आते देखते हैं ?"

"नहीं, हे काश्यप!"

"राजन्य! जब वे तुम्हारे जीते हुयेके जीवको निकलते और भीतर आते नहीं देख सकते, तो तुम मरे हुयेके जीवको निकलते या भीतर आते कैसे देख सकते हो ?"

"राजन्य! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप! चाहे आप जो कहें ० ०।"

२—"राजन्य! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको (पहले) जीते जी तराजूपर तौलकर, रस्सीसे गला घोंटकर मार दो, और फिर तराजूपर तौलो। 'बहुत अच्छा' कह-कर ० वे तौलते हैं। जब वह जीता रहता है तो हल्का होता है, किंतु मरकर वही लोथ भारी हो जाती है।

"हे काश्यप! इस कारणसे भी ० यह लोक नहीं ०।"

"राजन्य! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। राजन्य! जैसे कोई पुरुष दिनभर तपाये, आदीप्त, सम्प्रज्वलित दहकते हुये लोहेके गोलेको तराजूपर तौले, और फिर कुछ समयके बाद उसके ठंडा हो जाने-पर उसे तौले। तो वह लोहेका गोला कब हल्का होगा? जब आदीप्त है तब, या जब ठंडा हो गया है तब ?"

"हे काश्यप! जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ हो, आदीप्त होता है ०, तब हल्का होता है। जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ नहीं होता, तो ठंडा और बुझा भारी हो जाता है। राजन्य! इसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, उष्णताके साथ, विज्ञानके साथ रहता है, तो हल्का होता है। जब यह शरीर आयु ० उष्णता ० विज्ञानके साथ नहीं ० रहता है तो भारी हो जाता है।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहें ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको बिना मारे चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी और मज्जा अलग अलग कर दो, जिसमें मैं उसके जीवको निकलते देख सकूँ।

'बहुत अच्छा' कह वे ० अलग अलग कर देते हैं। जब वह मरणासन्न होता है, तो मैं उनसे ऐसा कहता हूँ—इसको चित सुला दो, जिसमें कि मैं इसके जीवको निकलते देख सकूँ। वे उस पुरुषको चित सुला देते हैं किंतु हम उसके जीवको निकलते नहीं देखते।

"फिर भी उन नौकरोंको मैं ऐसा कहता हूँ—इसे पट ०, करवट ०, दूसरी करवट ०, ऊपर खड़ा करो, हाथसे पीटो, ढेलासे मारो, लाठीसे मारो, शस्त्रसे मारो, हिलाओ डुलाओ, जिसमें कि मैं इसके जीव ०। वे उस पुरुषको ० किंतु हम उसके जीवको निकलते नहीं देखते।

"उसकी वही आँखें रहती हैं, वही रूप रहते हैं, वही आयतन, किंतु देख नहीं सकता। वही श्रोत्र ०, वही शब्द ० किंतु सुन नहीं सकता। वही नासिका ०, वही गन्ध ० किंतु सूँघ नहीं सकता। वही जिह्वा ०, वही रस ० किंतु चख नहीं सकता। वही शरीर ०, वही स्प्रष्टव्य ० किंतु स्पर्श नहीं कर सकता।

"हे काश्यप ! इस कारण भी ० यह लोक नहीं ०।"

"राजन्य ! तो एक उपमा कहता हूँ ०। राजन्य ! बहुत दिन हुये कि एक शंख बजानेवाला शंख लेकर नगरसे बाहर, जहाँ एक ग्राम था वहाँ गया। जाकर बीच गाँवमें खड़ा हो तीन बार शंख बजा, शंखको जमीनपर रख, एक ओर बैठ गया। राजन्य ! तब उन सीमान्त देशके लोगोंके मनमें यह हुआ—अरे ! ऐसा रमणीय, सुन्दर, मदनीय, चित्ताकर्षक और मोहित करनेवाला शब्द किसका है ? वे सभी इकट्ठे होकर शंख बजानेवालेसे बोले—अरे ! ऐसा ० शब्द किसका है ?'

'यही शंख है जिसका ऐसा ० शब्द है।'

"उन लोगोंने उस शंखको चित रख दिया—हे शंख, बजो, बजो। किंतु शंख नहीं बजा। उन लोगोंने उस शंखको पट, करवट ०। किंतु शंख नहीं बजा।

'राजन्य ! तब शंख बजानेवालेके मनमें यह आया—गाँवके रहनेवाले बड़े मूर्ख हैं। इन्हें ठीक तरहसे शंख बजाना नहीं आता ? उसने उन लोगोंके देखते देखते शंखको उठा, तीन बार बजा, वहाँसे चल दिया।

"राजन्य ! तब उस गाँववालोंके मनमें यह आया—जब यह शंख पुरुष, व्यायाम, और वायुके साथ होता है तब बजता है। जब यह शंख न पुरुषके साथ, न व्यायामके साथ और न वायुके साथ होता है, तब नहीं बजता।"

"राजन्य ! उसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, ऊष्मके साथ, और विज्ञानके साथ होता है तब हिलता, डोलता, खड़ा रहता, बैठता, और सोता है। चक्षुसे रूप देखता है, कानसे शब्द सुनता है, नाकसे गंध सूँघता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, शरीरसे स्पर्श करता है तथा मनसे धर्मोंको जानता है। जब यह शरीर न आयुके साथ ० होता है, तब न हिलता न डोलता ०।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

'हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें ०।"

४-० "राजन्य ! वह कैसे ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हे मैं ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषकी खाल उतार लो, जिसमें कि मैं उसके जीवको देख सकूँ। वे ० खाल उतारते है, किन्तु हम लोग उसके जीवको नही देखते। फिर भी उन्हे मैं कहता हूँ—इसका मास, स्नायु, हड्डी और मज्जा काट डालो, जिसमें कि मैं इसके जीवको देख सकूँ। वे उस पुरुषके मास०को काट डालते हैं, किन्तु हम लोग उसके जीवको नही देखते।

"हे काश्यप ! इस कारणसे भी ० यह लोक नही है ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमें कोई अग्नि-उपासक जटिल (=जटाधारी) जगलके बीच पर्णकुटीमें रहता था। राजन्य ! तब उस प्रदेशमे व्यापारियोका एक सार्थ (=कारवाँ) आया। वे व्यापारी उस अग्नि उपासक जटिलके आश्रमके पास एक रात रह कर चले गये। राजन्य ! तब उस अग्नि उपासक जटिलके मनमें यह हुआ—जहाँ इन व्यापारियोका मालिक है वहाँ चलूँ, इन लोगोसे कुछ सामान मिलेगा। तब वह ० जटिल उठकर जहाँ बजारोका मालिक था वहाँ गया। जाकर उस बजारोके आवास (=टिकनके स्थान)में एक छोटे, उतान ही लेट सकनेवाले बच्चेको छूटा पाया। देखकर उसके मनमें यह हुआ—यह मेरे लिये उचित नही है कि कोई मनुष्यका बच्चा मेरे देखते मर जाये। अत इस बच्चेको अपने आश्रममें ले जा, और पाल पोषकर बळा करना चाहिये। तब उस जटिलने उस बच्चेको अपने आश्रममें ले जा, पालपोषकर बळा किया।

"जब वह लळका दस या बारह वर्षका हुआ तब उस जटिलको देहात (=जनपद)मे कुछ काम पळा। तब वह जटिल उस लळकेसे यह बोला—तात ! मै देहात जाना चाहता हूँ, तुम अग्निकी सेवा करना। अग्नि बुझने न पाये। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी है, ये लकळियाँ, ये दोनो अरणी है, अग्नि उत्पन्न करके फिर अग्निकी सेवा करना। तब उस (लळके)के खेलमें लगे रहनेसे (एक दिन) आग बुझ गई। उस लळकेके मनमें यह हुआ—पिताने मुझे ऐसा कहा था—हे तात ! अग्निकी सेवा करना, अग्नि बुझने न पावे। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी ०। अत मुझे अग्नि उत्पन्नकर, अग्निकी सेवा करनी चाहिये।

"तब उस लळकेने अग्नि निकालनेके लिये कुल्हाळीसे दोनो अरणियोको फाळ डाला। किन्तु अग्नि नही निकली। अरणियोको दो टुकडोमें, तीन टुकळोम ० पांच टुकळोमे, दस टुकळोमें, सौ टुकळोमें काट डाला, फिर उन टुकळोको ओखलमें कूट डाला, ओखलमे कूटकर हवामें उळा दिया जिसमें कि अग्नि निकले। अग्नि नही निकली।

"तब वह जटिल जनपदमें अपना काम समाप्तकर, जहाँ अपना आश्रम था वहाँ आया। आकर उस लळकेसे बोला—तात ! अग्नि बुझी तो नही ?" हे तात ! खेलमें लग जानेके कारण अग्नि बुझ गई। तब मेरे मनमें यह आया—पिताने मुझे ऐसा कहा था—तात ! अग्निकी सेवा करना ०। अत अग्नि उत्पन्नकर अग्निकी सेवा करनी चाहिये। तब अरणियोको मैंने दो टुकळोमें ० अग्नि नही निकली।'

"तब उस जटिलके मनमें यह आया—यह बालक नादान, मूर्ख है। कैसे ठीकसे अग्नि उत्पन्न करेगा ! उसके देखते देखते उसने अरणियोको ले, अग्नि उत्पन्न कर, उस लळकेसे कहा—तात ! अग्नि इस प्रकार उत्पन्न होती है, न कि उस बेढगे तरीकेसे जिसमे कि तुम अग्निको खोज रहे थे।

"राजन्य ! तुम भी उसी तरह बाल और अजान होकर अनुचित प्रकारसे परलोककी खोज कर रहे हो। राजन्य ! इस बुरी धारणाको छोळो, जिसमें कि तुम्हारा भविष्य अहित और दु खके लिये न होवे।"

२—मतत्यागमें लोकलाजका भय

१—"आप काश्यप ! जो कहे, किन्तु मैं इस बुरी धारणाको नहीं छोळ सकता हूँ। कोसलराज प्रसेनजित् और दूसरे राजा भी जानते हैं कि पायासी राजन्य इस दृष्टि इस सिद्धान्तका माननेवाला हूँ—यह लोक भी नहीं०।

"हे काश्यप ! यदि मैं इस बुरी धारणाको छोळ दूँ, तो लोग मुझे ताना देंगे—पायासी-राजन्य मूर्ख, अजान भ्रममें पळा हुआ था। मैं तो क्रोधसे भी, अमरखसे भी, निष्ठुरतासे भी इसे लिये रहूँगा।"

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा०। पुराने समयमें बहुतसे बजारे एक हजार गाळियोंके साथ पूर्व देश (=जनपद)मे पश्चिम देश (=जनपद)को जा रहे थे। वे जिस जिस मार्गसे जाते शीघ्र ही तृण, काष्ठ और हरे पत्तोको नष्ट कर देते थे। उस सार्थ (=कारवाँ)में पाँच पाँच सौ गाळियोंके दो मालिक थे। तब उन दोनोंके मनमें यह हुआ—हम बजारोका, एक हजार गाळियोंके साथ यह बहुत बळा सार्थ है। हम लोग जिस जिस रास्तेसे जाते हैं०। तो हम लोग इस समूहको दो भागोमें बाँट दें। एकमे पाँच सौ गाळियाँ और दूसरे में पाँच सौ गाळियाँ। उन लोगोने उस सार्थको दो भागोमें बाँट दिया।

"बजारोका एक मालिक बहुत-सा तृण, काष्ठ और जल साथमें ले एक ओर चल पळा। दो तीन दिन जानेके बाद उसने एक काले, लाल आँखोंवाले, तीर धनुप लिये, कुमुदकी माला पहने, भीगे कपळे और भीगे केशके साथ, कीचळ लगे हुए चक्कोवाले एक सुन्दर रथपर सामनेसे आते हुये एक पुरुषको देखा। देखकर यह बोला—'आप कहाँसे आते हैं ?'

'अमुक जनपदसे।'

'आप कहाँ जायेंगे ?'

'अमुक जनपदको।'

'क्या अगले कान्तारमें बळी वृष्टि हुई है ?'

'हाँ अगले कान्तारमें बळी वृष्टि०। मार्ग पानीसे भर गये हैं। बहुत तृण, काष्ठ और उदक है। आप लोग अपने पुराने तृण, काष्ठ और उदकके भारको यही फेंक दें। हल्की गाळियोको ले जल्दी जल्दी आगे जायें, बैलोंको व्यर्थ कष्ट मत दें।'

"तब वह बजारोका मालिक बजारोसे बोला—'यह पुरुप ऐसा कहता है—आगेवाले कान्तारमें० बैलोको कष्ट मत दें। आप लोग पुराने तृण०को यही छोळ दे। गाळियोको हल्काकर आगे चले।'

'बहुत अच्छा' कह० पुराने तृणको० छोळ० आगे चले।

"वे न तो पहली चट्टीपर तृण० पा सके, न दूसरी चट्टीपर० न सातवी चट्टीपर। वे सभी बळी आपत्तिमें पळे, और उस सार्थमें जितने मनुष्य और पशु थे सभीको वह राक्षस खा गया। वहाँ बची हुई हड्डियाँ रह गईं।

"जब बजारोके दूसरे मालिकने समझा—कि उस सार्थके निकले काफी दिन बीत चुके, तो वह भी बहुतसे तृण०को साथमें ले आगे चला। दो तीन दिन जानेके बाद उसने एक काले, लाल आँखोवाले०।० बैलोको व्यर्थमें कष्ट मत दें।'

"तब उसके मनमें यह हुआ—'यह पुरुप ऐसा कहता है—आगेके कान्तारमें बळी वृष्टि०। यह पुरुष न तो हम लोगोका मित्र है, न रक्त-सबधी। इसमें हम लोगोका कैसे विश्वास हो? ये पुराने तृण० छोळने योग्य नहीं हैं। इसलिये इसी तरह आगे चलना चाहिये।

'बहुत अच्छा' कह० वे बजारे चले। उन लोगोने न तो पहली चट्टीपर तृण० पाया०, न सातवी

चट्टीपर०। और उन्होंने देखा, कि उस सार्थमें जितने मनुष्य और पशु थे, सभीको यह राक्षस खा गया है। उनकी वहाँ हड्डियाँ बची रह गई हैं।

"तब उसने बजारोंको सबोधित किया—उस मूर्ख मालिक सार्थवाह (=नायक) होनेके कारण वह सार्थ इस प्रकार नष्ट हो गया। अच्छा हम लोगोंके पास जो अल्प मूल्यवाले सामान है, उन्हे छोळ, इस समूहके जो बहुमूल्य माल है, उन्हे ले ले।

'बहुत अच्छा' कह०और उस कान्तारको स्वस्तिपूर्वक पार किया।

"राजन्य ! इसी प्रकार तुम भी बाल, अजान हो अनुचित रीतिसे परलोककी खोज करते नष्ट होगे, जैसे वह पहला सार्थ। जो तुम्हारी बातोंके सुनने और माननेवाले है वे भी ०।

"राजन्य ! इस बुरी धारणाको छोळ दो, जिसमे कि तुम्हारा भविष्य अहित और दुखके लिये न हो।"

२-"आप काश्यप चाहे जो कहे ०कोसलराज प्रसेनजित और दूसरे राजा भी ०।"

राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। बहुत पहले, एक सूअर पालनेवाला पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवमें गया। वहाँ उसने सूखे मैलेका एक ढेर देखा। उस ढेरको देखकर उसके मनमें यह आया—यह सूखे मैलेका एक बळा ढेर है। यह मेरे सूअरोंका भक्ष्य है। अत मैं यहाँसे सूखे मैलेको ले चलूँ। तब वह अपनी चादर पसार, बहुतसे सूखे मैलेको बटोर गठरी बाँध, शिरपर रख चल दिया। उसके रास्तेमें जाते वक्त अचानक बळी वृष्टि होने लगी। वह चूते और टपकते मैलेकी गठरीको लिये, शिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहा था।

"उसे देखकर लोग कहने लगे—क्या आप पागल है ? क्या आप सनकी है ? क्यो इस चूते टपकते मैलेकी गठरीको लिये शिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहे है ?'

"'आप ही लोग पागल है। आप ही लोग सनकी है। यह तो मेरे सूअरोंका खाद्य है।'

"राजन्य ! उसी तरह तुम मैलेकी गठरीको ले जानेवालेके समान मालूम पळते हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो ०।"

३-"आप काश्यप चाहे जो कहे ०।" ०

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमे दो जुआरी जुआ खेलते थे। उनमेंसे एक जुआरी हार या जीतके पासेको निगल जाता था। दूसरे जुआरीने उस ०को ० निगलते देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"'तुम तो बिलकुल जीत लेते हो। मुझे पासोंको दो, कि मैं उनको पूज लूँ। 'बहुत अच्छा' कह उस जुआरीने दूसरे जुआरीको पासे दे दिये।

"तब वह जुआरी पासोंको विषमें भिगो दूसरे जुआरीसे बोला—'आओ, जूआ खेले।'

"बहुत अच्छा' ०।

"जुआरियोंने पासा फेंका फिर भी वह जुआरी ० पासाको निगल गया। दूसरे जुआरीने पहले जुआरीको ० निगलते हुये देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"तेज विषमें भिगोये पासेको निगलते हुये यह पुरुष नहीं समझ रहा है।
रे पापी, धूर्त ! (पासेको) निगल। इसका फल भोगेगा ॥१॥'

"राजन्य ! तुम भी उसी जुआरीके समान मालूम होते हो। राजन्य ! इस बुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

४-"चाहे आप काश्यप जो कहे ०।" ०

"राजन्य ! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमें एक बळा समृद्ध देश (=जनपद)

था। तब एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—जहाँ वह जनपद है वहाँ चले। थोळे ही दिनो में कुछ धन कमा लायेंगे।

"'बहुत अच्छा' कहकर वे जहाँ वह जनपद था वहाँ गये। वहाँ उन लोगोंने एक जगह बहुत सा सन पळा देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—यह बहुत सन फेंका पळा है। तुम भी सनका एक गट्ठर बाँध लो, और मैं भी सनका एक गट्ठर बाँध लूँ। दोनो सनके गट्ठरको लेकर चलेंगे।

'बहुत अच्छा' कह, सनके गट्ठरको बाँधकर वे दोनो सनके गट्ठरको लिये जहाँ दूसरा गाँव था वहाँ पहुँचे। वहाँ उन लोगोंने बहुतसा सनका कता सूत फेंका देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—जिसके लिये सन होता है, वह सनका कता सूत यहाँ बहुतसा पळा है। सो तुम सनके गट्ठरको यहीं छोळ दो, (और) मैं भी सनके गट्ठरको यहीं छोळ दूँगा। दोनो सनके कते सूतका भार बनाकर ले चले।

'मित्र! देखो, मैं इस सनके भारको दूरसे ला रहा हूँ (और) यह बळी अच्छी तरह बँधा है। मेरे लिये यही काफी है।'

"तब पहले मित्रने सनके गट्ठरको छोळ सनके कते सूतका एक भार ले लिया। वे जहाँ दूसरा गाँव था, वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होंने ० बुने हुये टाटको फेंका देखा। देख कर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—'जिसके लिये सन या सनका सूत चाहिये, वह टाट यहाँ ० है। अत सनके गट्ठरको छोळ दो ०। दोनो टाटके भारको लेकर चले।' ० दूरसे ०। मेरे लिये यही काफी ०।'

"तब उस मित्रने सनके कते सूतके भारको छोळ टाटके भारको ले लिया।

'वे दूसरे गाँव ०। ० बहुतसा क्षौम (=अलसीका सन) फेंका देखा, बहुतसा क्षौमका कता सू०, ० बहुतसे क्षौमके वस्त्र ०,० कपास ०, ताँबा ०, राँगा ०, सीसा ०, चाँदी ० सुवर्ण ०।

'तुम ० गट्ठरको छोळ दो ०। दोनो सुवर्णके भारको लेकर चले।'

'इस सनके भारको मैं दूरसे ला रहा हूँ। यह बहुत अच्छा कसकर बधा है। मेरे लिये यही काफी है ०।"

"तब उस मित्रने चाँदीके भारको छोळकर सुवर्णके भारको ले लिया। वे दोनो जहाँ उनका गाँव था, वहाँ लौट आये।

"तब उनमें जो सनके भारको लेकर घर लौटा, उसके न माँ-बाप उससे प्रसन्न हुये, न पुत्र, न स्त्री ०, न मित्र, न अमात्य ०। और न उसके बाद उसे सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ। और जो मित्र सोनेका भार लेकर घर लौटा, उसके माँ-बाप बळे प्रसन्न हुये, पुत्र, स्त्री ०। उसके बाद उसे बहुत सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ।

"राजन्य! तुम भी उस सनके भार ढोनेवालेके सदृश हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

"आप काश्यपकी पहली ही उपमासे मैं सतुष्ट और प्रसन्न हो गया था। किंतु मैंने इन विचित्र प्रश्नोत्तरोंको सुननेकी इच्छाहीसे, ये उलटी बातें कहीं।

"आश्चर्य हे काश्यप! अद्भुत हे काश्यप, जैसे उलटेको सीधा करदे, ढँके हुयेको खोल दे, ०। उसी तरह आपने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। हे काश्यप! मैं उन भगवान् गौतमकी शरणमें जाता हूँ, धर्म, और भिक्षु सघको भी। हे काश्यप! आजसे जन्म भरके लिये मुझे उपासक धारण करें।"

३—सत्काररहित यज्ञका कमफल

"हे काश्यप! मै एक महायज्ञ करना चाहता हूँ। हे काश्यप! आप निर्देश करें जिसमे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये हो। जिस प्रकारके यज्ञमें गौवें काटी जाती है, भेड़ बकरियाँ काटी जाती हैं, कुक्कुट और सूकर काटे जाते है, तीन प्रकारके प्राणी मारे जाते है। उसके करनेवाले मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-सकल्प मिथ्या-वाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधिवाले है। इस प्रकारके यज्ञका न तो अच्छा फल होता है, न अच्छा लाभ होता है, न अच्छा गौरव होता है।"

"राजन्य! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर वनमें प्रवेश करे। वह वहाँ बुरे खेतमें, ऊसर भूमिमें, बालू और काँटोवाली जगहमें सळे हुए, सूखे हुए, सार-रहित, न जमने लायक बीजको बोये। वृष्टि भी यथा समय खूब न बरसे। तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलताको प्राप्त होंगे? क्या कृषक अच्छा फल पायेगा?"

"नहीं, हे काश्यप!"

"राजन्य! उसी तरह जिस यज्ञमें गौवे काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे न महाफल ० होता है। राजन्य! जिस यज्ञमें गौवें नही काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे महाफल ० होता है।

"राजन्य! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर वनमें प्रवेश करे। वहाँ बालू और काँटोंसे रहित अच्छे खेतमें अच्छे स्थानमें अखड, अच्छे, सूखे नही, सारवाले और शीघ्रतासे जमने योग्य बीजको बोए। कालोचित खूब वृष्टि भी होए। तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलताको प्राप्त होंगे?"

"हाँ, हे काश्यप!"

"राजन्य! उसी तरह, जिस प्रकारके यज्ञमें गौवें नही काटी जाती है, ० उस प्रकारके यज्ञसे महाफल ०।"

तव पायासी राजन्य सभी श्रमण, ब्राह्मण, कृपण(=गरीब), साधु और भिखमगोंको दान दिलवाने लगा। उस दानमें कनी और बिलङ्ग (=काँजी)के भोजन दिये जाते थे—मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते थे। दान बाँटनेके लिये उत्तर नामक एक माणवक बैठाया गया था।

वह दान देकर ऐसा कहा करता था—इस दान द्वारा मेरा इसी लोकमें पायासी राजन्यसे समागम हो, परलोकमें नही।

पायासी राजन्यने सुना कि उत्तर माणवक दान देकर ऐसा कहा करता है—"इस दान द्वारा ०। तव पायासी राजन्यने उत्तर ०को बुलाकर कहा—तात उत्तर! क्या यह सच बात है कि तुम दान देनेके बाद ऐसा कहा करते हो—इस दानसे ०?

"जी हाँ।"

"तात उत्तर! ० ऐसा क्यो कहते हो—इस दानसे ०? तात उत्तर! हम तो पुण्य कमाना चाहते है, दानके फलहीकी तो हमें इच्छा है।"

"आपके दानमें कनी और काँजीका भोजन दिया जाता है, मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते है, जिन्हे कि आप पैरसे भी नही छूयें, खाना और पहनना तो दूर रहे। आप हम लोगोंके प्रिय और मनाप है। हम लोग अपने प्रियको अप्रियके साथ कैसे देख सकते है?"

"तात उत्तर! तो जिस प्रकारका भोजन मैं स्वय करता हूँ, उसी प्रकारका भोजन बाँटो, जिस प्रकारके वस्त्र मैं पहनता हूँ, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटो।"

'बहुत अच्छा' कह उत्तर माणवक ० जिस प्रकारका भोजन पायासी राजन्य स्वय करता था,

उसी प्रकारका भोजन बाँटने लगा, जिस प्रकारके वस्त्र पायासी राजन्य स्वय पहनता था, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटने लगा।

तब पायासी राजन्य बिना सत्कार रहित दान दे, दूसरेके हाथसे दान दिलवा, बेमनसे दान दे, फेंक कर दान दे, मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवोंके बीच उत्पन्न हुआ। उसे सेरिस्सक नाम छोटा-सा विमान मिला और जो उत्तर नामक माणवक उस दानपर बैठाया गया था, वह सत्कारपूर्वक दान दे, अपने हाथोंसे दान दे, मनसे दान दे, ठीकसे दान दे, मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्ग लोक में त्रायस्त्रिंश देवोंके बीच उत्पन्न हुआ।

उस समय आयुष्मान् गवाम्पति अपने छोटे सेरिस्सक विमानपर दिनके विहारके लिये सदा बाहर निकला करते थे। तब पायासी देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् गवाम्पति थे वहाँ गया। जाकर० एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे पायासी० को० गवाम्पति यह बोले—

"आवुस! आप कौन हैं?"

"भन्ते! मै पायासी राजन्य हूँ।"

"आवुसो! क्या आप इस धारणाके थे—यह लोक नहीं है०?"

"भन्ते! हाँ, मैं इस दृष्टिका था—यह लोक नहीं है०। किन्तु मैं आर्य कुमार काश्यपके द्वारा इस बुरी धारणासे हटाया गया।'

"आवुस! जो उत्तर नामक माणवक आपके दानमें बैठाया गया था सो कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

"भन्ते! जो उत्तर नामक० वह सत्कार पूर्वक० दान दे मरनेके बाद० हुआ है त्रायस्त्रिंश देवोंके बीच उत्पन्न हुआ है। और मैं भन्ते! सत्कारके बिना० दान दे मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवताओंमें उत्पन्न हुआ हूँ। भन्ते गवाम्पति! तो आप मनुष्य लोकमें जाकर कहें—सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो०। पायासी राजन्य सत्कारके बिना० दान दे० चातुर्महाराजिक देवोंके बीच उत्पन्न हुआ, और० उत्तर माणवक० त्रायस्त्रिंश देवताओंमें०।"

तब आयुष्मान् गवाम्पति मनुष्य-लोकमें आकर लोगोंको यह उपदेश देने लगे—

'सत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो, मनसे दान दो, ठीकसे दान दो। पायासी राजन्य सत्कारके बिना० दान देकर मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवोंके बीच उत्पन्न० और उत्तर माणवक० त्रायस्त्रिंश देवोंमें उत्पन्न हुआ है।"

(इति महावग्ग ॥२॥)

३—पाथिक-वग्ग

२४–पाथिक-सुत्त (३।१)

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म त्याग। २—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु। ३—अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें। ४—अचेल पाथिक पुत्रकी पराजय। ५—ईश्वर-निर्माणवादका खंडन। ६—शुभविमोक्ष।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मल्ल देशमें अनूपिया नामक मल्लोंके निगममें विहार कर रहे थे।

तब भगवान्ने पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षाके लिये अनूपियामें प्रवेश किया। तब भगवान्के मनमें यह हुआ—अनूपियामें भिक्षाटन करनेके लिये यह बहुत सवेरा है। क्यों न मैं जहाँ भार्गव-गोत्र परिव्राजकका आराम है, और जहाँ भार्गव-गोत्र परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तब भगवान् जहाँ ० भार्गवगोत्र परिव्राजक था वहाँ गये। भार्गवगोत्र परिव्राजकने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान् पधारें, भगवान्का स्वागत है, बहुत दिनोंके बाद भगवान्का दर्शन हुआ है। यह आसन बिछा है, भगवान् बैठें। भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। भार्गव गोत्र परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया।

१–सुनक्खत्तका बौद्धधर्म-त्याग

एक ओर बैठे हुए भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवान्से यह कहा—'भन्ते! कुछ दिन हुए कि सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—हे भार्गव! मैंने भगवान्को छोड़ दिया, अब मैं भगवान्के धर्मको नहीं मानता।'

"भन्ते! क्या जो सुनक्खत्त ० कहता है वह ठीक है?"

'भार्गव! ० ठीक है। कुछ दिन हुए कि सुनक्खत्त ० जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! मैं अब भगवान्को छोड़ देता हूँ, मैं अब आपके धर्मको नहीं मानता।'

"ऐसा कहनेपर मैंने ० यह कहा—'सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझसे कभी कहा था—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर?'

'नहीं भन्ते।'

'तुमने भी क्या मुझसे कहा था—'भन्ते! मैं भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ?'

नहीं, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! न तो मैंने कहा—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर, और न तूने ही मुझसे कहा—भन्ते! मैं भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ। तब मूर्ख! तू किसको मानकर किसको छोड़ता है? मूर्ख! देख यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते! भगवान् मुझे अलौकिक ऋद्धिबल नहीं दिखाते।'

'सुनक्खत्त ! क्या मैंने तुझसे ऐसा कहा था—सुनक्खत्त ! मेरे धर्मको स्वीकार कर, मैं तुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाऊँगा ?'

'नही, भन्ते !'

'तो क्या तूने मुझसे कभी ऐसा कहा था—मै भन्ते ! आपके धर्मको मानता हूँ, आप मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावें ?' 'नही, भन्ते !'

'सुनक्खत्त ! न मैंने ऐसा कहा ० और न तूने ऐसा कहा ०। तब, मूर्ख ! किसका होकर तू किसको छोळता है ?'

"सुनक्खत्त ! तब क्या तू समझता है—मेरे अलौकिक ऋद्धि बलके दिखानेसे या न भी दिखानेसे दु खोके बिलकुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा ?'

"भन्ते ! आपके अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाने या न दिखानेसे भी ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त ! जब मेरे ० पूरा नही होगा तब मैं क्यो ० ऋद्धि बल दिखलाऊँ ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते ! भगवान् मुझे लोगोमे आगे करके उपदेश नही देते।'

'क्या सुनक्खत्त ! मैंने ऐसा कहा था—सुनक्खत्त ! आ ०।'

'नही, भन्ते !'

'सुनक्खत्त ! क्या तूने मुझसे ऐसा कहा था—० ?'

'नही, भन्ते !'

'सुनक्खत्त ! मैंने भी ऐसा नही कहा ० और तूने भी ऐसा नही कहा ०। तब मूर्ख ! तू किसका होकर किसको छोळता है ? क्या तू समझता है, सुनक्खत्त ! लोगोमें आगे करके उपदेश देनेमे भी न देनेसे भी दु खोके बिल्कुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा ?'

'भन्ते ! ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त ! ० जब पूरा हो जाता है तो लोगोमें आगे करके उपदेश देनेका क्या अर्थ ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है। सुनक्खत्त ! तूने वज्जी ग्राममें अनेक प्रकारसे मेरी प्रशसा की थी—वे भगवान् अर्हत् सम्यक् सबुद्ध ०[1] हैं। सुनक्खत्त ! इस तरह तूने वज्जी ग्राममें मेरी प्रशसा अनेक प्रकारसे की थी। ० धर्मकी प्रशसा की थी—भगवान्का धर्म स्वाख्यात, ०[1] है। सुनक्खत्त ! इस तरह ० धर्मकी प्रशसा ० की थी। ० सघकी ०—भगवान्का श्रावक-सघ सुप्रतिपन्न ०[1]। सुनक्खत्त ! इस तरह ० सघकी प्रशसा ० की थी।

'सुनक्खत्त ! तुम्हे कहता हूँ—लोग तुम्हे ही दोष देंगे—सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र श्रमण गोतमके शासनमें ० ब्रह्मचर्य पालन करनेमे असमर्थ रहा। वह असमर्थ हो, शिक्षाको छोळ, गृहस्थ बन गया। सुनक्खत्त ! इस तरह लोग तुम्हे ही दोष देगे।'

"भार्गव ! मेरे इस प्रकार कहनेपर सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्र आपायिक=नैरयिक (=नारकीय)के ऐसा इस धर्म विनयसे चला गया।

२—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु

"भार्गव ! एक समय मैं थुलू देशमें उत्तरका नामवाले थुलुओके कस्बेमें विहार कर रहा था। भार्गव ! मैं पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रको साथ ले उत्तरकामें भिक्षा-

---

[1] देखो पृष्ठ २८८।

'मूर्ख ! इस तरह मेरे ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ० ऋद्धि बल नही दिखाते है ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र, अपायिक—नारकीयकी भाँति इस धर्मसे चला गया।

३–अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें

"भार्गव ! एक समय मै वैशालीके पास महावनकी कूटागारशालामे विहार करता था। उस समय अचेल कोरमट्टक वज्जियोके ग्राम वैशालीमे बळे लाभ और बळे यशको प्राप्त हो निवास करता था। उसने सात व्रत ग्रहण किये थे—(१) जीवन भर नगा रहूँगा, वस्त्र धारण नही करूँगा, (२) जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा, मैथुन धर्मका सेवन नही करूँगा, (३) जीवन भर मास खाकर और सुरा पीकर ही रहूँगा, भात दाल नही खाऊँगा, (४) वैशालीमे पूरबकी ओर उदयन नामक चैत्यके आग न जाऊँगा, (५) ० दक्षिणमें गोतमक नामक चैत्य ०। (६) ० पश्चिममे सप्ताम्रक नामक चैत्य ०। (७) ० उत्तरमे बहुपुत्रक नामक चैत्यके आगे न जाऊँगा। वह इन सात व्रतोंको लेनेके कारण वज्जियोके ग्राममें बळे लाभ और यशको प्राप्त था।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ अचेल कोरमट्टक था, वहाँ गया। जाकर उसने अचेल कोरमट्टकसे कुछ प्रश्न पूछे। उन प्रश्नोंके पूछे जानेपर अचेल कोरमट्टक उत्तर न दे सका। उत्तर न दे वह क्रोध, द्वेष और असतोष प्रगट करने लगा।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रके मनमें यह आया—ऐसे पहुँचे हुए अर्हत् श्रमणको मैंने चिढा दिया, कही मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो।

'भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मुझे अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैने कहा—'मूर्ख ! क्या तू भी अपने को शाक्यपुत्रीय श्रमण कहेगा ?' 'भन्ते ! भगवान्ने ऐसा क्यो कहा ० ?'

'सुनक्खत्त ! क्या तूने अचेल कोरमट्टकके पास जाकर प्रश्न नही पूछे ०। वह प्रकट करने लगा। तब तेरे मनमे यह आया—एसे पहुँचे ० मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो।'

'हाँ, भन्ते ! ० क्यो डाह करते हैं ?'

'मूर्ख ! मैं ० डाह नही करता। किन्तु जो तुझे यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई है, उसे छोळ दे। जिसमें कि तेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो। सुनक्खत्त ! जिस अचेल कोरमट्टकको तू ऐसा समझता है—पहुँचा हुआ ० वह शीघ्र ही कपळे पहन, स्त्रीके साथ, दाल भात खाते, वैशालीके सभी चैत्योंको पारकर अपने सारे यशको खो विचरते हुए मर जायेगा।'

"भार्गव ! तब कुछ ही दिनोंके बाद अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया। सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने सुना—'अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया।'

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया ० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैंने कहा—सुनक्खत्त ! तो क्या समझता है, जैसा मैंने अचेल कोरमट्टकके विषयमें कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ या दूसरा ?

'भन्ते ! भगवान्ने जैसा कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ, दूसरा नही।'

'सुनक्खत्त ! ० ऋद्धि-बल हुआ या नही ?' 'भन्ते ! ० ऋद्धि-बल हुआ ०।'

'मूर्ख ! इस तरह मेरे ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ०

ऋद्धि-बल नहीं दिखाते हैं ? मूर्ख ! देख यह तेरा ही अपराध है।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनक्खत्त० चला गया।

४—अचेल पाथिक-पुत्रकी पराजय

"भार्गव ! एक समय मैं वहीं वैशालीके महावनकी कूटागारशालामें विहार करता था। उस समय अचेल पाथिक-पुत्र बड़े लाभ और बड़े यशको प्राप्तकर वज्जियोंके ग्राम वैशालीमें वास करता था। वह वैशालीमें सभाओंके बीच ऐसा कहा करता था—श्रमण गौतम ज्ञानवादी है, मैं भी ज्ञानवादी हूँ। ज्ञानवादीको ज्ञानवादीके साथ अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाना चाहिये। श्रमण गौतम आधा मार्ग आवे और मैं भी आधा मार्ग जाऊँ। हम दोनों वहाँ मिलकर अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावें। यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धि-बल दिखावेंगे तो मैं दो दिखाऊँगा, यदि श्रमण गौतम दो० तो मैं चार, यदि० चार० तो मैं आठ०। इस तरह श्रमण गौतम जितना० दिखलायेंगे, मैं उसका दूना दिखलाऊँगा।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया। ० बैठ गया। एक ओर बैठे ० कहा—'भन्ते अचेल पाथिकपुत्र० ऐसा कहता है ०। इस तरह श्रमण गौतम जितना० उसका मैं दूना ०।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर मैंने सुनक्खत्त० से यह कहा—'सुनक्खत्त ! अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है, यदि वह इस बातको बिना छोड़े, इस चित्तको बिना छोड़े, इस दृष्टिको बिना छोड़े० मेरे सामने आवे। यदि उसके मनमें ऐसा भी हो—मैं उस बातको बिना छोड़े० श्रमण गौतम के निकट चलूँ, तो उसका शिर भी फट जायेगा।'

'भन्ते ! भगवान् रहने दें इस वचनको, सुगत रहने दें इस वचनको।'

'सुनक्खत्त ! तूने मुझसे ऐसा क्यों कहा—भन्ते ! भगवान् रहने द० ?'

'भन्ते ! भगवान्ने तो पक्की तौरसे कह दिया—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है० शिर भी फट जायेगा। भन्ते ! यदि अचेल पाथिकपुत्र विरूप वेशमें भगवान्के सामने आ जावे तो यह भगवान्की बात झूठ हो जायेगी।'

'सुनक्खत्त ! तथागत क्या ऐसी बात बोलते हैं जो अन्यथा हो ?'

'भन्ते ! क्या भगवान्ने अचेल पाथिकपुत्रके चित्तको अपने चित्तसे जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है० ? या किसी देवताने भगवान्से यह कह दिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना० ?'

'सुनक्खत्त ! मैंने अपने चित्तसे उसके चित्तको जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना०।' और देवताओंने भी मुझे कहा है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना०। अजितनामक लिच्छवियोंका सेनापति अभी अभी मरकर त्रायस्त्रिंश लोकमें उत्पन्न हुआ है। उसने भी मेरे पास आकर यह कहा है—भन्ते ! अचेल पाथिकपुत्र निर्लज्ज है, झूठा है। अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना०। सुनक्खत्त ! मैंने अपने चित्तसे भी जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना०। देवताने भी०। सुनक्खत्त ! कल मैं वैशालीमें भिक्षाटनसे लौट, भोजनोपरान्त दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ चलूँगा। सुनक्खत्त ! जो तू चाहता है सो कर।'

"भार्गव ! तब मैं पूर्वाह्न समय पहनकर० जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम था, वहाँ गया।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त घबड़ाया हुआ सा वैशालीमें प्रविष्ट हो, जहाँ बड़े बड़े लिच्छवी थे वहाँ गया। जाकर० बोला—'यह भगवान् वैशालीमें भिक्षाटनके बाद दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ गये हुए हैं। आप लोग चलें—पहुँचे हुए श्रमण अलौकिक ऋद्धि-बल दिखायेंगे।'

'हाँ ! हम लोग चलेंगे।'

"(फिर वह) 'जहाँ बळे बळे ब्राह्मणमहाशाल, धनी वैश्य, नाना प्रकारके साधु, श्रमण और ब्राह्मण थे वहाँ गया। जाकर ० बोला—ये भगवान् ० जहाँ अचेल०का आराम ०। ० चले। ० ऋद्धि-बल दिखायेंगे।'

'हाँ, हम लोग चलेंगे।'

"भार्गव ! तब बळे बळे लिच्छवि, बळे बळे ब्राह्मण महाशाल, ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम था, वहाँ पहुँचे। कई सौ और कई हजारोंका जमघट हो गया।

"भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्रने सुना—बळे बळे लिच्छवी० बळे बळे ब्राह्मण० आये हुए हैं। श्रमण गौतम मेरे आराममें दिनके विहारके लिये बैठे हैं। सुनकर उसे भय, कंप, और रोमाञ्च होने लगे। भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्र भयभीत, संविग्न, और रोमाञ्चित हो जहाँ **तिन्दुकखाणु** (नामक) परिव्राजकोंका आराम था, वहाँ चला गया।

"भार्गव ! उस सभाने यह सुना—अचेल पाथिकपुत्र भयभीत हो ० चला गया है। भार्गव ! तब उस सभाने किसी पुरुषसे कहा—जहाँ ० परिव्राजकों का आराम है और जहाँ अचेल पाथिकपुत्र है वहाँ जाओ। जाकर ० यह कहो—पाथिकपुत्र ! चलें, बळे बळे लिच्छवी ० आये हुए हैं, और श्रमण गौतम भी आयुष्मान्‌के आराममें दिनके विहारके लिये बैठे हैं। आवुस पाथिकपुत्र ! आपने वैशालीमें सभाके बीच यह बात कही थी—श्रमण गौतम भी ज्ञानवादी ० उससे दुगुना ऋद्धि-बल *दिखाऊँगा। आवुस ० ! आधे मार्गको छोळ श्रमण गौतम सर्वप्रथम ही आयुष्मान्‌के आराम में आकर* दिनके विहारके लिये बैठे हैं।'

'बहुत अच्छा' कह वह पुरुष ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर ० बोला—'आवुस ० ! चलें, बळे बळे लिच्छवी ०।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस, चलता हूँ। आवुस, चलता हूँ।' कहकर वहीं रुक गया, आसनसे उठ भी नहीं सका। भार्गव ! तब वह पुरुष अचेल पाथिकपुत्रसे यह बोला—'आवुस ० ! आपको क्या हो गया है ? क्या आपकी देह पीढ़ेमें सट गई है, या पीढ़ा ही आपकी देहमें सट गया है ? जो 'आवुस, चलता हूँ ०' कहकर वहीं रुक जाते हो, आसनसे उठते भी नहीं।'

'भार्गव ! ऐसा कहनेपर ० उठ भी नहीं सका। भार्गव ! जब उस पुरुषने समझ लिया—यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है, 'चलता हूँ चलता हूँ' कहकर ० उठ भी नहीं सकता, तब उसने सभामें आकर कहा—'यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है। 'चलता हूँ, चलता हूँ'—कहकर ० उठ भी नहीं सकता।'

"भार्गव ! उसके ऐसा कहनेपर मैंने सभासे यह कहा—'अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० *शिर भी फट जायगा।'*

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"भार्गव ! तब लिच्छवियोंके एक अफसरने आसनसे उठकर सभामें कहा—'तो आप लोग थोळी और प्रतीक्षा करें। मैं जाता हूँ, शायद मैं अचेल पाथिकपुत्रको इस सभामें ला सकूँ।'

"भार्गव ! तब वह लिच्छवियोंका मन्त्री ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर अचेल पाथिकपुत्रसे बोला—'आवुस पाथिक-पुत्र ! चलें, आपका चलना बळा अच्छा होगा। बळे-बळे लिच्छवी ० आये हैं। आपने ० सभाके बीच यह बात कही थी—श्रमण गौतम ज्ञानवादी ०।

आवुस।०। श्रमण गौतमने सभामें यह बात कही है—अचेल ०का ऐसा कहना अनुचित ०। अनुरूप!
चले। चलनेहीसे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण गौतमकी हार हो जायेगी।'

"भार्गव! ऐसा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस! चलता हूँ०' कहकर ० उठ भी नहीं
सका। भार्गव! तब ० अफसरने अचेल पाथिकपुत्रसे कहा—क्या ० पीढा सट गया है ०। जब उसने
जान लिया—अचेल ० हार सा गया है, 'चलता हूँ ०' कहकर ० उठ भी नहीं सकता, तो सभामें जाकर
कहा—'अचेल हारसा गया ० उठ भी नहीं सकता।'

"भार्गव! उसके ऐसा कहनेपर मैंने सभामें कहा—० अनुचित था ०। यदि आप आयुष्मान्
लिच्छवियोंके मनमें यह हो—हम लोग अचेल पाथिकपुत्रको रस्सीसे बाँध, बैलकी जोड़ीसे खींच लावेंगे,
तो भी चाहे तो रस्सी ही टूट जायेगी या पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा (किंतु वह अपने आसनको नहीं छोड़ेगा)
अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित ०।'

"भार्गव! तब, दारुपत्तिकका शिष्य जालिय आसनसे उठकर सभामें बोला—तो आप लोग
थोड़ी और प्रतीक्षा करें ०। जहाँ अचेल वहाँ गया ० चले। ० तुमने यह बात कही थी ० ज्ञानवादी ०। ०
आवुस पाथिक-पुत्र! आप चलें। चलनेहीसे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण गौतमकी हार हो
जायेगी।'

"भार्गव! 'चलता हूँ, चलता हूँ।' कह ० आसनसे भी नहीं उठ सका।

"भार्गव! तब जालिय ० ने अचेल पाथिकपुत्रसे यह कहा—० क्या सट गया है? ० आसनसे
भी नहीं उठता?'

"भार्गव! ० आसनसे भी नहीं उठ सका। जब ० जालियने समझ लिया—अचेल नहीं
मानेगा—'चलता हूँ, चलता हूँ' कहकर ० आसनसे उठना भी नहीं, तब उसने कहा—'आवुस
पाथिकपुत्र! पुराने समयमें एक बार मृगराज सिंहके मनमें यह आया—मैं किसी वनमें जाकर वास
करूँ, वहाँ वासकर सायकाल अपनी माँदसे निकलूँगा। माँदसे निकलकर जँभाई लूँगा। जँभाई लेकर
चारों ओर देखूँगा। चारों ओर देखकर तीन बार सिंह-नाद करूँगा। तीन बार सिंह-नाद करके गोचर-
(=शिकार)के लिये प्रस्थान करूँगा। वहाँ अच्छे अच्छे जानवरोंको मार, नरम नरम मांस खा, उसी
माँदमें चला आऊँगा।

तब वह मृगराज सिंह किसी वनमें जाकर वास करने लगा, ० नरम नरम मांस खा, उसी
माँदमें आकर रहने लगा। पाथिकपुत्र! उसी मृगराज सिंहके जूठे छूटे माँसको खाकर एक बूढ़ा
स्यार मोटा और बलवान् हो गया।

"आवुस पाथिकपुत्र! तब उस बूढ़े स्यारके मनमें यह आया—क्या मैं हूँ, क्या मृगराज सिंह
है? मैं भी क्यों न किसी वनमें जाकर वास करूँ ० सायकाल माँदसे निकलूँगा ० सिंह-नाद करूँगा ०
अच्छे अच्छे जानवरोंको मार, नरम नरम मांस खा, उसी माँदमें चला आऊँगा। 'आवुस! तब वह
बूढ़ा स्यार किसी वनमें जाकर वास करने लगा, ० सायकाल माँदसे निकला, ० जँभाई ली, ० चारों
ओर देखा, चारों ओर देखकर 'तीन बार सिंह-नाद करूँगा' करके कर्कश स्यारोंका ही शब्द (हुँवा, हुँवा)
करने लगा। भला, कहाँ सिंह-नाद और कहाँ एक तुच्छ स्यारका हुँवा हुँवा।

'आवुस पाथिक! इसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओंसे जीनेवाले और उनका जूठा खानेवाले
आप सम्यक्-सम्बुद्ध, अर्हत्, तथागतका सामना कैसे करना चाहते थे? कहाँ तुच्छ पाथिकपुत्र और
कहाँ सम्यक्-सम्बुद्ध अर्हत् तथागतोंका सामना करना?'

"भार्गव! दारुपत्तिकका शिष्य जालिय, इस उपमासे भी अचेल पाथिकपुत्रको उस आसनसे
हिला नहीं सका। तब, बोला—

'अपनेको सिंह मान स्यारने समझा कि मैं मृगराज हूँ, और ऐसा कह'।

"हुँवा, हुँवा" करने लगा, कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद ॥१॥

'आवुस०! उसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओंमें जीनेवाले०आप मानो अर्हत् तथागत सम्यक् सम्बुद्धका सामना करना चाहते थे। कहाँ तुच्छ पाथिक-पुत्र और कहाँ०सम्बुद्धोंका सामना करना?

'भार्गव! तब भी जालिय०अचेल पाथिकपुत्र को उस आसनसे नहीं हिला सका। तो बोला—

'जूठेको खा, अपनेको (मोटा) देख, जब तक अपने स्वरूपको नहीं पहचानता, तब तक स्यार अपनेको व्याघ्र समझता है।

वह उसी तरह स्यारके ऐसा 'हुँवा, हुँवा' करता है।

कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद! ॥२॥

"आवुस! उसी तरह सुगतकी ही०सामना करना चाहते थे। कहाँ०पाथिकपुत्र०! ०तब बोला—

'मढक, चूहो, श्मशानमें फेंके मुर्दोंको खाकर बूढा (स्यार) छोटे या बळे जंगलमें रहता था। स्यारने समझा—मैं मृगराज हूँ। उसी तरह वह 'हुँवा, हुँवा' करने लगा।

कहाँ एक तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद!' ॥३॥

"०इस उपमा से भी अचेल पाथिकपुत्रको अपने आसनसे नहीं हिला सका।

"तब वह उस सभामें आकर यह बोला—अचेल पाथिकपुत्र हार ही गया है। 'चलता हूँ' 'चलता हूँ' कहकर०आसनसे नहीं उठता।

'भार्गव! ऐसा कहनेपर मैंने सभामें यह कहा—०अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित०। ०या रस्सी टूट जायेगी या अचेल पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा। ०अनुचित०'।

'भार्गव! तब मैंने उस सभाको धार्मिक उपदेशसे समझाया, बुझाया, उत्साहित तथा प्रसन्न किया। उस सभाको धार्मिक उपदेशोंसे०प्रसन्नकर, संसारके बळे बन्धनसे मुक्त किया। चौरासी हज़ार प्राणियोंको भवसागरसे उबारा, फिर अग्नितत्व (=तेजो धातु)को (ध्यानमें) ग्रहणकर, सात ताल आकाशमें ऊपर उठ और सात ताल ऊँचा अपने तेजको फेंका और (स्वयं) धुँआ देते, प्रज्वलित हो महावन की कूटागारशालाके ऊपर उठा।

"भार्गव! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ गया। ०एक ओर बैठे सुनक्खत्त०को मैंने कहा—'सुनक्खत्त! तो तू क्या समझता है—अचेल पाथिक-पुत्रके विषयमें जैसा मैंने कहा था वैसा ही हुआ या दूसरा?'

'भन्ते! ०जैसा आपने कहा था वैसा ही हुआ, दूसरा नहीं।'

'सुनक्खत्त! तो तू क्या समझता है—०ऋद्धि-बल दिखाया गया या नहीं?'

'भन्ते! ०दिखाया गया०।'

'मूर्ख! ०दिखानेपर भी तू ऐसे कहता है—भन्ते! भगवान्० (ऋद्धि) नहीं दिखाते। मूर्ख! देख यह तेरा ही दोष है।' भार्गव! ०सुनक्खत्त०चला गया।

"भार्गव! मैं अग्र (=श्रेष्ठ)को जानता हूँ। मैं उसे जानता हूँ, उससे भी अधिक जानता हूँ। उसे जानकर वैसा अभिमान भी नहीं करता। अभिमान न करते हुये मैं अपने भीतर-ही-भीतर मुक्तिका अनुभव करता हूँ, जिस अनुभवके करनेसे तथागत फिर कभी दुःख नहीं पाते।

५—ईश्वर निर्माणवादका खंडन

"भार्गव ! जो श्रमण ब्राह्मण ईश्वर (=इस्सर) या ब्रह्माके (सृष्टि)कर्त्तापनके मत (=आचार्यक)को अग्रणी (=श्रेष्ठ) बतलाते हैं, उनके पास जाकर मैं यों कहता हूँ—क्या सचमुच आप लोग ईश्वर०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं।

"उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—'आप लोग कैसे ईश्वर ०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बताते हैं ?' मेरे ऐसे पूछने पर वे उत्तर नहीं दे सकते। उत्तर न देकर वे मुझहीसे पूछने लगते हैं। उन लोगोंके पूछनेपर मैं उनका उत्तर देता हूँ।—'आवुसो ! बहुत दिनोंके बीतनेपर कोई समय आयेगा जब इस लोकका प्रलय होगा। प्रलय हो जानेपर (भी),जो आभास्वर योनिमें जन्मे प्राणी मनोमय, प्रीति भोजी, स्वयप्रभ, अन्तरिक्षगामी और शुभस्थायी होते हैं वहीं चिरकाल तक रहते हैं।

"आवुसो ! बहुत काल बीतनेपर कोई समय आवेगा, जब इस लोककी उत्पत्ति (=विवर्त) होती है। लोकके विवर्त हो जानेपर, शून्य ब्रह्म-विमान (=ब्रह्मलोक) प्रकट होता है। तब (आभास्वर देवलोकका) कोई प्राणी आयुके क्षीण होनेसे, या पुण्यके क्षीण होनेसे, (आभास्वर लोक)से च्युत हो शून्य ब्रह्म-विमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय प्रीतिभोजी ० होता है। वह वहाँ बहुत दिनों तक रहता है। वहाँ बहुत दिनों तक अकेले रहनेके कारण उसका जी ऊब जाता है और उसे भय मालूम होने लगता है—'अहो ! दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें'। उसी समय दूसरे प्राणी भी आयु ० पुण्यके क्षय होनेसे ० पहिलेवाले प्राणीके साथी हो शून्य ब्रह्म विमानमें उत्पन्न होते हैं। वे भी वहाँ मनोमय ० होते हैं। ० बहुत दिन तक रहते हैं।

"आवुस ! जो प्राणी वहाँ पहले उत्पन्न होता है उसके मनमें यह होता है—'मैं ब्रह्मा, महा-ब्रह्मा, अभिभू (=विजेता) अन्-अभिभूत, सर्वज्ञ, वशवर्ती, ईश्वर, कर्त्ता निर्माता, श्रेष्ठ, स्वामी (=वशी) और भूत तथा भविष्यके प्राणियोंका पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियोंको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? मेरे ही मनमें यह पहले हुआ था—अहो ! दूसरे भी प्राणी यहाँ आवें। अत मेरे ही मनमें उत्पन्न होकर ये प्राणी यहाँ आये हैं। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुये, उनके मनमें भी यह आता है—'यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर, (सृष्टि)कर्त्ता, ० पिता है। इसनेही हम लोगोंको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? इसको हम लोगोंने यहाँ पहलेहीसे विद्यमान पाया हम लोग (तो) पीछे उत्पन्न हुये।'

"आवुसो ! जो प्राणी पहले उत्पन्न होता है, वह दीर्घ-आयु, अधिक तेजवाला और अधिक सम्मानित होता है। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न होते हैं, वे अल्प-आयु कमजोरवाले, कम सम्मानित होते हैं। आवुसो ! यही कारण है कि दूसरा प्राणी (जब) उस कायाको छोळ कर इस (लोक)में आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। ० प्रव्रजित होकर सयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर चित्तसे उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिससे कि एकाग्रचित्त होनेपर उससे पूर्वके जन्मका स्मरण करता है, उसके आगेका नहीं स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—जो वह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० है, जिस ब्रह्माने हमें उत्पन्न किया है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (=अविपरिणामधर्मा) और सदाके लिये वैसा ही रहनेवाला है। और जो हम लोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, अनित्य, अध्रुव, अल्पायु, मरणशील हैं। इस प्रकार आप लोग ईश्वरका (सृष्टि-) कर्त्ता पन ० बतलाते हैं ?' वह लोग ऐसा कहते हैं—'आवुस गौतम ! जैसा आयुष्मान् गौतम बतलाते हैं, वैसा ही हम लोगोंने (भी) सुना है।

"भार्गव ! मैं अग्र जानता हूँ ० जिसके जाननेसे तथागत फिर दुःखमें नहीं पळते।"

"भार्गव ! कितने श्रमण और ब्राह्मण क्रीडाप्रदोषिक (=खिड्डापदोसिक)का आदिपुरुष होना—इस मत (=आचार्यक)को मानते हैं। उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—'क्या सचमुच आप

आयुष्मान् लोग क्रीडाप्रदोषिकको आदि पुरुष ० बतलाते है ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं। उन्हे मैं यह कहता हूँ—'आप आयुष्मान् कैसे ० आदिपुरुष ० मानते हैं ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे उत्तर नही देते। उत्तर न देकर मुझसे ही पूछते हैं। उन लोगोके पूछने पर मैं उत्तर देता हूँ—'आवुसो ! क्रीडाप्रदोषिक नामक सात देवता हैं। वे बहुत दिनो तक क्रीडामें रत रह, लगे रह विहार करते हैं। ० विहार करनेसे उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के नष्ट हो जानेपर वे देव उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुस ! यही कारण है कि कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर इस (लोक)में आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है, उसके पहले को स्मरण नही करता। वह ऐसा कहता है—'जो देवता क्रीडाप्रदोषिक नही है वे क्रीडा और रतिमें बहुत लगे नही रहते। ० उनकी स्मृति नष्ट नही होती। स्मृतिके नष्ट नही होनेसे वे उस कायासे च्युत नहीं होते, नित्य ध्रुव ०। और जो हम लोग क्रीडाप्रदोषिक देवता हैं, ० रतिमें लगे रहे। ० स्मृति नष्ट हो गई। ० उस कायासे च्युत हो गये। (अत हम लोग) अनित्य, अध्रुव ०'। ० जैसा आपने कहा।

"भार्गव ! मैं अग्रको जानता०।

"भार्गव ! कितने श्रमण और ब्राह्मण मन प्रदोषिक (=मनापदोसिक) देवताके आदिपुरुष होनेके मतको मानते हैं। उनके पास जाकर मैं यो कहता हूँ—कैसे ०। ०। ० मैं यह कहता हूँ—आवुसो ! मन प्रदोषिक नामक देवता हैं। वे (जब) एक दूसरेको बहुत आँख लगाकर देखते हैं। ० (उससे) उनके चित्त एक दूसरेके प्रति दूषित हो जाते हैं। वे एक दूसरेके प्रति दूषित चित्तवाले, क्लान्त काय और क्लान्त-चित्त हो जाते है। (तब) वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुस ! यह कारण है कि (उनमेंसे जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर यहाँ आता है। घरसे बेघर ०। ० एकाग्र चित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है, उसके पहिलेको नही स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—'जो मन प्रदोषिक देवता नहीं हैं ० वे नित्य ० हैं। और हम लोग ० अनित्य, अध्रुव ० हैं। आप लोग ऐसे ही मन प्रदोषिक देवताको आदिपुरुष होनेके मतको न मानते हैं ? वह लोग कहते हैं—'आवुस गौतम ! हम लोगोने भी ऐसा ही सुना है, जैसा आयुष्मान् गौतम कह रहे हैं।'

"भार्गव ! मैं अग्रको ०।

"भार्गव ! कितने श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो अधीत्यसमुत्पन्न (=अधिच्चसमुप्पन्न) देवताके आदिपुरुष होनेके मत मानते हैं। मैं उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—क्या सचमुच०?' उन लोगोके पूछनेपर मैं इस प्रकार उत्तर देता हूँ—'आवुसो ! असञ्ज्ञी सत्त्व (=असञ्ञिसत्त) नामक देवता है। सञ्ज्ञा (=होश)के उत्पन्न होनेसे वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुसो ! यह कारण है कि (जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत हो यहाँ आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो वह सञ्ज्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करता है, उसके पहिलेको नही स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—आत्मा और लोक दोनो अधीत्यसमुत्पन्न (=अभावमे उत्पन्न) है। सो किस हेतु ? मैं पहले नही था, और अब हूँ। न होकर भी (अब) मैं हो गया।' आवुसो ! आप लोग इसीलिये अधीत्यसमुत्पन्नके आदिपुरुष होनेके मतको मानते हैं।' वह लोग कहते हैं—'० जैसा आप गौतम कह रहे हैं।'

"भार्गव ! मैं अग्रको जानता ० जिससे तथागत फिर दु खमें नही पळते।

६–शुभ विमोक्ष

"भार्गव ! मेरे इस तरह कहनेपर कुछ श्रमण और ब्राह्मण मुझपर असत्य, तुच्छ, मिथ्या और अयथार्थ दोषका आक्षेप करते हैं—'श्रमण गौतम और भिक्षु लोग उलट हैं।' श्रमण गौतम ऐसा कहता

है—'जिस समय शुभ विमोक्ष[1] उत्पन्न करके (योगी) विहार करता है, उस समय (योगी) सब कुछ-को अशुभ ही अशुभ देखता है।'

"भार्गव! (किंतु) मैं ऐसा नही कहता—जिस समय ० अशुभ ही अशुभ देखता है।' भार्गव! बल्कि मैं तो ऐसा कहता हूँ—'जिस समय शुभ विमोक्ष उत्पन्न करके विहार करता है, उस समय (योगी) शुभ ही शुभ समझता है।"

"वे ही उल्टे हैं, जो भगवान् और भिक्षुओंपर मिथ्या दोषारोपण करते है। भन्ते! मैं आपपर इतना प्रसन्न हूँ। आप मुझे उस धर्मका उपदेश करें, जिससे शुभ विमोक्षको उत्पन्नकर मैं विहार करूँ।"

"भार्गव! दूसरे मतवाले, दूसरे विचारवाले, दूसरी रुचिवाले, दूसरे आयोगवाले, दूसरे मत (=आचार्यक)को माननेवाले तुम्हारेलिये शुभ विमोक्ष उत्पन्नकर विहार करना दुष्कर है। भार्गव! जो तुम मुझपर प्रसन्न हो उसीको ठीकसे निभाओ।"

"भन्ते! यदि दूसरे मतवाले ० होनेसे मेरे लिये शुभ विमोक्ष उत्पन्न होकर विहार करना दुष्कर है, तो मैं जो आपमे इतना प्रसन्न हूँ उसीको ठीकसे निभाऊँगा।"

भगवान्‌ने यह कहा।

भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवानके भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो आठ विमोक्ष संगीति परियाय-सुत्त ३३ (पृष्ठ २९८)।

२५—उदुम्बरिकसीहनाद-सुत्त (३।२)

१—न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा। २—अशुद्ध तपस्या। ३—शुद्ध तपस्या।
४—वास्तविक तपस्या—चार भावनायें। ५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप।
६—बुद्धधर्मसे लाभ इसी शरीरमें।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक तीन हजार परिव्राजकोंकी बळी मण्डलीके साथ उदुम्बरिका (नामक) परिव्राजक-आराममें वास करता था।

१—न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा

तब सन्धान गृहपति दोपहरको (=दिन ही दिन) भगवान्‌के दर्शनके लिये राजगृहसे निकला। तब सन्धान गृहपतिके मनमें यह हुआ—भगवान्‌के दर्शनके लिये यह ठीक समय नहीं है, भगवान् समाधिमें बैठे हैं। दूसरे भिक्षु जो ध्यान कर रहे हैं उनसे भी मिलनेका यह ठीक समय नहीं है। सभी भिक्षु ध्यानमें बैठे हैं। अतः, मैं जहाँ उदुम्बरिका परिव्राजक-आराम है, और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तब सन्धान गृहपति जहाँ उदुम्बरिका परिव्राजिक-आराम था और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था, वहाँ गया। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक राज कथा, चोर-कथा, माहात्म्य-कथा, सेना कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गंध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति-(=कुल) कथा, यान(=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जनपद-कथा, स्त्री कथा, शूर-कथा, विशिखा (=चौरस्ता) कथा, कुम्भस्थान(=पनघट)-कथा, पूर्वप्रेत(=पहले मरोंकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-अख्यायिका, समुद्र-अख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, तीन हजार परिव्राजकोंकी बळी भारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ बैठा था।

न्यग्रोध परिव्राजकने सन्धान गृहपतिको दूर हीसे आते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको शान्त किया—"आप लोग चुप हो जायें, हल्ला न मचावें। यह श्रमण गौतमका श्रावक सन्धान गृहपति आ रहा है। श्रमण गौतमके जितने उजले वस्त्र पहननेवाले गृहस्थ श्रावक राजगृहमें रहते हैं, उनमें यह सन्धान गृहपति भी एक है। ये आयुष्मान् निःशब्द चाहनेवाले हैं, निःशब्दमें विनीत हैं, निःशब्दताकी प्रशंसा करनेवाले हैं। ये निःशब्द मण्डलीमें ही जाना अच्छा समझते हैं।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो गये। तब सन्धान गृहपति जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था वहाँ गया। जाकर कथा कुशलक्षेम पूछ सलाप करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सन्धान गृहपति न्यग्रोध परिव्राजकसे यह बोला—

"ये अन्यतीर्थिक (=दूसरे मतवाले) परिव्राजक, जो जमा होकर ० आदि निरर्थक कथा कहते ०

शोर मचाने दूसरे ही प्रकारके हैं, और वे भगवान् जो समाधि लगानेके योग्य, मनुष्योंसे अगम्य, शान्त, एकान्त और निर्जन वनोंमें वास करते हैं, बिल्कुल दूसरे हैं।"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजकने सन्धान गृहपतिसे कहा—"सुनो गृहपति! जानते हो किसके साथ श्रमण गौतम सलाप करते हैं, किसके साथ साक्षात्कार करते हैं, किसको प्रज्ञोपदेश करते हैं? शून्यागारमें रहते रहते श्रमण गौतमकी बुद्धि मारी गई है। श्रमण गौतम सभामें मुँह चुराते हैं। सवाद करनेमें असमर्थ हैं। वे लोगोंसे अलग अलग भागे फिरते हैं, जैसे कानी गाय अकेले अलग ही अलग भागी फिरती है। इसी तरह श्रमण गौतमकी प्रज्ञा मारी गई है०। सुनो गृहपति! यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवें, तो एक ही प्रश्नमें उन्हें चक्करा दें, खाली घड़ेकी तरह जिधर चाहें घुमा दें।"

भगवान्ने अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्रसे न्यग्रोध० के साथ सन्धान गृहपतिका यह कथा सलाप सुना।

तब भगवान् गृध्रकूट पर्वतसे उतर जहाँ सुमागधा (पुष्करिणी) के तीरपर मोरनिवाप था, वहाँ गये। जाकर खुले स्थानमें टहलने लगे।

न्यग्रोध परिव्राजकने ० मोरनिवापमें भगवान्को टहलते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको सावधान किया—"आप लोग चुप रहें ०। यह श्रमण गौतम ० खुले स्थानमें टहल रहे हैं। वे नि:शब्दता-को पसद करते हैं ०। यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवे तो उन्हें यह प्रश्न पूछूँ—भन्ते! भगवान्का वह कौन धर्म है, जिससे भगवान् अपने श्रावकोंको विनीत करते हैं, जिनसे विनीत होकर भगवान्के श्रावक ब्रह्मचर्य पालनमें आश्वासन पाते हैं?' ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था, वहाँ गये। तब न्यग्रोध परिव्राजकने भगवान्से कहा—पधारें, "भगवान्, भगवान्का स्वागत है, भगवान्ने बहुत दिनोंके बाद यहाँ आनेकी कृपाकी, भगवान् बैठें, यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे हुये आसनपर बैठ गये। न्यग्रोध परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे न्यग्रोध परिव्राजकसे भगवान्ने यह कहा—'न्यग्रोध! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुके?"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजक बोला—

"भन्ते! हम लोगोंने भगवान्को सुमागधाके तीरपर मोरनिवापमें खुले स्थानमें टहलते देखा। देखकर यह कहा—यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवे ० ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं? भन्ते! इसी बातमें आकर हम लोग रुके कि भगवान् पधारे।"

२—अशुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध! दूसरे मतवाले, दूसरे सिद्धान्तवाले तुम्हें यह समझाना बड़ा दुष्कर है कि मैं कैसे अपने श्रावकोंको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर मेरे श्रावक आदि ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं। तो न्यग्रोध! तपोंकी निन्दा करनेवाले अपने मत (=आचार्यक)के बारेमें ही पूछो—भन्ते! क्या होनेसे तप-जुगुप्सा पूरी होती है, क्या होनेसे नहीं पूरी होती?"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक हल्ला करने लगे—"अरे, बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है! श्रमण गौतमकी शक्ति और महानुभावताको (तो देखो) कि अपने पक्षका स्थापन करता है और दूसरेके पक्ष का निराकरण!"

तब न्यग्रोध परिव्राजक उन परिव्राजकोंको चुपकर भगवान्से यह बोला—"भन्ते! हम लोग

"न्यग्रोध ! तपस्वी अपने गुणोंका वर्णन आप करते कुलोंमें जाता है—'यह मेरा तप है, यह भी मेरा तप है।' ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी चुपचाप छिपाकर कुछ काम करता है। 'आपको ऐसा करना बनता है?' पूछे जानेपर जो बनता है उसे 'नहीं बनता है', और जो नहीं बनता है उसे 'बनता है' कह देता है। यह जान बूझकर झूठ बोलना होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी तथागत या तथागतके श्रावकोंके धर्मोपदेशको अनुमोदन करनेके योग्य होनेपर भी नहीं अनुमोदन करता। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी क्रोधी ० और बद्धवैरी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी कृतघ्न, डाह करनेवाला, ईर्ष्यालु, कृपण, शठ, मायावी, क्रूर, अभिमानी, दुष्ट इच्छावाला, पाप इच्छाओंके वशमें पळा, बुरी धारणाओंमें विश्वास करनेवाला, उच्छेद-दृष्टिवाला, अपने मतपर अभिमान करनेवाला अपने मतपर हठ करनेवाला, जिद्दी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—तप करना क्लेश-सहित है या क्लेशके बिना?"

'भन्ते ! तप करना क्लेश-सहित होता है, क्लेशके बिना नहीं। भन्ते ! यही कारण है कि तपस्वी इन सभी उपक्लेशोंके सहित होता है, इनमेंसे किन्हीं किन्हींकी तो बात ही क्या?"

३–शुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध ! तपस्वी तप करता है। वह उस तपसे न तो सन्तुष्ट होता है और न परिपूर्ण-सकल्प। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह उस तपसे न तो अपनेको बहुत बळा समझता है और न दूसरोंको छोटा। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह न घमण्ड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध रहता है।—० लाभ, सत्कार और प्रशंसासे न सन्तुष्ट होता और न परिपूर्ण-सकल्प। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न अपनेको बळा समझता है और न दूसरोंको छोटा। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न घमड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध ०। —० भोजनमें द्वैधीभाव नहीं लाता ० न ठूस ठूसकर खाता है। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ, सत्कार और प्रशंसाके लिये तप नहीं करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण, ब्राह्मणोंको नहीं बनाता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण या ब्राह्मणोंको गृहस्थ कुलोंमें सत्कृत ० देखकर उसके मनमें ऐसा नहीं होता ० न गृहस्थ कुलोंके प्रति ईर्ष्या और मात्सर्य उत्पन्न करता है। ० परिशुद्ध ०।—न मनुष्योंके आने जानेके स्थानपर बैठता है। ० परिशुद्ध ०।—० न अपने गुणोंका वर्णन आप करते गृहस्थ कुलोंमें जाता है ०। ० परिशुद्ध ०।—न अकेलेमें चुपचाप कोई काम करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० तथागत या तथागतके श्रावकोंके धर्मोपदेशको अनुमोदन करने योग्य होनेपर अनुमोदन करता है। ० परिशुद्ध ०। —० क्रोध और वैरसे रहित रहता है। ० परिशुद्ध ०।—० कृतघ्न नहीं होता, डाह नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, मात्सर्य नहीं करता ०। ० परिशुद्ध ०।

'न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध?"

'भन्ते ! ऐसा होनेपर तप शुद्ध होता है अशुद्ध नहीं।"

४–वास्तविक तपस्या—चार भावनायें

'न्यग्रोध ! इतनेसे ही तप प्रशंसनीय, सार्थक नहीं होता। यह तो वृक्षके ऊपरकी पपळी मात्र है।'

'भन्ते ! क्या होनेसे तप प्रशंसनीय और सार्थक होता है? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे प्रशंसनीय और सार्थक तप क्या है, उसे बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार सयमो (=चातुर्याम सवर)से सुरक्षित (सवृत) होता है। कैसे तपस्वी चार सयमोसे सुरक्षित होना है ? न्यग्रोध ! तपस्वी जीवहिंसा नहीं करता है, न करवाता है, न जीवहिंसा करवानेमें सहमत होता है। न चोरी करता है ०, न झूठ बोलता है ०, न पाँच भोगो (=काम गुणो)में प्रवृत्त होता है। न्यग्रोध ! इस प्रकार तपस्वी चार सयमोसे सुरक्षित होता है।

"न्यग्रोध ! जो कि तपस्वी चार सयमोसे सवृत होता है यही उसका तपस्वीपन है। वह प्रव्रज्याको निभाता है, ब्रह्मचर्य व्रतको नही तोळता। वह वन, वृक्षकी छाया, पर्वत-कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, खुले स्थान, या पुआलके ढेरमे एकान्तवास करता है। वह भिक्षाटनके वाद भोजन करके शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने रख आसन मारकर बैठता है। वह ससारके रागोको छोळ वीतराग चित्तसे विहार करता है, रागोसे चित्तको शुद्ध करता है। व्यापाद (-हिसाभाव)को छोळ हिसा-रहित चित्तसे विहार करता है, सभी प्राणियोके हितकी इच्छा रखनेवाला हो व्यापाद-दोषसे चित्तको शुद्ध करता है। चित्त और चैतसिक आलस्यको छोळ उससे रहित होकर विहार करता है, परिशुद्ध सज्ञासे युक्त सावधान होकर चित्त और चैतसिकके आलस्यमे अपने चित्तको शुद्ध करता है। औद्धत्य और कौकृत्य (=चिन्ता)को छोळ अनुद्धत होकर विहार करता है, आध्यात्मिक शान्ति द्वारा अपने चित्तको औद्धत्य और कौकृत्यसे शुद्ध करता है। विचिकित्सा (=सदेह)को छोळ, उससे रहित होकर विहार करता है, अच्छाइयों (=कुशल धर्मो)के प्रति नि शक हो विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है। वह इन (औद्धत्य आदि) पाँच नीवरणोको छोळ चित्तके उपक्लेशोको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिय मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान रखता है, वैसे ही दूसरी दिशा,[1] वैसे ही चौथी दिशा। ऊपर, नीचे, तिरछे, सभी तरहसे सभी ओर सारे ससारको उपेक्षा-युक्त चित्तसे विपुल, महान् और अप्रमाण (अत्यधिक) अवैर तथा अद्रोहसे भावनाकर विहार करता है।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध ?"

'भन्ते ! ऐसा होनेसे तप परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं, श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि, यह तो (वृक्षकी पपळीसे कुछ अधिक) वृक्षके छाल्हीके समान है।"

'भन्ते ! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलाव।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार सयमके सवरो (=चातुर्याम सवर)से सवृत रहता है। कैसे ० ? ० *होनेसे ०। यह उसकी तपस्यामें होता है। वह प्रव्रज्याको निभानेमें उत्साहित होता है ०।* वह एकान्तवास करता है ०। वह इन पाँच नीवरणोको छोळ चित्तके उपक्लेशोको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे०[1] ० वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्व जन्मोको स्मरण करता है, जैसे एक जन्म०[2] अनेक लाख जन्म, अनेक सवर्त-कल्प, अनेक विवर्त कल्प, अनेक सवर्त-विवर्त-कल्प—मैं वहाँ था, इस नामका ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तपश्चरण परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध ?"

"भन्ते। ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं। यही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि यह तो फल्गु (=हीर और छालके बीचवाला भाग) मात्र है।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४९१। [2] देखो पृष्ठ ३१।

"भन्ते ! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चातुर्याम संवरो से संयुक्त होता है ० उत्साहित होता है। वह एकान्त-वास करता है ० उपक्लेशोंको प्रज्ञाको दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे ० उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्वजन्मोंको स्मरण करता है, जैसे कि एक जन्म० अनेक लाख जन्म०। वह अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे प्राणियों (=सत्वों)को च्युत होते और उत्पन्न होते देखता है—नीच सत्वोंको उत्तम सत्वोंको, सुन्दर सत्वोंको, कुरूप सत्वोंको, अच्छी-गति-प्राप्त सत्वोंको, बुरी-गति-प्राप्त सत्वोंको, तथा अपने कर्मोके अनुसार ही गति-प्राप्त सत्वोंको ठीक ठीक जान लेता है।—ये सत्व कायिक दुराचारसे, वाचिक दुराचारसे, मानसिक दुराचारसे युक्त हो, आर्य धर्मके निन्दक रह बुरी धारणाओंसे निरत हो कर, बुरी धारणाके अनुसार काम करके, मरकर नरकमें उत्पन्न हो अति-दुर्गतिको प्राप्त हुए। और ये दूसरे सत्व कायिक सदाचारसे ० युक्त हो आर्य धर्मको स्वीकार कर, ० सुगतिको प्राप्त हैं।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—० परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध?"

"भन्ते ! ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं। श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतनेहीसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है। न्यग्रोध ! तुमने जो मुझसे पूछा था—'भन्ते ! भगवान्का वह कौनसा धर्म है जिससे भगवान् अपने श्रावकोंको विनीत करते हैं, और जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं ?' सो न्यग्रोध ! यही कारण है, इससे भी बढ़ चढ़कर और इससे भी प्रणीत (कारण) है जिससे मैं अपने श्रावकोंको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं।'

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक बहुत शोर करने लगे—'हाय ! गुरु-सहित हम लोग नष्ट हो गये, विनष्ट हो गये। हम लोग इससे कुछ अधिक नहीं जानते।'

५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप

जब सन्धान गृहपतिने समझा कि अब ये दूसरे मत-वाले परिव्राजक भगवान्के कहे हुएको सुनना, कान देने जानकर (उसमें) चित्त लगावेंगे, तब उसने न्यग्रोध परिव्राजकसे कहा—"भन्ते न्यग्रोध ! आपने जो मुझे कहा था—सुनो गृहपति ! जानते हो श्रमण गौतम किसके साथ सलाह करते हैं ० वे लोगोंसे मुँह चुराकर अलग ही अलग रहते हैं। ० यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवे तो ० उन्हें खाली घड़ेकी तरह जिधर चाहे हेर फेर दें।' भन्ते ! वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध यहाँ पधारे हैं, उन्हें सभामें मुँहचोर बनाइये न, कानी गायकी तरह अलग ही अलग चलनेवाला बनाइये न ? क्या नहीं एक ही प्रश्नसे उन्हें चक्करा देते, जैसे कि खाली घड़ेको हेर फेर देते हैं ?'

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजक चुप हो, गूँगा बन, कन्धा गिरा, नीचे मुँहकर, चिन्तित और उदास होकर बैठा रहा।

तब भगवान्ने न्यग्रोध परिव्राजकको चुप, गूँगा बन ० उदास होकर बैठा देख, यह कहा—"न्यग्रोध ! क्या सचमुच तुमने ऐसी बात कही ?"

"भन्ते ! सचमुच मैंने बालक मूढ़ जैसे अजान बात कही।

'न्यग्रोध ! तो तुम क्या समझते हो ? क्या तुमने वृद्ध बड़े आचार्य और प्राचार्य परिव्राजकोंको कहते सुना है कि अतीत कालमें (जो) अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं, वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध क्या तुम्हारे जैसा हल्ला मचानेवाले और अनेक प्रकारकी निरर्थक कथायें कहनेवाले थे ० ? या वे भगवान् जंगलोंमें एकान्तवास ० करनेवाले थे, जैसा कि इस समय मैं ?"

"भन्ते ! ऐसा मैंने ० आचार्य प्राचार्य परिव्राजकोंको कहते सुना है ०। वे मेरे जैसा हल्ला मचाने ० वाले नहीं थे, किन्तु जंगलोंमें एकान्तवास ० करनेवाले थे जैसा कि इस समय भगवान्।"

"न्यग्रोध ! तब क्या तुम्हारे जैसे सुविज्ञ पुरुषको यह भी समझमें नहीं आया—बुद्ध हो भगवान् बोधके लिये धर्मोपदेश करते हैं, दान्त हो भगवान् दमनके लिये धर्मोपदेश करते हैं, शान्त हो,

भगवान् शमनके लिये धर्मोपदेश करते हैं, तीर्ण (=भवसागर पार) हो, भगवान् तरणके लिये धर्मोपदेश करते हैं, परिनिवृत्त हो, भगवान् परिनिर्वाणके लिये धर्मोपदेश करते हैं।"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजकने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! बाल-मूढ अजानके जैसा मुझसे बळा भारी अपराध हो गया, कि मैंने आपके विषयमें ऐसा कह दिया। भन्ते ! भविष्यमें संयमके लिये मेरे अपराधको क्षमा करें।"

"न्यग्रोध ! सुनो, बाल ०के जैसा तुमने बळा भारी अपराध किया, जो कि तुमने मेरे विषयमें वैसा कहा, किन्तु न्यग्रोध ! जब तुम अपने अपराधको स्वयं स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करते हो, तो मैं उसे क्षमा करता हूँ। न्यग्रोध ! आर्य विनयमें यह बुद्धिमानी ही समझी जाती है, कि पुरुष भविष्यमें संयमके लिये अपने अपराधको स्वयं स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करे।

६—बुद्ध-धर्मसे लाभ इसी शरीर में

"न्यग्रोध ! मैं तो ऐसा कहता हूँ—कोई सज्जन, निश्छल, और सरल स्वभाववाला बुद्धिमान् पुरुष आवे। मैं उसे अनुशासन करता हूँ, धर्मोपदेश देता हूँ, मेरी शिक्षाके अनुसार आचरण करे, तो जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्तिम लक्ष्यको सात वर्षमें ही स्वयं जानकर साक्षात्कार कर प्राप्तकर विहरेगा। न्यग्रोध ! सात वर्ष तो जाने दो, छै वर्ष में ही, ० पाँच ० चार ० तीन ० दो ० एक वर्षमें ० एक सप्ताहमें ०।

"न्यग्रोध ! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—अपने चेलोंकी संख्या बढ़ानेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध ! ऐसा नहीं समझना चाहिए। जो तुम्हारा आचार्य है वही तुम्हारे आचार्य रहे।

"न्यग्रोध ! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हमें अपने उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध ऐसा नहीं समझना चाहिये। जो तुम्हारा अभी उद्देश है वही उद्देश्य रहे।

"न्यग्रोध ! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हम लोगोंको अपनी जीविका छुळा देनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो ०। जो तुम्हारी अभी जीविका है वही जीविका रहे।

"न्यग्रोध ! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हमारे मतवालोंकी जो बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) हैं, उनमें प्रतिष्ठित करनेकी इच्छासे श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध ! ऐसा नहीं समझना चाहिए। आचार्योंके साथ तुम्हारे वे अकुशल धर्म अकुशल ही रहे।

"न्यग्रोध ! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो— ० कुशल धर्म ०।

"न्यग्रोध ! अत, न तो मैं अपने चेलोंकी संख्या बढ़ानेके लिये, न उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये ० ऐसा कहता हूँ।

"न्यग्रोध ! जो अनष्ट (=अप्रहीण) बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) क्लेशोंको उत्पन्न करनेवाली, आवागमनके कारणभूत, सभी प्रकारकी पीडाओंको देनेवाली, दुःख-परिणामवाली, जाति, जरा, और मरणके कारण हैं, उन्हींके प्रहाण (नाश)के लिये मैं धर्मोपदेश करता हूँ जिसमें कि तुम्हारे क्लेश देनेवाले धर्म नष्ट हो जावें और शुद्ध धर्म बढ़ें, और तुम प्रज्ञाकी पूर्णता और विपुलताको प्राप्त होकर, इसी संसारमें जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहार करो।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो, मूँगे बन, ० बैठे रहे, जैसे कि उनके चित्तको मारने जकड़ लिया हो।

तब भगवान्‌के मनमें यह हुआ—'ये सभी मूर्ख पुरुष मारके बन्धनमें बँधे हैं, जिससे इनमें एकके मनमें भी यह नहीं होता, कि 'मैं ज्ञान प्राप्तिके लिये भगवान्‌के शासनमें रहकर ब्रह्मचर्य-पालन करूँ'। सप्ताह क्या करेगा ?'

तब भगवान् उदुम्बरिका परिव्राजकाराममें सिंहनाद कर, आकाशमें उठ, गृध्रकूट पर्वतपर जा ठहरे।

सन्धान गृहपति भी राजगृह चला गया।

२६—चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (३।३)

१—स्वावलम्बी बनो। २—मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर (दृढनेमि जातक)—(१) चक्रवर्ति व्रत। (२) व्रत त्यागसे लोगोंमें असन्तोष और निर्धनता। (३) निर्धनता सभी पापोंकी जननी। (४) पापोंसे आयु और वर्णका ह्रास। (५) पशुवत् व्यवहार और नरसंहार। ३—मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर—(१) पुण्यसे आयु और वर्णकी वृद्धि। (२) मैत्रेय बुद्धका जन्म। ४—भिक्षुओंके कर्तव्य।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मगधके मतुला (स्थान)में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!"—कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१—स्वावलम्बी बनो

भगवान् बोले—"भिक्षुओ! आत्मद्वीप—आत्मशरण (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, किसी दूसरेके भरोसे मत रहो, धर्मद्वीप और धर्मशरण होकर विहार करो, किसी दूसरे०।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु ०आत्मशरण, ०धर्मशरण होकर विहार करता है, किसी दूसरेके भरोसेपर नहीं रहता? भिक्षुओ! भिक्षु कायामें कायानुपश्यी[1] हो, संयमी, सावधान, स्मृतिमान्, और संसारके अनुचित लोभ और दौर्मनस्यको जीतकर विहार करता है—वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है, चित्तमें चित्तानुपश्यी होकर, धर्मोंमें धर्मानुपश्यी होकर ०।

"भिक्षुओ! भिक्षु इस तरह ० आत्मशरण ० धर्मशरण ०। भिक्षुओ! अपने पैतृक विषयोंकमें विचरण करो। ० गोचरमें विचरण करनेसे मार कोई छिद्र नहीं पा सकेगा मार कोई अवलम्ब नहीं पा सकेगा। भिक्षुओ! उत्तम धर्मोंके ग्रहण करनेके कारण इस प्रकार पुण्य बढ़ता है।

२—मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर

दृढनेमि जातक[2]—"भिक्षुओ! पुराने समयमें चारों दिशाओंपर विजय पानेवाला, जनपदोंमें स्थिरता और शान्ति रखनेवाला, सात रत्नोंसे युक्त दृढनेमि नामक एक चक्रवर्ती धार्मिक, धर्म-राजा था। उसके ये सात रत्न थे, जैसे कि—(१) चक्र-रत्न, (२) हस्ति-रत्न, (३) अश्व-रत्न, (४) मणि-रत्न, (५) स्त्री-रत्न, (६) गृहपति-रत्न, और (७) सातवाँ पुत्र-रत्न। एक सहस्रसे भी अधिक उसके शूर० पुत्र थे। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्म और शान्तिसे जीतकर राज्य करता था।

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

[2] मिलाओ महासुदस्सनसुत्त पृष्ठ १५२।

"भिक्षुओ ! तब राजा दृढ-नेमि बहुत वर्षो, कई सौ वर्षों, कई सहस्र वर्षोके बीतनेपर एक पुरुषसे बोला—'हे पुरुष ! जब तुम दिव्य चक्र-रत्नको अपने स्थानसे खिसके और गिरे देखना तो मुझे सूचना देना।' 'देव ! बहुत अच्छा' कह उस पुरुषने राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षो०के बीतनेपर उस पुरुषने दिव्य चक्र रत्नको अपने स्थानसे खिसककर गिरा देखा। देखकर वह पुरुष जहाँ राजा दृढ-नेमि था वहाँ गया, ० बोला—'सुनिये देव ! जानते हैं आपका दिव्य चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसककर गिर गया है।'

'भिक्षुओ ! तब राजा दृढ-नेमि अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको बुलाकर यह बोला—तात कुमार ! मेरा दिव्य चक्र-रत्न ० गिर गया है। मैंने ऐसा सुना है—'जिस चक्रवर्ती राजाका चक्र रत्न० गिर जाता है, वह राजा बहुत दिन नही जीता। मनुष्यके सभी भोगोको मैंने भोग लिया, अब दिव्य भोगोके सग्रहका समय आया है। तात कुमार ! सुनो, समुद्र पर्यन्त इस पृथ्वीको ग्रहण करो। मै शिर और दाढी मुँळवा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।'

'भिक्षुओ ! तब राजा ० अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको राज्यका भार दे ० प्रव्रजित हो गया। भिक्षुओ ! उस राजर्षिके प्रव्रजित होनेरे एक सप्ताह बाद ही दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तब एक पुरुष जहाँ मूर्धाभिषिक्त (=Sovereign) क्षत्रिय राजा था, वहाँ गया, ० और बोला—'देव ! जानते है, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।'

'भिक्षुओ ! तब वह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान होनेपर बळा खेद और असतोष प्रगट करने लगा। वह जहाँ राजर्षि था वहाँ गया, जाकर राजर्षिसे बोला—देव ! जानते हैं, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

(१) चक्रवर्ति-व्रत

"भिक्षुओ ! ऐसा कहनेपर राजर्षिने ० राजासे कहा—'तात ! दिव्य चक्र रत्नके अन्तर्धान हो जानेसे तुम खेद और असतोष मत प्रकट करो। तात ! दिव्य चक्र-रत्न तुम्हारा पैतृक दायाद नही है। तात ! सुनो, तुम चक्रवर्ति-व्रतका पालन करो। ऐसी बात है, कि जब तुम आर्य चक्रवर्ति-व्रतका पालन करोगे, तो उपोसथकी पूर्णिमाके दिन शिरसे स्नानकर, उपोसथ व्रतकर जब तुम प्रासादके सबसे ऊपरवाले तल्लेपर जाओगे, तो तुम्हारे सामने सहस्र अरोंसे युक्त, नेमि-नाभिके साथ, और सभी प्रकारसे परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होगा।'

'देव ! वह आर्य चक्रवर्ति-व्रत क्या है?'

'तात ! तो तुम अपने आश्रितोमे, सेनामे, क्षत्रियोमे, अनुगामियोमें, ब्राह्मणोमे, गृहपतियोमें, नैगमो और जानपदोमे, श्रमण और ब्राह्मणोमें, मृग और पक्षियोमें धर्महीके लिये, धर्मका सत्कार करते ० गुरुकार करते ० सम्मान करते, ० पूजन करते, श्रद्धाभाव रखते, धर्मध्वज हो, धर्मकेतु हो, धर्माधिपति हो, सभी धार्मिक बातोकी रक्षाके लिये विधान करो। तात ! तुम्हारे राज्यमे कही भी अधर्म न होने पावे। तात ! जो तुम्हारे राज्यमें निर्धन है, उन्हे धन दो। ० जो तुम्हारे राज्यमें श्रमण और ब्राह्मण मद-प्रमादसे विरत हो क्षान्तिके अभ्यासमें लगे है, केवल आत्म-दमन, केवल आत्म-शमन, केवल आत्म-निर्वापन करते है, उनके पास समय समयपर जाकर पूछना चाहिये—भन्ते ! क्या भलाई है, क्या बुराई क्या सदोष (=सावद्य) है, क्या निर्दोष (=अनवद्य), क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय क्या करनेमे मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये होगा, क्या करनेमे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये होगा? उनके कहे हुएको सुन, जो बुराई है उसका त्याग करो और जो भलाई है उसका ग्रहण करके पालन करो।—तात ! यही चक्रवर्ति-व्रत है।'

"भिक्षुओ! 'बहुत अच्छा' कहकर ० राजर्षिको उत्तर दे राजा आर्य-चक्रवर्ति-व्रतका पालन करने लगा। उस आर्य चक्रवर्ति-व्रतके पालन करते हुए उपोसथकी पूर्णिमाके दिन ० उसके सामने सहस्र अरोंवाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट हुआ। देखकर ० राजाके मनमें यह आया—मैंने ऐसा सुना है—जिस ० प्रासादके ऊपरके तल्लेपर स्थित राजाके सामने ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। मैं चक्रवर्ती राजा होऊँगा। भिक्षुओ! तब ० राजाने आसनसे उठ, चादरको एक कन्धेपर कर बाये हाथसे झारीको ले, दाहिने हाथसे चक्र-रत्नका अभिषेक किया ०—'आप चक्र-रत्न प्रवृत्त हों, (=आप चक्ररत्न विजय करें)।' भिक्षुओ! तब चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत ०[1] अन्तःपुर न्याय-प्राङ्गणके द्वारपर आ अक्षाहत (=दृढ़) हो गया ०।

(२) व्रतके त्यागसे लोगोंमें असन्तोष और निर्धनता

"भिक्षुओ! दूसरा भी राजा चक्रवर्ती ० तीसरा ० चौथा ० पाँचवाँ ० छठाँ ० सातवाँ भी राजा चक्रवर्ती बहुत वर्षों ० के बीतनेपर एक पुरुषको बुलाकर बोला—० जब चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसक ०। भिक्षुओ! तब ० राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान हो जानेके बाद, असन्तोष प्रकट करने लगा। उसने राजर्षिके पास जाकर आर्य चक्रवर्ति-व्रत नहीं पूछा। वह अपनी ही बुद्धिसे राज करने लगा। उसके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेपर उसका राज्य वैसा ही उन्नतिको प्राप्त नहीं हुआ, जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओंका राज्य।

"भिक्षुओ! तब, अमात्य (=मन्त्री), सभासद् कोषाध्यक्ष महामन्त्री, अनीकस्थ (=सेनापति) द्वार-पाल, और वे जो अपनी विद्याके बलसे जीविका चलाते थे, सभी आकर ० राजासे बोले—'देव! आपके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेके कारण आपका राज्य वैसा उन्नति नहीं कर रहा है जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओंका। देव! आपके राज्यमें अमात्य, सभासद् ०, हम लोग, और जो दूसरे लोग हैं सभी चक्रवर्ति-व्रत धारण करें। देव! आप हम लोगोंसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछें। आपके आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछनेपर हम लोग बतलायेंगे।'

(३) निर्धनता सभी पापोंकी जननी

"भिक्षुओ! तब ० राजाने अमात्या० को बुलाकर (इकट्ठाकर) उनसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछा ० उन लोगोंने उसे सब कुछ बतलाया। उसे सुनकर उसने धार्मिक बातोंकी रक्षाका प्रबन्ध तो कर दिया, किन्तु निर्धनोंको धन नहीं दिया, ० उससे दरिद्रता बहुत बढ़ गई, ० उससे एक मनुष्य दूसरेकी चीज चुराने लगा। उस (चोर)को पकड़कर लोग राजाके पास ले गये—'देव! इस पुरुषने दूसरोंकी चीज चोरी की है।'

"भिक्षुओ! ऐसा कहनेपर ० राजा उस पुरुषसे बोला—'क्या सचमुच तुमने दूसरोंकी चीज चुराई है?' 'हाँ देव! सचमुच।'

'किस कारणसे?' 'देव! रोजी नहीं चलती थी।'

'भिक्षुओ! तब राजाने उस पुरुषको धन दिलवाया—हे पुरुष! इस धनसे तुम अपनी रोजी चलाओ, माता पिताको पालो, पुत्र और दाराको पोसो, अपने कारबारको चलाओ, ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्तिके लिये श्रमण तथा ब्राह्मणोंको दान दो।'

"भिक्षुओ! 'देव! बहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुषने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ! एक दूसरे पुरुषने भी चोरी की। उसे ० राजाके पास ले गये ०।'

---

[1] देखो पृष्ठ १५३-४ (महासुदस्सन सुत्त १७)।

'० राजा ०—क्या सचमुच ० ?'

'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोजी नहीं चलती थी।'

"भिक्षुओ ! ० राजाने उस पुरुषको धन दिलवाया—'हे पुरुष ! इस धनसे ० दान दो।'

"भिक्षुओ ! 'देव ! बहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुषने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! मनुष्योंने सुना—जो दूसरेकी चीजको चुराता है, उसे राजा धन दिलवाता है। सुनकर उन लोगोंके मनमें यह आया—'हम लोग भी दूसरेकी चीजको चुरावें।'

"भिक्षुओ ! तब किसी पुरुषने चोरी की। उसे लोग पकळकर ० राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—क्या सचमुच ० ?' 'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोजी नहीं चलती थी।'

"भिक्षुओ ! तब राजाके मनमें यह आया—यदि जो जो चोरी करता जावे उसे उसे मैं धन दिलवाता रहूँ, तो इस प्रकार चोरी बहुत बढ जायगी। अतः मैं इसे कळी चेतावनी दूँ, जळहीको काट दूँ, इसका शिर कटवा दूँ। भिक्षुओ ! तब राजाने पुरुषोंको आज्ञा दी—इस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे ० बाँधकर ० इसका शिर काट दो।'

'देव ! बहुत अच्छा' कह ० उसका शिर काट दिया।

"भिक्षुओ ! तब मनुष्योंने सुना—जो चोरी करते है राजा ० उनका शिर कटवा देता है। सुनकर उनके मनमें यह हुआ—हम लोग भी तेज तेज हथियार बनवावें, ० बनवाकर जिनकी चोरी करेंगे उनका ० शिर काट लेंगे। उन लोगोंने तेज तेज हथियार बनवाये, ० बनवाकर उन्होंने ग्राम-घात भी करना आरम्भ कर दिया, निगम घात भी ०, नगर-घात भी ०, मार्गमें यात्रियोंको लूट लेना भी ०। वे जिसकी चोरी करते थे, उसका ० शिर काट लेते थे।

(४) पापोंसे आयु और वर्णका ह्रास

'भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे दरिद्रता बहुत बढ गई, (उससे) ० चोरी बहुत बढ गई, ० (उससे) हथियार बहुत बढ गये, ० (उससे) खून खराबी बहुत बढ गई, ० (उससे) उनकी आयु घटने लगी, वर्ण (=रूप) भी घटने लगा। आयु और वर्णके घटनेपर अस्सी हजार वर्षकी आयुवाले पुरुषोंके पुत्र चालीस सहस्र वर्षकी आयुवाले हो गये।

'भिक्षुओ ! चालीस सहस्र वर्षोंकी आयुवाले पुरुषोंमें भी कोई चोरी करने लगा। उसे लोग ० राजाके पास ले गये—देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—सचमुच ० ?'

'नहीं, देव।'

यह जानबूझकर झूठ बोलना हुआ।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे ० झूठ बोलना बढा, ० उन सत्वोंकी आयु और उनका वर्ण भी घटने लगा। ० उनके पुत्र बीस सहस्र वर्षोंहीकी आयुवाले हो गये।

"० उनमेंसे भी किसीने चोरी की। तब, किसी पुरुषने ० राजाको इसकी सूचना दी—देव ! अमुक पुरुषने ० चोरी की है। ऐसी चुगली हुई।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको, धन न दिये जानेसे ० चुगली उत्पन्न हुई। चुगली खाना बढ़नेसे उन सत्वोंकी आयु घट गई, वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र दस सहस्र वर्षोंकी ही आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! दस सहस्र वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें कोई तो सुन्दर, और कोई कुरूप हुए। तब जो प्राणी (=सत्व) कुरूप थे वे सुन्दर प्राणियोंके प्रेममें पड़ दूसरोंकी स्त्रियोंसे दुराचार करने लगे।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे ० दुराचार बढ़ा।

"० उनके पुत्र पाँच सहस्र वर्षोंकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोंमें दो बातें बहुत बढ़ीं—कठोर वचन, और निरर्थक प्रलाप करना। ० (उससे) उन प्राणियोंकी आयु घट गई, और वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र कितने ढाई सहस्र वर्षोंकी आयुवाले, और कितने दो सहस्र वर्षोंकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ढाई सहस्र वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें अनुचित लोभ और बहुत हिंसाभाव बढ़ा। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र एक सहस्र वर्षोंकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ० उनमें मिथ्या-दृष्टि (बुरे सिद्धान्तोंमें विश्वास करना) बहुत बढ़ गई। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र पाँच सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोंमें तीन बातें बहुत बढ़ीं—अधर्ममें राग, अनुचित लोभ और मिथ्या-धर्म। इन तीन बातों (=धर्मों)के बहुत बढ़नेसे उन सत्वोंकी आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र कोई ढाई सौ वर्षोंकी आयुवाले, और कोई दो सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! ढाई सौ वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें ये बातें बढ़ीं, माता पिताके प्रति गौरव का अभाव श्रमणोंके प्रति, ब्राह्मणोंके प्रति, और परिवारके ज्येष्ठ पुरुषके प्रति श्रद्धाका अभाव।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न देनेके कारण ० श्रद्धाका अभाव। इन बातोंके बढ़नेसे उन प्राणियोंकी आयु ० वर्ण ०। ० उनके पुत्र सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! एक समय आयेगा जब इन मनुष्योंके पुत्र दस वर्षोंकी आयुवाले होंगे। भिक्षुओ ! ० उनमें पाँच वर्षोंकी कुमारी ही ब्याहे जाने योग्य हो जायगी। भिक्षुओ ! दस वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें ये रस लुप्त (=अन्तर्धान) हो जायेंगे, जैसे कि, घी, मक्खन, तेल, मधु, गुड़ और नमक। ० उस समय मनुष्योंका कोदो (=कुद्रूस) ही श्रेष्ठ (=अग्र) भोजन होगा, जैसा कि इस समय शालिमांसोदन (=पोलाव) प्रधान भोजन है। भिक्षुओ ! दस वर्षोंकी आयु वाले मनुष्योंमें दस सदाचार (=कुशल कर्म-पथ) बिल्कुल लुप्त हो जायेंगे, दस अ-सदाचार (=अकुशल कर्म-पथ) अत्यन्त बढ़ जायेंगे। ० कुछ कुशल नहीं रह जायगा, फिर कुशलका करनेवाला कहाँ ?

(४) पशुवत् व्यवहार और नरसंहार

भिक्षुओ ! ० उनमेंसे जो माता पिता का गौरव नहीं करनेवाले ० होंगे वे ही अच्छे प्रशंसनीय समझे जायेंगे, जैसे कि इस समय माता पिता का गौरव करनेवाले ० प्रशंसनीय समझे जाते हैं।

"० उन लोगोंमें भेड़-बकरे, कुक्कुट-सूअर, श्वान-शृगालकी भाँति माँका या मौसीका, या मामीका, या गुरुपत्नीका, या बड़े लोगोंकी स्त्रियोंका कुछ विचार न रहेगा। बिल्कुल अनर्थ हो जायगा।

"० उन लोगोंमें एक दूसरेके प्रति बड़ा तीव्र कोप, तीव्र व्यापाद (=प्रतिहिंसा), तीव्र दुर्भावना, तीव्र वधकचित्त उत्पन्न होंगे। माताको पुत्रके प्रति, पुत्रको माताके प्रति भाईको भाईके प्रति, भाईको बहनके प्रति, बहनको भाईके प्रति तीव्र कोप ०। भिक्षुओ ! जैसे व्याधाको मृग देखकर तीव्र कोप ० होता है, उसी तरह ० उन सत्वोंमें परस्पर तीव्र कोप ० माताको पुत्रके प्रति ०।

"भिक्षुओ ! ० उनमें एक सप्ताह शस्त्रान्तरकल्प होगा—वे एक दूसरेको मृग समझने लग जायेंगे। उनके हाथोंमें तीक्ष्ण शस्त्र प्रकट होंगे। वे तीक्ष्ण शस्त्रोंसे—यह मृग है, यह मृग है—करके एक दूसरेको जानसे मार डालेंगे।

३–मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंमें कुछके मनमें ऐसा होगा—'न मुझे दूसरोंसे काम और न दूसरोंको मुझसे काम ! अतः चलो हम लोग घने तृणोंमे, या घने जंगलोंमें, या घने वृक्षोंमें, या नदीके किसी दुर्गम स्थानमें, या कठिन पर्वतोंपर, जाकर वन्य (जंगली) मूल और फल खाकर रहे।' फिर वे घने तृणोंमें ० जाकर एक सप्ताह वन्य फल मूल खाकर रहेंगे। एक सप्ताह वहाँ रहनेके बाद घने तृणोंसे ० निकलकर वे एक दूसरेको आलिङ्गनकर एक दूसरेके प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट करेंगे।

(१) पुण्यकर्मसे आयु और वर्णकी वृद्धि

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंके मनमें यह होगा—हम लोग पापों (=अकुशल धर्मों)के करनेके कारण इस प्रकारके घोर जाति-विनाशको प्राप्त हुए हैं, अतः पुण्य का आचरण करना चाहिये। किन पुण्यों (=कुशल धर्मों)का आचरण करना चाहिये ? हम लोग जीवहिंसासे विरत रहे, इस कुशल धर्मको ग्रहण करें (इसीके अनुकूल) आचरण करें।' तब वे जीवहिंसासे विरत रह, ० आचरण करने लगेंगे। उस कुशल धर्मको ग्रहण करनेके कारण वे आयुमे भी और वर्णसे भी बढ़ेंगे। आयुमे भी, वर्णमे भी बढ़ते हुए उन दस वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंके पुत्र बीस वर्षकी आयुवाले होंगे।

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंके मनमें यह होगा—'हम लोग कुशल धर्म ग्रहण करनेके कारण आयुसे भी और वर्णसे भी बढ़ रहे हैं। अतः, हम लोग और भी अधिक सुकर्म (=कुशल धर्म) करें। क्या कुशल करें ? हम लोग चोरी करनेसे विरत रहें, मिथ्याचारसे विरत रहें, मिथ्याभाषणसे विरत रहें, चुगली खानेसे विरत रहें, कठोर बोलनेसे विरत रहें, व्यर्थके बकवादसे विरत रहें, अनुचित लोभको छोड़ दें, हिंसाभावको छोड़ दें, मिथ्यादृष्टिको छोड़ दें। अधर्ममें राग, दुष्ट लोभ, मिथ्याधर्म इन तीन बातो को छोड़ दें, माता पिताके प्रति गौरव करें ०। इन कुशल धर्मोंको धारणकर आचरण करें।'

"वे माता पिताके प्रति गौरव करेंगे ० इन कुशल धर्मोंको धारणकर आचरण करेंगे। आचरण करनेके कारण वे आयुसे भी वर्णसे भी बढ़ेंगे। ० उनके पुत्र चालीस वर्ष ०। ० उनके पुत्र अस्सी वर्ष ०। ० उनके पुत्र सौ वर्ष ०। ० उनके पुत्र बीस सौ वर्ष ०। ० चालीस सौ वर्ष ०। ० दो सहस्र ०। ० चार ०। ० आठ ०। ० बीस ०। ० चालीस ०। ० अस्सी सहस्र वर्ष ०।

(२) मैत्रेय बुद्धका जन्म

"भिक्षुओ ! अस्सी सहस्र वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें पाँच सौ वर्षोंकी आयुवाली कुमारी, पतिके गृह जानेके योग्य होगी। ० उनके तीन ही रोग रहेंगे—इच्छा, उपवास और जरा। ० (उस समय) जम्बुद्वीप समृद्ध और सम्पन्न होगा—ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी कुक्कुट-सम्पातिक (=मुर्गीकुदान घरोंवाली) रहेंगे। ० नरकट या सरकंडेके वनकी तरह जम्बुद्वीप मानो नरक तक मनुष्योंकी आबादीसे भर जायेगा। ० (उस समय) यह वाराणसी समृद्ध, सुन्दर, सम्पन्न और सुभिक्ष केतुमती नामकी राजधानी होगी। ० जम्बूद्वीपमें केतुमती राजधानी आदि चौरासी हजार नगर होंगे। ० केतुमती राजधानीमें शंख नामक चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्म-राजा ० उत्पन्न होगा। वह सागर-पर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीतकर राज्य करेगा। ० उस समय मैत्रेय नामक भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, संसारमें उत्पन्न होंगे। ० जैसे कि इस समय मैं ०। वे देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित, देव-मनुष्य-युक्त इस लोकको, स्वयं (परम ज्ञानको) जान और साक्षात् कर उपदेश देंगे, जैसे कि इस समय मैं ० उपदेश देता हूँ। वे आदि कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण धर्मका उपदेश करेंगे। सार्थक, स्पष्ट, विशुद्ध पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको बतलायेंगे। जैसे कि

-इस समय में ०। वे कई लाख भिक्षुओंके संघके साथ रहेंगे, जैसे कि अभी मैं कई सौ भिक्षुओंके साथ ०।

"भिक्षुओ ! तब शंख राजा उस प्रासादको, जिसे कि इन्द्र (विश्वकर्मासे) बनवायेगा, तैयार करा उसमें रहकर, उसे दानकर देगा। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, राही, साधु और याचकोंको दान देकर मैत्रेय भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके पास ० प्रव्रजित हो जायेगा। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, अकेला रह, वीतराग हो, अप्रमत्त हो, संयमी और आत्मनिग्रही हो विहार करते शीघ्र ही ० उस अनुपम ब्रह्मचर्यके फलको इसी जन्ममें स्वयं जान और साक्षात् कर विहार करेगा।

४--भिक्षुओंके कर्तव्य

"भिक्षुओ ! आत्म-शरण होकर विहार करो, आत्मद्वीप (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, दूसरेके भरोसेपर मत रहो, धर्म-शरण, धर्मद्वीप ०। भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है ?

"भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें कायानुपश्यी होकर विहार करता है ०[1]।

"भिक्षुओ ! इस प्रकार भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है ०।

"भिक्षुओ ! ० (ऐसा करनेसे) आयुसे भी बढ़ोगे और वर्णसे भी। सुखसे भी बढ़ोगे, भोगसे भी बढ़ोगे, बलसे भी बढ़ोगे।

'भिक्षुओ ! भिक्षुकी आयु क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द समाधि प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करता है। वीर्य समाधि ० चित्त समाधि ० वीमांसा-समाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। वह इन चार ऋद्धिपादोंकी भावना करनेसे, बार बार अभ्यास करनेसे, इच्छा रहनेपर अपनी आयु (अभी १०० वर्ष) कल्प भरकी उससे कुछ अधिक तक रख सकता है। यही भिक्षुकी आयु है ?

'भिक्षुओ ! भिक्षुका वर्ण क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु शीलवान् होता है प्रातिमोक्ष संवरसे संयत होकर विहार करता है, आचार विचारसे युक्त होता है, थोड़े भी बुरे कर्मसे भय खाता है, नियमों (=शिक्षा-पदों)के अनुसार आचरण करता है। भिक्षुओ ! भिक्षुका यही वर्ण है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका सुख क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु भोग (=काम) और पापों (=अकुशल धर्मों)से अलग रह सवितर्क, सविचार विवेक-ज प्रीतिसुखवाले प्रथम ध्यान[2]को प्राप्त होकर विहार करता है। द्वितीय, ० तृतीय ० चतुर्थ ध्यान ०। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका सुख है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका भोग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशा ०[3]। करुणा ०। मुदिता ०। उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका भोग है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका क्या बल है ? भिक्षुओ ! भिक्षु आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षय हो जानेसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें जानकर, साक्षात् कर विहार करता है। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका बल है।

'भिक्षुओ ! मैं दूसरा एक भी बल नहीं देखता, जो ऐसे मार-बलको जीत सके। भिक्षुओ ! अच्छे (=कुशल) धर्मोंके करनेके कारण इस प्रकार पुण्य बढ़ता है।"

भगवान्ने यह कहा। सन्तुष्ट हो भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो महासतिपट्ठानसुत्त २२ पृष्ठ १९०।

[2] देखो पृष्ठ २९-३२।

[3] देखो पृष्ठ ९१।

२७—अग्गञ्ञ-सुत्त (३।४)

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन। २—मनुष्य जातिकी प्रगति। (१) प्रलयके बाद सृष्टि (२) सत्वोका आरम्भिक आहार। (३) स्त्री-पुरुषका भेद। (४) वैयक्तिक सम्पत्तिका आरम्भ। ३—चारो वर्णोका निर्माण। (१) राजा (क्षत्रिय) की उत्पत्ति। (२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति। (३) वैश्यकी उत्पत्ति। (४) शूद्रकी उत्पत्ति। (५) श्रमण (=सन्यासी)की उत्पत्ति। ४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमे मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

उस समय वाशिष्ट और भारद्वाज प्रव्रज्या लेनेकी इच्छासे भिक्षुओके साथ परिवास कर रहे थे।

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन

तब भगवान् सायकाल समाधिसे उठ प्रासादसे उतर प्रासादके पीछे छायामें, खुले स्थानमे टहल रहे थे। ० वाशिष्टने भगवान्को ० टहलते देखा। देखकर भारद्वाजको सबोधित किया—

"आवुस भारद्वाज! भगवान् ० टहल रहे है। आओ, आवुस भारद्वाज! जहाँ भगवान् है, वहाँ चले। भगवान्के पास धर्मोपदेश सुननेको मिलेगा।"

"हाँ आवुस!" कह भारद्वाजने वाशिष्टको उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर भगवान्के पीछे पीछे चलने लगे।

तब भगवान्ने वाशिष्टको सबोधित किया—'वाशिष्ठ! तुम तो ब्राह्मण जाति और ब्राह्मण-कुलके हो। ब्राह्मण कुलसे घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहते हो। वाशिष्ट! क्या तुम्हे ब्राह्मण लोग नही निंदते है? क्या तुम्हारी हँसी नही उळाते है?"

"हाँ, भन्ते! ब्राह्मण लोग अपने अनुरूप पूरे परिहाससे हमे निन्दते, हँसते है।'

"वाशिष्ट! किस प्रकार ० ब्राह्मण लोग निंदते हँसी उळाते है?"

"भन्ते! ब्राह्मण लोग कहते है—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन है, ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण है, ब्राह्मण ही शुद्ध होते है, अब्राह्मण नही, ब्राह्मण ही ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुये पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित, और ब्रह्मदायाद है। सो तुम लोग श्रेष्ठ वर्णसे गिरकर नीच हो गये। ये मुण्डी, श्रमण, नीच (=इब्भ), कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्माके पैरसे उत्पन्न है। यह आप लोगोको नही चाहिये, यह आप लोगोके अनुरूप नही है, कि आप लोग श्रेष्ठ वर्णको छोळ नीच वर्णके हो जायें, जो ०। भन्ते! ब्राह्मण लोग इसी तरह ० निंदते और हँसी उळाते है।"

"वाशिष्ट! वे ब्राह्मण पुरानी बातोको भूल जानेके कारण ही ऐसा कहते है—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ०। वाशिष्ट! ब्राह्मणोकी ब्राह्मणियाँ ऋतुनी होती देखी जाती है, गर्भिणी होती, ० प्रसव

होनेपर अनेक सत्व आभास्वर लोकसे च्युत हो यहाँ आते हैं। वे यहाँ मनोमय०। उस समय सभी जगह पानी ही पानी होता है। बहुत अन्धकार फैला रहता है। न चाँद और न सूरज दिखाई देते हैं। न नक्षत्र और न तारे दिखाई देते हैं। न रात और न दिन मालूम पळते हैं। न मास और न पक्ष मालूम पळते हैं। न ऋतु और न वर्ष०। न स्त्री और न पुरुष०। सत्त्व हैं, सत्त्व हैं—बस यही उनकी सज्ञा होती है।

(२) सत्वों (मनुष्यों)का आरम्भिक आहार

"तब वाशिष्ट! बहुत दिनोके बीतनेके बाद उन सत्वोंके लिये जलपर, गरम दूधके ठडा होनेपर ऊपर मलाईके जमनेकी भाँति रसा पृथिवी फैली। वह वर्ण सम्पन्न, गन्धसम्पन्न, रससम्पन्न थी, जैसे कि मक्खन घीसे सम्पन्न रहता है, इसी तरहसे०। जैसे कि मधु-मक्खियोका निर्दोष मधु होता है वैसा उसका स्वाद था।

"वाशिष्ट! तब कोई सत्व लालची था। 'अरे, यह क्या है', (सोच, वह) रसा पृथिवीको अँगुलीसे चाटने लगा। ०चाटनेसे उसे तृष्णा उत्पन्न हुई। दूसरे भी सत्व उस सत्वकी देखा देखी रसा पृथ्वीके रसको पाकर अँगुलीसे चाटने लगे। ० उन्हे भी तृष्णा उत्पन्न हुई।

"वाशिष्ट! तब वे सत्व हाथोंसे रसा पृथ्वीको ग्रास-ग्रास करके खाने लगे। ० खानेसे उन सत्वोकी स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। ०अन्तर्धान होनेसे चाँद और सूरज प्रकट हुये। चाँद और सूरजके प्रकट होनेपर नक्षत्र और तारे प्रकट हुये। रात और दिनके मालूम होनेसे मास और पक्ष मालूम पळने लगे। मास और पक्षके मालूम ० ऋतु और वर्ष मालूम पळने लगे। वाशिष्ट! इस तरहसे फिर भी लोकका विवर्त (=सृष्टि, उदघाटन) होता है।

"तब, वे सत्व रसा पृथ्वीको (जैसे जैसे) बहुत दिनो तक खाते रहे। ० वैसे वैसे उनका शरीर कर्कश होने लगा, उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा। कोई सत्व सुन्दर थे तो कोई कुरूप। जो सत्व सुन्दर थे, सो अपनेको कुरूप सत्वोसे ऊँचा समझते थे—हम लोग इन लोगोसे सुन्दर (वर्णवान्) हैं, हम लोगोसे ये लोग दुर्वर्ण (=कुरूप) हैं। उनके अपने वर्णके अभिमानसे रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। रसा पृथ्वीके अन्तर्धान हो जानेपर वे सत्व इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—'अहो रस, अहो रस!' उसी से आज भी जब मनुष्य कुछ सुरस (चीज) पाते हैं तो कहने लगते हैं—'अहो रस! अहो रस!' यह उसी अग्र(=प्रथम) पुराने अक्षर (=बात)को स्मरण करते हैं, किंतु उसके अर्थको नही जानते।

"तब वाशिष्ट! उन प्राणियोके (लिये) रसा पृथ्वीके अन्तर्हित हो जानेपर अहिच्छत्रक (=नागफनी) सी भूमिकी पपळी प्रकट हुई। वह वर्णसम्पन्न, गन्धसम्पन्न और रससम्पन्न थी, जैसे कि मक्खन घीसे सम्पन्न०। जैसे० मधु०। वाशिष्ट! तब वे सत्व भूमिकी पपळीको खाने लगे। वे उसीको बहुत दिनो तक खाते रहे।० उन सत्वोंके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे, उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा।०। उनके वर्णके अभिमानसे भूमिकी पपळी अन्तर्धान हो गई।

"तब वाशिष्ट! ० उसके अन्तर्धान होनेपर भद्रलता (=एक स्वादिष्ट लता) प्रकट हुई। जैसे कि कलम्बुक (=धरकण्डा) प्रकट होता है। वह वर्ण-सम्पन्न (थी) ० मधु०।

"वाशिष्ट! तब वे सत्व भद्रलताको खाने लगे। ० उसे बहुत दिनो तक खाते रहे। ० उनके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा।०। उनके वर्णके अभिमानसे उनकी वह भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर वे इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—"हाय रे हमें! हाय हमारी कैसी अच्छी भद्रलता थी।' उसीसे आज भी मनुष्य लोग कुछ दुःखमें पळनेपर ऐसा कहा करते हैं—'हाय रे हम! हाय हमारी भद्रलता थी!!' आज भी दुःख पळनेपर मनुष्य उसी पुरानी बातको स्मरण करते हैं, किन्तु उसके अर्थको नही जानते।

(३) स्त्री-पुरुषका भेद

"वाशिष्ट ! तब उनकी भद्रलताके अन्तर्धान हो जानेपर, अकृष्ट-पच्य (=बिना बोया जोता) धान प्रादुर्भूत हुआ, वह चावल कण और तुषसे बिना (तथा) सुगन्धित था। जिसे वह शामको भोजनके लिये शामको लाते थे। फिर वह प्रात बढ़कर पककर तैयार हो जाता था। जिसे वह प्रात प्रातराशके लिये लाते थे, वह शामको बढ़कर पक जाता था। काटा मालूम नहीं होता था। तब० उस अकृष्ट-पच्य शालीको वह बहुत दिनों तक खाते रहे। ० उन सत्वोंके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमें विकार मालूम पड़ने लगा। स्त्रियोंको स्त्री-लिंग, पुरुषोंको पुरुष-लिंग उत्पन्न हो गये। स्त्री, पुरुषको बार बार आँख लगाकर देखने लगी, पुरुष स्त्रीको०। परस्पर आँख लगाकर देखनेसे, राग उत्पन्न हो गया, शरीरमें (प्रेमकी) दाह लगने लगी। दाहके कारण उन्होंने मैथुन कर्म किया। वाशिष्ट ! उस समय लोग जिन्हें मैथुन करते देखते उनपर कोई धूरी फेंकता, कोई कीचड़ फेंकता और कोई गोबर फेंकता था—'हट जा वृषली (=शूद्री) ! हट जा वृषली ! कैसे एक सत्व दूसरे सत्वको ऐसा करेगा !' सो आज भी लोग किन्हीं किन्हीं देशोंमें (नवोढ़ा) वधूको ले जाते समय, धूली, फेंकता०। वह उसी पुरानी बातको स्मरण कर किन्तु उसका अर्थ नहीं जानते। वाशिष्ट ! उस समय जो अधर्म समझा जाता था, वही अब धर्म समझा जाता है। वाशिष्ट ! जो सत्व उस समय मैथुन-कर्म करते, वह तीन मास भी, दो मास भी गाँव या निगममें नहीं आने पाते थे, उस समय बार बार गिरने लगे, अधर्ममें पतित हुये थे, तब, उसी अधर्मको छिपाने के लिये घर बनाना आरम्भ किया।

(४) वैयक्तिक सम्पत्तिका आरम्भ

'वाशिष्ट ! तब किसी आलसीके मनमें यह आया—'शाम सुबह, दोनों समय धान (=शाली) लानेके लिये जानेका कष्ट क्यों उठाव ? क्यों न एक ही बार शाम-सुबह दोनोंके खानेके लिये शालि ले आवें।' तब वह प्राणी एक ही बार० ले आया। तब, कोई दूसरा प्राणी उस प्राणीके पास गया, जाकर बोला—'आओ, हम लोग शालि लानेके लिये चलें।' 'हे सत्व ! हम० एक ही बार० ले आये हैं।'

"तब वाशिष्ट ! वह सत्व भी उस सत्वकी देखादेखी एक ही बार शालि ले आया—'यह भी बहुत अच्छा है (सोचा)। वाशिष्ट ! तब कोई प्राणी जहाँ वह पुरुष था वहाँ गया, जाकर बोला—'आओ ! शालि लाने चलें।' 'हे सत्व ! हम० एक ही बार० दो दिनोंके लिये ले आये हैं।' वाशिष्ट ! तब वह सत्व भी उसकी देखादेखी एक ही बार चार दिनोंके लिये शालि ले आया यह तो बहुत अच्छा है'।० देखादेखी आठ दिनके लिये०।

'तबसे प्राणी शालि एक जगह जमा करके खाने लगे। तब चावलके ऊपर कन भी भूसी भी होने लगी।(तब किसी जगहसे)एक बार उखाड़ लेनेपर फिर नहीं जमनेके कारण वह स्थान (खाली) मालूम होने लगा। शालि (का खेत) खड खड दिखलाई देने लगी।

"वाशिष्ट ! तब वे सत्व इकट्ठे हो, ० चिल्लाने लगे—'हम प्राणियोंमें पाप धर्म प्रकट हो रहे हैं। हम लोग पहले मनोमय० थे, बहुत दिन तक जीते थे। बहुत दिनोंके बीतनेके बाद जलमें रसा पृथ्वी हुई, वर्ण-सम्पन्न०। उस रसा पृथ्वीको हम लोग ग्रास ग्रास करके खाने लगे० स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। उसके अन्तर्धान होनेसे चाँद सूरज० नक्षत्र और तारे० रात दिन० मास-पक्ष० ऋतु-वर्ष०। रसा पृथ्वीको हम लोग बहुत दिनों तक खाते रहे। तब, हम लोगोंके पाप अकुशल धर्मके प्रादुर्भूत होनेके कारण रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर भूमिमें पपड़ी०। उस हम लोग० खाते रहे। ०।० पाप (=अकुशल धर्म)के प्रादुर्भूत होनेके कारण भूमिकी पपड़ी अन्तर्धान हो गई। ० भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० उस शालिको हम लोग बहुत दिनों तक खाते रहे। तब, हम

लोगोंने पाप=अकुशल धर्मके प्रकट होनेसे कन भी, भूसी भी चावलके ऊपर आ गई ०। आओ, हम लोग शालि(-खेत)बाँट ले, मेंड(=मर्यादा)बाँध दें। तब उन लोगोने शालि बाँट ली, और मेंड बाँध दी।

"वाशिष्ट ! तब कोई लालची सत्व अपने भागकी रक्षा करता दूसरेके भागको चुरा कर खा गया। उसे लोगोंने पकळ लिया, पकळकर बोले—'हे सत्व ! तुम यह पाप-कर्म करते हो, जो कि ० दूसरेके भागको चुराकर खा रहे हो। मत फिर ऐसा करना।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उन सत्वोंको उत्तर दिया। दूसरी बार भी वह ० दूसरेके भागको चुराकर खा गया। लोगोंने उसे पकळ लिया,० बोले—तुम यह पाप कर्म ०। तीसरी बार भी ०। कोई हाथसे मारने लगा, कोई ढेलेसे, कोई लाठीसे। वाशिष्ट ! उसीके बादसे चोरी, निन्दा, मिथ्या-भाषण और दण्ड-कर्म होने लगे।

"वाशिष्ट ! तब वे प्राणी इकट्ठे हो कहने लगे—'प्राणियोमे पाप-धर्म प्रकट हुये है, जो कि चोरी ०। अत हम लोग ऐसे एक प्राणीको निर्वाचित करे, जो हम लोगोके निन्दनीय कर्मोकी निन्दा करे, उचित कर्मोको बतलावे, निकालने योग्यको निकाल दे। और हम लोग उसे अपने शालिमेंसे भाग दें।'

३—चारों वर्णोंका निर्माण

(१) राजा (क्षत्रिय)की उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! तब वे प्राणी, जो उनमें वर्णवान्(=सुन्दर), दर्शनीय, प्रासादिक, और महाशक्तिशाली था उसके पास जाकर बोले—'हे सत्व ! उचितानुचितका ठीकसे अनुशासन करो, निन्दनीय कर्मोकी निन्दा करो, उचित कर्मोको बतलाओ, निकालने योग्यको निकाल दो, हम लोग तुम्हे शालिका भाग देंगे।' 'बहुत अच्छा' कह ० स्वीकार कर लिया। वह ठीकसे उचितानुचितका अनुशासन करता था ० लोग उसे शालिका भाग देते थे। "वाशिष्ट ! महाजनो द्वारा सम्मत होनेसे 'महासम्मत महासम्मत' करके उसका पहला नाम पळा। क्षेत्रोका अधिपति होनेसे 'क्षत्रिय क्षत्रिय' करके दूसरा नाम (क्षत्रिय) पळा। धर्मसे दूसरोका रञ्जन करता था, अत 'राजा राजा' करके तीसरा नाम (राजा) पळा।

"वाशिष्ट! इस तरह इस क्षत्रिय मडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ। उन्ही पुरुषोका, दूसरोका नही, धर्मसे, अधर्मसे नहीं। "वाशिष्ट ! मनुष्यमें धर्म ही श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

(२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति

तब, उन्ही प्राणियोमें किन्ही किन्हीके मनमे यह हुआ—प्राणियोमें पापधर्म प्रादुर्भूत हो गये हैं, जो कि चोरी ० होती है। अत हम लोग पाप=अकुशल धर्मोको छोळ दें। उन लोगोंने पाप अकुशल धर्मोको छोळ दिया। वाशिष्ट ! पाप अकुशल धर्मोको छोळ (=बाह) दिया, इसीलिये 'ब्राह्मण ब्राह्मण' करके उनका पहला नाम पळा। वे जगलमें पर्णकुटी बनाकर वही ध्यान करते थे। उनके पास अगार न था, धुआ न था, मुसल न था, वह शामको शामके भोजनके लिये सुबहको सुबहके भोजनके लिये ग्राम, निगम और राजधानियोमें जाते थे। भोजन कर फिर जगलमें अपनी कुटीमें आकर ध्यान करते थे। उन्हे देखकर मनुष्योने कहा—ये सत्व जगलमें पर्णकुटी बना ध्यान करते हैं, इनके पास अगार नही, धुआ नही, मुसल नही ० ध्यान करते हैं। 'ध्यान करते हैं' 'ध्यान करते है' करके उनका दूसरा नाम ध्यायक पळा। वाशिष्ट ! उन्ही सत्वोमे कितने जगलमें पर्णकुटी बना ध्यान न पूरा कर सकनेके कारण ग्राम या निगमके पास आकर ग्रथ बनाते हुये रहने लगे। उन्हे देखकर मनुष्योंने कहा—० ग्रथ बनाते हुये रहते हैं, ध्यान नही करते। 'ध्यान नही करते', 'ध्यान नही करते' करके अध्यायक यह तीसरा नाम पळा। वाशिष्ठ ! उस समय वह नीच समझा जाता था, किंतु आज वह श्रेष्ठ समझा जाता है।

"वाशिष्ट ! इस तरह इस ब्राह्मण-मडल्का पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ, उन्ही प्राणियोका, दूसरोका नही, धर्मसे अ धर्मसे नही। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

(३) वैश्यकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्हीं प्राणियोंमें कितने मैथुन कर्म करके नाना कामोंमें लग गये। वाशिष्ट ! मैथुन कर्म करके नाना कामोंमें लग जानेके कारण 'वैश्य' 'वैश्य' नाम पळा। वाशिष्ट ! इस तरह इस वैश्य-मंडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे नाम पळा। ० वाशिष्ट ! धर्मही मनुष्यमें श्रेष्ठ है ०।

(४) शूद्रकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्हीं प्राणियोंमें बचे जो क्षुद्र-आचारवाले प्राणी थे। 'क्षुद्र-आचार' 'क्षुद्र-आचार' करके शूद्र अक्षर उत्पन्न हुआ। वाशिष्ट ! इस तरह ०। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है ०।

(५) श्रमण (=संन्यासी)की उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! एक समय था जब क्षत्रिय भी—'मैं श्रमण होऊँगा' (सोच) अपने धर्मको निन्दते घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाता था। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्हीं चार मंडलोंमें श्रमण-मंडलकी उत्पत्ति हुई। उन्हीं प्राणियोंका ०। धर्म ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ ०।

४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे दुराचार, वचन और मनसे दुराचारकर, मिथ्या-दृष्टिवाले हो, मिथ्या-दृष्टिके (=झूठी धारणा) अनुकूल आचरण करते हैं। और उसके कारण मरनेके बाद ० दुर्गति ० नरकमें उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण भी०। वैश्य भी०। शूद्र भी०। श्रमण भी०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे सदाचार करके ० सम्यग्-दृष्टि ०। और उसके कारण मरनेके बाद ० स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे दोनों (तरहके) कर्म करके, (सच झूठ दोनों)-से मिश्रित दृष्टि (=धारणा) रख, मिश्रित दृष्टिवाले कर्मको करके काया छोळ मरनेके बाद सुख दुःख (दोनों) भोगनेवाले । ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे संयत ० हो सैंतीस बोधि-पाक्षिक[1] धर्मोंकी भावना करके इसी लोकमें निर्वाणको प्राप्त करता है। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्हीं चार वर्णोंमें जो भिक्षु अर्हत्=क्षीणास्रव, समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भार-मुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भवबंधन-मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वही उत्तम श्रेष्ठ कहा जाता है। धर्मसे, अधर्मसे नहीं। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

"वाशिष्ट ! ब्रह्मा सनत्कुमारने भी गाथा कही है—

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥१॥

"वाशिष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने ठीक ही कही है, बेठीक नहीं कही। सार्थक कही, अनर्थक नहीं। इसका मैं भी अनुमोदन करता हूँ—

'गोत्र लेकर ०' ॥१॥

भगवान्‌ने यह कहा। सन्तुष्ट हो वाशिष्ट और भारद्वाजने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

---

[1] देखो पृष्ठ २४७।

२८—सम्पसादनिय-सुत्त (३।५)

१—परमज्ञानमें बुद्ध तीनों कालमें अनुपम। २—बुद्धके उपदेशोंकी विशेषतायें। ३—बुद्धमें अभिमान-शून्यता।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्दाके प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा[1]—

१—परमज्ञानमें बुद्ध तीनों कालमें अनुपम

"भन्ते! मैं ऐसा प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—'सबोधि (=परम ज्ञान)मे भगवान्से बढकर =भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। एकांश सिंहनाद किया—'मैं ऐसा प्रसन्न हूँ ०।' सारिपुत्र! अतीतकालमें जो अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हुए थे, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहारवाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नही, भन्ते!"

"सारिपुत्र! जो वह भविष्यकालमें अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध होगे, क्या उन सब भगवानोको चित्तसे जान लिया ०?" "नही, भन्ते!"

"सारिपुत्र! इस समय मैं अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञा-वाला ० हूँ?" 'नही भन्ते!"

"(जब) सारिपुत्र! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोंके विषयमें चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नही है, तो सारिपुत्र! तूने क्यो यह बहुत उदार=आर्षभी वाणी कही ०?"

"भन्ते! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोमें मुझे चेत-परिज्ञान नही है, किन्तु (सबका) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते! राजाका सीमान्त-नगर दृढ नीववाला, दृढ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातो (=अपरिचितो)को निवारण करने-वाला, ज्ञातो (=परिचितो)को प्रवेश करानेवाला पडित=व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगर-के चारो ओर, अनुपर्याय (=क्रमसे) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये, उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमे प्रवेश करते है, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो अतीतकालमें

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२२)।

(२) भन्ते ! कोई बिना निमित्तहीके आदेश करता है। मनुष्यके, अमनुष्य(=देवता)के, या देवताओंके शब्दको सुनकर आदेश करता है—तुम्हारा ऐसा मन ०। यह दूसरी आदेशनाविधि है। (३) भन्ते ! फिर कोई न निमित्तसे और न मनुष्य-अमनुष्यके शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क और विचार समाधिमें आरूढके चित्तको अपने चित्तसे जान कर आदेश करता है—ऐसा भी तुम्हारा मन ०। यह तीसरी आदेशनाविधि है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० न वितर्कसे निकले शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क विचार रहित समाधिमें स्थित हुए चित्तसे चित्तकी बात जान लेता है—आप (लोगो)के मानसिक सस्कार प्रणिहित (=एकाग्र) है, जिससे इस चित्तके बाद ही यह वितर्क होगा है। यह चौथी आदेशनाविधि है।०।

६—"भन्ते ! इससे भी और बढकर है जो कि भगवान् *दर्शनसमापत्तिके विषयमें धर्मोपदेश* करते है। भन्ते ! चार प्रकारकी दर्शन-समापत्तियाँ है। (१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण, उद्योग प्रधान, अनुयोग, अन्-आलस्य (=अ-प्रमाद), ठीक मनोयोगके साथ वैसी चित्त-एकाग्रता (=समाधि)को प्राप्त होता है, जैसी चित्त एकाग्रतासे कि उस एकाग्र (=समाहित) चित्तमें तलवेसे ऊपर, शिरसे नीचे, और चमळा मँढे इस शरीरको नाना प्रकारकी गन्दगीसे भरा पाता है—इस शरीरमें है—केश, रोम, नख, दन्त, चर्म, मास, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्बी), लार, नासामल, लसिका(=शरीरके जोळोमें स्थित तरल द्रव्य) और मूत्र। यह पहली दर्शन-समापत्ति है। (२) भन्ते ! फिर, कोई ० उस एकाग्र चित्तमें० तलवेसे ऊपर ० इस शरीरको गन्दगी ० केश, रोम ०। पुरुषके भीतर केवल चमळा, मास, खून और हड्डी देखता है। यह दूसरी दर्शसमापत्ति है। (३) भन्ते ! फिर, कोई ० उस एकाग्र चित्तमें ० पुरुषके भीतर ०। इस लोक और परलोकमें अ-खडित, इस लोकम प्रतिष्ठित और परलोकमें भी प्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत (=भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो कालोम बहती जीवनधारा)को जान लेता है। यह तीसरी दर्शनसमापत्ति है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० उस एकाग्र चित्तमें ०।० इस लोकमें अप्रतिष्ठित और परलोकमें अप्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत ० अ-खडित। यह चौथी ०।

७—"भन्ते ! इससे भी और बढकर है कि भगवान् **पुद्गलप्रज्ञप्ति** विषयक धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! पुद्गल (=पुरुष) सात प्रकारके होते हैं—(१) रूपसमापत्ति और अरूप समापत्ति दोनो भागोसे विमुक्त (२) प्रज्ञा विमुक्त (३) कायसाक्षी (४) दृष्टिप्राप्त (५) श्रद्धाविमुक्त (६) धर्मानुसारी, (७) श्रद्धानुसारी। भन्ते ! इसके ०।

८—'भन्ते ! इससे भी और बढकर है जो कि भगवान् **प्रधानोंके** विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! सम्बोधि (=परमज्ञान)के सात अङ्ग है (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग (२) धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग (३) वीर्य सम्बोध्यङ्ग (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धि सम्बोध्यङ्ग (६) समाधि-सम्बोध्यङ्ग (७) उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग। भन्ते ! इसके ०।

९—'भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **प्रतिपदा** (=मार्ग) के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! प्रतिपदा चार है। (१) दु खाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, (२) दु खाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, (३) सुखाप्रतिपदा-दन्धाभिज्ञा, (४) सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा। भन्ते ! जो यह दु खाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है वह दोनो प्रकारसे हीन समझी जाती है—दु ख(-मय) होनेके कारण और दन्ध (=धीमी) होनेके कारण। भन्ते ! जो यह दु खाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है, वह दु ख(-मय) होनसे हीन समझी जाती है। भन्ते ! जो सुखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है, वह दन्धा (=धीमी) होनके कारण हीन समझी जाती है।

भन्ते ! जो यह सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है वह दोनो प्रकारसे अच्छी समझी जाती है, सुख(मय) होनेके कारण और क्षिप्र (=शीघ्र) होनेके कारण। भन्ते ! इसके ०।

१०—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् भस्स-समाचार(=वाचिक आचरण)के विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई (भिक्षु) जीत जानेकी इच्छासे न झूठ बोलता है, न लड़ाई लगानेवाली बात कहता है, न चुगली खाता है और न वैरकी बाते करता है। प्रज्ञापूर्वक सोच समझकर हृदयङ्गम करने योग्य समयोचित बात बोलता है। भन्ते ! इसके ०।

११—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् पुरुषके शील-समाचार (=शील सबधी आचरण)के विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई भिक्षु सच्ची श्रद्धावाला होता है, न पाखडी, न बकवादी, न नैमित्तिक न निष्पेषिक न लाभसे लाभ पानेकी इच्छावाला होता है; इन्द्रियोमें सयम रखनेवाला, मात्रासे भोजन करनेवाला, समान आचरण करनेवाला, जागरणमें तत्पर, आलस्यसे रहित, वीर्यवान्, ध्यानपरायण, स्मृतिमान्, कल्याणी प्रतिभावाला, अच्छी गतिवाला, धृतिमान्, (और) मतिमान् होता है। सासारिक भोगोमें लिप्त न हो, स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। भन्ते ! इसके ०।

१२—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है जो कि भगवान् अनुशासनविधि विषयक धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! अनुशासनविधि चार प्रकारकी होती है—(१) भन्ते ! भगवान् अच्छी तरह मन लगाकर दूसरे मनुष्योके भीतरकी बात जान लेते है—यह मनुष्य किसके अनुसार आचरण करता, तीन सयोजनो (=सासारिक बन्धनो)के क्षयसे मार्गसे च्युत न होनेवाला हो, दृढतापूर्वक सम्बोधिपरायण स्रोत-आपन्न होगा। (२) भन्ते ! भगवान् ० भीतरकी बात जान लेते है—यह मनुष्य ० तीन सयोजनोके क्षयसे, राग, द्वेष और मोहके दुर्बल हो जानेसे सकृदागामी होगा, और एक ही बार इस लोकमे आकर अपने दु खोका अन्त करेगा। (३) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० पाँच इसी ससारमें फँसाकर रखनेवाले बन्धनो (=अवरभागीय सयोजनो)के कट जानेसे औपपातिक (=देवता) होगा= उस लोकसे फिर कभी नही लौटेगा (=अनागामी)। (४) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० आस्रवोके क्षय—हो जानेसे आस्रव रहित चेतो विमुक्ति प्रज्ञाविमुक्तिको यही जानकर, साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत् होगा)। भन्ते ! इसके ०।

१३—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् परपुद्गलविमुक्तिज्ञानके विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० स्रोतआपन्न ० सकृदागामी ० अनागामी ० चेतोविमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्तिको यही जान और साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत् होगा)।

१४—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् शाश्वत-वादोंके विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! शाश्वतवाद तीन है—(१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ०[1] उस समाधिको प्राप्त करता है जिससे एकाग्र चित्त होनेपर अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोको स्मरण करता है—जैसे, एक जन्म ०[1]। वह ऐसा कहता है—मै अतीत और अनागत कालकी बाते भी जानता हूँ, लोकका सवर्त (=प्रलय) होगा विवर्त (=प्रादुर्भाव) होगा। आत्मा और लोक शाश्वत, वन्ध्य=कूटस्थ अचल है। प्राणी (नाना योनियोमे) दौड़ते है, फिरते है, मरते है, उत्पन्न होते है। उनका अस्तित्व सदा रहता। यह पहला शाश्वतवाद है। (२) भन्ते ! फिर, कोई ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है एक सवर्त ०। वह ऐसा कहता—मै अतीत और अनागत कालकी बात जानता हूँ ०। आत्मा और लोक शाश्वत है। यह

---

[1] देखो पृष्ठ ३१।

दूसरा शाश्वतवाद है। (३) भन्ते ! फिर कोई ० स्मरण करता है ० दस सवर्त-विवर्त ०। वह ऐसा कहता है—मैं अतीत और अनागतकी बाते जानता हूँ। आत्मा और लोक शाश्वत है ०। यह तीसरा शाश्वतवाद है। भन्ते ! इसके ०।

१५—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान (=पूर्व जन्मके स्मरण) के विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है—एक जन्म ०, अनेक सवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक सवर्त-विवर्त कल्प। भन्ते ! ऐसे देव है जिनकी आयुको न कोई गिन सकता है और न कह सकता है, किन्तु रूप योनिमें या अरूप योनिमे, सज्ञावाले होकर या सज्ञाके बिना, या नैवसज्ञा-नासज्ञा होकर जिस जिस आत्म-भाव(=शरीर)मे वे पहले रह चुके है, उन अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोको आकार और नामके साथ स्मरण करते है। भन्ते ! इसके ०।

१६—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् सत्वोके जन्म-मरणके ज्ञानके विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे मरते, जनमते, अच्छे, बुरे, सुन्दर, कुरूप, अच्छी गतिको प्राप्त, बुरी गतिको प्राप्त सत्वोको देखता है। तथा ० अपने कर्मानुसार गतिको प्राप्त सत्वोको जान लेता है—ये सत्व कायिक दुराचारसे युक्त थे। ये मरनेके बाद ० दुर्गतिको प्राप्त होगे।—ये सत्व कायिक सदाचारसे युक्त है। ये मरनेके बाद ० सुगतिको प्राप्त होगे। इस प्रकार अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे ० सत्वोको देखता है। मरते, जनमते ० सत्वोको जान लेता है। भन्ते ! इसके अलावे ०।

१७—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **ऋद्धिविध** (=दिव्यशक्ति)के विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! ऋद्धिविध दो प्रकारकी है। भन्ते ! जो आस्रव-युक्त और उपाधि-युक्त ऋद्धियां है, वह अच्छी नही कही जाती। भन्ते ! जो आस्रव-रहित और उपाधि रहित ऋद्धियां है, वह अच्छी कही जाती है। (१) भन्ते ! वह कौनसी उपाधि-युक्त और आस्रव-युक्त ऋद्धियाँ है, जो अच्छी नही कही जाती ?—

ऋद्धियाँ—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धिकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त करता है—एक होकर बहुत होता है, बहुत होकर एक होता है, प्रकट होता है। अन्तर्धान होता है। दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार बिना टकराये चला जाता है, मानो आकाशमें (जा रहा हो)। पृथिवीमें गोते लगाता है मानो जलमे (लगा रहा हो)। जलके तलपर भी चलता है जैसे कि पृथिवीके तलपर। आकाशमे भी पालथी मारे हुए उळता है, जैसे पक्षी (उळ रहा हो), महातेजस्वी सूरज और चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है, ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमें किये रहता है।

"भन्ते ! यह ऋद्धि आस्रव-युक्त आधि-युक्त है, जो कि अच्छी नहीं कही जाती। (२) भन्ते ! वह कौन सी आस्रव-रहित और उपाधि-रहति ऋद्धि है, जो कि अच्छी कही जाती है ?—भन्ते ! यदि भिक्षु चाहता है—'प्रतिकूलमें, अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'अप्रतिकूलमे प्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह प्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूलमें अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूलमें प्रतिकूल ख्याल रख (=सज्ञावाला हो)कर विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनोका ख्याल न कर स्मृतिमान् और सावधान हो उपेक्षा भावमे

विहार करूँ', तो स्मृतिमान् और सावधान हो उपेक्षा भावसे ही विहार करता है। भन्ते ! यह ऋद्धि आस्रवरहित और उपाधि-रहित होनेसे अच्छी समझी जाती है।

१८—"भन्ते ! इसके ०। उसे भगवान् अशेष जानते हैं। आपको ० जाननेके लिये कुछ बचा नहीं है, जिसे जानकर कि दूसरे श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिविध(=दिव्यशक्ति)में आपसे बढ़ जायें।

"भन्ते ! वीर्यवान्, दृढ, पुरुषोचित स्थिरतासे युक्त, पुरुषोचित वीर्यसे युक्त, पुरुषोचित पराक्रमसे युक्त, श्रद्धायुक्त महापुरुष कुलपुत्रके लिये जो प्राप्तव्य है, उसे आपने प्राप्तकर लिया है। भन्ते ! भगवान् न तो हीन, ग्राम्य, अज्ञ लोगोंके करने लायक, अनार्य और अनर्थक सांसारिक सुखविलासमें पळे हैं, और न आप दुःख, अनार्य और अनर्थक आत्मक्लमथानुयोगमें (=शरीरको नाना प्रकारकी तपस्यासे कष्ट देना) युक्त हैं, इसी लोकमें सुख देनेवाले चार आधिचैतसिक (=चित्तसबंधी) ध्यानोंको भगवान् इच्छानुसार सुखपूर्वक बहुत प्राप्त करते हैं।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछें—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमें कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमें भगवान्से बढ़कर था ? ० भन्ते ! मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'। ० क्या अनागत कालमें ० होगा ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'। क्या अभी कोई ० है ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछें—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमें कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमें भगवान्के सदृश था ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं। ० क्या अनागत कालमें कोई ० होगा ? ० नहीं। ० क्या अभी कोई ० है ? ० नहीं'।

"भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे—क्या आयुष्मान् सारिपुत्र ! (भगवान्) कुछको जानते हैं और कुछको नहीं जानते ? ऐसा पूछे जानेपर, भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—'आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैंने ऐसा सुना है, भगवान्के मुँहसे जाना है।—अतीत कालमें जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध थे, वे सम्बोधिमें मेरे बराबर थे। आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैंने ऐसा सुना है०। अनागतमें ० होंगे। ० ऐसा सुना है०। एक ही लोकधातुमें एक ही समय एक साथ दो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध नहीं हो सकते हैं। ऐसा सम्भव नहीं है।'

"भन्ते ! किसीके पूछनेपर यदि मैं ऐसा उत्तर दूँ तो भगवान्के विषयमें मेरा कहना ठीक तो होगा, भगवान्के विषयमें कोई झूठी निन्दा तो नहीं होगी, यह कथन धर्मानुकूल तो होगा ?"

"सारिपुत्र ! ० किसीके पूछनेपर यदि तुम ऐसा उत्तर दो, तो ० यह कथन धर्मानुकूल ही होगा०।"

३—बुद्धमें अभिमान शून्यता

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् उदायीने भगवान्से कहा— भन्ते ! आश्चर्य है ० तथागतकी अल्पेच्छता, संतोष, निर्मलचित्तताको, कि तथागत इस प्रकारकी बळी ऋद्धिवाले होते भी, इस प्रकार महानुभाव होते भी, अपनेको प्रकट नहीं करते। भन्ते ! यदि इनमेंसे एक बातको भी दूसरे मतवाले साधु अपनेमें पाते तो उसीको लेकर वे पताका उळाते फिरते। भन्ते ! आश्चर्य है ०।'

'उदायि ! देखो—तथागतकी अल्पेच्छता ० कि अपनेको प्रकट नहीं करते। यदि इनमेंसे एक भी बात०को लेकर वे पताका उळाते फिरें। उदायि ! देखो।'

तब भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको सम्बोधित किया—"सारिपुत्र ! तो तुम भिक्षु-भिक्षुणियोंको, उपासक-उपासिकाओंको यह धर्मपर्याय (=धर्मोपदेश) कहते रहो। सारिपुत्र ! जिन अज्ञोंको सन्देह होगा—तथागतमें कांक्षा=विमति (=संदेह) होगी, वह दूर हो जायेगी।"

इस प्रकार आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्के सम्मुख अपने सम्प्रसाद (=श्रद्धा)को प्रकट किया। इसलिये इस उपदेशका नाम **सम्पसादनिय** पळा।

———

२९–पासादिक-सुत्त (३।६)

१—तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद। २—विवादके कारण—गुरु और धर्मकी अयोग्यता। ३—योग्य गुरु और धर्म। ४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म। ५—बुद्ध वचनकी कसौटी। ६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये हैं। ७—अनुचित उचित आरामपसन्दी। ८—भिक्षु बुद्धधर्मपर आरूढ़। ९—बुद्ध कालवादी यथार्थवादी। १०—अव्याकृत और व्याकृत बातें। ११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन। १२—स्मृति प्रस्थान।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में वेधञ्ञा नामक शाक्योंके **आम्रवन-प्रासादमें** विहार कर रहे थे।

१–तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद

उस समय **निगण्ठ नाथपुत्त** (=तीर्थंकर महावीर)की **पावामें** हालहीमें मृत्यु हुई थी। उनके मरनेपर निगण्ठोंमें फूट हो गई थी, दो पक्ष हो गये थे, लड़ाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक दूसरेको वचन-रूपी बाणोंसे बेधते हुए विवाद करते थे—'तुम इस धर्मविनय (=धर्म)को नही जानते मैं इस धर्मविनयको जानता हूँ। तुम भला इस धर्मविनयको क्या जानोगे? तुम मिथ्या-प्रतिपन्न हो(=तुम्हारा समझना गलत है), मैं सम्यक्-प्रतिपन्न हूँ। मेरा कहना सार्थक है और तुम्हारा कहना निरर्थक। जो (बात) पहले कहनी चाहिये थी वह तुमने पीछे कही, और जो पीछे कहनी चाहिये थी, वह तुमने पहले कही। तुम्हारा वाद बिना विचारका उल्टा है। तुमने वाद रोपा, तुम निग्रह-स्थानमें आ गये। इस आक्षेपसे वचनेके लिये यत्न करो, यदि शक्ति है तो इसे सुलझाओ।' मानो निगण्ठोमे युद्ध (=वध) हो रहा था।

निगण्ठ नाथपुत्तके जो श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे, वे भी निगण्ठके वैसे दुराख्यात (=ठीकसे न कहे गये), दुष्प्रवेदित (=ठीकसे न साक्षात्कार किये गये), अ-नैर्याणिक (=पार न लगाने-वाले), अन्-उपशम-सवर्तनिक (=न-शान्तिगामी), अ-सम्यक्-सबुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्ध द्वारा न साक्षात् किया गया), प्रतिष्ठा(=नींव)-रहित=भिन्न-स्तूप, आश्रय-रहित धर्ममें अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त हो रहे थे।

तव, **चुन्द** समणुद्देस पावामें वर्षावास कर जहाँ **सामगाम**[1] था और जहाँ आयुष्मान् **आनन्द** थे वहाँ गये। ० बैठ गये। ० बोले—"भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्तकी अभी हालमें पावामें मृत्यु हुई है। उनके मरनेपर निगण्ठोंमें फूट०।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्द बोले—"आवुस चुन्द! यह कथा भेट रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं वहाँ चले। चलकर यह बात भगवान्‌से कहे।"

---

[1] मिलाओ सामगाम-सुत्त १०४ (मज्झिम-निकाय, पृष्ठ ४४१)।

"बहुत अच्छा" कह चुन्दने० उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द ० श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। ० एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द बोले—"भन्ते ! चुन्द ० ऐसा कहता है—'निगण्ठ ० पावामें ०' ।"

२—विवाद के लक्षण

१—अयोग्य गुरु—"चुन्द ! जहाँ शास्ता (=गुरु) सम्यक् सम्बुद्ध नहीं होता, धर्म दुराख्यात होता है ० और उस धर्ममें शिष्य (=श्रावक) धर्मानुसार मार्गारूढ़ होकर नहीं विहार करते, न सामीचि (=ठीक मार्ग) पर आरूढ़ होते, और न धर्मानुसार आचरण करनेवाले होते हैं। वहाँ शास्ताकी भी निन्दा होती है, उस धर्मसे ० उस धर्मको छोड़कर चलते हो,' धर्मकी भी निन्दा होती है। इस प्रकार शिष्य प्रशंसनीय है, जो ऐसे श्रावकको ऐसा कहे—'आओ, आयुष्मान् (अपने) गुरुके उपदेश प्रज्ञप्तिके अनुसार धर्मपर आरूढ़ हो।' तो जो उसे कहता है, जिसे कहता है और जो कहनेपर वैसा करता है, वह सभी बहुत पाप करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म०में ऐसा ही होता है।

२—अयोग्य धर्म—"चुन्द ! शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध धर्म दुराख्यात ०, और यदि श्रावक उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ़० होकर विहार करता हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें अलाभ है, दुर्लभ है। शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध है, धर्म दुराख्यात० है, और तुम वैसे धर्ममें मार्गारूढ़० हो।'

"चुन्द ! ऐसी हालतमें शास्ता भी निन्द्य, धर्म भी निन्द्य और श्रावक भी वैसा ही निन्द्य है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानसम्पन्न और ज्ञानानुकूल आचरण करनेवाले हैं'—तो जो प्रशंसा करता है, जिसकी प्रशंसा करता है, और जो प्रशंसित होकर अधिकाधिक उसी ओर उत्साहित होता है, यह सभी बहुत पाप करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म-विनय०में ऐसा ही होता है।

३—योग्य गुरु और धर्म

१—अधन्य शिष्य—"चुन्द ! जहाँ शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात (=अच्छी तरह कहा गया), सुप्रवेदित=नैर्याणिक (=मुक्तिकी ओर ले जानेवाला), शान्ति देनेवाला, तथा सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित हो, और उस धर्ममें श्रावक धर्मानुसार मार्गारूढ़ नहीं हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें बड़ा अलाभ है, बड़ा दुर्लभ है, तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हैं, धर्म स्वाख्यात ० है और तुम उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ़ ० नहीं हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामें शास्ता भी प्रशंसनीय है, धर्म भी प्रशंसनीय है और श्रावक ही उस प्रकार निन्द्य है। चुन्द ! जो उस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—आप वैसा ही करें, जैसा आपके शास्ता ०—तो जो कहता है ० सभी बहुत पुण्य करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात ० धर्ममें ऐसा ही होता है।

२—धन्य शिष्य—"चुन्द ! शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात ० हो, और श्रावक उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ़ ० हो। उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें लाभ है, तुम्हारा लाभ बड़ा सुन्दर है, (जो) तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हैं, धर्म स्वाख्यात ० है, और तुम भी उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ़ ० हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामें शास्ता भी प्रशंसनीय है, धर्म भी प्रशंसनीय है, और श्रावक भी उसी तरह प्रशंसनीय है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानप्रतिपन्न हैं=ज्ञानानुकूल आचरण करते हैं'—तो जो प्रशंसा करता है ० वह सभी बहुत पुण्य करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात धर्मविनय०में ऐसा ही होता है।

३—गुरुकी शोचनीय मृत्यु—"चुन्द ! जहाँ अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए हों, धर्म भी स्वाख्यात ०, (किन्तु) श्रावकोंने सद्धर्मको नहीं समझा, उनके लिये शुद्ध, पूर्ण ब्रह्मचर्य ठीकसे आविष्कृत सरल, सुज्ञेय, सुविस्तृत नहीं किया गया, देव-मनुष्योंमें अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हुआ; और

इसी बीच उनके शास्ता अन्तर्धान हो गये। चुन्द ! इस प्रकार शास्ताकी मृत्यु श्रावकोके लिये शोचनीय होती है। सो क्यो ? हम लोगोके अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए धर्म भी स्वाख्यात ०, किन्तु हम लोगाने इस सद्धर्मका अर्थ नही समझा, और हमारे लिये ब्रह्मचर्य भी आविष्कृत ० नही ०। जब ऐसे शास्ताका अन्तर्धान होता है, जब ऐसे शास्ताकी मृत्यु होती है, तो शोच-नीय होती है।

४—गुरुकी अशोचनीय मृत्यु—'चुन्द ! लोकमें अर्हत् ० शास्ता, धर्म स्वाख्यात ० और श्रावकोको सद्धर्म समझाया गया होता है, उनके लिये ब्रह्मचर्य ० आविष्कृत होता है। उस समय उनका शास्ता अन्तर्धान हो जाता है। चुन्द ! इस प्रकारके शास्ताकी मृत्यु शोचनीय नही होती। सो किस हेतु ? 'हम लोगोके अर्हत् ० शास्ता लोकमे उत्पन्न हुए, धर्म स्वाख्यात ० और हम लोग भी ० अर्थ समझे। ० हम लोगोके शास्ताका अन्तर्धान हो गया'। चुन्द ! शोचनीय नही है।

५—अपूर्णसन्यास—"चुन्द ! ब्रह्मचर्य इन अगोसे युक्त होता है, किन्तु शास्ता स्थविर, वृद्ध, चिरप्रव्रजित, अनुभवी, वय प्राप्त नही होते, तो इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य इस अङ्गसे अ पूर्ण होता है। चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोसे युक्त होता है, और शास्ता स्थविर ० होते हैं, तब वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूरा होता है।

"चुन्द ! ब्रह्मचर्य उन अङ्गोसे भी युक्त होता है, शास्ता भी स्थविर ० होते है, किन्तु उनके रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) स्थविर भिक्षु-श्रावक (=भिक्षु शिष्य) व्यक्त, विनीत, विशारद, योगक्षेम-प्राप्त (=मुक्त) सद्धर्म कथनमें समर्थ, दूसरे पक्षके किये गये आक्षेप (=वाद)को धर्मानुकूल अच्छी तरह समझाकर युक्तिसहित धर्म-देशना करनेमें समर्थ नही होते, तो वह भी ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है। चुन्द ! जब इन अङ्गोंसे ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है, शास्ता भी स्थविर ०, और उनके ० स्थविर भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० इस प्रकारका ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूर्ण होता है।

"चुन्द ! इन अङ्गोसे युक्त ब्रह्मचर्य हो, शास्ता स्थविर ०, ० भिक्षु-श्रावक व्यक्त, ० किन्तु वहाँ मध्यम (वयस्क) भिक्षु-श्रावक व्यक्त नही ० मध्यम भिक्षु श्रावक व्यक्त ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त नही ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०। ० स्थविर ०, ० मध्यम ०, ० नई भिक्षुणी व्यक्त नही ०।

"० उनके गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी उपासक-श्रावक (=गृहस्थ शिष्य) नही ०। ० कामभोगी उपासक श्रावक, व्यक्त ० नही ०, कामभोगी है, ० ब्रह्मचारिणी उपासिका व्यक्त नही, ०। ब्रह्मचारिणी है, कामभोगिनी उपासिका ० नही ०।

"० ब्रह्मचर्य०देव और मनुष्योमे सुप्रकाशित, समृद्ध, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल (=पृथुभूत) नही होता ०। ० ब्रह्मचर्य ० विशाल होता है। इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है, लाभ और यश नही पाता।

६—पूर्ण सन्यास—"चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोंसे युक्त होता है—शास्ता स्थविर ० होते है। स्थविर भिक्षु श्रावक व्यक्त ०, मध्यम भिक्षु-श्रावक ०,नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०, स्थविर ०, मध्यम ० नई भिक्षुणी-श्राविका व्यक्त ०, ब्रह्मचारी उपासक गृहस्थ ०, कामभोगी उपासक ०, ० ब्रह्मचारिणी उपासिका ०—तो ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत ० होता है। इस प्रकार उस अङ्गसे परिपूर्ण ब्रह्मचय, लाभ और यशको पाता है।

"चुन्द ! इस समयमें लोकमें अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुआ हूँ, धर्म स्वाख्यात ०, और मेरे श्रावक सद्धर्मके अर्थको समझे, है उनका ब्रह्मचर्य ० बिल्कुल पूर्ण है।

"चुन्द ! मैं शास्ता ० स्थविर ०। मेरे स्थविर भिक्षु-श्रावक व्यक्त, विनीत, विशारद ०, मध्यम भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ०, नये भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० है। चुन्द ! स्थविर भिक्षुणी श्राविका, मध्यम भिक्षुणी-श्राविका और नई भिक्षुणी-श्राविका भी व्यक्त ० चुन्द ! मेरे उपासक-श्रावक ० ब्रह्मचारी, कामभोगी हैं, उपासिका श्राविका ब्रह्मचारिणी कामभोगिनी ०।

"चुन्द ! मेरा यह ब्रह्मचर्य समृद्ध उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, विशाल और देव मनुष्योंमें सुप्रकाशित है। चुन्द ! आज जितने शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए हैं उनमें से किसी एकको भी नहीं देखता हूँ, जो मेरे जैसा लाभ और यश पानेवाले हों। चुन्द ! आज तक लोकमें जितने सघ या गण उत्पन्न हुए हैं, उनमें एक सघको भी नहीं देखता हूँ जिसने मेरे भिक्षुसघके समान लाभ और यश पाया हो। चुन्द ! जिसके बारेमें अच्छी तरह कहनेवाले कहते हैं कि (इस सघका) ब्रह्मचर्य सब तरहसे सम्पन्न, सब तरहसे परिपूर्ण, अ-न्यून अन्-अधिक, सु-आख्यात=सु-प्रकाशित और परिपूर्ण है। अच्छी तरह कहनेवाले यही कहते हैं।

"चुन्द ! उद्दक रामपुत्र कहता था—'देखते हुए नही देखता'। क्या देखते हुए नहीं देखता ? अच्छी तरह तेज किये छुरेके फलको देखता है, धारको नहीं। चुन्द ! इसीको कहते हैं—देखते हुए भी ०। चुन्द ! जो कि उद्दक राम-पुत्र हीन, ग्राम्य, मूर्खोके योग्य, अनार्य, अनर्थक कहता था वह छुरेका ही ख्याल करके। चुन्द ! जिसे कि अच्छी तरह कहनेवाले कहते हैं—देखते हुए भी नहीं देखता।

"० क्या देखते हुए नही देखता ? इस प्रकारके सब तरहसे सम्पन्न ० ब्रह्मचर्यको वैसा नहीं देखता है, इस प्रकार इसे नहीं देखता। 'यहाँसे इसे निकाल दें, तो यह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नही देखता, 'यहाँ इसे मिला दे, तो वह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नहीं देखता। इसे कहते हैं—'देखते हुए नही देखता'। चुन्द ! जिसके बारेमें अच्छी तरह कहनेवाले ०।

४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म

"अत चुन्द ! जिन धर्मको मैंने बोधकर तुम्हे उपदेश किया है, उसे सभी मिल जुलकर ठीक समझे बूझे, विवाद न करे। जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अच्छा और चिरस्थायी होगा, जो कि लोगोंके हित, सुखके लिये, ससारपर अनुकम्पाके लिये, देव मनुष्योंके अर्थके लिये, हितके लिये, सुखके लिये होगा।

"चुन्द ! मैंने किन धर्मोको बोधकर तुम्हे उपदेश किया है जिन्हे कि सभी मिलजुलकर समझ बूझे, विवाद न करे ० ? (वे ये हैं[1]) जैसे कि—चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। चुन्द ! मैंने इन्ही धर्मोको बोधकर उपदेश किया है, जिसे कि सभी लोग मिलजुलकर ०। चुन्द ! उन्होंके विषयमे बिना विवाद किये, मिलजुलकर समझना बूझना चाहिये, ऐसा समझो।

५—बुद्ध-वचनकी कसौटी

"यदि कोई सब्रह्मचारी सघमे धर्म (=बुद्धवचन) भाषण करता हो और वहाँ तुम्हारे मनमे ऐसा हो—'यह आयुष्मान् इस अर्थको गलत लगाते हैं, और वाक्य-योजना (=व्यजन) ठीक नही लगाते'—तो न उसका अभिनन्दन करना चाहिये और न निन्दना चाहिये। बिना अभिनदन किये बिना निन्दे उससे यो कहना चाहिये—'आवुस ! इस अर्थके लिये ऐसा वाक्य या वैसा वाक्य है ? कौन इनमें अधिक ठीक जँचता है, इन वाक्योका यह अर्थ या वह अर्थ, कौन अधिक ठीक जँचता है ?' यदि तो भी वह ऐसा कहे—'आवुस ! इस अर्थमे यही वाक्य अधिक ठीक जँचते हैं, इन वाक्योका यही अर्थ ठीक है (जैसा मैने कहा)। तो उसे न लेना चाहिये, न हटाना चाहिये। बिना लिये या हटाये उस अर्थ और उन वाक्योंको ठीकसे लगानेके लिये स्वय अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"चुन्द ! यदि सघमें और भी कोई सब्रह्मचारी (=गुरुभाई) धर्म भाषण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमे हो—'ये आयुष्मान् 'अर्थ' गलत समझते हैं वाक्योको ठीक जोड़ते हैं तो न तो उसका

---

[1] यही सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्म कहे जाते है।

अभिनन्दन करना चाहिये और न उसे निन्दना चाहिये। ० बल्कि उससे यो कहना चाहिये—'आवुस ! ० कौन ठीक है ?' यदि तो भी वह वैसा कहे ० तो ० उसे अच्छी तरह समझाना चाहिये।

"चुन्द ! यदि ० सब्रह्मचारी धर्म भाषण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमें हो—'० अर्थ ठीक समझते है, किन्तु, वाक्योको ठीक नही जोळते'। ० तो उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"यदि सघमें ० धर्म भाषण करता हो। और तुम्हारे मनमे ऐसा हो—'थे आयुष्मान् अर्थको भी ठीक समझते है, वाक्योंको भी ठीक जोळते हैं'—तो उसे साधुकार देना चाहिये, अभिनन्दन, अनुमोदन करना चाहिये। ० उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! हम लोगोको लाभ है, हम लोगोको सुन्दर लाभ है, कि आप आयुष्मान् जैसे अर्थज्ञ वाक्यज्ञ ब्रह्मचारीके दर्शनका अवसर मिलता है।

६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये

"चुन्द ! मैं दृष्टधार्मिक (=इसी जन्ममें) आस्रवों (=चित्तमलो)के सवर (=सयम)के ही लिये धर्मोपदेश नही करता, और न चुन्द ! केवल परजन्मके आस्रवोंहीके नाशके लिये। चुन्द ! मैं दृष्टधार्मिक और पारलौकिक दोनो ही आस्रवोके सवर और नाशके लिये धर्मोपदेश करता हूँ। इसलिये, चुन्द ! मैंने जो तुम्हे चीवर-सवधी अनुज्ञा दी है, वह सर्दी रोकनेके लिये, गर्मी रोकनेके लिये, मक्खी-मच्छर हवा धूप साँप बिच्छूके आघात (=स्पर्श)को रोकनेके लिये, तथा लाज शर्म ढाँकनेके लिये पर्याप्त है।

'जो मैंने पिण्डपात(=भिक्षा)-सबधी अनुज्ञा दी है सो इस शरीरको कायम रखनेके लिये, निर्वाह करनेके लिये, (क्षुधाकी) पीडा शात करनेके लिये, और ब्रह्मचर्यकी सहायताके लिये पर्याप्त है—'इस तरह पुरानी वेदनाओका (इस समय)सामना करता हूँ, और नई वेदनाओको उत्पन्न नही करूँगा, मेरी जीवन-यात्रा चलेगी, निर्दोष और सुखमय विहार होगा'।

"जो मैंने शयनासन(=घर बिस्तरा)सबधी अनुज्ञा दी है, सो सर्दी रोकनेके लिये ० साँप बिच्छूके आघातको रोकनेके लिये और ऋतुओंके प्रकोपसे बचने तथा ध्यानमें रमण करनेके लिये पर्याप्त है।

"जो मैंने रोगीके पथ्य-औषधकी वस्तुओ (=ग्लान प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारो)के सबधमे अनुज्ञा दी है, सो होनेवाले रोगोके रोकने और अच्छी तरह स्वस्थ रहनेके लिये पर्याप्त है।

७—अनुचित और उचित आराम पसन्दी

१—अनुचित—"चुन्द ! ऐसा हो सकता है कि दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण आरामपसद हो विहार करते हैं। ऐसा कहनेवाले० को यह कहना चाहिये—'आवुस ! वह आरामपसदी क्या है ? आरामपसन्दी नाना प्रकारकी होती है।' चुन्द ! यह चार प्रकारकी आरामपसदी निकृष्ट=ग्राम्य, मूढ-सेवित, अनर्थ-युक्त हैं, जो न निर्वेदके लिये, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शान्तिके लिये, न अभिज्ञाके लिये, न सम्बोधिके लिये, न निर्वाणके लिये है। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! कोई कोई मूर्ख जीवोका वध करके आनन्दित होता है, प्रसन्न होता है। यह पहली आरामपसन्दी है। (२) चुन्द ! कोई चोरी करके ०। यह दूसरी ०। (३) चुन्द ! कोई झूठ बोलकर०। यह तीसरी०। (४) चुन्द ! कोई पाँच भोगोंमे सेवित होकर०। यह चौथी०। यह चार सुखोपभोग आरामपसदी निकृष्ट० है। हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतवाले साधु ऐसा कहे—'इन चार सुखोपभोग, आरामपसन्दीसे युक्त हो शाक्यपुत्रीय श्रमण विहार करते हैं'। उन्हे कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। उनके विषयमें ऐसा मत कहो, उनपर झूठा दोषारोपण न करो।'

२—उचित—'चुन्द ! चार आरामपसन्दी पूर्णतया निर्वेद=विरागके लिये, निरोधके लिये, शान्तिके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये है। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! भिक्षु कामोको छोळ, अकुशल धर्मोंको छोळ, वितर्क-विचार-युक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह पहली ० है। (२) चुन्द ! भिक्षु ०[1] समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह दूसरी ० है। (३) चुन्द ! ० तृतीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह तीसरी ०। (४) चुन्द ! ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह चौथी०। चुन्द ! यही चार आरामपसन्दी एकान्त निर्वेदके लिये० है। चुन्द ! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिव्राजक कहे—*शाक्यपुत्रीय श्रमण ० आरामपसन्दी०। उन्हें 'हाँ' कहना चाहिये*—यह तुम्हारे लिये ठीक कहते है, मिथ्या झूठा दोष नही लगाते।

३—उचितका फल—"हो सकता है चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक पूछें—*'आवुस ! इन चार आरामपसदियोसे युक्त हो विहार करनेपर क्या फल=आनृशंस होना है ? तो चुन्द !* ० उन्हें ऐसे उत्तर देना चाहिये—'आवुस ! इन ०के चार फल, चार आनृशंस हो सकते है। कौनसे चार ? (१) ० भिक्षु तीन संयोजनो (=बन्धनो)के नाशसे अविनिपातधर्मा, नियत, सम्बोधिपरायण स्रोत-आपन्न होता है। यह पहला फल, पहला आनृशंस है। (२) ० ! फिर भिक्षु तीन ० संयोजनोंके नाश, राग, द्वेष, मोहके दुर्बल हो जानेसे सकृदागामी होता है, वह एक ही वार इस लोकमे आकर दु खका अन्त करता है। (३) ० फिर, भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनो (=इसी संसारमे फँसाये रखनेवाले बन्धनो) के नष्ट होनेसे औपपातिक (देवता) हो वहाँ निर्वाणको पाता है, उस लोकसे नही लौटता। (४) ० और फिर भिक्षु ० आस्रवोके क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको यही स्वयं जान, साक्षात् कर विहार करता है। यह चौथा फल=आनृशंस है। आवुस ! इन चार आरामपसदियोंमें युक्त हो विहार करनेवालाके ये ही चार आनृशंस होने चाहियें।

८–भिक्षु धर्मपर आरूढ़

"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक ऐसा कहे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण अस्थितधर्मा (=जिन्हे धर्ममें स्थिरता नही है) होकर विहार करते है।' तो चुन्द ! ऐसे कहनेवाले ० को ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! उन जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्ने शिष्यो(=श्रावको)को जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुल्लघनीय है। आवुस ! जैसे नीचेतक गळा, अच्छी तरह गळा इन्द्रकील(=किलेके द्वारपर गळा कील)या लोहेका कील, अचल और दृढ होता है, उसी तरह उन ० भगवान्ने श्रावकोको जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुलघनीय है। आवुसो ! जो भिक्षु समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त (=अनुप्राप्त-सदर्थ) सासारिक बधनोसे मुक्त, सम्यक् ज्ञानसे विमुक्त क्षीणास्रव, अर्हत् है, वह नौ बातोके अयोग्य है। आवुसो ! (१) अनास्रव भिक्षु जान बूझकर जीव मारनेके अयोग्य है। (२) ० चोरी ०। (३) मैथुन सेवन ०। (४) जान बूझकर झूठ बोलने ०। (५) पहिले गृहस्थ के वक्त के सासारिक भोगोके जोळने बटोरने ०। (६) राग के रास्ते जाने में ०। (७) ० द्वेषके रास्ते जाने में ०। (८) ० मोहके रास्ते जानेमे ०। (९) क्षीणास्रव भिक्षु भयके रास्ते जानेमे अयोग्य है। आवुसो ! जो ० अर्हत् है ० वह इन नौ बातोके अयोग्य है।

९–बुद्ध कालवादी यथार्थवादी

१—कालवादी—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक कहे—*'अतीत कालको* लेकर श्रमण गौतम अधिक ज्ञान=दर्शन बतलाता है, अनागत कालको लेकर अधिक ज्ञान=दर्शन नही बतलाता—सो यह क्या है, सो यह कैसे' ? वे दूसरे मतके परिव्राजक बाल=अजानकी भाँति दूसरे प्रकारके ज्ञान=दर्शनसे दूसरे प्रकारके ज्ञानदर्शनका ज्ञापन करना मानते है। चुन्द ! अतीत कालके विषयमे तथागतको स्मृतिके अनुसार ज्ञान होता है, वह जितना चाहते है, उतना स्मरण करते है।

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

चुन्द ! अनागत कालके विषयमे तथागतको बोधिसे उत्पन्न ज्ञान उत्पन्न होता है—'यह मेरा अन्तिम जन्म है, फिर आवागमन नही है।' चुन्द ! यदि अतीत की बात अतथ्य=अभूत और अनर्थक हो; तो तथागत उसे नही कहते। चुन्द ! अतीतकी बात तथ्य=भूत किन्तु अनर्थक हो, तो उसे भी तथागत नही कहते। वहाँ तथागत उस प्रश्नके उत्तर देनेमें काल जानते हैं। ० अनागतकी ०। वर्तमानकी ० । चुन्द ! इस प्रकार तथागत अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न धर्मोके विषयमें कालवादी (=कालोचित वक्ता), भूतवादी (सत्यवक्ता), अर्थवादी, धर्मवादी विनयवादी है। इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।

२—यथार्थवादी—"चुन्द ! देवताओं, मार, ब्रह्मा सहित सारे लोक, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण-सहित सारी जनताने जो कुछ देखा, सुना, पाया, जाना, खोजा, मनसे विचारा है, सभी तथागतको ज्ञात है। इसीलिये वे तथागत कहे जाते है। चुन्द ! जिस रातको तथागत अनुपम सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त करते है, और जिस रातको उपाधिरहित परिनिर्वाण प्राप्त करते है, इन दो समयोके बीचमें जो कहते है, और निर्देश करते है, वह सब वैसा ही होता है, अन्यथा नही। इसी लिये ०। चुन्द ! तथागत यथावादी तथाकारी और यथाकारी, तथावादी होते है। इस प्रकार यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी। इसलिये ०। चुन्द ! इस ० सारे लोक ० म तथागत विजेता (=अभिभू), =अ-पराजित (=अनभिभूत), एक बात कहनेवाले, द्रष्टा और वशवर्ती होते हैं। इसलिये ०।

१०–अव्याकृत और व्याकृत बातें

१—अव्याकृत—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक ऐसा पूछे—'आवुस ! क्या तथागत मरनेके बाद रहते हैं' यही सच है और बाकी सब झूठ ? ०' (उन्हे) ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्ने ऐसा नही कहा है—'तथागत मरनेके बाद रहते है, यही सच, और बाकी सब झूठ।' यदि दूसरे ० ऐसा पूछे—० 'क्या तथागत मरनेके बाद नही रहते, यही सच ० ?' ० उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्ने ऐसा भी नही कहा है—तथागत मरनेके बाद नही रहते, यही सच ०'। यदि ० पूछे—० क्या तथागत मरनेके बाद रहते भी है और नही भी रहते है, यही सच०?' ०भगवान्ने ऐसा भी नही कहा है। ०यदि पूछे—०'क्या०न रहते है और न नही रहते है०?' ०भगवान्ने ऐसा भी नही कहा है। ० यदि पूछें—'आवुस ! श्रमण गौतमने इस विषयमें क्यो कुछ नही कहा ?' ०तो उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! न तो यह अर्थोपयोगी है, न धर्मोपयोगी, न ब्रह्मचर्योपयोगी न निर्वेदके लिये है, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शांति (=उपशम)के लिये है, न ज्ञानके लिये, न सम्बोधिके लिये है, न निर्वाणके लिये। इसी लिये भगवान्ने उसे नही कहा।'

२—व्याकृत—"०यदि ऐसा पूछें—'श्रमण गौतमने क्या कहा है ?' ०ऐसा उत्तर देना चाहिये—भगवान्ने कहा है—'यह दुःख है, यह दुःख-समुदय है, यह दुःख निरोध है, यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् है।' ०यदि ऐसा पूछे—'आवुस ! श्रमण गौतमने इसे किस लिये बताया है ?' ०ऐसा उत्तर देना चाहिये—'आवुसो ! यही अर्थोपयोगी, धर्मोपयोगी ० है। इसीलिये भगवान्ने इसे बताया है।'

११–पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन

"चुन्द ! जो पूर्वान्त सबधी दृष्टियाँ (=मत) है, मैने उन्हे भी ठीकसे कह दिया, बेटीकके विषयमे मै और क्या कहूँगा ? चुन्द ! जो अपरान्त-सबधी दृष्टियाँ हैं, मैने उन्हे भी ० कह दिया ०।

१—पूर्वान्त दर्शन—"चुन्द ! वे पूर्वान्त सबधी दृष्टियाँ कौन है जिन्हे मैने ० कह दिया ० ? चुन्द ! कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहनेवाले और इस सिद्धान्तके माननेवाले है—'आत्मा और लोक शाश्वत (=नित्य) है', यही सच है और दूसरा झूठ।—'आत्मा और लोक अशाश्वत है' ०। 'आत्मा और लोक शाश्वत और अशाश्वत दोनो है' ०। 'आत्मा और लोक न शाश्वत और न अशाश्वत है ०'। 'आत्मा और लोक स्वयकृत ०। 'आत्मा और लोक परकृत ०। 'आत्मा और लोक अधीत्य-(=अभावसे)

समुत्पन्न है', यही सच और दूसरा झूठ। सुख-दुःख शाश्वत है ०। ० अशाश्वत है ०। ० शाश्वत-अशाश्वत दोनों है ०। ० न शाश्वत न अशाश्वत है ०। ० स्वयंकृत ०। ० परकृत ०। ० स्वयंकृत और परकृत ० सुख-दुःख न स्वयंकृत न परकृत बल्कि अधीत्य-समुत्पन्न हैं, यही सच और दूसरा झूठ।'

"चुन्द! जो श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते हैं—'आत्मा और लोक शाश्वत हैं'—यही सच और दूसरा झूठ', उनके पास जाकर मैं ऐसा पूछता हूँ—'आवुस! ऐसा जो कहते हो—'आत्मा और लोक शाश्वत है?' सो कहा जाता है; किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच है और दूसरा झूठ' उसमें मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले भी प्राणी हैं।

"चुन्द! इस प्रज्ञप्ति (=व्याख्यान) में मैं किसी को अपने समान भी नहीं देखता, बढ़कर कहाँसे? बल्कि प्रज्ञप्तिमें मैं ही बढ़-चढ़कर हूँ।

"तो चुन्द! जो श्रमण या ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते हैं—'आत्मा और लोक शाश्वत है ०। अशाश्वत ०। ०। सुख-दुःख शाश्वत ०, यही सच और दूसरा झूठ—उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—आवुस! ऐसा जो कहते हो ० सो० है? किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच और दूसरा झूठ', उसमें मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी हैं।

"चुन्द! इस प्रज्ञप्तिमें, मैं किसीको अपने समान भी नहीं देखता, बढ़कर कहाँसे! बल्कि प्रज्ञप्तिमें मैं ही बढ़-चढ़कर हूँ।

"चुन्द! जो पूर्वान्त-संबंधी दृष्टियाँ है, मैंने उन्हें भी जैसा कहना चाहिये था, कह दिया, और जैसा नहीं कहना चाहिये था, उसके विषय में मैं और क्या कहूँगा?

२—अपरान्त दर्शन—"चुन्द! अपरान्त-संबंधी दृष्टियाँ कौन हैं जिन्हें जैसा कहना चाहिये था मैंने कह दिया०, जैसा नहीं कहना चाहिये था, उसके विषयमें मैं और क्या कहूँगा? चुन्द! कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसे वादके ऐसे मतके माननेवाले हैं—'आत्मा रूपवान् है, मरनेके बाद अरोग (=परम सुखी) रहता है'—०। आत्मा रूप-रहित है ०। आत्मा रूपवान् और रूपरहित है ०। ० न रूपवान् और न रूपरहित ०। ० संज्ञावाला है ०। ० संज्ञा-रहित ०। ० न संज्ञावान् और न संज्ञा-रहित ०। ० उच्छिन्न और नष्ट हो जाता है, मरनेके बाद नहीं रहता ०।

"चुन्द! ० उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—"आवुस! है ऐसा, जैसा कि कहते हो—आत्मा रूपवान् है ०। किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच और दूसरा झूठ', उससे मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी हैं। ० किसीको अपने समान नहीं देखता ०।

चुन्द! अपरान्त-संबंधी दृष्टियाँ ये ही हैं जिन्हें कि ० मैंने कह दिया ०।

१२—स्मृति प्रस्थान

"चुन्द! इन्हीं पूर्वान्त और अपरान्त संबंधी दृष्टियों[1] के दूर करनेके लिये, अतिक्रमण करनेके लिये, इस तरह मैंने चार स्मृतिप्रस्थानोंका उपदेश किया है। कौनसे चार?—(१) ०[2] कायामें कायानुपश्यी हो ०[2] विहरता है। चुन्द! इन पूर्वान्त और अपरान्त संबंधी दृष्टियोंके दूर करनेके लिये ही ० मैंने चार स्मृतिप्रस्थानोंका उपदेश किया है।"

उस समय आयुष्मान् उपवाण भगवान्‌के पीछे हो, भगवान्‌को पंखा झल रहे थे।

तब आयुष्मान् उपवाणने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! भन्ते! यह धर्मोपदेश (=धर्मपर्याय) पासादिक (=बड़ा सुन्दर) है।"

"तो उपवाण! तुम इस धर्मपर्यायको पासादिक ही करके धारण करो।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो आयुष्मान् उपवाणने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] पूर्वान्त अपरान्त दर्शनोंके लिये देखो पृष्ठ ५-१४।

[2] देखो महासतिपट्ठान सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

३०–लक्खण-सुत्त (३।७)

१—बत्तीस महापुरुष-लक्षण । २—किस कर्म विपाकसे कौन लक्षण ।

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" कह उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

१–बत्तीस महापुरुष-लक्षण

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ! महापुरुषोंके बत्तीस महापुरुष-लक्षण हैं, जिनसे युक्त महापुरुषोंकी दो ही गतियाँ होती हैं तीसरी नहीं।—(१) यदि वह घरमें रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारों ओर विजय पानेवाला, शान्ति-स्थापक, सात रत्नोंसे युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—चक्र-रत्न, हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न गृहपति-रत्न, और सातवाँ पुत्र-रत्न—एक हजारसे भी अधिक सूर-वीर, दूसरेकी सेनाओंका मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते हैं। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) संसारके आवरणको हटा देनेवाला अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होता है।

भिक्षुओ! वह महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण[1] कौनसे हैं, ·जिनसे युक्त होनेसे०? यदि वह घरमें रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है०। भिक्षुओ! (१) सुप्रतिष्ठित-पाद (=जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी महापुरुष लक्षणोंमें एक है। (२) नीचे पैरके तलवेमें सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=पुट्ठी)-युक्त सहस्र अरोंवाला चक्र होता है। (३) आयत-पार्ष्णि (=चौड़ी घुट्ठीवाला) है। (४) ० दीर्घ-अंगुल०। (५) ० मृदु-तरुण-हस्त पाद०। (६) ० जाल-हस्त-पाद (=अंगुलियाँ) ०। झिल्लीसे जुड़ी (७) ० उस्संखपाद (=गुल्फ जिस पादमें ऊपर अवस्थित हैं)०। (८) ० एणी-जंघ (=मृग जैसा-पेंडुलीवाला) ०। (९) ० (सीधे) खड़े, बिना झुके दोनों घुटनोंको अपने हाथके तलवेसे छूता है (आजानुबाहु) ०। (१०) कोषाच्छादित वस्ति-गुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) ०। (११) सुवर्ण वर्ण० कांचन समान त्वचावाला०। (१२) सूक्ष्म-छवि (छवि=ऊपरी चमड़ा) है० जिससे काया पर मैल-धूल नहीं चिपटती०। (१३) एकैक लोम, एक एक रोम कूपमें एक एक रोम वाला०। (१४) ० ऊर्ध्वाग्र-लोम ० उसके अंजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (=बायेंसे दाहिनी ओर)से कुंडलित लोमोंके सिरे ऊपरको उठे हैं०। (१५) ब्रह्म-ऋजु-गात्र (-लम्बे अकुटिल शरीरवाला) ०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातों अंगोंमें पूर्ण आकारवाला) ०।

---

[1] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त ९१ (मज्झिमनिकाय पृष्ठ ३७४-७५)।

(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=जिसका छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति विशाल हो) ०। (१८) चितान्तरांस (=जिसका दोनों कंधोंका बिचला भाग चित्तपूर्ण है) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमंडल ० जितनी शरीरकी ऊँचाई, उतना व्यायाम (=चौड़ाई) (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कंधेवाला) ०। (२१) रसग्गसग्गी (=सुन्दर शिराओंवाला) ०। (२२) सिंह-हनु (=सिंह-समान पूर्ण ठोढीवाला) ०। (२३) चत्वारिंश-दन्त ०। (२४) सम-दन्त ०। (२५) अविवर-दन्त (=दाँतोंके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ (=खूब सफेद दाढवाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ०। (२८) ब्रह्मस्वर, करविक (पक्षीसे) स्वरवाला ०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली आँखोंवाला) ०। (३०) गो-पक्ष्म (गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) भौंहोंके बीचमें श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है ०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगडी सिरवाला) ० है। भिक्षुओ! यह महापुरुष-लक्षणोंमें है।

२—किस कर्म-विपाकमें कौन लक्षण

"भिक्षुओ! इन बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंको बाहरके ऋषि भी जानते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि किस कर्मके करनेसे किस लक्षणका लाभ होता है।

१—कायिक सदाचार—(१) 'भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म=पूर्व भव, पूर्व-निवासमें मनुष्य हो, कायिकसदाचार,—दान, शीलाचरण, उपोसथ-व्रत, माता-पिता, श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, बड़े लोगोंके सत्कार और दूसरे सुकर्मोंको स्थिर दृढ हो करनेवाले थे। उन पुण्य कर्मोंके समय, विपुलताम काया छोड़, मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें जन्मते हैं। वहाँ अन्य देवोंसे दिव्य आयु, वर्ण, सुख, यश, प्रभुत्व, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श दस बातोंमें बढ जाते हैं। वे वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पा सुप्रतिष्ठितपाद होते हैं ०। उस लक्षणसे युक्त हो, यदि घरमें रहते हैं, तो ० चक्रवर्ती राजा होते हैं। राजा हो क्या पाते हैं? किसी भी मनुष्य शत्रुसे अजेय होना—राजा हो यही पाते हैं। यदि ० प्रव्रजित होते हैं, तो ० अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होते हैं। बुद्ध हो क्या पाते हैं? आन्तरिक शत्रु=अमित्र—राग, द्वेष, मोह, और श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसारमें किसी भी दूसरे विरोधी, बाह्य शत्रुसे अजेय रहते हैं।" बुद्ध हो भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह कहा गया है—

सत्य, धर्म, दम, संयम, शौच शील और उपोसथ-कर्म,
दान, अहिंसा, और अच्छे कामोंमें रत रहकर, दृढ हो उन्होंने आचरण किया ॥१॥
वह उस कर्मसे स्वर्ग गये, और क्रीडा, रति तथा सुखको अनुभव करते रहे।
फिर, वहाँसे च्युत हो यहाँ आ, उन्होंने सम-पादोंसे पृथ्वीको स्पर्श किया ॥२॥
सामुद्रिक वालोंने आकर कहा—सम्प्रतिष्ठित पादवालेकी पराजय कभी नहीं होती।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, यह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥३॥
घरपर रहते वह विजयी शत्रुओं द्वारा अजेय रहता है।
उस कर्मके फलसे इस संसारमें वह किसी भी मनुष्यसे जेय नहीं होता ॥४॥
यदि वह विचक्षण निष्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रज्या लेता है,
तो वह श्रेष्ठ नरोत्तम फिर आवागमनमें नहीं पड़ता, यही उसकी धर्मता है ॥५॥

२—प्रिय कारिता—(२) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म ० में मनुष्य होकर लोगोंके बड़े प्रियकारी थे। उन्होंने उद्वेग, चंचलता और भयको हटा, धार्मिक बातोंकी रक्षाका विधानकर विधिपूर्वक दान दिया। (अतः) वे ० सुगतिको प्राप्त हुये। (फिर) वहाँसे च्युत हो यहाँ आ पैरके तलवेमें चक्र—इस

महापुरुप-लक्षणको पाते हैं। वे इस लक्षणसे युक्त हो यदि घरमे रहते हैं ०। राजा होकर क्या पाते हैं ? ब्राह्मण, गृहपति, नैगम (=नागरिक सभासद्), जानपद (=देहाती सभासद्), कोषाध्यक्ष, मन्त्री, शरीररक्षक, द्वारपाल, सभासद्, राजा और अधीनस्थ कुमार—यह उनका बहुत बळा परिवार होता हैं। राजा होकर यह पाते हैं। यदि ० प्रव्रजित होते हैं, ० अर्हत् सम्यक् सबुद्ध होते हैं। बुद्ध होकर क्या पाते हैं ? यह भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव मनुष्य, असुर-नाग-गन्धर्व यह उनका बहुत बळा परिवार होता है। बुद्ध होकर यही पाते हैं।" भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह कहा गया है—

पहले, पूर्व जन्मोमे मनुष्य हो बहुतोके सुखदायक थे।

उद्वेग, त्रास और भयको दूर करनेवाले, रक्षा=आवरण=गुप्तिमे लगे रहे थे ॥६॥

सो उस कर्मसे देवलोकमे जा, उन्होने सुख, क्रीडा रतिको अनुभव किया।

वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ, दोनो पैरोमें सहस्र अरोवाले फैली पुट्ठीके चक्रको पाये ॥७॥

सो पुण्य लक्षणोवाले कुमारको देख, आये हुये ज्योतिषियोने कहा—

यह शत्रुमर्दन (तथा) बळे परिवारवाले होगे क्योकि (इनके पैरम) समन्तनेमि चक्र है ॥८॥

यदि ऐसा (पुरुष) प्रव्रजित नही हो तो चक्र चलाता है, पृथ्वीका शासन करता है।

क्षत्रिय उस महायशके अनुगामी सेवक बनते हैं ॥९॥

यदि वह विचक्षण निष्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रजित हो जाता है।

तो देव, मनुष्य, असुर, प्राणी, राक्षस, गन्धर्व, नाग, पक्षी, चतुष्पाद।

उस देव-मनुष्योसे पूजित अनुपम महायशस्वीकी सेवा करते हैं ॥१०॥

३—जीवहिंसाका त्याग—(३-५) "भिक्षुओ ! तथागत पूर्व जन्म ० में मनुष्य होकर जीव-हिंसाको छोळ, जीव हिंसासे विरत रहते थे—दण्ड और शस्त्र छोळ, कृपालु, लज्जालु, दयालु सभी जीवोके हितेच्छु विहार करते थे। सो उस कर्मके करनेके कारण ० तीन लक्षणोको पाते हैं—(३) घुट्ठी बळी (४) अँगुली लम्बी (५) लम्बा सीधा शरीर होता है। ० राजा हो क्या पाते हैं ? दीर्घ आयुवाले हो, बहुत दिन जीते हैं। कोई मनुष्य शत्रु उन्हे मार नहीं सकता। ० बुद्ध होकर क्या पाते हैं ? ० कोई श्रमण-ब्राह्मण या देव ० नही मार सकता ०।" वहाँ यह कहा गया है—

अपनी मृत्यु, क्षय और भयको देख, वह दूसरेको मारनेसे विरत रहे।

उस सुचरितसे स्वर्ग सुकृतके फल विपाकको भोगा ॥११॥

वहाँसे च्युत हो यहाँ आ तीन लक्षण पाये—

घुट्ठी बळी होती है, ब्रह्माके ऐसा सीधा, शुभ और सुजात शरीर होता है ॥१२॥

और शिशुकी भुजाके समान मनोहर सुन्दर भुजायें तथा अँगुली मृदु, तरुण और लम्बी होती हैं।

महापुरुषके इन तीन श्रेष्ठ लक्षणोसे युक्त कुमारको दीर्घजीवी बतलाते हैं ॥१३॥

यदि गृहस्थ होता हैं तो दीर्घायु होता है, और यदि प्रव्रजित होता है तो उससे भी अधिक दिन जीता है।

(स्व-)वशी हो ऋद्धिभावनाके लिये जीता है इस प्रकार वह लक्षण दीर्घायुता का है ॥१४॥

४—सुन्दर भोजनका दान—(६) "जो कि भिक्षुओ ! ० सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेयका दान देते थे। ० इस कर्मके करनेसे ० लक्षण ० —सप्त-उस्सद—दोनो हाथ, दोनो पैर, दोनो कधे और गर्दन भरे रहते है। ० राजा होकर सुन्दर भोजन, और पान पाते है ०। ० बुद्ध होकर सुन्दर भोजन और पान पाता है।'

०यह कहा गया है—

सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य भोज्य पेय अन्नके दाता थे।
इस सुचरित कर्मसे वह नन्दन-काननमें बहुत दिनों तक प्रमोद करते रहे ॥१५॥
यहाँ आकर वह सप्त-उत्सद प्राप्त करते हैं उनके हाथ पैर कोमल मृदु होते हैं।
लक्षणज्ञ उनको खाद्य भोज्यका लाभी होना बतलाते हैं ॥१६॥
यह (लक्षण) गृहस्थ होनेपर भी यही बतलाता है, प्रव्रजित होने पर भी वह उसे पाते हैं।
उन्हें उत्तम खाद्य-भोज्यका लाभी, (तथा) सभी गृहस्थ-बंधनोंका छेदक कहा गया है ॥१७॥

५—मेल कराना—(७-८) "जो कि भिक्षुओ! ०दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या (=उपकारका काम) और समानताका व्यवहार—इन चार संग्रह-वस्तुओंसे लोगों का संग्रह करते थे उस कर्मके करनेसे ० लक्षण०—(७) हाथ पैर मृदु तरुण, तथा (८) जालवाले होते हैं। ० राजा होनेपर ब्राह्मण, गृहपति, कोषाध्यक्ष ० सभी परिजन उनके मेलमें रहते हैं। ० बुद्ध होनेपर भिक्षु, भिक्षुणी ० उनके सभी परिजन मेलमें रहते हैं।"०

दान, अर्थ-चर्या, प्रिय वचन और समान भावसे,
करके बहुत लोगोंका संग्रह, उस अप्रमाद गुणसे स्वर्ग जाता है ॥१८॥
वहाँसे च्युत हो यहाँ आ मृदु=तरुण और जालवाले।
अत्यन्त रुचिर, सुन्दर और दर्शनीय शिशु जैसे हाथ पैरको पाता है ॥१९॥
परिजनका प्रिय होता है, संग्रह करके इस पृथ्वीको वश में रखता है।
प्रियवक्ता और हित-सुखका अन्वेषक बन प्रिय गुणोंका आचरण करता है ॥२०॥
यदि सभी काम-भोगोंको छोळता है, तो जितेन्द्रिय हो लोगोंको धर्म कहता है,
उसके धर्मोपदेशसे प्रसन्न हो लोग धर्मानुसार आचरण करते हैं ॥२१॥

६—अर्थ-धर्मका उपदेश—(९-१०) "भिक्षुओ। ० लोगोंको अर्थ-संबधी, और धर्म-संबंधी बातें करते, निर्देश करते थे, प्राणियोंके हित और सुखके लिये धर्म-यज्ञ करते थे ० दो लक्षण—उस्सग-पाद (=ऊपरे उठे गुल्फोंवाला पैर), और ऊर्ध्वाग्रलोम (=शरीरके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते हैं, साधारण लोगोंके लोम नीचेकी ओर)। ० राजा होकर कामभोगियोंमें अग्र, श्रेष्ठ=प्रमुख उत्तम और प्रवर होते हैं ०। बुद्ध होकर सभी सत्वोंमें अग्र, श्रेष्ठ ०।"

०यह कहा गया—

पहले बहुतोंको अर्थधर्म संबधी-बातें कहीं, उपदेश की।
प्राणियोंके हित और सुखका दाता बन, मत्सर रहित हो धर्म-यज्ञ किया ॥२२॥
उस सुचरित कर्मसे वह सुगतिको प्राप्त हो प्रमुदित होता है।
यहाँ आकर उत्तम और प्रमुख होनेके लिये दो लक्षण पाता है ॥२३॥
उसके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते हैं, पैरकी घुट्ठी (=गुल्फ) स्थित होती है।
वह मांस, रुधिर तथा चमळेसे अच्छी तरह ढकी, और चरणके ऊपर शोभायमान रहती है ॥२४॥
वैसा व्यक्ति घरमें रहता है तो काम-भोगियोंमें श्रेष्ठ होता है।
उससे बढ़कर कोई नहीं होता। वह सारे जम्बूद्वीपको जीतकर रहता है ॥२५॥
अनुपम गृह-त्यागकर प्रव्रजित हो सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ होता है।
उससे बढ़कर कोई नहीं होता, वह सारे लोकको जीतकर विहार करता है ॥२६॥

७—सत्कार पूर्वक शिक्षण—(११) "जो कि भिक्षुओ! पहले जन्ममें ० शिल्प, विद्या,

आचरण और (नाना) कर्मोको बळे सत्कारपूर्वक सिखाते थे—कि (विद्यार्थी) शीघ्र जान जायें, शीघ्र सीख जाये, देर तक हैरान न हो। ०लक्षण—मृगके समान जघा होती है। ०चक्रवर्ती राजा हो राजाके योग्य, राजाके अनुकूल (वस्तुओ) को शीघ्र पाते है ०।० बुद्ध होकर श्रमणोके योग्य० वस्तुओ तथा भोगो को शीघ्र पाते है ०।"

"०यहाँ कहा गया है—

'शिल्प, विद्या और आचरणके कर्मोको कैसे शीघ्र जान ले, यह चाहता है।'

जिसमें किसीको कष्ट न हो, इसलिये वहुत शीघ्र पढाता है, क्लेश नहीं देता ॥२७॥

उस सुखदायक पुण्यकर्मको करके परिपूर्ण सुन्दर जघाको पाता है।

(जो कि) गोल, सुजात, चढाव-उतार, ऊर्ध्वरोमा तथा सूक्ष्म चर्म-वेष्टित होती है ॥२८॥

उस पुरुषको लोग एणीजघ कहते है, इस लक्षणको शीघ्र सम्पत्तिदायक वताते है,

यदि वह घरहीमें रहना पसद करता है, और ससारमें आकर प्रव्रजित नही होता ॥२९॥

यदि वैसा विचक्षण (पुरुष) निष्कामताकी इच्छासे प्रव्रजित होता है,

तो योग्यताके अनुकूल ही वह अनुपम गृहत्यागी उसे शीघ्र पा लेता है ॥३०॥

८—हितकी जिज्ञासा—(१२) "जो कि भिक्षुओ! वह ० श्रमणो—ब्राह्मणोके पास जाकर प्रश्न करते थे—"भन्ते! क्या कुशल (=भलाई) है, और क्या अ-कुशल? क्या सदोष है, क्या निर्दोष? क्या सेवनीय है, क्या अ-सेवनीय है? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक अहित, दुखके लिये होगा? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक हित, सुखके लिये होगा? वह इस कर्मके करनेसे ० ० लक्षण ०—० सूक्ष्म-छवि (=पतलेचिक्ने चर्मवाला) होते है। ० उनके शरीरपर धूली नही जमती।० चक्रवर्ती राजा होकर महाप्रज्ञ होते है। काम-भोगियोमें न तो कोई उनके समान और न कोई उनसे वढकर प्रज्ञावाले होते है।० बुद्ध होकर महाप्रज्ञ, पृथुप्रज्ञ, तीव्रवुद्धि, क्षिप्रवुद्धि, तीक्ष्णप्रज्ञ, निर्वेधिकप्रज्ञ होते है। समस्त प्राणियोमें उनके समान या वढकर कोई नही होता। ०

० यहाँ कहा गया है—

पहले पूर्व-जन्मोमें, जाननेकी इच्छासे प्रव्रजितोके पास

उनकी सेवा करके प्रश्न किया करता था, और उनके उपदेशोपर ध्यान देता था ॥३१॥

प्रज्ञा-प्रदाता कर्मोसे मनुष्य होकर सूक्ष्म-छवि होता है।

उत्पत्तिके लक्षणको जाननेवाले कहते है—वह सूक्ष्मवातोको झट समझ जायेगा ॥३२॥

यदि वह प्रव्रजित नही होता, तो चक्रवर्ती राजा होकर पृथ्वीपर राज करता है।

न्याय करने, अर्थोके अनुशासन और परिग्रहमें उसके समान या उससे वढकर कोई नही होता ॥३३॥

यदि वह ० प्रव्रजित हो जाता है,

तो अनुपम विशेष प्रज्ञाका लाभ करता है, वह श्रेष्ठ महामेधासे वोधि प्राप्त करता है ॥३४॥

९—अक्रोध और वस्त्र-दान—(१३) "जो कि भिक्षुओ! ० क्रोधरहित वहुत परेशानकरनेवाले नही थे, और वहुत कहनेपर भी द्वेष, कोप, द्रोहको नही प्राप्त होते थे, वहुत कहनेपर भी उन्हे बाते नही लगती थी, न वह कुपित होते थे, न मारपीट करते थे और न कुछ कहते थे। क्रोध, द्वेष, दौर्मनस्य नही प्रकट करते थे। और उन्होने अलसी, कपास, कौपेय और कम्बलके सूक्ष्मवस्त्रोके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणो (=बिछौनो) और प्रावरणो (=ओढनो)का दान दिया था। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह लक्षण पाये—सुवर्ण-वर्ण=काचनके समान चर्मवाले। ० चक्रवर्ती राजा होकर अलसी, कपास, कौपेय और कम्बलके सूक्ष्म

वस्त्रोंके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणो और प्रावरणोंके पानेवाले होते हैं। ० वृद्ध होकर ० प्रावरणोंके पानेवाले होते हैं ०। ० यहाँ कहा गया है—

वह पूर्वजन्ममें अ-क्रोधी रहा, और सूक्ष्म तलवाले सूक्ष्म वस्त्रोंको,
जैसे पृथ्वीको सूर्य वैसे दान करता रहा ॥३५॥
उसके कारण यहाँसे मरकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ, और पुण्यफलको भोगकर,
कल्पतरुकी जैसे इन्द्र वैसे कनकके शरीर जैसे (शरीर)वाला हो यहाँ उत्पन्न हुआ ॥३६॥
प्रव्रज्याकी चाह छोळ यदि गृहमें रहता है, तो महती पृथ्वीको जीतकर शासन करता है।
वह सात रत्नोको तथा शुचि, विमल, सूक्ष्म चर्मको भी पाता है ॥३७॥
यदि बेघरवाला होता है, तो सुन्दर आच्छादन और प्रावरणके वस्त्रोंको पाता है।
वह पूर्वके कियेका फल भोगता है, (क्योंकि) कियेका लोप नही होता ॥३८॥

१०—**मेल करना**—(१४) "जो कि भिक्षुओ ! ० चिरकालसे लुप्त, अतिचिरकालसे चले गये जातिभाइयो, मित्रो, सुहृदो और सखाओंको मिलानेवाले थे। माताको पुत्रसे मिलानेवाले थे, पुत्रको मातासे मिलानेवाले थे। पिताको पुत्रसे ०। पुत्रको पितासे ०। भाईको भाईसे ०। भाईको भगिनीसे ०। भगिनीको भाईसे। मिलाकर मोद करते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह महापुरुष-लक्षण पाते हैं—कोषाच्छादित-वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) इस लक्षणसे युक्त होते हैं।० चक्रवर्ती राजा होकर ० बहुत पुत्रोंवाले होते हैं। उनके शूर, वीर, परसेना-प्रमर्दक सहस्रसे अधिक पुत्र होते हैं ०। ० वृद्ध होकर ० बहुत पुत्रों (=शिष्यों)वाले होते हैं। उनके शूर, वीर पर (=मार)-सेना-प्रमर्दक अनेको हजार पुत्र होते हैं ०।" यहाँ यह कहा गया है—

पहले अतीतके पूर्वजन्मोंमें चिर-लुप्त चिर-प्रवासी
जातिवालो, सुहृदो, सखाओंको उसने मिलाया, मिलाकर मोद करता था ॥३९॥
उस कर्मसे स्वर्ग जा, उसने सुख, क्रीडा, रतिको अनुभव किया।
वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ कोशाच्छादित ढँकी वस्तिको पाता है ॥४०॥
गृहस्थ होनेपर उसके बहुतसे पुत्र, सहस्रसे अधिक आत्मज होते हैं,
जो कि शूर, वीर, शत्रु-सन्तापक, प्रीति-उत्पादक और प्रियवद होते हैं ॥४१॥
प्रव्रजित रहनेपर उसके बहुतसे वचनानुगामी पुत्र होते हैं।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥४२॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

११—**योग्य-अयोग्य पुरुषका ख्याल**—(१५, १६) 'जो कि भिक्षुओ ! ०जनता (=महाजन)के संग्राहक, सम-विषम पुरुषका ज्ञान रखते थे, विशेष पुरुषका ज्ञान रखते थे—'यह इसके योग्य है', 'यह उसके योग्य है'। इस प्रकार पहले उस उस विषयमें पुरुषोंकी विशेषता (का ख्याल) करनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ दो महापुरुष-लक्षण पाते हैं—(१५) न्यग्रोध परिमंडल, और (१६) (आजानु-बाहु) सीधे खळे बिना झुके वह दोनो जानुको अपने हाथके तल्वोंसे छूते हैं, परिमार्जित करते है। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० आढच=महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोने चाँदीवाले, बहुत वित्त-उपकरणवाले, बहु-धनधान्यवाले, भरे कोश-कोठारवाले होते हैं ०।० वृद्ध होकर ० आढच, महाधनी, महाभोगवान् होते हैं। उनके यह धन होते हैं, जैसे कि श्रद्धा धन, शील-धन, ह्री (=लज्जा)-धन, अपत्रपा (=संकोच)-धन, श्रुत (=विद्या)-धन, त्याग-धन, प्रज्ञा-धन ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

तुलना, परीक्षा और चिन्तन करके जनताके संग्रहको देख,

यह इसके योग्य है—इस प्रकार पहले वह पुरुषोंमें विशेषताका (ख्याल) करता था ॥४३॥
(इसीसे) पृथिवीपर खळा हो बिना झुके हाथसे दोनो जानुओंको छूता है ।
और बचे हुए पुण्यके विपाकसे (बर्गद) वृक्ष जैसे परिमडल (भरे शरीरवाला) होता है ॥४४॥
नाना प्रकारके लक्षणोके जानकार, चतुर पुरुषोने यह भविष्य कथन किया—
(वह) छोटे बच्चेपनमें अनेक प्रकारके गृहस्थोंके योग्य (भोगो)को पाता है ॥४५॥
यहाँ राजा हो भोगोका भोगनेवाला होता है, उसके गृहस्थके योग्य (भोग) बहुत होते हैं।
यदि सारे भोगोका त्याग करता है तो अनुपम, उत्तम, श्रेष्ठ धनको पाता है ॥४६॥

१२—परहिताकांक्षा—(१७-१९) "जो कि भिक्षुओ ! ० बहुत जनोका अर्थाकाक्षी=हिताकाक्षी,=प्राशु-आकाक्षी, मगलाकाक्षी थे—इनकी श्रद्धा बढे, शील बढे, पुत्र बढे, त्याग बढे, धर्म बढे, प्रज्ञा बढे, धन-धान्य बढे, खेत-घर बढें, दोपाये-चौपाये बढें, पुत्र-दारा बढें, दास-कमकर बढें, जातिभाई बढे, मित्र बढें, बधु बढें। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ तीन महापुरुप-लक्षणोको पाते हे—(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध काय होते हैं, (१८) चितान्तरास (=दोनो कधोके बीचका भाग भरा), (१९) समवर्त्त स्कध (=समान परिमाणकी गर्दन) होते हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० अपरिहाण धर्मा होते हैं—उनका धन धान्य क्षीण (=परिहाण) नही होता, खेत-घर, दोपाये-चौपाये, पुत्र-दारा, दास-कमकर जाति भाई, बधु, मित्र—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० बुद्ध होकर ० अपरिहाणधर्मा होते हैं—उनकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

दूसरोकी श्रद्धा, शील, श्रुत, बुद्धि, त्याग, धर्म, बहुतसी भलाइयो,
धन, धान्य, घर-खेत, पुत्र, दारा, चौपाये, ॥४७॥
जाति-भाई, बन्धु, मित्र, बल, वर्ण, और सुख दोनो,
न क्षीण हो—यह चाहता था, और उन्हे समुनत (देखना) चाहता था ॥४८॥
(इस) पूर्वके किये सुचरित कर्मसे वह सिंहपूर्वार्द्ध काय,
समवर्त्तस्कध, और चितान्तरास होता हैं, इसका पूर्व कारण क्षय न (चाहना) है ॥४९॥
गृहस्थ रहनेपर धन धान्य, पुत्र-दारा, चौपायोसे बढता है।
धनत्यागी प्रव्रजित हो महान् धर्मता सम्बोधि (=बुद्धत्व)को पाता है ॥५०॥

१३—पीळा न देना—(२०) "जो कि भिक्षुओ ! ० हाथ, ढला, दण्ड या शस्त्रसे प्राणियोको पीडा न देते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इस महापुरुप-लक्षणको पाते है—रसग्गसग्गी=उनके कठमें शिराये (=रसवाहिनियाँ) समान वाहिनी और ऊपरकी ओर जानेवाली उत्पन्न होती है। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० नीरोग=निरातक, न-अतिशीत-न-अति उष्ण, समान विपाक वाली पाचनशक्ति (=गहनी)से युक्त होते हैं ०।० बुद्ध होकर ० नीरोग, निरातक ० समान विपाक-वाली पाचनशक्तिसे युक्त होते हैं। ० यहाँ यह कहा गया है—

हाथ, दड, डले, या शस्त्रसे मारने-पीटनेसे
पीडा देने या डरानेके लिये नही सताया, वह जनताको न सतानेवाला था ॥५१॥
उससे वह मरकर सुगति पा आनन्द करता है, सुखफलवाले कर्मोंसे सुख पाता है,
(उसकी) पाचनशक्ति स्वय ठीक रहती है। यहाँ आकर वह रसग्गसग्गी होता है ॥५२॥
इसीसे अतिचतुरों और विचक्षणोने कहा—यह नर बहुत सुखी होगा।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥५३॥

१४—प्रिय दृष्टि—(२१, २२) "जो कि भिक्षुओ ! ० तिर्छी उल्टी नजर न देखते थे, सरल सीधे मन, और प्रिय चक्षुसे लोगोको देखते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत

हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते है—(२१) अभिनीलनेत्र, और (२२) गोपक्ष्म ०।० चक्रवर्ती राजा होकर ० जनता (=बहुजन)के प्रिय-दर्शन होते हैं, ब्राह्मण, वैश्य, नागरिक सभासद् (=नैगम), दीहाती सभासद् (=जानपद), गणक[1] (=एकौंटेन्ट), महामात्य, अनीकस्थ (=सेनानायक), द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य राजा, भोग्य(=भोगिय) कुमारोंका प्रिय=मनाप होते हैं ०।० बुद्ध होकर जनताके प्रिय दर्शन होते हैं, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—सबके प्रिय=मनाप होते हैं।' ० यहाँ यह कहा गया है—

न तिर्छी न उल्टी नजरसे देखता था,
सरल तथा सीधे मन, प्रिय चक्षुसे लोगोंको देखता था ॥५४॥
सुगति (=स्वर्ग)में वह फलविपाक भोगता हैं, मोद करता हैं।
और यहाँ (आ) अभिनील नेत्र, और गोपक्ष्म सु-दर्शन होता है ॥५५॥
अभियुक्त=चतुर, लक्षणोंमें बहु पंडित,
सूक्ष्म नेत्रों (की परख)में कुशल पुरुष उसे प्रियदर्शन कहते हैं ॥५६॥
प्रिय दर्शन (पुरुष) गृहस्थ रहनेपर लोगोंका प्रिय होता है।
यदि गृहस्थ न हो श्रमण होता है, तो बहुतोंका प्रिय, शोकनाशक होता है ॥५७॥

१५—सुकार्यमें अगुआपन—(२३) "जो कि भिक्षुओ! ० अच्छे कामोंमें बहुत जनोंके अगुआ थे, कायिक सुचरित, मानसिक सुचरित, दान देने, शील ग्रहण करने, उपोसथ (=उपवास) करने माता पिता-श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, कुल ज्येष्ठके सम्मान, और (दूसरे) उन उन अच्छे कामोंमें लोगोंके प्रधान थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते है, उष्णीष शीर्ष होते हैं ०।० चक्रवर्ती राजा होकर ०—ब्राह्मण-वैश्य, नैगम-जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल (=दौवारिक), अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोगीय, कुमार—जनता उनकी अनुयायिनी होती हैं ०।० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—महाजन उनके अनुयायी होते हैं ०।० यहाँ यह कहा गया है—

धर्मके सु-आचरणमें प्रमुख था, धर्मचर्यामें रत था,
जनताका अगुआ था, अत (उसने) स्वर्गमें पुण्यका फल भोगा ॥५८॥
सुचरितका फल अनुभवकर यहाँ आ उष्णीष-शीर्षत्व फल पाया।
लक्षण-पारखियोंने भविष्यकथन किया—यह बहुत जनोंका प्रधान होगा ॥५९॥
यहाँ मनुष्य(लोक)में पहले उसके पास प्रतिभोग्य (=बलि) ले जाते हैं,
यदि क्षत्रिय भूपति होता हैं, तो बहुतसे प्रतिहारक[2] पाता हैं ॥६०॥
यदि वह मनुज प्रव्रजित होता है, तो धर्मोंका जानकार=विसवी होता हैं।
गुणमें अनुरक्त हो, उसके अनुशासन पर बहुतसे चलनेवाले होते हैं ॥६१॥

१६—सत्यवादिता—(२४-२५) "जो कि भिक्षुओ! ० झूठको त्याग सत्यवादी, सत्यसंध, स्थाता=विश्वासपात्र, लोगोंके अविश्वासपात्र नहीं थे सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष लक्षणोंको पाते है—(२४) एकैकलोमा और (२५) उनके दोनों भौंहोंके बीच श्वेत कोमल रूईकी जैसी ऊर्णा उत्पन्न होती है ०।० चक्रवर्ती राजा

[1] यह सब उस समयके राजकार्यमें संबंध रखनेवाले पदोंके नाम है।

[2] ऊपर गिनाये ब्राह्मण, वैश्य आदि प्रतिहारक है। इसीसे पीछे प्रतिहार, और प्रतिहारी शब्द बने। पीछे प्रतिहार एक राजपूत राजवंशकी उपाधि हो गया।

यह इसके योग्य है—इस प्रकार पहले वह पुरुषोमें विशेषताका (ख्याल) करता था ॥४३॥
(इसीसे) पृथिवीपर खळा हो विना झुके हाथसे दोनो जानुओंको छूता है।
और बचे हुए पुण्यके विपाकसे (वर्गद) वृक्ष जैसे परिमडल (भरे शरीरवाला) होता है ॥४४॥
नाना प्रकारके लक्षणोके जानकार, चतुर पुरुषोने यह भविष्य कथन किया—
(वह) छोटे वच्चेपनसे अनेक प्रकारके गृहस्थोके योग्य (भोगो) को पाता है ॥४५॥
यहाँ राजा हो भोगोका भोगनेवाला होता है, उसके गृहस्थोके योग्य (भोग) वहुत होते है।
यदि सारे भोगोका त्याग करता है तो अनुपम, उत्तम, श्रेष्ठ धनको पाता है ॥४६॥

१२—परहिताकांक्षा—(१७-१९) "जो कि भिक्षुओ ! ० वहुत जनोका अर्थाकाक्षी=हिताकाक्षी,=प्रासु-आकाक्षी, मगलाकाक्षी थे—इनकी श्रद्धा बढ़े, शील बढ़े, पुत्र बढे, त्याग बढे, धर्म बढे, प्रज्ञा बढे, धन-धान्य बढे, खेत-घर बढें, दोपाये-चौपाये बढें, पुत्र-दारा बढें, दास-कमकर बढें, जातिभाई बढ़ें, मित्र बढें, बंधु बढें। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ तीन महापुरुष-लक्षणोको पाते हैं—(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध काय होते हैं, (१८) चितातरास (=दोनो कधोके बीचका भाग भरा); (१९) समवर्त्त-स्कध (=समान परिमाणकी गर्दन) होते हैं। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० अपरिहाण धर्मा होते है—उनका धन-धान्य क्षीण (=परिहाण) नही होता, खेत-घर, दोपाये-चौपाये, पुत्र-दारा, दास-कमकर जाति-भाई, बधु, मित्र—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० बुद्ध होकर ० अपरिहाणधर्मा होते है—उनकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० यहाँ यह कहा गया हैं—

दूसरोकी श्रद्धा, शील, श्रुत, बुद्धि, त्याग, धर्म, वहुतसी भलाइयो,
धन, धान्य, घर-खेत, पुत्र, दारा, चौपाये; ॥४७॥
जाति-भाई, वन्धु, मित्र, बल, वर्ण, और सुख दोनो;
न क्षीण हो—यह चाहता था, और उन्हें समुन्नत (देखना) चाहता था ॥४८॥
(इस) पूर्वके किये सुचरित कर्मसे वह सिंहपूर्वार्द्ध-काय,
समवर्त्तस्कध, और चितान्तरास होता हैं, इसका पूर्व कारण क्षय न (चाहना) है ॥४९॥
गृहस्थ रहनेपर धन-धान्य, पुत्र-दारा, चौपायोमे वढता है।
धनत्यागी प्रव्रजित हो महान् धर्मता सम्बोधि (=बुद्धत्व) को पाता है ॥५०॥

१३—पीळा न देना—(२०) "जो कि भिक्षुओ ! ० हाथ, ढला, दण्ड या शस्त्रसे प्राणियोको पीडा न देते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते है—*रसग्गसग्गी=उनके कठमे शिराये (=रसवाहिनियाँ) समान वाहिनी और* ऊपरकी ओर जानेवाली उत्पन्न होती हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० नीरोग=निरातक, न-अतिशीत-*न-अति उष्ण, समान* विपाक-वाली पाचनशक्ति (=ग्रहनी) से युक्त होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० नीरोग, निरातक ० समान विपाक-वाली पाचनशक्तिसे युक्त होते हैं। ० यहां यह कहा गया है—

हाथ, दड, डले, या शस्त्रसे मारने-पीटनेसे
पीडा देने या डरानेके लिये नही सताया, वह जनताको न सतानेवाला था ॥५१॥
उससे वह मरकर सुगति पा आनन्द करता हैं, सुखफलवाले कर्मोसे सुख पाता हैं,
(उसकी) पाचनशक्ति स्वय ठीक रहती है। यहाँ आकर वह रसग्गसग्गी होता है ॥५२॥
इसीसे अतिचतुरो और विचक्षणोने कहा—यह नर बहुत सुखी होगा।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस वातका द्योतक है ॥५३॥

१४—प्रिय दृष्टि—(२१, २२) "जो कि भिक्षुओ ! ० तिर्छी उल्टी नजर न देखते थे, सरल सीधे मन, और प्रिय चक्षुसे लोगोंको देखते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत

हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२१) अभिनीलनेत्र, और (२२) गोपक्ष्म ०।० चक्रवर्ती राजा होकर ० जनता (=बहुजन)के प्रिय-दर्शन होते हैं, ब्राह्मण, वैश्य, नागरिक सभासद् (=नैगम), देहाती सभासद् (=जानपद), गणक[1] (=एकौंटेन्ट), महामात्य, अनीकस्थ (=सेनानायक), द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य राजा, भोग्य (=भोगिय) कुमारोंका प्रिय=मनाप होते हैं ०।० बुद्ध होकर जनताके प्रिय दर्शन होते हैं, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—सबके प्रिय=मनाप होते हैं।' ० यहाँ यह कहा गया है—

न तिर्छी न उल्टी नजरसे ..देखता था,
सरल तथा सीधे मन, प्रिय चक्षुसे लोगोंको देखता था ॥५४॥
सुगति (=स्वर्ग)में वह फलविपाक भोगता है, मोद करता है।
और यहाँ (आ) अभिनील नेत्र, और गोपक्ष्म सु-दर्शन होता है ॥५५॥
अभियुक्त=चतुर, लक्षणोंमें बहु पंडित,
सूक्ष्म नेत्रों (की परख)में कुशल पुरुष उसे प्रियदर्शन कहते हैं ॥५६॥
प्रिय दर्शन (पुरुष) गृहस्थ रहनेपर लोगोंका प्रिय होता है।
यदि गृहस्थ न हो श्रमण होता है, तो बहुतोंका प्रिय, शोकनाशक होता है ॥५७॥

१५—सुकार्यमें अगुआपन—(२३) "जो कि भिक्षुओ! ० अच्छे कामोंमें बहुत जनोंके अगुआ थे, कायिक सुचरित, मानसिक सुचरित, दान देने, शील ग्रहण करने, उपोसथ (=उपवास) करने, माता-पिता-श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, कुल ज्येष्ठके सम्मान, और (दूसरे) उन उन अच्छे कामोंमें लोगोंके प्रधान थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं, उष्णीष-शीर्ष होते हैं ०।० चक्रवर्ती राजा होकर ०—ब्राह्मण-वैश्य, नैगम-जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल (=दौवारिक), अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोगीय, कुमार—जनता उनकी अनुयायिनी होती है ०।० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—महाजन उनके अनुयायी होते हैं ०।० यहाँ यह कहा गया है—

धर्मके सु-आचरणमें प्रमुख था, धर्मचर्यामें रत था,
जनताका अगुआ था, अत (उसने) स्वर्गमें पुण्यका फल भोगा ॥५८॥
सुचरितका फल अनुभवकर यहाँ आ उष्णीष-शीर्षत्व फल पाया।
लक्षण-पारखियोंने भविष्यकथन किया—यह बहुत जनोंका प्रधान होगा ॥५९॥
यहाँ मनुष्य(लोक)में पहले उसके पास प्रतिभोग्य (=बलि) ले जाते हैं,
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो बहुतसे प्रतिहारक[2] पाता है ॥६०॥
यदि वह मनुज प्रव्रजित होता है, तो धर्मोंका जानकार=विज्ञ होता है।
गुणमें अनुरक्त हो, उसके अनुशासन पर बहुतसे चलनेवाले होते हैं ॥६१॥

१६—सत्यवादिता—(२४-२५) "जो कि भिक्षुओ! ० झूठको त्याग सत्यवादी, सत्यसंध, स्थाता=विश्वासपात्र, लोगोंके अविश्वासपात्र नहीं थे सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२४) एकैकलोमा और (२५) उनके दोनों भौंहोंके बीच श्वेत कोमल रूईकी जैसी ऊर्णा उत्पन्न होती है ०।० चक्रवर्ती राजा

[1] यह सब उस समयके राजकार्यसे संबंध रखनेवाले पदोंके नाम हैं।

[2] ऊपर गिनाये ब्राह्मण, वैश्य आदि प्रतिहारक हैं। इसीसे पीछे प्रतिहार, और प्रतिहारी शब्द बने। पीछे प्रतिहार एक राजपूत राजवंशकी उपाधि हो गया।

होकर ० ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार—महाजन उनके समीपवर्ती होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग- गधर्व—महाजन उनके सपीमवर्ती होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

पूर्वजन्ममें उसने सत्यप्रतिज्ञ, दोहरी बात न बोलनेवाला हो झूठको त्यागा था,
किसीका वह अ विश्वासी न था, भूत=तथ्य (=सत्य) ही बोलता था ॥६२॥
(इसीसे) भौंहोके बीच श्वेत, सुशुक्ल कोमल तूल जैसी ऊर्णा उत्पन्न हुई।
रोम-कूपोमें दोहरे (रोम) नही जन्मे, वह एकैक लोमचिताग था ॥६३॥
बहुतसे उत्पत्तिके लक्षणोके जानकार लक्षणज्ञोने आकर उसका भविष्यकथन किया—
इसकी ऊर्णा और लोम जैसे सुस्थित हैं, उससे इसके बहुत से लोग पार्श्ववर्ती होगे ॥६४॥
गृहस्थ रहनेपर लोग पार्श्ववर्ती होंगे (यह) किये कर्मोसे (उनका) अग्रस्थायी होगा।
त्यागमय अनुपम प्रव्रज्या ले बुद्ध होनेपर लोग उपवर्त्तन पार्श्वचर होगे ॥६५॥

१७—झगळा मिटाना—(२६, २७) "जो कि भिक्षुओ ! ० चुगली त्याग, चुगलकी बातसे विरत थे, इनमें फूट डालनेके लिये यहाँ सुनकर वहाँ कहनेवाले न थे, न उनमें फूट डालनेके लिये वहाँ सुनकर यहाँ कहनेवाले थे। बल्कि फूटे हुओको मिलानेवाले, मिले हुओके अनुप्रदाता हो, एकता-प्रेमी, एकता-रस, एकतानन्दी हो एकता करनेवाली वाणीके बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते है—(२६) चौवालीस दाँतोवाले, (२७) अ विरल दाँतोवाले ०। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० अभेद्य-परिषद् होते हैं, उनकी परिषद्—ब्राह्मण-वैश्य नैगम, जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोग्य कुमार अभेद्य (=न फूटनेवाले) होते है ०। ० बुद्ध होकर अभेद्य-परिषद् होते हैं, उनकी परिषद् भिक्षु भिक्षुणी ० नाग, गधर्व अभेद्य होते हैं ०। ० यहाँ यह ०—

एकतावालोको फोळनेवाली, फूट बढानेवाली, विवादकारी,
कलहप्रवर्द्धक, अकृत्यकारी, और मिलोको फोळनेवाली बातको नही बोलते थे ॥६६॥
अविवाद-वर्द्धक, फूटोको मिलानेवाले सुवचनको ही बोलते थे,
लोगोके कलहको दूर करते थे, एकता-सहितोके साथ आनन्द और प्रमोद करते थे ॥६७॥
इससे स्वर्गमें वह फलविपाकको अनुभव करता, वहाँ मोद करता रहा,
यहाँ (जन्मकर) उसके मुखमें चालीस अविरल, जुळे दाँत होते हैं ॥६८॥
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो उसकी परिषद् न फूटनेवाली होती है।
यदि विरज विमल श्रमण होता है, तो उसकी परिषद् अनुरक्त अचल होती है ॥६९॥

१८—मधुरभाषिता—(२८, २९) 'जो कि भिक्षुओ ! ० कठोर वचन त्याग कठोर वचनसे विरत रहते थे। जो वह वाणी नेला सरल कर्णसुखा, प्रेमणीया, हृदयगमा, पौरी (=सभ्य, नागरिक), बहु-जनकान्ता=बहुजनमनापा है, वैसी वाणीके बोल्नेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते हैं—(२८) ब्रह्मस्वर, (२९) करविकभाणी ०। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० आदेय-वाक् होते हैं, उनकी बातको ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार ग्रहण करते है ०। ० बुद्ध होकर आदेय-वाक् होते हैं, उनकी बातको भिक्षु भिक्षुणी ० नाग, गधर्व ग्रहण करते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

गाली झगळा और पीडादायक, बाधक, बहुजनमर्दक,
कठोर तीखे वचनको वह नही बोलता था, सुसगत सकारण मधुर वचनको ही बोलता था ॥७०॥
मनको प्रिय, हृदयगम, कर्णसुख वचनको वह बोल्ता था
(इस) वाचिक सुचरितके फलको (उसने) अनुभव किया, स्वर्गमें पुण्यफलको भोगा ॥७१॥

सुचरितके फलको भोगकर यहाँ आ वह ब्रह्मस्वर होता है,
उसकी जिह्वा विपुल और पृथुल होती है, और वह आदेय-वाक् होता है ॥७२॥
बात करनेपर गृहस्थको सन्तुष्ट करता है। यदि वह मनुष्य प्रव्रजित होता है;
बहुतोंको बहुतसा सुभाषित सुनानेवाले (उस पुरुष)के वचनको जनता ग्रहण करती है ॥७३॥

१९—भावपूर्ण वचन—(३०) "जो कि भिक्षुओ! ० बकवाद छोड़ बकवादसे विरत रहते थे, कालवादी (=समय देखकर बोलनेवाले), भूत(=यथार्थ)-वादी, अर्थवादी, धर्मवादी, विनयवादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, भावपूर्ण (=निधानवती) वाणी बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं—सिंह-हनु होते हैं। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० किसी मानव शत्रु=प्रत्यर्थिकसे अजेय होते हैं ०। ० बुद्ध होकर राग, द्वेष, मोह—भीतरी शत्रुओं, तथा किसी भी श्रमण-ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा—संसारके बाहरी शत्रुओंसे अजेय होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

बुद्धके वचनमें बकवाद नहीं थी, अ-व्यस्त बातका वहाँ गम्य न था,
(वचनसे उसने) अहितको हटा, और बहुजनके हित-सुखको कहा था ॥७४॥
इसलिये यहाँसे च्युत हो स्वर्गमें उत्पन्न हो (उसने) सुकृतके फलविपाकको भोगा,
च्युत हो यहाँ आकर सिंह-हनुपनको प्राप्त किया ॥७५॥
(इससे वह) मनुजेन्द्र, मनुजाधिपति, महानुभाव, सुदुर्जय राजा होता है,
देवपुरमें कल्पद्रुमके नीचे इन्द्रसा समान ही होता है ॥७६॥
यदि वैसा पुरुष वैसे शरीरवाला होता है, तो यहाँ दिशाओं प्रतिदिशाओं और विदिशाओंमें,
गंधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सुर द्वारा सुजेय नहीं होता ॥७७॥

२०—सच्ची जीविका—(३१, ३२) 'जो कि भिक्षुओ! ० मिथ्या-आजीव (=बुरी रोजी)को छोड़ सम्यग्-आजीवसे जीविका चलाते थे—तराजूकी ठगी, कंस (=बटखरे)की ठगी, मान (=नाप)की ठगी, रिश्वत (=उत्कोचन), वंचना, कृतघ्नता (=निकृति), साचियोग (=कुटिलता), छेदन, वध, बंधन, विपरामोस (=डाका), आलोप (=लूटना), सहसाकार (=खून आदि कार्य)से विरत थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(३१) समदन्त होते हैं, और (३२) सु-शुक्ल-दाढ़। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० शुचि-परिवार होते हैं, उनके परिवार—ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार शुचि होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० शुचि-परिवार होते हैं, उनके परिवार—भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गंधर्व शुचि होते हैं। बुद्ध होकर यह पाते हैं।" भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह (गाथायें) कही गई हैं—

मिथ्या-आजीवको छोड़ उसने सम्यक्, शुचि, धर्मानुकूल जीविका की।
अ-हितको हटाया, और बहुत जनोंके हित-सुखका आचरण किया ॥७८॥
निपुण, विद्वान्, सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित (कर्मों)को करके वह पुरुष स्वर्गमें सुख-फल
अनुभव करता है, श्रेष्ठ देवलोकके समान रति क्रीड़ासे युक्त हो रमण करता है ॥७९॥
वहाँसे च्युत हो वैसे सुकृतके फलसे मनुष्य-योनि पा
समान और शुद्ध सुशुक्ल दाँतोंको पाता है ॥८०॥
चतुरो द्वारा सम्मत बहुतसे सामुद्रिक-ज्ञाता मनुष्योंने आकर उसका भविष्य-कथन किया—
समदन्त और शुचि-सुशुक्ल-दन्त, शुचि परिवारगणसे युक्त होता है ॥८१॥
राजाका शुचि परिवार बहुत जनोंवाला होता है, वह महापृथिवीका शासन करता है,
किन्तु जबर्दस्तीसे नहीं, न (वहाँ) देशको पीड़ा होती है, वह जनताके हित-सुखको करता है ॥८२॥

यदि साधु होता है, तो पापरहित, उघळे कपाटवाला, डर-बाधा रहित,
शमित-मल श्रमण होता है, और इस लोक परलोक दोनोंहीको देखता है ॥८३॥
उसके उपदेशानुगामी बहुतसे गृहस्थ और साधु निंदित अ-शुचि, पापको हटाते हैं,
वह शुचि परिवारसे युक्त होता है, और मलके कांटे तथा कलि-क्लेश (=पापके मालिन्य)
को हटाता है ॥८४॥

३१–सिगालोवाद-सुत्त (३।८)

गृहस्थके कर्तव्य (इह लोक और परलोककी विजय)। १—चार कर्म-क्लेशोंका नाश।
२—चार पापके स्थान। ३—छै सम्पत्तिके नाशके कारण।
४—मित्र और अमित्र। ५—छै दिशाओंकी पूजा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें, वेणुवन कलन्दकनिवापमें विहार कर रहे थे।

उस समय शृगाल (=सिगाल) गृहपति-पुत्र (=वैश्यका लळका) सवेरे उठकर राजगृहसे निकल भींगे-वस्त्र, भींगे-केश, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओंको हाथ जोळ नमस्कार करता था। तब भगवान् पहिनकर पात्रचीवर ले राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रवेश करने चले। भगवान्‌ने शृगाल गृहपति-पुत्रको सवेरे उठकर ० दिशाओंको हाथ जोळ नमस्कार करते देखा। देखकर शृगाल गृहपति पुत्रसे यह कहा—

"गृहपतिपुत्र! क्यों तू सवेरे उठकर ० दिशाओंको ० नमस्कार कर रहा है?"

'भन्ते! (=स्वामी) मरते वक्त पिताने मुझसे कहा था—'तात! दिशाओंको नमस्कार करना।' सो भन्ते! पिताके वचनका सत्कार=गुरुकार, मान=पूजा करते, सवेरे उठकर० दिशाओंको० नमस्कार कर रहा हूँ।"

गृहस्थके कर्तव्य

"गृहपति पुत्र! आर्यधर्ममें छै दिशाओंको नमस्कार इस प्रकार नहीं किया जाता।"

"अच्छा हो, भन्ते! भगवान् मुझे वैसे धर्मका उपदेश करें, जैसे कि आर्य धर्मम छै दिशाओंको नमस्कार किया जाता है।"

"तो गृहपति पुत्र! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ।"

'अच्छा, भन्ते!'—(कह) शृगाल गृहपति पुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

इहलोक और परलोककी विजय—

भगवान्‌ने यह कहा—"जब गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक (=आर्य धर्मानुयायी शिष्य)के (१-४) चार कर्म-क्लेश (=कर्मके मल) नष्ट हो गये रहते है, (५-८) चार स्थानोंसे वह पापकर्म नहीं करता, (९-१४) वह छै अपाय(=हानि)के मुखोंका सेवन नहीं करता—वह इस प्रकार चौदह पापोंसे दूर हो, छै दिशाओंको आच्छादितकर दोनो लोकोंके विजयमें लगता है, तो उसका यह लोक भी सुसेवित होता है और परलोक भी—वह काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होता है।

१—चार कर्म-क्लेशोंका नाश

'कौनसे उसके चार कर्म-क्लेश नष्ट हो गये रहते है?—(१) गृहपति-पुत्र! प्राणि-मारना कर्म-क्लेश है, (२) चोरी (=अदत्तादान) कर्म-क्लेश है, (३) काम(=स्त्री-संसर्ग)-संबधी दुराचार कर्म-क्लेश है, (४) झूठ बोलना कर्म-क्लेश है। ये चार कर्म-क्लेश उसके नष्ट हो गये रहते है।"

भगवान्ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—
"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनको) पंडित जन प्रशंसा नहीं करते ॥१॥

२–चार स्थानोंसे पाप नहीं करना

ख "किन चार स्थानोंसे पापकर्मको नहीं करता? (१) छन्द (=राग)के रास्तेमें जाकर पापकर्म करता है। (२) द्वेषके रास्तेमें जाकर०। (३) मोहके०। (४) भयके०। चूँकि गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है, न द्वेषके ०, न मोहके ०, न भयके ०। (अतः) इन चार स्थानोंसे पाप-कर्म नहीं करता।—भगवान्ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश क्षीण होता है ॥२॥
छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण नहीं करता।
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश बढ़ता है ॥३॥

३–छै सम्पत्तिके नाशके कारण

ग "कौनसे छै भोगोंके अपायमुख (=विनाशके कारण) हैं—(१) शराब नशा आदिका सेवन । (२) विकाल (=सध्या)में चौरस्तेकी सैर (=विसिखा-चरिया)में तत्पर होना । (३) समज्या (=समाज=नाच-तमाशा)का सेवन । (४) जुआ, (और दूसरी) दिमाग-बिगाड़नेकी चीजें । (५) बुरे मित्र (=पाप मित्र)की मिताई । (६) आलस्यमें फँसना ।

१—नशा—"गृहपति-पुत्र! शराब-नशा आदिके सेवनमें छै दुष्परिणाम हैं। (१) तत्काल धनकी हानि। (२) कलहका बढ़ना। (३) (यह) रोगोंका घर है। (४) अयश उत्पन्न करनेवाला है। (५) लज्जा का नाश करनेवाला है। और छठें (६) बुद्धि (=प्रज्ञा)को दुर्बल करता है।

२—चौरस्ते की सैर—"गृहपति-पुत्र! विकालमें चौरस्तेकी सैरके छै दुष्परिणाम हैं—(१) स्वयं भी वह अ-गुप्त=अरक्षित होता है। (२) उसके स्त्री पुत्र भी अगुप्त=अरक्षित होते हैं। (३) उसकी धन सम्पत्ति भी ० अरक्षित होती है। (४) बुरी बातोंकी शंका होती है। (५) झूठी बात उसपर लागू होती है। (६) (वह) बहुतसे दुःख-कारक कामोंका करनेवाला होता है।

३—नाच-तमाशा—"गृहपति पुत्र! समज्याभिचरणमें छै दोष (=आदिनव) हैं—(१) (आज) कहाँ नाच है (इसकी परेशानी)। (२) कहाँ गीत है? (३) कहाँ वाद्य है? (४) कहाँ आख्यान है? (५) कहाँ पाणिस्वर (=हाथसे ताल देकर नृत्य-गीत) है? (६) कहाँ कुम्भ-थूण (=वादन-विशेष) है?

४—जुआ—"गृहपति-पुत्र! द्यूत-प्रमादस्थानके व्यसनमें छै दोष हैं—(१) जय (होनेपर) वैर उत्पन्न करता है। (२) पराजित होनेपर (हारे) धनकी सोच करता है। (३) तत्काल धनका नुकसान। (४) सभामें जानेपर (उसके) वचनका विश्वास नहीं रहता। (५) मित्रों और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है। (६) शादी-विवाह करनेवाले—यह जुवारी आदमी है, स्त्रीका भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, (कन्या देनेमें) आपत्ति करते हैं।

५—दुष्टकी मिताई—"गृहपति-पुत्र! दुष्ट मित्रकी मिताईके छै दोष होते हैं—जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कड़ (=पिपासु), (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुण्डे (=साहसिक, खूनी) होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं।

६—आलस्य—"गृहपति-पुत्र! आलस्यमें पड़नेमें यह छै दोष हैं—(१) '(इस समय) बहुत ठंडा है' (सोच) काम नहीं करता। (२) 'बहुत गर्म है'—(सोच) काम नहीं करता। (३) 'बहुत शाम हो गई' (सोच) ०। (४) 'बहुत सबेरा है' ०। (५) 'बहुत भूखा हूँ' ०। (६) 'बहुत खाये हूँ' ० इस प्रकार बहुतसी करणीय बातोंको (न करनेसे), अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं। ...।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—
'जो (मद्य)पानमें सखा होता है, (सामनेही); प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं)
जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥४॥
अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना, और अनर्थ करना,
बुरेकी मित्रता, और बहुत कंजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥५॥
पाप-मित्र (=बुरे मित्रवाला), पाप-सखा और पापाचारमें अनुरक्त,
मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोंहीसे नष्ट-भ्रष्ट होता है ॥६॥
जुआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिनकी निद्रा अ-समयकी सेवा,
बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कंजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥७॥
(जो) जुआ खेलते हैं, सुरा पीते हैं, पराई प्राण प्यारी स्त्रियों (का गमन करते हैं);
पंडितका नहीं, नीचका सेवन करते हैं, (वह) कृष्ण-पक्षके चन्द्रमाजैसे क्षीण होते हैं ॥८॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कड़, प्रमादी (होता है),
(जो) पानीकी तरह ऋणमें अवगाहन करता है, (वह) शीघ्र ही अपनेको व्याकुल करता है ॥९॥
दिनमें निद्राशील, रातको उठनेको बुरा माननेवाला,
सदा (नशामें) मस्त=शौंड गृहस्थी(=घर-आवास) नहीं चला सकता ॥१०॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत सन्ध्या हो गई',
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते हैं ॥११॥
जो पुरुष काम करते शीत उष्णको तृणसे अधिक नहीं मानता।
वह सुखसे वंचित होनेवाला नहीं होता ॥१२॥

४—मित्र और अमित्र

क—*मित्र रूपमें अमित्र*—"गृहपति-पुत्र! इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र(=शत्रु) जानना चाहिये—(१) पर-धनहारकको मित्र-रूपमें अमित्र जानना चाहिये। (२) केवल बात बनाने वालेको०। (३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको०। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यों में) सहायकको०। गृहपति-पुत्र!

१—पर-धनहारक—"चार बातोंसे पर-धन-हारकको०।—पर-धन-हारक होता है, थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है, (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥१३॥

२—बातूनी—"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे वचीपरम (=केवल बात बनानेवाले)को०।—(१) भूत (कालिक वस्तु)की प्रशंसा करता है। (२) भविष्यकी प्रशंसा करता है। (३) निरर्थक (बात)की प्रशंसा करता है। (४) वर्तमानके काममें विपत्ति दिखलाता है।

३—खुशामदी—"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे प्रियभाणी (=जी हुजूर)को०।—(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है। (३) सामने तारीफ करता है। और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है।

४—*नाश में सहायक*—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अपाय-सहायकको०—(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमादके काममें फँसनेमें साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमनेमें साथी होता है (३) समज्या देखनेमें साथी होता है। (४) जुआ खेलने (जैसे) प्रमादके काममें साथी होता है।

भगवान्‌ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

'पर धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायोंमें सखा है ॥१४॥
यह चारो अमित्र हैं, ऐसा जानकर पडित पुरुष,
खतरे-वाले रास्तेकी भाँति (उन्हे) दूरसे ही छोळ दे ॥१५॥

ख—मित्र—"गृहपति पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये—(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये। (२) सुख दुखको समान भोगनेवाले मित्रको०। (३) अर्थ (की प्राप्तिका उपाय) बतलानेवाले मित्रको०। (४) अनुकपक मित्रको०।

१—उपकारी—"गृहपति-पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) प्रमत्त (=भूल करनेवाले)की रक्षा करता है। (२) प्रमत्तकी सपत्तिकी रक्षा करता है। (३) भयभीतका रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पळ जानेपर, उसे दुगना लाभ उत्पन्न करवाता है।

२—समान सुख दु खी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे समान-सुख-दु ख मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) *इसे गोप्य (बात) बतलाता है।* (२) *इसकी गोप्य-बातको गुप्त रखता है।* (३) *आपद्‌में* इसे नही छोळता (४) इसके लिये प्राण भी देनेको तैयार रहता है।

३—हितवादी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे *अर्थ-आख्यायी* (=हितवादी) मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) पापका निवारण करता है। (२) पुण्यका प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या)को श्रुत करता है। (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है।

४—अनुकपक—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अनुकपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) मित्रके (धनसपत्ति) होनेपर खुश नही होता। (२) न होनेपर भी खुश नही होता। (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोकता है। (४) प्रशसा करनेपर प्रशसा करता है।

यह कहकर फिर यह भी कहा—

"जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दु खमें जो सखा (बना) रहता है,
जो मित्र हितवादी होता है, और जो मित्र अनुकपक होता है ॥१६॥
यही चार मित्र है, बुद्धिमान् ऐसा जानकर,
सत्कार-पूर्वक माता पिता और पुत्रकी भाँति उनकी सेवा करे ॥१७॥
सदाचारी पडित *मधुमक्खीकी भाँति भोगोको सचय कर*,
प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशमान होता है।
(उसके) भोग (=सपत्ति) जैसे वल्मीक बढता है, वैसे बढते है ॥१८॥
इस प्रकार भोगोका सचयकर अर्थ-सपन्न कुलवाला (जो) गृहस्थ,
चार भागमें भोगोको विभाजित करे, वही मित्रोको पावेगा ॥१९॥
एक भागको स्वय भोगे, दो भागोको काममें लगावे।
चौथे भागको आपत्कालमें काम आनेके लिये रख छोळे ॥२०॥

निचली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) बलके अनुसार कर्मान्त (=काम) देनेसे, (२) भोजन-वेतन (=भत्त-वेतन)-प्रदानसे, (३) रोगि-सुश्रूषासे, (४) उत्तम रसो (वाले पदार्थों)को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (=वोसग्ग) देनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँचो प्रकारोसे...प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्मकर ..पाँच प्रकारसे मालिकपर अनुकपा करते हैं—(१) (मालिकसे) पहिले (बिस्तरसे) उठ जानेवाले होते है। (२) पीछे सोनेवाले होते है। (३) दियेको (ही) लेनेवाले होते हैं। (४) कामोको अच्छी तरह करनेवाले होते है। (५) कीर्ति-प्रशसा फैलानेवाले होते है।...

६—साधु-ब्राह्मणकी सेवा—"गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकारसे कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण-रूपी ऊपरकी-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्मसे, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक-कर्मसे, (४) (उनके लिये) खुला द्वार रखनेसे, (५) आमिष (=खान-पानकी वस्तु)के प्रदान करनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारोसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण-ब्राह्मण... ..इन छै प्रकारोंसे कुल-पुत्रपर अनुकंपा करते हैं—(१) पाप(=बुरा) से निवारण करते है। (२) कल्याण (=भलाई)मे प्रवेश कराते है। (३) कल्याण(-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकपा करते हैं (४) अ-श्रुत (विद्या)को सुनाते है। (५) श्रुत (विद्या)को दृढ कराते हैं। (६) स्वर्गका रास्ता बतलाते है।"

माता-पिता पूर्वदिशा है, आचार्य दक्षिण दिशा।
पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा ॥२१॥
दास-कर्मकर नीचेकी दिशा है, श्रमण-ब्राह्मण ऊपरकी दिशा।
गृहस्थको अपने कुलमें इन दिशाओको अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिये ॥२२॥
पडित, सदाचारपरायण स्नेही, प्रतिभावान्,
एकान्तसेवी तथा आत्मसयमी (पुरुष) यशको पाता है ॥२३॥
उद्योगी, निरालस आपत्तिमें न डिगनेवाला,
अटूट नियमवाला, मेधावी (पुरुष) यशको प्राप्त होता है ॥२४॥
(मित्रोका) सग्राहक, मित्रोका काम करनेवाला उदार डाह-रहित
नेता, विनेता, तथा अनुनेता (पुरुष) यशको पाता है ॥२५॥
जो कि यहाँ दान प्रिय-वचन, अर्थचर्या करता है,
और उस उस (व्यक्ति)में योग्यतानुसार समाननाका (वर्तावकरता है) ॥२६॥
ससारमें यह सग्रह चलते रथकी आणी (=नाभि)की भाँति हैं।
यदि यह सग्रह न हो, तो न माता पुत्रसे
मान-पूजा पावे, और न ही पिता पुत्रसे ॥२७॥
पडित लोग इन सग्रहोको चूँकि अच्छी तरह ख्याल रखते हैं,
इसीसे वे बड़प्पन पाते है, और प्रशसनीय होते हैं ॥२८॥"

ऐसा कहनेपर शृगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्से यह कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ०[1]आजसे मुझे भगवान् अजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

३२–आटानाटिय-सुत्त (३।९)

१—आटानाटिय (=भूतों-यक्षोंसे) रक्षा। (१) सातों बुद्धोंको नमस्कार।
(२) चारों महाराजोंका वर्णन। (३) रक्षा न माननेवाले
यक्षोंको दंड। (४) प्रबल यक्षोंका नामस्मरण।
२—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे।

तब, चारों महाराज (अपने) यक्षों, गन्धर्वों, कुम्भाडों, और नागोंकी बड़ी भारी सेना लेकर, चारों दिशाओंमें रक्षकोंको बैठा, योद्धाओंकी टोलियोंको नियुक्तकर, रात बीतनेपर, प्रकाशमान हो, सारे गृध्रकूट पर्वतको प्रकाशित करते जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर बैठ गये। कितने भगवान्का समोदनकर, कितने भगवान्को अञ्जलिबद्ध प्रणामकर, कितने नाम और गोत्र सुनाकर, और कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

१–आटानाटिय (=भूतों-यक्षोंसे) रक्षा

एक ओर बैठे वैश्रवण (=कुबेर) महाराज भगवान्से बोले—"भन्ते! कितने ही बड़े बड़े यक्ष आपपर अश्रद्धावान् (=अप्रसन्न) हैं, और कितने श्रद्धावान्, कितने मध्यम यक्ष०, कितने नीच यक्ष०। भन्ते! जो इतने यक्ष आपपर अप्रसन्न हैं, सो क्यों? (क्योंकि) भगवान् जीव-हिंसा न करनेके लिये धर्मोपदेश करते हैं, चोरी न करनेके०। भन्ते! जो यक्ष जीव-हिंसासे विरत नहीं हैं, चोरीसे विरत नहीं हैं, उन्हें यह अप्रिय और मनके प्रतिकूल मालूम होता है। भन्ते! भगवान्के श्रावक जंगलमें एकान्तवास करते हैं०। (किंतु) वहाँ जो बड़े बड़े यक्ष रहते हैं, वे भगवान्के इस प्रवचनसे अप्रसन्न हैं। भन्ते! भिक्षुओंकी० उपासिकाओंकी रक्षा, अ-पीड़ा और सुख-पूर्वक विहार करनेके लिये उन लोगोंको प्रसन्न रखनेको भगवान् आटानाटिय रक्षाका उपदेश करें।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब वैश्रवण महाराजने भगवान्की स्वीकृति जान उस समय यह आटानाटिय रक्षा कही—

(१) सातों बुद्धोंको नमस्कार

"चक्षुमान, श्रीमान् विपश्यीको नमस्कार हो।
सर्वभूतानुकम्पी शिखीको नमस्कार हो ॥१॥
स्नातक तपस्वी विश्वभूको नमस्कार हो।
मार-सेनाको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले ककुच्छन्दको नमस्कार हो ॥२॥
ब्रह्मचारी कोणागमन ब्राह्मणको नमस्कार हो,
सभी प्रकारसे विमुक्त काश्यपको नमस्कार हो ॥३॥
आंगिरस श्रीमान् शाक्यपुत्रको नमस्कार हो
जिनने सब दुःखोंके नाश करनेवाले धर्मका उपदेश किया ॥४॥
और जो दूसरे भी यथार्थ ज्ञान पा निर्वाणको प्राप्त हुये हैं,

वे सभी महान् निर्भय आस्रव-रहित (अर्हत्) सुनें ॥५॥
वह देव मनुष्योंके हितके लिये है।
उन विद्याचरणसम्पन्न, महान् और निर्भय गौतमको नमस्कार करते हैं ॥६॥

(२) चारों महाराजोंका वर्णन

१–धृतराष्ट्र–जहाँसे महान् मण्डलवाला, आदित्य, सूर्य उगता है,
जिसके कि उगनेसे रात नष्ट हो जाती है ॥७॥
जिस सूर्यके उगनेसे कि दिन कहा जाता है,
(वहाँ एक) गम्भीर जलाशय, नदियोंके जलवाला समुद्र है ॥८॥
उसे वहाँ नदी-जलवाला समुद्र समझते हैं।
यहाँसे वह पूर्व दिशामें है—ऐसा उसके विषयमें लोग कहते हैं।
जिस दिशाको कि वह यशस्वी महाराजा पालन करता है ॥९॥
(वह) गन्धर्वोका अधिपति है, उसका नाम धृतराष्ट्र है,
गन्धर्वोके आगे हो नृत्य गीतमें रमण करता है ॥१०॥
उसके बहुतसे पुत्र एक नामवाले सुने जाते है,
और एकानवे (पुत्र) महाबली इन्द्र नामवाले हैं ॥११॥
वे भी बुद्ध, आदित्य-वंशज निर्भय महान् बुद्धको देख
दूरहीसे नमस्कार करते हैं—हे पुरुष श्रेष्ठ! पुरुषोत्तम! तुम्हे नमस्कार हो ॥१२॥
तुम कुशलसे समीक्षा करते हो, अमनुष्य (=देवता) भी तुम्हे प्रणाम करते हैं—
हम लोग ऐसा सदा सुनते हैं, इसीसे ऐसा कहते है ॥१३॥
जिन (=विजयी) गौतमको प्रणाम करो, जिन गौतमको हम प्रणाम करते हैं।
विद्या-आचरण-सम्पन्न गौतम बुद्धको हम प्रणाम करते है ॥१४॥
२–विरूढक–जीव हिंसक, रुद्र, चोर, शठ, और चुगलखोर,
पीछेमें निन्दा करनेवाले प्रेतजन कहे जाते हैं, वे जहाँ (रहते हैं) ॥१५॥
वह (स्थान) यहाँसे दक्षिण दिशामें है—ऐसा लोग कहते हैं।
उस दिशाको ये यशस्वी महाराज पालन करते हैं ॥१६॥
(वह) कूष्माडोंके अधिपति है, उनका नाम विरूढक है,
वह कूष्माडोंके आगे होके नृत्य गीतमें रमण करते हैं ॥१७॥
उनके बहुतसे पुत्र ० इन्द्र नामक ०। ॥१८॥
वे भी बुद्धको० देखकर ० नमस्कार ० ॥१९॥
तुम कुशल-समीक्षा करते हो ० ॥२०॥
विजयी गौतमको प्रणाम ० ॥२१॥
३–विरूपाक्ष–जहाँ महान् मण्डलवाला आदित्य सूर्य अस्त होता है,
जिसके कि अस्त होनेसे दिन नष्ट हो जाता है ॥२२॥
जिस सूर्यके अस्त हो जानेसे रात कही जाती है।
वहाँ (एक) गम्भीर जलाशय, नदीजलवाला समुद्र है ॥२३॥
उसे वहाँ ० पश्चिम दिशा ० ॥२४॥
(वह) नागोंका अधिपति है, उसका नाम विरूपाक्ष है।
वह नागोंके आगे हो, नृत्य गीतमें रमण करता है ॥२५॥
उसके बहुत पुत्र ० इन्द्र नाम ० ॥२६॥
वे भी बुद्धको देखकर ० ॥२७॥

तुम कुशलसे गमीशा० ॥२८॥ विजयी गौतमको प्रणाम० ॥२९॥
४—वैश्रवण—जहाँ रमणीय उत्तर-कुरु और सुदर्शन सुमेरु पर्वत है,
जहाँपर मनुष्य परिग्रह-रहित, ममता-रहित उत्पन्न होते हैं ॥३०॥
वे न बीज बोते हैं, और न हल जोते हैं।
वे मनुष्य अकृष्टपच्य (=स्वयं उत्पन्न) शालीको खाते हैं ॥३१॥
कन और भूसीसे रहित, शुद्ध और सुगन्धित,
चावलको दूधमें पकाकर भोजन करते हैं ॥३२॥
बैलकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं।
पशुकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं ॥३३॥
स्त्रीको वाहन (=सवारी) बना, ०।
पुरुषको वाहन बना सभी ओर जाते हैं ॥३४॥
कुमारी० कुमारको वाहन बना सभी ओर जाते हैं।
उस राजाकी सेनामें यानोंपर सवार होकर सभी दिशाओंमें जाते हैं ॥३५॥
उस यशस्वी महाराजके पास हस्तियान, अश्वयान,
और दिव्ययान, प्रासाद और शिविकायें हैं ॥३६॥
उनके नगर आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा,
नाटसुरिया, परकुसितनाटा—अन्तरिक्षमें बने हैं ॥३७॥
उसके उत्तरमें कपीवन्त और दूसरी ओर जनोघ, (तथा) निन्नावे दूसरे नगर हैं।
अम्बर, अम्बरवती नामक नगर हैं, आलकमन्दा नामकी (उनकी) राजधानी है ॥३८॥
मार्ष! कुबेर महाराजकी राजधानी विसाणा नामकी है।
इसीलिये कुबेर महाराज वेस्सवण (=वैश्रवण) कहे जाते हैं ॥३९॥
ततोला, तत्तला, ततोतला, ओजसि, तेजसि, ततोजसि,
अरिष्टनेमि, सूर, राजा अन्वेषण करते प्रकाशते हैं ॥४०॥
यहाँ धरणी नामक एक सरोवर है, जहाँसे जल लेकर
मेघ वृष्टि करते हैं, और जहाँसे वृष्टि प्रसारित होती है।
सालवती (भागलवती) नामक सभा है, जहाँ यक्ष लोग एकत्रित होते हैं ॥४१॥
वहाँ नाना पक्षि-समूहोंसे युक्त नित्य फलनेवाले वृक्ष हैं,
जो मयूर, क्रौञ्च, कोकिल आदि (पक्षियों)के मधुर कूजनसे व्याप्त रहता है ॥४२॥
वहाँ जीवञ्जीव शब्द करते हैं, और आटो, चित्रक (शब्द करते हैं)।
वनोंमें कुक्कुटक, कुलीरक, पोक्खरसाता, शुक, सारिका, दण्डमानक और बक शब्द करते हैं।
वहाँ सदा सर्वकाल कुबेरकी नलिनी शोभायमान रहती है ॥४३-४४॥
'यहाँसे उत्तर दिशामें हैं'—ऐसा लोग कहते हैं,
जिस दिशाकी कि वह यशस्वी महाराज पालन करते हैं ॥४५॥
यक्षोंके अधिपति० ॥४६॥
उनके बहुतसे पुत्र० इन्द्र नामक० ॥४७॥
वे भी बुद्धको देखकर० ॥४८॥
तुम कुशलसे गमीशा० ॥४९॥ विजयी गौतमको प्रणाम० ॥५०॥

(३) रक्षा न माननेवाले यक्षोंको दण्ड

"मार्ष! यह आटानाटिय रक्षा भिक्षु० रक्षाके लिये०। जो कोई भिक्षु० इस० रक्षाको ठीकसे पढ़ेगा और धारण करेगा, उसके पीछे यदि अमनुष्य—यक्ष, यक्षिणी, यक्षका बच्चा, यक्षकी

वच्ची, यक्ष-महामात्य, यक्ष-पार्षद, यक्ष-सेवक, गन्धर्व ०, कूष्माण्ड ०, नाग ० बुरे चित्तसे चले, खळे हो, बैठें, सोयें; तो मार्ष ! वह अमनुष्य मेरे ग्राममें या निगममें सत्कार=गुरुकार न पावेंगे। मार्ष ! वह अमनुष्य मेरी आलकमन्दा राजधानीमे रहने नहीं पावेंगे, और न वह यक्षोकी समितिमें जा सकेंगे। मार्ष ! दूसरे अमनुष्य उससे रोटी-बेटीका सम्बन्ध हटा लेंगे, बहुत परिहास करेंगे; खाली बर्तनसे उसका शिर भी ढँक देंगे। उसके शिरके सात टुकळे कर देंगे।

"मार्ष ! कितने अमनुष्य चण्ड, रुद्र और तेज स्वभावके हैं। वे न तो महाराजाओको मानने हैं, न उनके अधिकारियो (=पुरपक)को, और न अधिकारियोके अधिकारियोको। मार्ष ! वे अमनुष्य महाराजोके बागी (=अवरुद्ध) कहे जाते हैं। मार्ष ! जैसे मगधराजके राज्यमे महाचोर (=डाकू) हैं, वे न तो राजाको मानते हैं, न राजाके अधिकारियोको ०। वे महाचोर डाकू राजाके बागी कहे जाते हैं। मार्ष ! उसी तरह चण्ड, रुद्र ० अमनुष्य हैं, जो न तो ०।

(४) प्रबल यक्षोंका नाम-स्मरण

"मार्ष ! कोई भी अमनुष्य—यक्ष या यक्षिणी ०, गन्धर्व ०, कुम्भण्ड ० या नाग ०, द्वेषयुक्त चित्तसे भिक्षु ०के पीछे जाय तो इन यक्षो, महायक्षो, सेनापतियो और महासेनापतियोको पुकारना चाहिये, टेर देनी चाहिये, चिल्लाना चाहिये—यह यक्ष पकळ रहा है, शरीरमें प्रवेश कर रहा है, सताता है, ० बहुत सताता ०। ० डराता ०। ० बहुत डराता ०। यह यक्ष नहीं छोळता। किन यक्षो, महायक्षो, सेनापतियो, महासेनापतियोको (पुकारना चाहिये)?—

"इन्द्र, सोम, वरुण, भारद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्डु और निघण्डु ॥५१॥
प्रणाद (=पनाद), ओपमन्यव, देवसूत मातलि, गन्धर्व चित्रसेन और देवपुत्र राजा नल ॥५२॥
सातागिर, हैमवत, पूराणक, करतो, गुळ, शिवक[1], मुचलिन्द, वैश्वामित्र और युगन्धर ॥५३॥
गोपाल, सुप्परोध, हिरि, नेत्ति, मन्दिय, पञ्चाल चण्ड आलवक[2],
पर्जन्य (=पज्जुन्न), सुमन, सुमुख, दधिमुख, मणि (भद्र) मणिचर, दीर्घ और सेरिसिक ॥५४॥

"इन यक्षो०को पुकारना ० चाहिये—० यह यक्ष पकळ रहा है ०।

"मार्ष ! यह आटानाटिय-रक्षा भिक्षु ०।

"मार्ष ! अब हम लोग जायेंगे, हम लोगोको बहुत काम हैं, बहुत करणीय है।"

"जैसा महाराजो ! तुम काल समझते हो (वैसा करो)।"

तब चारो महाराज आसनसे उठ ० अन्तर्धान हो गये। वे यक्ष भी ० अन्तर्धान हो गये।

प्रथम भाणवार ॥१॥

२—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति

तब भगवान्ने उस रातके बीतनेपर भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! रातको चारो महाराज ० जहाँ मैं था वहाँ आये। ० बैठ गये। ० वैश्रवण महाराजने कहा—भन्ते ! कितने बळे बळे यक्ष ०[3] आसनसे उठ अन्तर्धान हो गये।

"भिक्षुओ ! आटानाटिय-रक्षाको पढो, ग्रहण करो, धारण करो। भिक्षुओ ! आटानाटिय रक्षा भिक्षुओ०की रक्षा, अ-पीडा अविहिंसा और सुखपूर्वक विहारके लिये सार्थक है।"

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] राजगृह नगरके एक द्वारपर रहता था। [2] आलवी (वर्तमान अरव, कानपुर)में रहनेवाला यक्ष। [3] पहलेकी ही गाथायें।

३३—संगीति-परियाय-सुत्त (३।१०)

१—पावाके नवीन संस्थागारमें बुद्ध। २—गुरुके मरनेपर जैनोंमें विवाद। ३—बौद्ध मन्तव्योंकी सूची

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच-सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ मल्ल (देश)-में चारिका करते, जहाँ [1]पावा नामक मल्लोंका नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्मार-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

१—पावाके नवीन संस्थागारमें बुद्ध

उस समय पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा, नया, सस्थागार (=प्रजातन्त्र-भवन) हालही में बना था, (वहाँ अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्यने वास नहीं किया था। पावा-वासी मल्लोंने सुना—'भगवान्० मल्लमें चारिका करते पावामें पहुँचे हैं, और पावामें चुन्द कर्मार(=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते हैं।' तब पावा-वासी मल्ल जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पावा-वासी मल्लोंने भगवान्से कहा—

"भन्ते! यहाँ पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा (=उन्नतक) नया सस्थागार, किसी भी श्रमण, या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बसा, अभी ही बना है। भन्ते! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें। भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लोंके लिये दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक हित सुखके लिये होगा।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया।

तब पावाके मल्ल भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, जहाँ सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर सस्थागारमें सब ओर फर्श बिछा, आसनोंको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक जलाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खड़े हो बोले—

"भन्ते! सस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, आसन स्थापित हैं, पानीके मटके रक्खे हैं, तेल-प्रदीप जलाये गये हैं। भन्ते! अब भगवान् जिसका काल समझें (वैसा करें)।"

तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर पैर पखार, सस्थागारमें प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर, बीचके खम्भेके आश्रयसे बैठे। भिक्षु-संघ भी पैर पखार, सस्थागारमें प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, भगवान्को आगेकर पश्चिमकी भीतके सहारे बैठा। पावा-वासी मल्लभी पैर पखार, सस्थागारमें प्रवेशकर पश्चिमकी ओर मुँहकर, भगवान्को सामने करके पूर्वकी भीतके सहारे बैठे। तब भगवान्ने पावा-वासी मल्लोंको बहुत राततक धार्मिक-कथासे संदर्शित=समादपित, समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर विसर्जित किया—

"वाशिष्ठो! रात तुम्हारी बीत गई, अब तुम जिसका काल समझो (वैसा करो)।"

---

[1] पडरौनाके समीप पप-उर (=पावा-पुर) जि० गोरखपुर।

"अच्छा भन्ते !" पावा वासी मल्ल आसनसे उठकर अभिवादन, कर चले गये।"

तब मल्लोंके जानेके थोळीही देर बाद, भगवान्ने शात (=तूष्णीभूत) भिक्षु-सघको देख, आयुष्मान् सारिपुत्रको आमत्रित किया—"सारिपुत्र ! भिक्षु-सघ स्त्यान मृद्ध-रहित है, सारिपुत्र ! भिक्षुओको धर्म-कथा कहो, मेरी पीठ [1]अगिया रही है, मै लेटूँगा।"

२—गुरुके मरनेपर जैनोंमें विवाद

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को "अच्छा भन्ते !" कह उत्तर दिया। तब भगवान्ने चौपेती सघाटी बिछवा, दाहिनी करवटके बल, पैरपर पैर रख, स्मृति-सप्रजन्यके साथ, उत्थान-सज्ञा मनमें कर, सिंह-शय्या लगाई। उस समय निगठ नात-पुत्त (=तीर्थंकर महावीर) अभी अभी पावामें काल किये थे। उनके काल करनेसे निगठोमे फूट पळ दो भाग हो गये थे। वह भडन=कलह=विवादमे पळ, एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्तिसे चीरते हुये विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय (=मत, धर्म)को नही जानता, मै इस धर्म विनयको जानता हूँ । 'तू क्या इस धर्मको जानेगा' ? 'तू मिथ्यारूढ है, मै सत्यारूढ हूँ' 'मेरा (कथन अर्थ)सहित है, तेरा अ-सहित है' । 'तूने पूर्व बोलने (की बात)को पीछे कहा, पीछे बोलने (की बात)को पहिले कहा' । 'तेरा (वाद) बिना विचारका उल्टा है । तूने वाद रोपा, (किन्तु) तू निग्रह-स्थानमें आगया (=निगृहीतोसि)' । 'जा वादसे छूटनेकेलिये फिरता फिर । यदि सकता है तो समेट' ।० मानो [2]नाथ-पुत्तिय निगठोंमें एक युद्ध (=वध) ही चल रहा था। जो भी निग्गठ नाथपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे०।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओको आमत्रित किया—

"आवुसो ! निगठ नात-पुत्तने पावामें अभी अभी काल किया है। उनके काल करनेसे० निगठ० भडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुख-शक्तिसे छेदते विहर रहे है—'तू इस धर्मको नही जानता०। निगठ नात-पुत्तके जो श्वेतवस्त्रधारी गृही शिष्य है, वे भी नातपुतिय निगठोमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त=प्रति वाण रूप है, जैसे कि वह (नात-पुत्तके) दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अ-नैर्याणिक, अन् उपशम-सवर्तनिक, अ-सम्यक्-सबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा रहित, आश्रय रहित धर्ममे। किन्तु आवुसो ! हमारे भगवान्का यह धर्म सु-आख्यात (=ठीकसे कहा गया), सु प्रवेदित (=ठीकसे साक्षात्कार किया गया), नैर्याणिक (=दु खसे पार करनेवाला), उपशम-सवर्तनिक (=शान्ति-प्रापक), सम्यक्-सम्बुद्ध प्रवेदित (=बुद्धद्वारा जाना गया) है। यहाँ सबको ही अ विरुद्ध वचनवाला होना चाहिये, विवाद नही करना चाहिये, जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक=(चिर स्थायी) हो, और वह बहुजन हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकके अनुकम्पाके लिये, देव मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिये हो। आवुसो ! कैसे हमारे भगवान्का धर्म ० देव-मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिय होगा ?

३—बौद्ध-मन्तव्योंकी सूची

१—एकक—"आवुसो ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धने एक धर्म ठीकसे बतलाया है। उसमें सबको ही अविरोध वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये, जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक हो ०। कौनसा एक धर्म ? (१) सब प्राणी आहारपर स्थित (=निर्भर) है। आवुसो ! उन भगवान्ने ० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया। इसमें सबको ही ०।

२—द्विक—"आवुसो ! उन भगवान्०ने दो धर्म यथार्थ कहे है।०। कौनसे दो? (१) नाम और रूप। अविद्या और भव(=आवागमनकी)-तृष्णा। भव(=नित्यता-)दृष्टि और विभव(=उच्छेद-)दृष्टि।

---

[1] अ क "क्यों अगियाती थी ? भगवान्के छै वर्षतक महातपस्या करते वक्त शरीरको बळा दु ख हुआ। तब पीछे बुढापेमें उन्हें पीठमें वात(-रोग) उत्पन्न हुआ।" [2] पृष्ठ २५२।

अह्रीकता (=निर्लज्जता), और अन्-अवत्राप्य (=मनोच-भयरहितता)। ह्री (=लज्जा) और अवत्रपा (=सकोच)। दुर्वचनता और पाप (=दुष्टकी)-मित्रता। सुवचनता और कल्याण (=सु)मित्रता। आपत्ति (=दोष)-कुशलता (=चतुराई), और आपत्ति-व्युत्थान (=०उठाना)-कुशलता। समापत्ति (=ध्यान) कुशलता, और समापत्ति-व्युत्थान-कुशलता। [1]धातु-कुशलता, और [2]मनसिकार-कुशलता। (१०) [3]आयतन-कुशलता, और [4]प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशलता। स्थान (=कारण)-कुशलता, और अ-स्थानकुशलता। आर्जव (=सीधापन) और मार्दव (=कोमलता)। क्षान्ति (=क्षमा) और सौरत्य (=आचारयुक्तता)। साखिल्य (=मधुर वचनता) और प्रति-सस्तार (=वस्तु या धर्मका छिद्र-पिधान)। अविहिंसा (=अहिंसा) और शौचेय (=मैत्रीभावना)। मुषित-स्मृतिता (=स्मृति-लोप) और अ-सप्रजन्य (=ध्यान न देना)। स्मृति और सप्रजन्य (=ज्ञान, ख्याल)। इन्द्रिय-अगुप्त-द्वारता (=अ-जितेन्द्रियता), और भोजनमें अ-मात्रज्ञता (=भोजनमें अपने लिये मात्रा न जानना)। इन्द्रिय-गुप्त-द्वारता और भोजन-मात्रज्ञता। (२०) प्रतिसख्यान (=अवगम-ज्ञान)-बल और भावना-बल। स्मृति-बल और समाधि-बल। शमथ (=समाधि) और विपश्यना (=प्रज्ञा)। शमथ-निमित्त और विपश्यना-निमित्त। प्रग्रह (=चित्त-निग्रह) और अ-विक्षेप। शील-विपत्ति (=आचार-दोष), और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धान्त-दोष)। शील-सम्पदा (=आचारकी सम्पूर्णता) और दृष्टि-सम्पदा। शील-विशुद्धि (=कायिक वाचिक अदुराचार), और दृष्टि-विशुद्धि (=सत्यके अनुसार ज्ञान)। दृष्टि-विशुद्धि कहते हैं सम्यक्-दृष्टिके निरतर अभ्यास (=प्रधान)को। सवेग कहते हैं सवेजनीय (=वैराग्य करनेवाले) स्थानोंमें सविग्न (-चित्तता)का कारण-पूर्वक निरतर अभ्यास। (३०) कुशल (=उत्तम) धर्मोंमें अ-सतुष्टिता, और प्रधान (=निरतर अभ्यास)में अ-प्रतिवानता (=निरालसता)। विद्या (=तीन विद्याओं)से विमुक्ति (=आस्रवोंसे चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण। (३२) आवुसो! उन भगवान्०ने इन दो (=जोळे) धर्मोंको ठीकसे कहा है०।

३—त्रिक—"आवुसो! उन भगवान्०ने यह तीन धर्म यथार्थ ही कहे हैं०।" कौनसे तीन? तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोकी जळ) हैं। कौनसे तीन०? लोभ अकुशल-मूल, द्वेष अकुशल-मूल, मोह अकुशल-मूल।

२—तीन कुशल-मूल हैं—अलोभ०, अ-द्वेष० और अ-मोह अकुशलमूल।

३—तीन दुश्चरित हैं—काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन-दुश्चरित।

४—तीन सुचरित हैं—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित।

५—तीन अकुशल (=बुरे) वितर्क—काम-वितर्क, व्यापाद (=द्रोह)० विहिंसा०।

६—तीन कुशल (=अच्छे)-वितर्क—नैष्क्रम्य (=निष्कामता)-वितर्क, अ-व्यापाद०, अ-विहिंसा०।

७—तीन अकुशल-सकल्प (=०वितर्क)—काम-सकल्प, व्यापाद०, विहिंसा०।

८—तीन कुशल सकल्प—नैक्खम्म-सकल्प, अव्यापाद० अविहिंसा०।

९—तीन अकुशल सज्ञायें—काम-सज्ञा, व्यापाद०, विहिंसा०।

१०—तीन कुशल सज्ञायें—नेक्खम्म-सज्ञा, अव्यापाद० अ-विहिंसा०।

११—तीन अकुशल धातु (=०तर्क-वितर्क)—काम-धातु, व्यापाद०, विहिंसा०।

---

[1] अ. क. 'धातु अठारह हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।' [2] 'उन धातुओंको प्रज्ञासे जाननेकी निपुणता।' [3] आयतन बारह हैं, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।' [4] देखो महानिदान-सुत्त १५ (पृष्ठ ११०)।

१२—तीन कुशल धातु—निष्कामता धातु, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।

१३—दूसरे भी तीन धातु (=लोक)—कामधातु, रूप-धातु अ-रूप-धातु।

१४—दूसरे भी तीन धातु (=चित्त)—हीन-धातु, मध्यम-धातु, प्रणीत (=उत्तम)-धातु।

१५—तीन तृष्णायें—काम—तृष्णा, भव(=आवागमन) ०, विभव ०।

१६—दूसरी भी तीन तृष्णायें—काम—तृष्णा, रूप ०, अ-रूप ०।

१७—दूसरी भी तीन तृष्णायें—रूप—तृष्णा, अरूप ०, निरोध ०।

१८—तीन संयोजन (=बंधन)—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (=संदेह), शीलव्रत-परामर्श।

१९—तीन आस्रव (=चित्तमल)—काम—आस्रव, भव ०, अविद्या ०।

२०—तीन भव (=आवागमन)—काम(-धातुमें) ०, रूप ०, अरूप ०।

२१—तीन एषणायें (=राग)—काम—एषण, भव ०, ब्रह्मचर्य ०।

२२—तीन विध (=प्रकार)—मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं समान हूँ, मैं हीन हूँ।

२३—तीन अध्व(=काल)—अतीत(=भूत)—अध्व, अनागत(=भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान)०।

२४—तीन अन्त—सत्काय—अन्त, सत्काय-समुदय (=० उत्पत्ति) ०, सत्काय-निरोध ०।

२५—तीन वेदनायें (=अनुभव)—सुखा—वेदना, दु खा ०, अदु ख-असुखा ०।

२६—तीन दु खता—दु ख-दुखता, संस्कार ०, विपरिणाम ०।

२७—तीन राशियाँ—मिथ्यात्व-नियत—राशि, सम्यक्त्व-नियत, अ-नियत ०।

२८—तीन कांक्षायें(=सन्देह)—अतीतकालको लेकर कांक्षा=विचिकित्सा करता है, नहीं छूटता, नहीं प्रसन्न होता है। अनागत कालको लेकर ०। अब प्रत्युत्पन्न कालको ०।

२९—तीन तथागतके अरक्षणीय—आवुसो! तथागतका कायिक आचार परिशुद्ध है, तथागतको कायदुश्चरित नहीं है; जिसकी कि तथागत आरक्षा (=गोपन) करें—'मत दूसरा कोई इसे जान लें।' आवुसो! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ०। ० तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ०।

३०—तीन किंचन (=प्रतिबंध)—राग—किंचन, द्वेष ०, मोह ०।

३१—तीन अग्नियाँ—राग—अग्नि, द्वेष ०, मोह ०।

३२—और भी तीन अग्नियाँ—आहवनीय—अग्नि, गार्हपत्य ०, दक्षिण ०।

३३—तीन प्रकारसे रूपोंका संग्रह—सनिदर्शन(=स्व-विज्ञान-सहित दर्शन)अ-प्रतिघ (=अ-पीडाकर)रूप; अ-निदर्शन सप्रतिघ ०, अ-निदर्शन अप्रतिघ ०।

३४—तीन संस्कार—पुण्य-अभिसंस्कार, अ-पुण्य-अभिसंस्कार, आनिञ्ज्य(=आनेञ्ज) अभिसंस्कार।

३५—तीन पुद्गल (=पुरुष)—शैक्ष्य (=अमुक्त) ०, अ-शैक्ष्य (=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अ-शैक्ष्य ०।

३६—तीन स्थविर (=वृद्ध)—जाति(=जन्मसे)—स्थविर, धर्म ०, सम्मति-स्थविर।

३७—तीन पुण्य-क्रियावस्तु—दानमय-पुण्यक्रियावस्तु, शीलमय ०, भावनामय ०।

३८—तीन दोषारोप (=चोदना)-वस्तु—देखे (दोष)से, सुने (दोष)से, शंका किये (दोष)से।

३९—तीन काम(=भोगोंकी)-उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति)—आवुसो! कुछ प्राणी वर्तमान काम(=भोग)उपपत्तिवाले हैं; वह वर्तमान कामोंके वशवर्ती होते हैं, जैसे कि मनुष्य, कुछ देवता, और कुछ विनिपातिक (=अधमयोनिवाले); यह प्रथम काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी

निर्मितकाम हैं, वह (स्वयं अपने लिये) निर्माणकर कामोंके वशवर्ती होते हैं; जैसे कि निर्माणरति-देव लोग; यह दूसरी काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी पर-निर्मित-काम हैं, वह दूसरोंके निर्मित कामोंके वशवर्ती होते हैं, जैसे कि पर-निर्मित-वशवर्ती देव लोग; यह तीसरी कामउपपत्ति है।

४०—तीन सुख-उपपत्तियाँ—आवुसो! कुछ प्राणी सुख उत्पन्नकर सुख-पूर्वक विहरते हैं; जैसे कि ब्रह्मकायिक देव लोग; यह प्रथम सुख-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे अभिषण्ण=परि-षण्ण=परिपूर्ण=परिस्फुट हैं। वह कभी कभी उदान (=चित्तोल्लाससे निकला वाक्य) कहते हैं—'अहो सुख!' 'अहो सुख!!' जैसे कि आभास्वर देव०। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे० परिपूर्ण०, हैं, वह उत्तम (सुखमें) सतुष्ट हो चित्त-सुखको अनुभव करते हैं, जैसे शुभ-कृत्स्न देव लोग। यह तीसरी सुख-उपपत्ति है।

४१—तीन प्रज्ञायें—शैक्ष्य(=अमुक्त-पुरुषकी)-प्रज्ञा, अ-शैक्ष्य(=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अशैक्ष्य-प्रज्ञा।

४२—और भी तीन प्रज्ञायें—चिन्ता-मयी प्रज्ञा, श्रुतमयी ०, भावनामयी ०।

४३—तीन आयुध—श्रुत (=पढ़ा)-आयुध ०, प्रविवेक (=विवेक) ०, प्रज्ञाविवेक ०।

४४—तीन इन्द्रियाँ—अन्-आज्ञात-आज्ञास्यामि (=नजानेको जानूँगा)-इन्द्रिय, आज्ञा ०, आज्ञातावी (=अर्हत्-ज्ञान) ०।

४५—तीन चक्षु (=नेत्र)—मांस-चक्षु, दिव्य-चक्षु, प्रज्ञा-चक्षु।

४६—तीन शिक्षायें—अधिशील(=शीलविषयक)-शिक्षा, अधि चित्त (=चित्तविषयक)०, अधि-प्रज्ञा (=प्रज्ञाविषयक) ०।

४७—तीन भावनायें—काय-भावना, चित्त-भावना, प्रज्ञा-भावना।

४८—तीन अनुत्तरीय (=उत्तम, श्रेष्ठ)—दर्शन(=विपश्यना, साक्षात्कार)-अनुत्तरीय, प्रतिपद् (=मार्ग)०, विमुक्ति(=अर्हत्व, निर्वाण)-अनुत्तरीय।

४९—तीन समाधि—स वितर्क-सविचार-समाधि, अवितर्क-विचार-मात्र-समाधि, अवितर्क-अविचार-समाधि।

५०—और भी तीन समाधि—शून्यता-समाधि, आनिमित्त ०, अ-प्रणिहित-समाधि।

५१—तीन शौचेय (=पवित्रता)—काय ०, वाक् ०, मन-शौचेय।

५२—तीन मौनेय (=मौन)—काय ०, वाक् ०, मन-मौनेय।

५३—तीन कौशल्य—आय ०, अपाय (=विनाश) ०, उपाय-कौशल्य।

५४—तीन मद—आरोग्य मद, यौवन-मद, जाति-मद।

५५—तीन आधिपत्य (=स्वामित्व)—आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म ०।

५६—तीन कथावस्तु (=कथा-विषय)—अतीत कालको ले कथा कहे,—'अतीतकाल ऐसा था।' अनागत कालको ले कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा'। अथवा प्रत्युत्पन्नकालको ले कथा कहे—'इस समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है'।

५७—तीन विद्यायें—पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान विद्या (=पूर्वजन्म-स्मरण), प्राणियोंके च्युति (=मृत्यु)-उत्पाद (=जन्म)का ज्ञान ०, आस्रवोंके क्षयका ज्ञान ०।

५८—तीन विहार—दिव्य-विहार, ब्रह्म-विहार, आर्य-विहार।

५९—तीन प्रातिहार्य (=चमत्कार)—ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य। यह आवुसो! उन भगवान् ०।

४—चतुष्क—"आवुसो! उन भगवान् ०ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे हैं ०। कौनसे चार?

१—चार[1] स्मृति-प्रस्थान—आवुसो ! भिक्षु कायामें ० कायानुपश्यी विहरता है। वेदनाओंमें०। चित्तमें०। धर्मोंमें ० धर्मानुपश्यी ०।

२—चार सम्यक् प्रधान—(१) भिक्षु अनुत्पन्न पापक (=बुरे) अकुशल धर्मोंकी अनुत्पत्तिके लिये रुचि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह=प्रधारण करता है। (२) उत्पन्न पापक=अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये (३)०। अनुत्पन्न कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये०। (४) उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, अ-विनाश, वृद्धि=विपुलता, भावनाकी पूर्ति करनेके लिये०।

३—चार ऋद्धिपाद—आवुसो ! भिक्षु (१) छन्द(=रुचिसे उत्पन्न)-समाधि(से)-प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। (२) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारसे ०। (३) वीर्य (=प्रयत्न)-समाधि-प्रधान-संस्कार ०। (४) विमर्श-समाधि-प्रधान-संस्कार ०।

४—चार ध्यान—आवुसो ! भिक्षु (१) [2]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ० द्वितीय ध्यान ०। (३) ० तृतीय-ध्यान ०। (४) चतुर्थ-ध्यान ०।

५—चार समाधि-भावना—(१) ०आवुसो ! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है। (२) आवुसो ! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार)के लाभके लिये होती है। (३) आवुसो ! ० स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है। (४) ० आस्रवोंके क्षयके लिये होती है। आवुसो ! कौनसी समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, बहुली-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षु ० प्रथम-ध्यान[3] ०, ० द्वितीय-ध्यान ०, ० तृतीय-ध्यान ०, ० चतुर्थ ध्यानको-प्राप्त हो विहरता है। आवुसो ! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (२) आवुसो ! कौनसी ० जो भावित होनेपर ० ज्ञान-दर्शनके लाभके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षु आलोक(=प्रकाश)-संज्ञा (=ज्ञान) मनमें करता है, दिन-संज्ञाका अधिष्ठान (=दृढ़-विचार) करता है—'जैसे दिन वैसी रात, जैसी रात वैसा दिन'। इस प्रकार खुले, बन्धन-रहित, मनसे प्रभा-सहित चित्तकी भावना करता है। आवुसो ! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (३) आवुसो ! कौनसी ० जो ० स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षुको विदित (=ज्ञानमें आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती है, विदित (ही) ठहरती है, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती है। विदित संज्ञा उत्पन्न होती है, ० ठहरती ०, ० अस्त होती है। विदित वितर्क उत्पन्न ०, ठहरते०, अस्त होते है। आवुसो ! यह समाधि-भावना० स्मृति-सम्प्रजन्यके लिये होती (४) है। आवुसो ! कौनसी है० जो आस्रव-क्षयके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें उदय (=उत्पत्ति)-व्यय (=विनाश)-अनुपश्यी (=देखनेवाला) हो विहरता है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तगमन (=अस्त होना), ऐसी वेदना है ०, ऐसी संज्ञा ०, ० संस्कार ०, ० विज्ञान ०। यह आवुसो ०।

६—चार अप्रमाण्य (=अ-सीम)—यहाँ आवुसो ! भिक्षु (१) मैत्री-युक्त चित्तसे ०[3] विहरता है ०। (२) करुणा-युक्त ०। (३) ० मुदिता-युक्त ०। (४) ० उपेक्षा-युक्त ०।

७—चार अरूप्य (=रूप-रहित-ता)—आवुसो ! (१) रूप-संज्ञाओंके सर्वथा अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्व(=नानापन)-संज्ञाके मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य (=आकाशकी अनन्तता)-आयतन(=स्थान)को प्राप्त हो विहार करता है। आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अनन्त है' इस, विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे,

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९०। [2] पृष्ठ २९-३२। [3] पृष्ठ ९१।

१३—चार स्रोतआपत्तिके अंग—सत्पुरुष-सेवन, सद्धर्म-श्रवण, योनिश मनसिकार (=कारण-पूर्वक विचार), धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति।

१४—चार स्रोत-आपन्नके अंग—आवुसो ! आर्य-श्रावक (१) बुद्धमें अत्यन्त प्रसाद (=श्रद्धा) से युक्त होता है—[1]'वह भगवान् अर्हत् सम्यक्, संबुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे संपन्न, सुगत (=सुंदर गतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोंको सन्मार्गपर लानेके लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध भगवान् हैं'। (२) धर्ममें अत्यन्त प्रसादसे युक्त होता है—[2]'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुंदर व्याख्यात), है वह इसी शरीरमें फल देनेवाला (सांदृष्टिक), सद्यः फलप्रद (=अकालिक), यहीं दिखाई देनेवाला, (निर्वाणके) पास ले जानेवाला, विज्ञ (पुरुषों)को अपने अपने (ही) भीतर विदित होनेवाला है'। (३) संघमें०[3] भगवान्का शिष्य संघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का शिष्य-संघ सीधे मार्गपर आरूढ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ है, ० ठीक मार्गपर आरूढ है। यह जो चार पुरुष-युगल और आठ पुरुष-पुद्गल[4] है, यही भगवान्का शिष्य संघ है, जो कि आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोळने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है। (४) अ-खंड=अछिद्र, अ-शवल=अ-कल्मष, योग्य=विज्ञ-प्रशंसित, अपरामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी, आर्य, कमनीय (=कांत) शीलोंसे युक्त होता है।

१५—चार श्रामण्य(=भिक्षुपनके)फल—स्रोतआपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्फल।

१६—चार धातु (=महाभूत)—पृथिवी-धातु, आप-धातु, तेज-धातु, वायु धातु।

१७—चार आहार—(१) औदारिक (=स्थूल) या सूक्ष्म कवलीकार आहार। (२) स्पर्श०। (३) मन-सचेतना ०। (४) विज्ञान ०।

१८—चार विज्ञान (=चेतन, जीव)-स्थितियाँ—(१) आवुसो ! रूप प्राप्तकर ठहरे, रूपमें रमण करते, रूपमें प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है, नन्दी (=तृष्णा)के सेवनसे वृद्धि=विरुढता-को प्राप्त होता है। (२) वेदना प्राप्तकर ०। (३) संज्ञा प्राप्तकर ०। (४) संस्कार प्राप्तकर ०।

१९—चार अगति-गमन—छन्द (=राग)-गति जाता है, द्वेष-गति ०, मोह-गति ०, भय-गति ०।

२०—चार तृष्णा-उत्पाद (=०उत्पत्ति)—(१) आवुसो ! भिक्षुको चीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। (२) ० पिंडपातके लिये ०। (३) ० शयनासन (=निवास) ०। (४) अमुक जन्म-अजन्म (=भवाभव)के लिये०।

२१—चार प्रतिपद् (=मार्ग)—(१) दुःखवाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (२) दुःखवाली प्रतिपद् और क्षिप्र (=जल्दी) ज्ञान। (३) सुखवाली (=सहल) प्रतिपद् और देरमें ज्ञान। (४) सुखवाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान।

२२—और भी चार प्रतिपद्—अ-क्षमा प्रतिपद्। क्षमाप्रतिपद्। दमकी प्रतिपद्। शमकी प्रतिपद्।

२३—चार धर्मपद—अन्-अभिध्या (=अ-लोभ)-धर्मपद। अ-व्यापाद (=अ-द्रोह-) ०। सम्यक्-स्मृति ०। सम्यक्-समाधि ०।

---

[1] यही बुद्धानुस्मृति है। [2] धर्मानुस्मृ०। [3] संघानुस्मृति।
[4] देखो आठ दक्षिणेय पृष्ठ २९६।

२४—चार धर्म-समादान—(१) आवुसो! कैसा धर्म-समादान (=०स्वीकार), जो वर्तमानमें भी दुःखमय, भविष्यमें भी दुःख-विपाकी (२) ०वर्तमानमें दुःखमय, भविष्यमें सुख-विपाकी। (३) ०वर्तमानमें सुख-मय, भविष्यमें दुःख-विपाकी। (४) ०वर्तमानमें सुख-मय, और भविष्यमें सुख-विपाकी।

२५—चार धर्म स्कन्ध—शील-स्कन्ध (=आचार-समूह)। समाधि-स्कन्ध। प्रज्ञा-स्कन्ध। विमुक्ति-स्कन्ध।

२६—चार बल—वीर्य-बल। स्मृतिबल। समाधि-बल। प्रज्ञाबल।

२७—चार अधिष्ठान (=सहारा)—प्रज्ञा-बल। सत्य ०। त्याग ०। उपशम ०।

२८—चार प्रश्न-व्याकरण (=सवालका जवाब)—एकांश-(=हाँ या नहीं करके)-व्याकरण करने लायक प्रश्न। प्रतिपृच्छा (=सवालके रूपमें) व्याकरणीय प्रश्न। विभज्य (=एक अंश हाँ भी, दूसरा अंश नहीं भी करके) व्याकरणीय प्रश्न। स्थापनीय (=न उत्तर देने लायक) प्रश्न।

२९—चार कर्म—आवुसो! (१) कृष्ण (=काला, बुरा) कर्म और कृष्ण-विपाक (=बुरे परिणाम वाला)। (२) ० शुक्लकर्म शुक्ल-विपाक। (३) शुक्ल-कृष्ण-कर्म, शुक्ल-कृष्ण-विपाक। (४) ० अकृष्ण-अ-शुक्लकर्म, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

३०—चार साक्षात्करणीय धर्म—(१) पूर्व-निवास (=पूर्व-जन्म) स्मृतिसे साक्षात्करणीय। (२) प्राणियोंका जन्म-मरण (=च्युति-उत्पाद), चक्षुसे साक्षात्करणीय। (३) आठ विमोक्ष, कायासे०। (४) आस्रवोंका क्षय, प्रज्ञासे ०।

३१—चार ओघ (=बाढ़)—काम-ओघ। भव (=जन्म) ०। दृष्टि (=मतवाद) ०। अविद्या०।

३२—चार योग (=मिलना)—काम-योग। भव०। दृष्टि०। अविद्या०।

३३—चार विसंयोग (=वियोग)—काम-योग-विसंयोग। भवयोग०। दृष्टियोग०। अविद्यायोग०।

३४—चार ग्रन्थ—अभिध्या (=लोभ)-काय-ग्रन्थ। व्यापाद (=द्रोह) कायग्रन्थ। शील-व्रत-परामर्श०। 'यही सच है' पक्षपात ०।

३५—चार उपादान—काम-उपादान। दृष्टि ०। शील-व्रत-परामर्श ०। आत्म-वाद ०।

३६—चार योनि—अण्डजयोनि। जरायुज योनि। सस्वेदज०। औपपातिक (=अयोनिज) ०।

३७—चार गर्भ-अवक्रान्ति (=गर्भप्रवेश)—(१) आवुसो! कोई कोई (प्राणी) ज्ञान (=होश) बिना माताकी कोखमें आता है, ज्ञान-बिना मातृ-कुक्षिमें ठहरता है, ज्ञानबिना मातृ-कुक्षिसे निकलता है, यह पहली गर्भावक्रान्ति है। (२) और फिर आवुसो! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृकुक्षिमें आता है, ज्ञान-बिना ० ठहरता है, ज्ञान बिना ० निकलता है ०। (३) ० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित ० ठहरता है, ज्ञान-बिना ० निकलता है ०। (४) ० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान सहित ० निकलता है ०।

३८—चार आत्म-भाव-प्रतिलाभ (=शरीर-धारण)—(१) आवुसो! (वह) आत्म-भाव-प्रतिलाभ जिस आत्म-भाव प्रतिलाभमें आत्म-सचेतना (=अपनेको जानना) ही पाता है, पर-सचेतना, नहीं पाता (२) ० पर सचेतनाको ही पाता है, आत्मसचेतनाको नहीं। (३) ० आत्म-सचेतना भी ०, पर-सचेतना भी ० (४) ०। न आत्म-सचेतना ०, न पर-सचेतना ०।

३९—चार दक्षिणा-विशुद्धि (=दान-शुद्धि)—(१) आवुसो! दक्षिणा (=दान) दायकसे शुद्ध किन्तु प्रतिग्राहकसे नहीं (२) ० प्रतिग्राहकसे शुद्ध०, किन्तु दायकसे नहीं। (३) ० न दायकसे०, न प्रतिग्राहकसे ०। (४) ० दायकसे भी ०, प्रतिग्राहकसे भी ०।

४०—चार संग्रह-वस्तु—दान, वैयावृत्य (=सेवा), अर्थ-चर्या, समानार्थता।

४१—चार अनार्य-व्यवहार—मृषावाद (=झूठ), पिशुन-वचन (=चुगली), प्रलाप (=बकवाद), परुष-वचन।

४२—चार आर्य-व्यवहार—मृषा-वाद-विरतता, पिशुन-वचन-विरतता, सप्रलाप-विरतता, परुष-वचन-विरतता।

४३—चार अनार्य-व्यवहार—अदृष्टमें दृष्ट-वादी बनना, अ-श्रुतमें श्रुत-वादिता, अ-स्मृतमें स्मृतवादिता, अ विज्ञातमें विज्ञात-वादिता।

४४—और भी चार अनार्य-व्यवहार—दृष्टमें अदृष्ट-वादिता, श्रुतमें अश्रुत-वादिता। स्मृतिमें अस्मृतवादिता, विज्ञातमें अ-विज्ञात-वादिता।

४५—और भी चार आर्य-व्यवहार—दृष्टमें दृष्टवादिता, श्रुतमें श्रुत-वादिता, स्मृतमें स्मृत-वादिता, विज्ञातमे विज्ञात-वादिता।

४६—चार पुद्गल (=पुरुष)—(१) आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्म-तप, अपनेको सताप देनेमें लगा रहता है। (२) कोई कोई पुद्गल परन्तप, पर(=दूसरे)को सताप देनेमें लगा रहता है। (३) ० आत्म-तप ० भी ० रहता है, परन्तप, भी ०। (४) ० न आत्म-तप ०, न परन्तप ०; वह अनात्मतप अपरतप हो इसी जन्ममें शोकरहित, सुखित, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्माके साथ विहार करता है।

४७—और भी चार पुद्गल—(१)आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्म-हितमें लगा रहता है, परहितमें नही। (२) ० परहितमें लगा रहता है, आत्महितमें नही। (३) ० न आत्म-हितमे लगा रहता है, न परहितमें। (४) ० आत्महितमे भी लगा रहता है, पर-हितमे भी०।

४८—और भी चार पुद्गल—(१) तम तम-परायण। (२) तम ज्योति-परायण। (३) ज्योति तमपरायण (४) ज्योति ज्योति-परायण।

४९—और भी चार पुद्गल—(१) श्रमण अचल। (२) श्रमण पद्म (=रक्त कमल)। (३) श्रमण-पुडरीक (=श्वेतकमल)। (४) श्रमणोमें श्रमण-सुकुमार।

यह आवुसो! उन भगवान् ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—पचक—"आवुसो! उन भगवान् ०ने पाँच धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे पांच?—

१—पाँच स्कध—रूप०, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान स्कध।

२—पाँच उपादान-स्कन्ध—रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कन्ध।

३—पाँच काम-गुण—(१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय, काम-सहित=रजनीय (=चित्तको रजन करनेवाले) रूप। (२) श्रोत-विज्ञेय ० शब्द। (३) घ्राण विज्ञेय ० गन्ध। (४) जिह्वा-विज्ञेय ० रस। (५) काम-विज्ञेय ० स्पर्श।

४—पाँच गति—निरय (=नर्क)। तिर्यक् (=पशु पक्षी आदि) योनि। प्रेत्य-विषय (=भूत प्रेत आदि)। मनुष्य। देव।

५—पाँच मात्सर्य (=हसद)=आवासमात्सर्य, कुल ०, लाभ ०, वर्ण ०, धर्म ०।

६—पाँच नीवरण—कामच्छन्द(=काम-राग) ०, व्यापाद ०, स्त्यान-मृद्ध ०। औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०।

७—पाँच अवरभागीय सयोजन—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत-परामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद।

८—पाँच उर्ध्व भागीय सयोजन—रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।

९—पाँच शिक्षापद—प्राणातिपात(=प्राण-वध)-विरति, अदत्तादान-विरति, काम-मिथ्या-चारविरति, मृषावाद-विरति, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति।

१०—पांच अभव्य (=अयोग्य) स्थान—(१) आवुसो ! क्षीणास्रव (=अर्हत्) भिक्षु जानकर प्राण-हिंसा करनेके अयोग्य है। (२) अदत्तादान (=चोरी)=स्तेय करनेके अयोग्य है। (३) ० मैथुन-सेवन करनेके अयोग्य है। (४) ० जानकर मृषावाद (=झूठ बोलने)के ०। (५) ० सन्निधि-कारक हो (=जमाकर) कामोंको भोगकरनेके ०, जैसे कि पहिले गृहस्थ होते करता था।

११—पांच व्यसन—ज्ञातिव्यसन, भोग०, रोग०, शील०, दृष्टि०। आवुसो ! प्राणी ज्ञाति-व्यसनके कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोळ मरनेके बाद अपाय, दुर्गति विनिपात, निरय (=नर्क)को प्राप्त होते हैं। आवुसो ! शीलव्यसनके कारण या दृष्टि-व्यसनके कारण प्राणी०।

१२—पांच सम्पद् (=प्राप्ति)—ज्ञाति-सम्पद्, भोग०, आरोग्य०, शील०, दृष्टि०। आवुसो ! प्राणी ज्ञाति-सम्पद्के कारण०, भोग-सम्पद्०, आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें नहीं उत्पन्न होते। आवुसो ! शीलसम्पद्के कारण या दृष्टिसम्पद्के कारण प्राणी०।

१३—पांच आदिनव (=दुष्परिणाम) है, शील विपत्ति (=आचार-दोष)के कारण दुःशील (पुरुष)को—(१) आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील(=दुराचारी) प्रमादसे बळी भोग-हानिको प्राप्त होता है, शील विपन्न दुःशीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है। (२) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशीलके लिये बुरे निन्दा-वाक्य उत्पन्न होते हैं, यह दूसरा दुष्परिणाम है। (३) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील, चाहे क्षत्रिय-परिषद्, चाहे ब्राह्मण-परिषद्, चाहे गृहपति-परिषद्, चाहे श्रमण-परिषद्, चाहे जिस परिषद् (=सभा)में जाता है, अ विशारद होकर, मूक होकर, जाता है। यह तीसरा०। (४) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील, सम्मूढ (=मोहप्राप्त) होकर काल करता है, यह चौथा०। (५) और फिर आवुसो ! शील विपन्न काया छोळ मरनेके बाद अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (=नर्क)मे उत्पन्न होता है यह पाँचवाँ ०।

१४—पाँच *गुण* (=आनृशस्य) है, शील-सम्पदासे शीलवान्को—(१) आवुसो ! शील-सम्पन्न शीलवान्को अप्रमादके कारण, बळी भोग-राशिकी प्राप्ति होती है, शीलवान्को शील-सम्पदासे यह प्रथम गुण है। (२) ० सुन्दर कीर्ति शब्द उत्पन्न होते है०। (३) ० जिस जिस परिषद्में जाता है, विशारद होकर, अ मूक होकर, जाता है०। (४) ० अ-सम्मूढ हो काल करता है०। (५) ० काया छोळ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है०।

१५—पाँच धर्मोंको अपनेमें स्थापितकर आवुसो ! आरोपी (=दूसरेपर दोषारोप करनेवाले) भिक्षुको दूसरेपर आरोप करना चाहिये—(१) कालसे कहूँगा, अकालसे नहीं। (२) भूत (=यथार्थ) कहूँगा, अभूत नहीं। (३) मधुर कहूँगा, कटु नहीं। (४) अर्थ सहित (=स प्रयोजन) कहूँगा, अनर्थसहित नहीं। (५) मैत्री-भावसे कहूँगा, द्रोह चित्तसे नहीं। ।

१६—पाँच प्रधानीय (=प्रधानके) अंग—(१) यहाँ आवुसो ! भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधि (=परमज्ञान)पर श्रद्धा रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०। (२) अबाधा (=रोग)-रहित आतंक रहित होता है। न बहुत शीतल, न बहुत उष्ण सम-विपाक-वाली प्रधान (=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है। (३) शास्ताके पास, या विज्ञोंके पास, या स-ब्रह्मचारियोंके पास अपनेको यथाभूत (=जैसा हूँ वैसा) प्रकट करनेवाला, अशठ=अ-मायावी होता है। (४) अकुशल धर्मोके विनाशके लिये, कुशल धर्मोंकी प्राप्तिके लिये, आरब्ध-वीर्य (=उद्योगशील) हो विहरता है, कुशल धर्मोंमें स्थाम-वान्=दृढपराक्रम=धुरा (कंधेसे) न फेंकनेवाला (होता है) । (५) निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक् दुःख-क्षयकी ओर ले जाने-वाली, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य प्रज्ञासे संयुक्त, प्रज्ञावान् होता है।

प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति पैदा होती है। प्रीति-मानकी काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है, प्रश्रब्ध-काय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है। यह प्रथम विमुक्त्यायतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी; बल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा-पर्याप्त (=धर्म-शास्त्रके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोंको धर्म-उपदेश करता है०। (३) ० बल्कि यथाश्रुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है०। (४) ० बल्कि यथाश्रुत यथा-पर्याप्त धर्मको चित्तसे अनु-वितर्क करता है, अनु-विचार करता है, मनसे सोचता है०। (५) ० बल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त, (=०आकार) सुगृहीत=सुमनसीकृत=सु-प्रधारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रज्ञासे सु-प्रतिविद्ध (=तहतक जाना गया) होता है; जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कोई एक समाधि निमित्त०।

२६—पाँच विमुक्ति-परिपाचनीय संज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनित्यमें दुःख-संज्ञा, दुःखमें अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा।

यह आवुसो! उन भगवान्०ने०।

६—**षट्क** "आवुसो! उन भगवान्०ने छै धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे छै?

१—छै अध्यात्म (=शरीरमें)-आयतन—चक्षु-आयतन, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन-आयतन।

२—छै बाह्य-आयतन—रूप-आयतन, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य(=स्पर्श)०, धर्म-आयतन।

३—छै विज्ञान काय (=०समुदाय)—चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय० मनो-विज्ञान।

४—छै स्पर्श-काय—चक्षु-संस्पर्श, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन संस्पर्श।

५—छै वेदना-काय—चक्षु-संस्पर्शज वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शज०, घ्राणसंस्पर्शज०, जिह्वा-संस्पर्शज०, काय-संस्पर्शज०, मन संस्पर्शज-वेदना।

६—छै संज्ञा-काय—रूप-संज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य० धर्म०,।

७—छै संचेतना-काय—रूप-संचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म०।

८—छै तृष्णा-काय—रूप-तृष्णा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म-तृष्णा।

९—छै अ-गौरव—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु शास्तामें अ-गौरव (=सत्कार-रहित), अ प्रतिश्रय (=आश्रय-रहित) हो विहरता है। (२) धर्ममें अगौरव०। (३) संघमें अगौरव०। (४) शिक्षामें अगौरव०। (५) अप्रमादमें अ-गौरव०। (६) स्वागत (=प्रति-संस्तार) में अ-गौरव०।

१०—छै गौरव—(१) ० शास्तामें सगौरव, स-प्रतिश्रय, हो विहरता है, (२) धर्ममें०, (३) संघमें ०, (४) शिक्षामें०, (५) अप्रमादमें०, (६) प्रतिसंस्तारमें०।

११—छै सौमनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर सौमनस्य (=प्रसन्नता)-स्थानीय रूपोंका उपविचार (=विचार) करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। (३) घ्राणसे गन्ध सूँघकर०। (४) जिह्वासे रस चखकर०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म जानकर०।

१२—छै दौर्मनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दौर्मनस्य (=अप्रसन्नता)-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म०।

१३—छै उपेक्षा-उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य०। (६) मनसे धर्म०।

१४—छै सारणीय धर्म—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षुको सब्रह्मचारियोंमें गुप्त या प्रकट मैत्री

युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है, यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है, संग्रह, अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको० मैत्री युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है०। (३) ०मैत्री-युक्त मानस-कर्म०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ हैं—अन्तत पात्रमें चुपळने मात्र भी, उस प्रकारके लाभोंको बाँटकर भोगनेवाला होता है, शीलवान् स-ब्रह्मचारियो सहित भोगनेवाला होता है, यह भी०। (५) ०जो अखड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मप, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ प्रशंसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी शील हैं, वैसे शीलोंमे स-ब्रह्मचारियोके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ०जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है, (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दु ख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०।

१५—छै विवाद-मूल—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है, जो वह आवुसो! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामें भी अगौरव=अप्रतिश्रय हो विहरता है, धर्ममें भी ०, संघमें भी ०, शिक्षा(=भिक्षु नियम)को भी पूरा करनेवाला नही होता है। आवुसो! जो वह भिक्षु शास्तामे भी अगौरव ० होता है, वह संघमें विवाद उत्पन्न करता है, जो विवाद कि बहुत लोगोके अहितके लिये=बहुजन-असुखके लिये, देव-मनुष्योके अनर्थ, अहित, दु खके लिये होता है। आवुसो! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर देखना, (तो) वहाँ आवुसो! तुम उस दुष्ट विवाद मूलक नाशके लिये प्रयत्न करना। यदि आवुसो! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर न देखना, तो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना। इस प्रकार इस दुष्ट (=पापक) विवाद-मूलका प्रहाण होता है, इस प्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमें उत्पत्ति नही होती। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु मर्पी (=अमरखी) पलासी (=निष्ठुर), होता है। (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है ०। (४) ० शठ, मायावी होता है ०। (५) ० पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है ० (६) ० सदृष्टि-परामर्शी (=तुरन्त चाहनेवाला), आधान ग्राही (=हठी), दु प्रति-निस्सर्गी (=मुश्किल से छोळनेवाला) होता है ०।

१६—छै धातु—पृथिवी धातु, आप०, तेज०, वायु०, आकाश०, विज्ञान०।

१७—छै निस्सरणीय-धातु—(१) आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया, किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहे, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करें, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नही है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नही कहते। यह मुमकिन नही, इसका अवकाश नही, कि मैत्री चित्त विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो, और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह संभव नही। आवुसो! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त विमुक्तिको भावित० किया, तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है' ।०। (४) ० उपेक्षा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये है, ०। (५) अनिमित्ता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है' ।०। (६) ० 'अस्मि' (=मैं हूँ), मेरा चला गया, 'यह मै हूँ नही देखता, तो भी विचिकित्सा (=संदेह) वाद विवाद रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये है०।'

१८—छै अनुत्तरीय—दर्शन०, श्रवण०, लाभ०, शिक्षा०, परिचर्या०, अनुस्मृति०।

१९—छै अनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, संघ०, शील०, त्याग०, देवता-अनुस्मृति।

२०—छै शाश्वत-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देखकर न सुमन होता है, न दुर्मन होता है। स्मरण करते, जानते उपेक्षक हो विहार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। (३) घ्राणसे गंध सूँघकर ० (४) जिह्वासे रस चखकर ०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ०। (६) मनसे धर्मको जानकर ०।

२१—छै अभिजाति (=जाति, जन्म)—(१) यहाँ आवुसो ! कोई कोई कृष्ण-अभिजातिक (=नीच कुलमें पैदा) हो, कृष्ण (=काले=बुरे) धर्म करता है। (२) ० कृष्णाभिजातिक हो शुक्ल-धर्म करता है। (३) ० कृष्णाभिजातिक हो अ-कृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है। (४) ० शुक्लाभिजातिक (=ऊँचे कुलमें उत्पन्न) हो शुक्ल-धर्म (=पुण्य) करता है। (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण-धर्म (=पाप) करता है। (६) ० शुक्लाभिजातिक हो अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है।

२२—छै निर्वेध-भागीय संज्ञा—(१) अनित्य संज्ञा। (२) अनित्यमें दुःख संज्ञा। (३) दुःखमें अनात्म-संज्ञा। (४) प्रहाण संज्ञा। (५) विराग-संज्ञा। (६) निरोध-संज्ञा।

आवुसो ! उन भगवान्‌ने यह ०।

७—सप्तक—"आवुसो ! उन भगवान्०ने (यह) सात धर्म यथार्थ कहे हैं ०।

१—सात आर्य-धन—श्रद्धा धन, शील ०, ह्री (=लज्जा) ०, अपत्रपा (=सकोच) ०, श्रुत०, त्याग०, प्रज्ञा ०।

२—सात बोध्यंग—स्मृति-संबोध्यंग, धर्म-विचय०, वीर्य०, प्रीति०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा०,।

३—सात समाधि-परिष्कार—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति।

४—सात अ-सद्धर्म—भिक्षु अ-श्रद्ध होता है, अह्रीक (=निर्लज्ज)०, अन्-अपत्रपी (=अपत्रपा-रहित) ०, अल्पश्रुत ०, कुसीद (=आलसी) ०, मूढ-स्मृति ०, दुष्प्रज्ञ ०।

५—सात सद्धर्म—श्रद्धालु होता है, ह्रीमान् ०, अपत्रपी ०, बहुश्रुत ०। आरब्ध-वीर्य (=निरालसी), उपस्थित-स्मृति ०, प्रज्ञावान् ०।

६—सात सत्पुरुष धर्म— धर्मज्ञ ०, अर्थज्ञ ०, आत्मज्ञ ०, मात्रज्ञ ०, कालज्ञ ०, परिषत्-ज्ञ०, पुद्गलज्ञ ०।

७—सात [1]निर्देश-वस्तु—(१) आवुसो ! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करनेमें तीव्र-छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम-रहित नहीं होता। (२) धर्म-निशाति (=विपश्यना)में तीव्र-छन्द होता है, भविष्यमें भी धर्म-निशातिमें प्रेम रहित नहीं होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग)में ०। (४) प्रतिसंलयन (=एकांतवास)में ०।

---

[1] अ क "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगंठ (जैन साधु)को निर्दश कहते हैं, वह (मरा निगंठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता। ...। इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विश। निस्त्रिंश, निश्चत्वारिंश, निष्पंचाश कहते हैं। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राममें विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—'आनन्द ! यह तीर्थिकोंका ही वचन नहीं है, मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परि-निर्वाण प्राप्त हो फिर दश वर्षका नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष . एक वर्ष ..एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्त्तका भी नहीं होता। किसलिये ? (पुन) जन्मके न होनेसे ....।"

(५) वीर्यारम्भ (=उद्योग)में ०। (६) स्मृतिके निष्पाक(=परिपाक)में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन)में ०।

८—सात संज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदिनव०, प्रहाण०, विराग०, निरोध०।

९—सात बल—श्रद्धाबल, वीर्य ०, स्मृति ०, समाधि , प्रज्ञा ०, ह्री०, अपत्राप्य ०।

१०—सात विज्ञान-स्थिति—(१) आवुसो! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (=नाम)वाले हैं; जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ०नाना-काय किन्तु एक-संज्ञावाले, जैसे कि प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव०। (३) एक-काया नाना-संज्ञावाले, जैसे कि आभास्वर देवता ०। (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता ०। (५) आवुसो! कोई कोई सत्त्व रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है। (६) ०आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह छठी विज्ञान-स्थिति है, (७) ०विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त है। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है।

११—सात दक्षिणेय (=दान-पात्र) व्यक्ति हैं—उभयतोभाग-विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त, काय-साक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, धर्मानुसारी, श्रद्धानुसारी।

१२—सात अनुशय—काम-राग-अनुशय, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ० अविद्या ०।

१३—सात संयोजन—अनुनय-संयोजन, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ०, अविद्या ०।

१४—सात—अधिकरण-शमथ तब तब उत्पन्न हुए अधिकरणों (=झगळों)के शमनके लिये—(१) सम्मुख-विनय देना चाहिये (२) स्मृतिविनय ०, (३) अमूढ़-विनय ०, (४) प्रतिज्ञातकरण। (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

यह आवुसो! उन भगवान्०ने ०।

८—अट्ठक—"आवुसो! उन भगवान्०ने आठ धर्म यथार्थ कहे हैं ०।

१—आठ मिथ्यात्व (=झूठ)—मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंकल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि।

२—आठ सम्यक्त्व (=सच)—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि।

३—आठ दक्षिणेय पुद्गल—स्रोत आपन्न, स्रोतआपत्ति-फल साक्षात्कार करनेमें तत्पर, सकृदागामी, सकृदागामी-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अनागामी, अनागामि-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अर्हत्, अर्हत्त्व-साक्षात्कार-तत्पर।

४—आठ कुसीत(=आलस्य)वस्तु—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षुको (जब) कर्म करना होता है, उसके (मनमें) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुए मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं लेट (=सो) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये, अनधिगतके अधिगमके लिये, असाक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नहीं करता। यह प्रथम कुसीत वस्तु है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने काम किया, काम करते मेरा शरीर थक गया,

क्यों न मैं पड़ रहूँ। वह पड़ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमें मेरा शरीर तकलीफ पायेगा; क्यों न मैं पड़ रहूँ।' वह पड़ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमें मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममें पिंडचार करते रूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं मिलता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममें पिंडचार करते रूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यों न मैं लेट रहूँ०।(६) ० पिंडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मैं ० पिंडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, असमर्थ है, मानो मासका ढेर है, क्यों न पड़ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोड़ी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है; पड़ रहना उचित है, क्यों न मैं पड़ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

५—आठ आरम्भ-वस्तु—(१)जब आवुसो! भिक्षुको काम करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये, बुद्धके शासन (=धर्म)को मनमें लाना मुझ सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, असाक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ।' सो ० उद्योग करता है, यह प्रथम आरम्भ-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मैं काम कर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धके शासनको मनमें न कर सका'; क्यों न मैं ० उद्योग करूँ ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममें पिंडचार करते रूखा भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० रूखा-सूखा भोजन पूरा पाता है, ०सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ़ जाय, क्यों न मैं०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यों न मैं०।

६—आठ दान-वस्तु—(१) आसन्न हो दान देता है। (२) भयसे ०। (३) 'मुझको उसने दिया है'—(सोच) दान देता है। (४) 'देगा (सोच) ०। (५) 'दान करना अच्छा है' (सोच) ०। (६) 'मैं पकाता हूँ, ये नहीं पकाते, पकाते हुए न पकानेवालोंको न देना अच्छा नहीं' (सोच) देता है। (७) 'यह दान देनेसे मेरा मंगलकीर्ति शब्द फैलेगा (सोच) देता है। (८) चित्तके अलंकार, चित्तके परिष्कारके लिये दान देता है।

७—आठ दान-उपपत्ति (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो! कोई कोई पुरुष, श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवसथ (=निवास), प्रदीप दान देता है। वह, जो देता है, उसकी भी तारीफ करता है। वह क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी) ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशालको पाँच भोगो (=काम-गुणो)से समर्पित=संयुक्त हो विचरते देखता है। उसको ऐसा होता है—अहो! मैं भी काया छोड़ मरनेके बाद क्षत्रिय-महाशालो०की स्थिति (=सहव्यता) में उत्पन्न होऊँ। वह इसको चित्तमें धारण करता है, इसका चित्तमें अधिष्ठान (=दृढ़ संकल्प) करता है, इसकी चित्तमें भावना करता है। उसका वह चित्त, हीन (=अवनति) छोड़, उन्नतकी भावनाकर, वहीं उत्पन्न होती है। यह मैं शीलवान् (=सदाचारी)का कहता हूँ, दुःशीलका नहीं। आवुसो! विशुद्ध होनेसे शीलवान्की मानसिक प्रणिधि (=अभिलाषा) पूरी होती है। (२) और फिर आवुसो! ० दान देता है। वह जो देता है, उसकी प्रशंसा करता है। वह सुने होता है—चातुर्महाराजिक देव ० दीर्घायु सुरूप, बहुत सुखी, (होते हैं)। उसको ऐसा होता है—अहो! मैं शरीर छोड़ मरनेके बाद

चातुर्महाराजिक देवोंमें उत्पन्न होऊँ०। (३) ०वह सुने होता—त्रायस्त्रिंश देव लोग०। (४) ० याम देव०। (५) ०तुषित०। (६) ०निर्माण-रति-देव०। (७) ० परनिर्मित-वशवर्ती देव०। (८) ब्रह्मकायिक देव०।

८—आठ परिषद्—क्षत्रिय-परिषद्। ब्राह्मण०। गृहपति०। श्रमण०। चातुर्महाराजिक०। त्रायस्त्रिंश०। मार०। ब्रह्मा०।

९—आठ अभिभ्वायतन—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्म) रूप-संज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है, 'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ'—संज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (३) ०अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (४) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको०। (५) ०अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन नील निर्भास रूपोको देखता है, जैसे कि नील, नीलवर्ण, नील निदर्शन अलसीका फूल, या जैसे दोनो ओरसे रगळा (=पालिश किया) नीला० काशी वस्त्र। ऐसे ही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील० रूपोको देखता है। उन्हे अभिभवनकर०। (६) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीतवर्ण, पीत-निदर्शन, पीत-निभास रूपोको देखता है, जैसे कि ०कर्णिकार पुष्प, या जैसे० पीला०बनारसी वस्त्र०। (७) ०बाहर लोहित (=लाल) ०रूपोको देखता है, जैसे कि० बधु-जीवक-पुष्प, या जैसे ०लोहित०बनारसी वस्त्र०। (८) ००बाहर अवदात (=सफेद) ०रूपोको देखता है, जैसे कि अवदात ०ओषधी-तारका (=शुक्र), या जैसे अवदात ०बनारसी वस्त्र।०

१०—आठ विमोक्ष—(१) (स्वय) रूपी (=रूपवान्) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूपी-संज्ञी बाहर रूपोको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र) हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है०। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रति-हिंसा)-संज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी संज्ञा (=ख्याल)को मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञाना-नन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नही' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नही संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

आवुसो! उन भगवान्०ने ० यह।

९-नवक—"आवुसो! उन भगवान्०ने यह नव धर्म यथार्थ कहे हैं०।

१—नव आघात-वस्तु—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाळ) किया', इसलिये आघात (=बदला-लेनेका ख्याल) रखता है। (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है०। (३) 'मेरा अनर्थ करेगा०। (४) 'मेरे प्रिय=मनापका अनर्थ किया०। (५) ००अनर्थ करता है०। (६) ०० अनर्थ करेगा०। (७) 'मेरे अ-प्रिय-अमनापके अर्थ (=प्रयोजन)को किया०। (८) ० करता है०। (९) ०करेगा०।

२—नव आघात-प्रतिविनय (=हटाना)—(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलेमें अनर्थ करनेसे मुझे) क्या मिलनेवाला है' इससे आघातको हटाता है। (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे०। (३) ०करेगा०। (४) मेरे प्रिय-मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है'०। (५)०अनर्थ करता है०। (६) ०अनर्थ करेगा०। (७) 'मेरे अप्रिय=अमनापके अर्थको किया है०। (८) ०करता है०। (९) ०करेगा०।

३—नव सत्त्वावास (=जीवलोक)—(१)आवुसो ! कोई सत्त्व नानाकाय (=०शरीर) और नाना संज्ञा (=नाम)वाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम सत्त्वावास है। (२) ० नाना-काय एक-संज्ञावाले, जैसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव। (३) ० एक-काय नाना-संज्ञावाले, जैसे आभास्वर देव लोग। (४) ० एक-काया एक संज्ञावाले, जैसे शुभकृत्स्न देव लोग। (५) ० संज्ञा-रहित, प्रतिसंवेदन (=होश)-रहित जैसे कि असंज्ञी-सत्त्व देव लोग। (६) रूप-संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा (=प्रतिहिंसाके ख्याल)के अस्त होने, नानात्व की संज्ञाको मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं ०। (७) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं ०। (८) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'किंचित् नहीं' इस आकिंचन्य-आयतन-को प्राप्त हैं ०। (९) आवुसो ! ऐसे सत्त्व हैं, (जो कि) आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञा (=न होश न बेहोश)-आयतनको प्राप्त हैं, यह नवम सत्त्वावास है।

४—नव अक्षण=असमय (हैं) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) संबोधिगामी, धर्मको उपदेश करते हैं। (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नर्क)में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)में उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि)में उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-योनि)में०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोंमें अपंडित म्लेच्छोंमें उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओंकी गति (=जाना) नहीं, न भिक्षुणियोंकी, न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी०। (७) ० मध्यदेश (=मज्झिमजनपद)में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टीमत)=विपरीत-दर्शनका होता है—'दान दिया (कुछ) नहीं है, यज्ञ किया०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक कुछ नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जानें ०। (८) ० मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड-मूक (=भेंळसा गूंगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९)तथागत ० लोकमें उत्पन्न नहीं होते ० ० मध्य-देशमें उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञा-वान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें समर्थ होता है०।

५—नव अनुपूर्व (=क्रमशः)-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय-ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्तहो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिंचन्यायतन ०। (८) ० नैवसंज्ञाना-संज्ञायतन ०। (९) ० संज्ञा-वेदयित-निरोध ०।

६—नव अनुपूर्व-निरोध—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तको काम-संज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान प्राप्तका आश्वास-प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-सज्ञा०। (७) आकिञ्चन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन सज्ञा०। (८) नैव-सज्ञा-नासज्ञा-यतन-प्राप्तकी आकिञ्चन्यायतन सज्ञा०। (९) सज्ञा-वेदयित-निरोध प्राप्तकी (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती हैं।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

आवुसो! उन भगवान्०ने यह०।

१०—दशक—"आवुसो! उन भगवान्०ने दश धर्म यथार्थ कहे०। कौनसे दश?—

१—दश नाथ-करण धर्म—(१) आवुसो! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-सवर (=कवच)से सवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयो (=वद्य)मे भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोको) ग्रहणकर शिक्षापदोको सीखता है। जो यह आवुसो! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ०भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत धर, श्रुत-सचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक =सव्यजन है, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते है, वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखे) होते है, यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ०भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-सप्रवक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ०भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुर-भाषिता)वाले धर्मोसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी०। (५) ०भिक्षु सब्रह्मचारियोके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते है, उनमें दक्ष= आलस्यरहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमें समर्थ, होता है। ०यह भी०। (६) ०भिक्षु अभिधर्म (=सूत्रमें), अभि-विनय (=भिक्षु नियमोमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वय उपदेश करनेमें उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है०। (८) ०भिक्षु अकुशल धर्मोके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढपराक्रम होता है। कुशल-धर्मोमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोळा नही) होता०। (९) ०भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है, बहुत पुराने किये, बहुत पुराने कथितका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य, निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है०।

२—दश कृत्स्नायतन—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे टेढे अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब कुछ पृथिवी है) जानता है। (२) ० आप-कृत्स्न०। (३) ० तेज कृत्स्न०। (४) ०वायु-कृत्स्न०। (५) ०नील-कृत्स्न०। (६) ०पीत-कृत्स्न०। (७)०लोहित-कृत्स्न०। (८) ०अवदात-कृत्स्न०। (९) ०आकाश-कृत्स्न०। (१०) ०विज्ञान-कृत्स्न०।

३—दश अकुशलकर्म-पथ (=दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (=हिंसा)। (२) अदत्तादान (=चोरी)। (३) काम मिथ्याचार (=व्यभिचार)। (४) मृषावाद (=झूठ)। (५) पिशुन-वचन (=चुगली)। (६) परुष-वचन (=कटुवचन)। (७) सप्रलाप (=बकवास)। (८) अभिध्या (=लोभ)। (९) व्यापाद (=द्रोह)। (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टीमत)।

४—दश कुशलकर्म-पथ (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात विरति। (२) अदत्तादान-विरति। (३) काम मिथ्याचार-विरति। (४) मृषावाद-विरति। (५) पिशुनवचन-विरति। (६) परुष-वचन विरति। (७) सप्रलाप विरति। (८) अन्-अभिध्या। (९) अ-व्यापाद। (१०) सम्यग्दृष्टि।

५—दश आर्य-वास—(१) आवुसो! भिक्षु पाँच अंगो (=बातो) से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छै अंगोसे युक्त (=षडंग-युक्त) होता है। (३) एक रक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय) वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेकसच्च (=मतोंके आग्रहका पूर्णतया त्यागी) होता है। (६) समवय-सट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प ० (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ०।

(१) आवुसो! भिक्षु पाँच अंगोसे हीन कैसे होता है? यहाँ आवुसो! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण०, स्त्यान-मृद्ध०, औद्धत्य-कौकृत्य०, विचिकित्सा०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो! भिक्षु षडंग-युक्त होता है? आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन; स्मृति-सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। घ्राणसे गंध सूँघकर०। जिह्वासे रस चखकर०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर०, मनसे धर्म जानकर००। (३) आवुसो! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो! भिक्षु संख्यान (=समझ) कर एकको सेवन करता है, संख्यानकर एकको स्वीकार करता है, संख्यानकर एकको हटाता है, संख्यानकर एकको वर्जित करता है,०। (५) आवुसो! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है? आवुसो! जो वह पृथक् (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोंके पृथक् (=उल्टे) प्रत्येक (=एक एव) सत्य (=सिद्धांत) होते हैं, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते हैं०। (६) आवुसो! कैसे 'समवसट्ठेसन, (=सम्यग्-विमृष्टैषण) होता है? आवुसो! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है,०। (७) आवुसो! भिक्षु कैसे अनाविल-संकल्प होता है? आवुसो! भिक्षुका काम-संकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-संकल्प०, हिंसा-संकल्प०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु अनाविल (=निर्मल)-संकल्प होता है। (८) आवुसो! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है? ०भिक्षु०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है,०। (९) आवुसो! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है? आवुसो! भिक्षुका चित्त रागसे मुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार०। (१०) कैसे० सुविमुक्त-प्रज्ञ होता है? आवुसो! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०। ० मेरा मोह ०।०।

६—दश अशैक्ष्य (=अर्हत्)-धर्म—(१) अशैक्ष्य सम्यग्-दृष्टि। (२)० सम्यक्-संकल्प। (३) ० सम्यक्-वाक्। (४) ० सम्यक्-कर्मान्त। (५) ० सम्यक्-आजीव। (६) ० सम्यक्-व्यायाम। (७) ० सम्यक्-स्मृति। (८) ० सम्यक्-समाधि। (९) ० सम्यक्-ज्ञान। (१०) अशैक्ष्य सम्यक्-विमुक्ति।

"आवुसो! उन भगवान्०ने०।"

तब भगवान्‌ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

"साधु, साधु, सारिपुत्र! सारिपुत्र तूने भिक्षुओंको अच्छा सङ्गीति-पर्याय (=एकताका ढंग) उपदेशा।"

आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा; शास्ता (=बुद्ध) इससे सहमत हुए। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने (भी) आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

३४—दसुत्तर-सुत्त (३।११)

१—बौद्ध-मन्तव्यो की सूची उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानभागीय विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय साक्षात्करणीय धर्म,

ऐसा मैने सुना। एक समय भगवान् पाँचसौ भिक्षुओके बळे सघके साथ **चम्पामें गग्गरा पुष्करणी** के तीरपर विहार कर रहे थे।

वहाँ आयुष्मान् **सारिपुत्र**ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—"आवुसो भिक्षुओ!"

"आवुस!" कहकर उन भिक्षुओने ० उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—

"निर्वाणकी प्राप्ति और दु:खके अन्त करनेके लिये,
सारी गाँठोके खोलनेवाले **दशोत्तर** धर्मको कहता हूँ ॥१॥

१—बौद्ध मन्तव्यों की सूची[1]

१—**एकक**—आवुसो! (१) एक धर्म बहुत उपकारक है। (२) एक धर्म भावना करने योग्य है। (३) एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है। (४) एक धर्म प्रहातव्य (=छोळ देन योग्य) है। (५) एक धर्म=हानभागीय है। (६) एक धर्म विशेप भागीय है। (७) एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य (=समझनेमें अति कठिन) है। (८) एक धर्म उत्पादनीय है। (९) एक धर्म अभिज्ञेय (=विचारपूर्वक ज्ञातव्य) है। (१०) एक धर्म साक्षात्करणीय है।

१—कौन एक धर्म बहुत उपकारक है? कुशल धर्मोमें **अप्रमाद**। यही एक धर्म बहुत उपकारक है।

२—कौन एक धर्मकी भावना करने योग्य है? अनुकूल **कायगत-स्मृति**[2] (प्राणायाम आदि चार ध्यान)। इसी एक धर्मकी भावना करनी चाहिये।

३—कौन एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है? **आस्रव** (=चित्त-मल)-सहित उपादान किया जाननेवाला स्पर्श, यही एक धर्म परिज्ञेय है।

४—कौन एक धर्म प्रहातव्य है? अहभाव (=अहकार) यही एक धर्म प्रहातव्य है।

५—कौन एक धर्म हानभागीय (=अवनतिकी ओर ले जानेवाला) है? अ-योनिश मनस्कार। ०

६—कौन एक धर्म विशेपभागीय है? योनिश मनस्कार (=मूलके साथ विचारना)। ०

७—कौन एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य है? आनन्तरिक चित्त-समाधि। ०

८—कौन एक धर्म उत्पादनीय है? **अ-कोप्य(=अटल) ज्ञान**। ०

---

[1] मिलाओ, पृष्ठ २८२-३०१।
[2] देखो कायगतासति-सुत्तन्त (मज्झिमनिकाय ११९, पृष्ठ ४९४)।

९—कौन एक धर्म अभिज्ञेय है? सभी प्राणी आहारपर स्थित हैं। ०

१०—कौन एक धर्म साक्षात्करणीय है? अकोप्य (=अटल) चित्तविमुक्ति।

यही दस धर्म भूत (=वास्तविक) तथ्य=तथा=अवितथ, अन्-अन्यथा, (यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसम्बुद्ध (=बोध किये गये) हैं।

२-द्विक—आवुसो! दो धर्म बहुत उपकारक हैं, दो धर्मोंकी भावना करने योग्य है! दो धर्म परिज्ञेय हैं० दो धर्म साक्षात्करणीय हैं।

१—कौन दो धर्म बहुत उपकारक हैं?—स्मृति और सम्प्रजन्य। ०

२—कौन दो धर्म भावना करने योग्य हैं? शमथ और विपश्यना। ०

३—कौन दो धर्म परिज्ञेय हैं? नाम और रूप। ०

४—कौन दो धर्म प्रहातव्य हैं? अविद्या और भवतृष्णा (=आवागमनका लोभ)। ०

५—कौन दो धर्म हानभागीय हैं? दुर्वचन और पापोंकी मित्रता। ०

६—कौन दो धर्म विशेषभागीय हैं? सुवचन और कल्याणमित्रता। ०

७—कौन दो धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं? सत्त्वोंके संक्लेश (=मालिन्य)के जो हेतु=प्रत्यय, और विशुद्धिके हेतु प्रत्यय।

८—कौन दो धर्म उत्पादनीय हैं? दो ज्ञान—क्षयका ज्ञान और उत्पादका ज्ञान।

९—कौन दो धर्म अभिज्ञेय हैं? दो धातु—संस्कृत (स्कंध आदि) और असंस्कृत (=अ-कृत निर्वाण)। ०।

१०—कौन दो धर्म साक्षात्-करणीय है? विद्या और विमुक्ति। ०

ये बीस धर्म भूत ०।

३—त्रिक—० तीन धर्म ०।

१—कौन तीन धर्म बहुत उपकारक हैं? सत्पुरुषसहवास, सद्धर्मश्रवण, धर्मानुसार-आचरण।

२—कौन भावना करने योग्य हैं? तीन समाधि—वितर्क विचार सहित समाधि, अवितर्क-रहित विचारमात्र समाधि, वितर्क-विचार-रहित समाधि। ०।

३—कौन ० परिज्ञेय (=त्याज्य) हैं? तीन वेदनायें—सुखा, दुःखा, न सुखा न दुःखा। ०।

४—तीन धर्म प्रहातव्य हैं? तीन तृष्णायें—कामतृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

५—कौन ० हान-भागीय ०? तीन अकुशल-मूल (=पापकी जड़)—लोभ, द्वेष और मोह। ०।

६—कौन ० विशेषभागीय? तीन कुशल-मूल—अ-लोभ, अ-द्वेष और अ-मोह। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं? तीन निस्सरणीय धातु—कामों (=भोगों)से निस्सरण निष्कामता है। रूपोंसे निस्सरण अरूपता है। जो कुछ उत्पन्न=संस्कृत=प्रतीत्य-समुत्पन्न है उसका निस्सरण निरोध है। ०

८—कौन० उत्पादनीय हैं? तीन ज्ञान—अतीत अंशमें, भविष्य अंशमें, और वर्तमान अंशमें।

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं? तीन धातु—काम धातु रूप धातु और अरूप-धातु। ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय हैं? तीन विद्यायें—पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान, सत्त्वोंके जन्म मरणका ज्ञान, आस्रवोंके क्षय होनेका ज्ञान। ०

ये तीस धर्म भूत ०।

४—चतुष्क—० चार धर्म ०—

१—कौन चार धर्म बहुत उपकारक हैं? चार चक्र—अनुकूल देशमें वास, सत्पुरुषका आश्रय, अपनी सम्यक् प्रणिधि (=ठीक अभिलाषा), पूर्वजन्मके उपार्जित पुण्य।

२—कौन ० भावना करने योग्य है ? चार स्मृतिप्रस्थान—भिक्षु कायामें कायानुपश्यी होकर विहार करता है ०[1], वेदनामे वेदनानुपश्यी ०, चित्तमे ०, धर्ममें ०।

३—कौन ० परिज्ञेय हैं ? चार आहार—स्थूल या सूक्ष्म कौर करके खाया जानेवाला आहार, स्पर्श ०; मन सचेतना ०, और विज्ञान ०।

४—कौन ० प्रहातव्य है ?

चार ओघ (=बाढ)—काम-ओघ, भव-ओघ, दृष्टि-ओघ, और अविद्या-ओघ।

५—कौन ० हानभागीय ० ? चार योग (=मिलन)—काम-योग, भव-योग, दृष्टि-योग और अविद्या-योग।

६—कौन ० विशेषभागीय० ? चार विसयोग (=वियोग)—कामयोग विसयोग, भवयोग०, दृष्टियोग ० और अविद्यायोग ०।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य ० ? चार समाधि—हानभागीय समाधि, स्थितिभागीय विशेष-भागीय समाधि, निर्वेधभागीय समाधि।०

८—कौन उत्पादनीय है ? चार ज्ञान—धर्म-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, सम्मति-ज्ञान। ०।

९—कौन अभिज्ञेय है ? चार आर्यसत्य—दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग।०

१०—कौन साक्षात्करणीय है ? चार श्रामण्यफल—स्रोतआपत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्-फल। ०

ये चालीस धर्मभूत ०।

५—पचक—० पाँच धर्म ०।

१—कौन ० पाँच धर्म बहुत उपकारक हैं ? पाँच प्रधान-अङ्ग—(१) भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधिमें श्रद्धा रखता है—वे भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०। (२) नीरोग=आतंक रहित होता है, न अधिक शीतल न अधिक उष्ण समविपाकवाली योगाभ्यासके योग्य पाचनशक्तिसे युक्त होता है। (३) शठ नही होता, मायावी नही होता, शास्ताके पास, विद्वानोंके पास, या सब्रह्मचारियो-के पास अपनेको यथार्थ यथाभूत प्रकट करता है। (४) अकुशल धर्मोको दूर करनेके लिये, कुशल धर्मोके उत्पादके लिये, साहसी दृढपराक्रम हो वीर्यवान् होकर विहार करता है। कुशल धर्मो स्थामवान्=दृढ-पराक्रमहो, भगोळा नही होता। (५) निर्वेधिक, उदयास्तगामिनी और सम्यक् दुःखक्षयगामिनी आर्य प्रज्ञासे युक्त होना है।

२—कौन भावना करने योग्य है ? पाँच अङ्गोवाली सम्यक्-समाधि—प्रीति स्फुरण (=प्रीतिमे व्याप्त होना), सुख ०, चित ०, आलोक ०, प्रत्यवेक्षण-निमित्त।

३—कौन ० परिज्ञेय है ? पञ्च उपादान-स्कन्ध—रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान ०।

४—कौन ० प्रहातव्य है ? पाँच नीवरण—कामच्छन्द ० (=भोगोका लोभ), व्यापाद (=द्रोह) ०, स्त्यान-मृद्ध (=काय-मनके आलस्य), औद्धत्य—कौकृत्य (=हिचकिचाहट), विचिकित्सा (=सदेह)।०

५—कौन ० हानभागीय ० ? पाँच चित्तके कील (=काँटे)—भिक्षु शास्ताके प्रति सदेह =विचिकित्सा करता है, उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखता, प्रसन्न नही होता। उसका चित्त सयम, अनुयोग और प्रधान (=अनवरत अध्यवसाय)की ओर नही झुकता। यह पहला चित्तका कील है। फिर भिक्षु

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

चुपलने मात्र भी; उस प्रकारके लाभोंको बाँटकर भोगनेवाला होता है; शीलवान् स-ब्रह्म-चारियों सहित भोगनेवाला होता है; यह भी०। (५) ०जो अखड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशंसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी शील है, वैसे शीलोंमें स-ब्रह्म-चारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ०जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है, (जोकि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है; यह भी०।

२—कौन ० धर्म भावना करने योग्य हैं? छै **अनुस्मृतिस्थान**—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म-अनुस्मृति, सघ-अनुस्मृति, शील-अनुस्मृति, त्याग-अनुस्मृति, देव-अनुस्मृति।०

३—कौन ० धर्म परिज्ञेय हैं? छै **आध्यात्मिक आयतन**—चक्षु-आयतन, श्रोत्र-आयतन, घ्राण-आयतन, जिह्वा-आयतन, काय-आयतन और मन-आयतन।०

४—कौन ० प्रहातव्य हैं? छै **तृष्णा-काय** (=० समूह)—रूप-तृष्णा, शब्द ०, गन्ध ०, रस ०, स्पर्श ०, धर्म-तृष्णा। ०

५—कौन ० हानभागीय हैं? छै **अगौरव**—भिक्षु शास्ता (=गुरु)मे गौरव सम्मान नही रखता। धर्म ०। सघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसस्तार (=स्वागत)मे गौरव ० नही रखता।०

६—कौन ० विशेषभागीय हैं? छै **गौरव**।—भिक्षु शास्तामें **गौरव** ० रखता है। धर्म ०। सघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसस्तारमें गौरव रखता है। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं? छ **निस्सरणीय धातु**—(१) आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया, किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहे, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करे, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नही है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नहीं कहते। यह मुमकिन नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो, और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह सभव नही। आवुसो! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (४) ०उपेक्षा चित्तविमुक्तिको भावित० किया, तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये है,०। (५) अनिमित्तता चित्तविमुक्तिको भावित० किया, तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है'।०। (६) ०'अस्मि' (=मैं हूँ), मेरा चला गया, 'यह मैं हूँ' नही देखता, तो भी विचिकित्सा (=संदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये है०।'

८—कौन ० उत्पादनीय हैं? अनित्य-सज्ञा, अनित्यमें दुःख-सज्ञा, दुःखमें अनात्म-सज्ञा, प्रहाण ०, विराग ०, निरोध-सज्ञा ०।

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं? छै **अनुत्तर** (=अनुपम)—दर्शन-अनुत्तर, श्रवण-अनुत्तर, लाभ-अनुत्तर, शिक्षा-अनुत्तर, परिचर्यानुत्तर, अनुस्मृत्यानुत्तर। ०

१०—कौन साक्षात्करणीय हैं? छै **अभिज्ञा**—भिक्षु अनेक प्रकारकी सिद्धियों (=ऋद्धि-बलो)को प्राप्त करता है ०[1] ब्रह्मलोक तक को शरीरसे वशमे कर लेता है। अलौकिक दिव्य श्रोत-धातुसे

[1] देखो पृष्ठ ३०।

दिव्य और मानुष, दूर और निकटके दोनों शब्दोंको सुनता है, दूसरे दूसरे जीवों, और दूसरे मनुष्योंके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—सराग या विराग०। अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है। आस्रवोंके क्षयसे अनास्रव चित्तविमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको यहीं जान, और साक्षात्कार विहार करता है।

ये आठ धर्म भूल०।

७—सप्तक—० सात धर्म०।

१—कौन सात धर्म बहुत उपकारक हैं? सात आर्यधन—श्रद्धा, शील, ह्री (=पापभीरु लज्जा), आत्म-संयम, ज्ञान, पुण्य और प्रज्ञा।

२—कौन भावना करने योग्य हैं? सात सम्बोध्यङ्ग—स्मृति सम्बोध्यङ्ग, धर्मविचय सम्बोध्यङ्ग, वीर्य सम्बोध्यङ्ग, प्रीति०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा०।

३—कौन० परिज्ञेय हैं? सात विज्ञानस्थितियाँ—

सात विज्ञान-स्थिति—(१) आवुसो! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (=नाम)वाले हैं, जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम विज्ञान स्थिति है। (२) ० नाना-काय किन्तु एक-संज्ञावाले, जैसे कि प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव०। (३) एक काया नाना-संज्ञावाले, जैसे कि आभास्वर देवता०। (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता०। (५) आवुसो! कोई कोई सत्त्व रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है। (६) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह छठी विज्ञान स्थिति है, (७) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त है। यह सातवीं विज्ञान स्थिति है।

४—कौन० प्रहातव्य हैं? सात अनुशय—कामराग-अनुशय, प्रतिघ०, दृष्टि०, विचिकित्सा०, मान०, भव राग०, और अविद्या-अनुशय।

५—कौन० हानभागीय हैं? सात असद्धर्म—भिक्षु अश्रद्ध होता है, अह्रीक०, अन्-अपत्रपी०, अल्प श्रुत०, कुसीत०, मूढ स्मृति०, दुष्प्रज्ञ०।

६—कौन० विशेषभागीय हैं? सात सद्धर्म—भिक्षु श्रद्धालु होता है, ह्रीमान्०, अपत्रपी०, बहुश्रुत०, आरब्धवीर्य०, उपस्थित-स्मृति०, प्रज्ञावान्०।०

७—कौन० दुष्प्रतिवेध्य हैं? सात सत्पुरुष-धर्म—भिक्षु धर्मज्ञ होता है, अर्थज्ञ, आत्मज्ञ, मात्रज्ञ, कालज्ञ, परिषज्ज्ञ, पुद्गल (=व्यक्तिज्ञ)।

८—कौन० उत्पादनीय हैं? सात संज्ञायें—अनित्य-संज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदिनव (दोष), प्रहाण०, विराग० और निरोध-संज्ञा।०

९—कौन० अभिज्ञेय हैं?

सात [1]निर्देश-वस्तु—(१) आवुसो! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करने में तीव्र-

---

[1] अ० क० "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगंठ (=जैन साधु)को निर्दश कहते हैं। वह (मरा निगंठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता।" इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विंश, निस्त्रिंश, निश्चत्वारिंश, निष्पञ्चाश कहते हैं। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राम में विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्को कहा। भगवान्ने कहा—'आनन्द!

छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम-रहित नहीं होता। (२) धर्म-निशान्ति (=विपश्यना)में तीव्र-छन्द होता है, भविष्य में भी धर्म-निशान्ति प्रेम-रहित नहीं होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग)में ०। (४) प्रतिसल्लयन (=एकांतवास)में ०। (५) वीर्यारम्भ (=उद्योग)में ०। (६) स्मृतिके निप्पाक(=परिपाक)में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन)में ०।

१०—(१) फिर क्षीणास्रव भिक्षुका चित्त विवेककी ओर झुका=प्रवण=प्राग्भार होता है। (२) और विवेकमें स्थित होता है। (३) निष्कामनामें रत होता है। (४) आस्रवोंके उत्पन्न करनेवाले सभी धर्मोंसे रहित होता है। (५) ० चारो स्मृति प्रस्थान भावित होते हैं, सुभावित। ० (६) ० पाँच इन्द्रियाँ भावित और सुभावित होती हैं ०। (७) ० आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग भावित और सुभावित होते हैं ०। यह भी उसका बल होता है, जिसके सहारे वह जानता है कि मेरे सभी आस्रव क्षीण हो गये।

ये सत्तर धर्म भूत ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

८—अष्टक—० आठ धर्म ०।

१—"कौन ० बहुत उपकारक हैं? आठ हेतु प्रत्यय, जो कि अ प्राप्त आदि-ब्रह्मचर्य (=शुद्ध अभ्यास) सम्बन्धिनी प्रज्ञाकी प्राप्ति और प्राप्तकी वृद्धि, विपुलता और भावनाके पूरा करनेके लिये है। कौन आठ?—(१) भिक्षु शास्ता या दूसरे गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारीके आश्रयसे विहार करता है, जिससे उसमें तीव्र ह्री (=लज्जा)=अपत्रपा, प्रेम और गौरव वर्तमान रहता है। यह प्रथम हेतु और प्रथम प्रत्यय ० भावना पूरा करनेके लिये है। (२) ० आश्रयसे विहार करता है ०, और समय समयपर उनके पास जाकर प्रश्नोंको पूछता है—'भन्ते! यह कैसे? इसका क्या अर्थ है?' उसे वे आयुष्मान् अ-स्पष्टको स्पष्ट, अ-सरलको सरल करते हैं, अनेक प्रकारसे शंका-स्थानीय बातोंमें शंका दूर करते हैं। यह दूसरा हेतु ०। (३) उस धर्मको सुनकर शरीर और मन दोनोंसे पालन करता है—यह तीसरा हेतु ०। (४) ० भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष संवर (=भिक्षुनियमों)में संयत होकर विहार करता है, आचारविचार-सम्पन्न होता है, थोड़ेमें भी दोषोंमें भय देखता है, शिक्षापदोंको मन लगाकर सीखता है। यह चौथा हेतु ०। (५) ० भिक्षु बहुश्रुत और श्रुतसंचयी (=पढ़ेको याद रखनेवाला) होता है। जो धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त कल्याण—सार्थक=सव्यञ्जन हैं जो केवल=शुद्ध, परिपूर्ण ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं, उस प्रकारके धर्म उसने बहुत सुने धारण किये होते हैं, वचनसे परिचित, मनसे आलोचित, दर्शनसे खूब अच्छी तरह जाने होते हैं। यह पाँचवाँ हेतु ०। (६) ०बुराइयों (=अकुशल धर्मों)के नाश (=प्रहाण)के और कुशल धर्मोंको पैदा करनेके लिये, भिक्षु आरब्धवीर्य (=यत्नशील) होकर विहार करता है।०। यह छठा हेतु०। (७) ०भिक्षु स्मृतिमान् होता है, परम स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। बहुत दिन पहलेके किये या कहेको स्मरण करता है। यह सातवाँ हेतु०। (८) ०भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्धोंके उदय (=उत्पत्ति) और व्यय (=विनाश)को देखते हुए विहार करता है—यह रूप है, यह रूपका समुदय, यह रूपका अस्त हो जाना, यह वेदना०, संज्ञा ०, संस्कार ० और विज्ञान ०। यह आठवाँ हेतु ०।

यह तीर्थंकरोंका ही वचन नहीं है; मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (=अर्हत, मुक्त) दस वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दस-वर्ष नहीं होता, सिर्फ दस वर्ष ही नहीं नव वर्ष-एक वर्ष-एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नहीं होता। किसलिए? (पुन) जन्मके न होनेसे—।"

२—कौन ० भावना करने योग्य है ? आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यग् दृष्टि, सम्यग्-संकल्प, सम्यग्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम, सम्यग्-स्मृति, सम्यग्-समाधि।

३—कौन ० परिज्ञेय है ? आठ लोकधर्म—लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुःख।०

४—कौन ० प्रहातव्य है ? आठ झूठी बातें—मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वाग्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या-समाधि।०

५—कौन ० हानभागीय है ?

आठ कुसीत (=आलस्य) वस्तु—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको (जब) कर्म करना होता है, उसको (मनमें) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्या न मैं लेट (=चुप) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नहीं करता। यह प्रथम कुसीत-वस्तु है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने कामकर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया, क्यों न मैं पळ रहूँ। वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमें मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं पळ रहूँ।' वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमें मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं मिलता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यों न मैं लेट रहूँ०। (६) ० पिंडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मैं ० पिंडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अस्वस्थ है, मानो माषका ढेर है, क्यों न पळ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोळी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है, पळ रहना उचित है, क्यों न मैं पळ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

६—कौन ० विशेषभागीय ?

आठ आरब्ध वस्तु—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये, बुद्धोंके शासन (=धर्म)को मनमें लाना मुझे सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ। सो ० उद्योग करता है, यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—मैं कामकर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धोंके शासनको मनमें न कर सका', क्या न मैं ० उद्योग करूँ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० सूखा रूखा भोजन पूरा पाता है, ० सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ़ जाय, क्यों न मैं०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यों न मैं०[1]।

---

[1]हानभागीयकी भाँति ही।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य है ? ब्रह्मचर्य-वासके आठ अक्षण=असमय (है) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, सबोधिगामी, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) धर्मको उपदेश करते है, (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नरक)में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)मे उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य विषय (=प्रेत-योनि)मे उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव निकाय (=देव-योनि)में ०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोंमें अ-पडित म्लेच्छोंमे उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओंकी गति (=जाना) नही, न भिक्षुणियोंकी, न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी०। (७) ० **मध्यदेश** (=मज्झिमजनपद)में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टा मत)=विपरीत-दर्शनवाला होता है—दान दिया (-कुछ) नही है, यज्ञ किया ०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोका फल=विपाक नही, यह लोक नही, परलोक नही, माता नहीं, पिता नही, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नही, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक् प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नही, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ०। (८) ० मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड मूक (=भेळसा गूँगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमे असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९)तथागत ० लोकमे उत्पन्न नही होते ० ० मध्य-देशमे उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञावान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमे समर्थ होता है०।

८—कौन० उत्पाद्य है ? आठ **महापुरुषवितर्क**—यह धर्म अल्पेच्छो (त्यागियो)का है, महेच्छोका नही, संतुष्टका, असंतुष्टका नही, एकान्तवासप्रियका, जनसमारोहप्रियका नही, उत्साहीका, आलसीका नही, उपस्थितस्मृतिका, मूढस्मृतिका नही, समाहित (=एकाग्रचित्त)का, असमाहितका नही, प्रज्ञावान्का, मूर्खका नही, प्रपञ्च-रहित पुरुषका, प्रपञ्चीका नही। ०

९—कौन ० अभिज्ञेय है ?

आठ **अभिभ्वायतन**—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्म) रूप-संज्ञी (=रूपकी ख्याल लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है—'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ' इस संज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (३) ० अध्यात्ममे अरूपसंज्ञी, बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (४) ० अध्यात्मम अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको ०। (५) ० अध्यात्ममे अरूपसंज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील निदर्शन, नील निर्भास रूपोको देखता है, जैसे कि नील, नीलवर्ण, नील निदर्शन अल्सीका फूल, या जैसे दोनो ओरसे रगळा (=पालिश किया) नील० काशीका वस्त्र, ऐसे ही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील० रूपोको देखता है। उन्हे अभिभवनकर०। (६) ० अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीत वर्ण, पीत निदर्शन, पीत-निर्भास रूपोको देखता है, जैसे कि ० **कर्णिकार** पुष्प, या जैसे ० पीला ० काशीका वस्त्र ०। (७) ० ० बाहर लोहित (=लाल) ० रूपोको देखता है, जैसे कि ० **बन्धु-जीवक** पुष्प, या जैसे ० लोहित ० काशीका वस्त्र ०। (८) ० ० बाहर अवदात (=सफेद) ० रूपोको देखता है, जैसे कि अवदात ० **ओषधी-तारक** (=शुक्र), या जैसे अवदात ० बनारसी वस्त्र। ०

१०—किनको साक्षात् करना चाहिये ? आठ **विमोक्ष**—(१) (स्वयं) रूपी (=रूपवान्) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममे अरूपी-संज्ञी बाहर रूपोको देखता है०। (३) शुभ (=शुभ्र)हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है ०। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-संज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी संज्ञा (=ख्याल)के मनमें

न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है ०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नहीं संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

ये अस्सी धर्म भूत ०।

९—नवक—० नव धर्म ०।

१—कौन बहुत उपकारक—ठीकसे मनमें लानेवाले नव धर्म है?—ठीकसे मनमें लानेसे प्रमोद उत्पन्न होता है, प्रमुदितको प्रीति होती है, प्रीतियुक्त मनवालेका शरीर शान्त ०। शान्त शरीर वाला सुख अनुभव करता है, सुखीका चित्त एकाग्र होता है। एकाग्र चित्त ठीकसे जानता देखता है। ठीकसे जानते देखते निर्वेद (=उदासीनता) को प्राप्त होता है। उदास हो विरक्त होता है। विरागसे मुक्त होता है। यह नव ०।

२—कौन ०भावना करने योग्य है? नव पारिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग—शील-विशुद्धि पारिशुद्धि प्रधानीय अङ्ग, चित्त विशुद्धि ०, दृष्टि ०, कांक्षावितरण०, मार्गामार्गज्ञान-दर्शन०, प्रतिपद्ज्ञानदर्शन ०, ज्ञानदर्शन ०, प्रज्ञा ०, विमुक्ति। ०

३—कौन ०परिज्ञेय है? नव सत्वावास—नानाकाया और नानासंज्ञावाले सत्व हैं, जैसे—मनुष्य—कितने देव और कितने औपपातिक। यह प्रथम सत्वावास है।

० एकात्मसंज्ञा ० जैसे—प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव। यह दूसरा०।

एककाया और नानासंज्ञा ० जैसे—आभास्वर देव। तीसरा ०।

एककाया और एकसंज्ञा ०, जैसे—शुभकिकृत्स्न देव। यह चौथा।

असंज्ञी और अप्रतिसंवेदी सत्व है जैसे—असंज्ञीसत्व देव। यह पाँचवाँ।

सर्वथा रूपसंज्ञाओंके हट जानेसे, प्रतिघ संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानात्मसंज्ञाओंको ठीकसे मनमें न लानेसे, अनन्त आकाश करके आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त करता है। यह छठा।

सर्वथा आकाश०को छोड़ अनन्त विज्ञान ०। यह सातवाँ।

० नैवसंज्ञानासंज्ञाको प्राप्त करता है। यह नवाँ।

४—कौन ०प्रहातव्य है? नव तृष्णामूलक धर्म—तृष्णाके होनेसे खोजना, खोजनेसे पाना, ० विनिश्चय, ० छन्दराग, ० अध्यवसान, ० परिग्रह ० मात्सर्य, ० आरक्षा, आरक्षाधिकरणके होनेसे दण्डादान शस्त्रादान, कलह विग्रह विवाद, 'तू तू, मैं मैं' चुगली और झूठ बोलना होते है, अनेक पाप, अकुशल धर्म होने लगते है। ०

५—कौन ० हानभागीय है? नव आघात (=द्वेष) वस्तु—'मेरा अनर्थ किया है,' (सोच) द्वेष करता है। अनर्थ करता है,' ०, ०करेगा०। मेरे प्रिय मनापका अनर्थ किया है ०, ०करता०, करेगा०।

मेरे अप्रिय=अमनापका अर्थ किया ० करता० करेगा।

६—कौन ० विशेष भागीय है? नव आघात-प्रतिविनय (=द्रोहका हटाना) मेरा अनर्थ किया, तो उसमें क्या हुआ?' अपने द्वेषको दबाता है। ० करता है ० अनर्थ करेगा ०।

० प्रिय=मनापका अनर्थ किया। ० करता ० करेगा ० ० अपने द्वेषको दबाता है।

अप्रिय और अमनापका अर्थ किया। ० करता ० करेगा द्वेषको दबाता है।

७—कौन०दुष्प्रतिवेध्य है? नव नानात्व—धातुओंके नानात्वसे स्पर्श नानात्व उत्पन्न होता है, स्पर्श-नानात्वसे ० वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है, वेदना-नानात्वसे संज्ञा नानात्व०, संज्ञा-नानात्वसे

सक्त्प-नानात्त्व ०, सकल्प-नानात्त्वमे छन्द-नानात्त्व ०, छन्द-नानात्त्वसे परिदाह-नानात्त्व०, ० पर्येषण-नानात्त्व ०, ० लाभ-नानात्त्व ०, ०

८—कौन ० उत्पाद्य है ? नव सज्ञा—अशुभ, मरण, आहारमें प्रतिकूल, सारे ससारमें अ-रति, अनित्यमे दु ख, दु खमे अनात्म, प्रहाण और विरागसज्ञा।

९—कौन अभिज्ञेय है ? नव अनपूर्व (=क्रमश)-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आर्किचन्यायतन ०। (८) ० नैवसज्ञाना-सज्ञायतन ०। (९) ० सज्ञा-वेदयित निरोध ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय है ? नव अनुपूर्व निरोध—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तकी काम सज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका आश्वास प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप सज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-सज्ञा ०। (७) आर्किचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन सज्ञा ०। (८) नैव-सज्ञा-नासज्ञायतन प्राप्तकी आर्किचन्यायतन सज्ञा ०। (९) सज्ञा वेदयित निरोध-प्राप्तकी सज्ञा (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती है।

ये नब्बे धर्म भूत०।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

१०—दशक—० दश धर्म ०।

(१) "कौन दश धर्म बहुत उपकारक है ? दश नाथ-करण धर्म—(१) आवुसो ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-सवर (=कवच)से सवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयो (=वद्य)में भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोको) ग्रहणकर शिक्षापदोको सीखता है। जो यह आवुसो ! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-सचय वान् होता है। जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक=सव्यजन है, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहत है; वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुप्रेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अच्छी तरह देखे) होते है, यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ० भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-सम्प्रवक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ० भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुरभाषिता) वाले धर्मोसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है), यह भी०। (५) ० भिक्षु सब्रह्मचारियोके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते है, उनमें दक्ष=आलस्य-रहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमे समर्थ, होता है। ० यह भी०। (६) ० भिक्षु अभिधर्म (=सूत्रमें), अभि विनय (=भिक्षु नियमोमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वय उपदेश करनेमें उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी ०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है ०। (८) ० भिक्षु अकुशल-धर्मोके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढ़पराक्रम होता है। कुशल-धर्मोमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोड़ा नहीं) होता ०। (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है, बहुत पुराने किये, बहुत पुराने भाषण कियेका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है ०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य निर्वेधिक (=अन्ततक तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है ०।

२—"कौन दश धर्म भावना करने योग्य है?—दश कृत्स्नायतन—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे आड़े-बेड़े अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब पृथिवी) जानता है। (२) ० आप-कृत्स्न ०। (३) ० तेज-कृत्स्न ०। (४) ० वायु-कृत्स्न ०। (५) ० नील-कृत्स्न ०। (६) ० पीत-कृत्स्न ०। (७) ० लोहित-कृत्स्न ०। (८) ० अवदात-कृत्स्न ०। (९) ० आकाश-कृत्स्न ०। (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ०।

३—"कौन दश धर्म परिज्ञेय है?—दश आयतन (=इन्द्रिय और विषय)। (१) चक्षु-आयतन, (२) रूप-आयतन, (३) श्रोत्र ०, (४) शब्द ०, (५) घ्राण ०, (६) गंध ०, (७) जिह्वा ०, (८) रस ०, (९) काय-आयतन, (१०) स्प्रष्टव्य-आयतन।

४—"कौन दश धर्म प्रहातव्य है?—दश मिथ्यात्व (=झूठा)। (१) मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणा), (२) मिथ्या-संकल्प, (३) मिथ्या-वचन, (४) मिथ्या-कर्मान्त (=झूठा कारबार), (५) मिथ्या-आजीव (=झूठी रोजी), (६) मिथ्या-व्यायाम (=० उद्योग), (७) मिथ्या-स्मृति, (८) मिथ्या-समाधि, (९) मिथ्या ज्ञान, (१०) मिथ्या-विमुक्ति। ०

५—"कौन दश धर्म हानभागीय है?—दश अकुशल कर्मपथ (=दुष्कर्म)। (१) हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) झूठ, (५) चुगली, (६) कटुभाषण, (७) बकवास, (८) लोभ, (९) द्रोह, (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टा मत)। ०

६—"कौन दश धर्म विशेषभागीय है?—दश कुशल कर्मपथ (=पुण्यके कर्म)। (१) हिंसा-त्याग, (२) चोरीत्याग, (३) व्यभिचारत्याग, (४) झूठत्याग, (५) चुगलीत्याग, (६) कटुभाषण-त्याग, (७) बकवासत्याग, (८) लोभ-त्याग, (९) द्रोह-त्याग, (१०) उल्टी मतका त्याग। ०

७—"कौन दश धर्म (=बातें) दुष्प्रतिवेध्य है?—दश आर्यवास[2] (१) आवुसो! भिक्षु पाँच अंगो (=बातो) से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छै अंगोसे युक्त (=षडङ्ग-युक्त) होता है। (३) एक आरक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय) वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेक-सच्च (होता है)। (६) समवयसट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प०। (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार०। (९) सुविमुक्त चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ ०। (१) आवुसो! भिक्षु कैसे पाँच अंगोसे हीन होता है? यहाँ आवुसो! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण ०, स्त्यान-मृद्ध ०, औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो भिक्षु षडङ्ग-युक्त होता है? आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन, स्मृति-सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोतसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर ०, मनसे धर्म जानकर ० ०। (३) आवुसो! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो! भिक्षु संख्यानकर (=समझकर) एकको करता

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२। [2] देखो संगीतिपरियाय सुत्त ३३, पृष्ठ ३०१।

है, सख्यानकर एकको स्वीकार करता है, सख्यानकर एकको हटाता है, सख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो! भिक्षु कैसे पनुन-पच्चेक-सच्च होता है? आवुसो! जो वह (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धात) होते है, वह सभी (उसके) पणुन=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते है०। (६) आवुसो! कैसे समवयसट्ठेसन, (=सम्यक्-विसृष्टैपण) होना है? आवुसो! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा ०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो! भिक्षु कैसे अनाविल-सकल्प होता है? आवुसो! भिक्षुका काम-सकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-सकल्प ०, हिंसा-सकल्प ०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु अनाविल(=निर्मल)-सकल्प होता है। (८) आवुसो! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है? ० भिक्षु ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है? आवुसो! भिक्षुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार ०। (१०) कैसे ० सुविमुक्ति-प्रज्ञ होना है? आवुसो! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०।० मेरा मोह ०।०।

८—"कौन दस धर्म उत्पादनीय है?—दस सज्ञा (=ख्याल)। (१) अ-शुभसज्ञा (=वस्तुओंकी बनावटमे गदगी देखना), (२) मरण-सज्ञा, (३) आहारमें प्रतिकूलताका ख्याल, (४) सब ससारमें अनभिरति (=अनासक्ति)-सज्ञा, (५) अनित्य-सज्ञा, (६) अनित्यमें दुःख-सज्ञा, (७) दुःखमें अनात्म-सज्ञा, (८) प्रहाण(=त्याग)-सज्ञा, (९) विराग-सज्ञा, (१०) निरोध (=नाश)-सज्ञा०।

९—"कौन दस धर्म अभिज्ञेय है?—दस निर्जर (=जीर्ण करनेवाले, नाशक) वस्तु। (१) सम्यग्-दृष्टि (=ठीक मत)से इस (पुरुष)की मिथ्या-दृष्टि जीर्ण होती है, और जो मिथ्या-दृष्टिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती है, वह भी उसकी जीर्ण होती है। सम्यग्-दृष्टिके कारण अनेक अच्छाइयाँ (=कुशल धर्म=पुण्य) भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती है, (२) सम्यक्-सकल्पसे उसका मिथ्या-सकल्प जीर्ण होता है०। (३) सम्यक्-वचनसे इसका मिथ्या-वचन जीर्ण होता है०। (४) सम्यक्-कर्मान्त (=ठीक कारबार)से उसका मिथ्या-कर्मान्त जीर्ण होता है०। (५) सम्यग्-आजीव (=ठीक रोजी)से उसका मिथ्या-आजीव जीर्ण होता है०। (६) सम्यग्-व्यायाम (=ठीक उद्योग)से उसका मिथ्या-व्यायाम जीर्ण होता है०। (७) सम्यक्-स्मृतिसे उसकी मिथ्या-स्मृति जीर्ण होती है०। (८) सम्यक्-समाधिसे उसकी मिथ्या-समाधि जीर्ण होती है०। (९) सम्यग्-ज्ञानसे उसका मिथ्या ज्ञान जीर्ण होता है०। (१०) सम्यग्-विमुक्ति (=ठीक मुक्ति)से उसकी मिथ्या-विमुक्ति जीर्ण होती है। और जो मिथ्या-विमुक्तिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती है, वह भी उसकी जीर्ण होती है। सम्यग्-विमुक्तिके कारण अनेक अच्छाइयाँ भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती है। यह दस धर्म अभिज्ञेय है।

१०—"कौन दस धर्म साक्षात्कर्तव्य है?—दस अशैक्ष्यधर्म—(१) अशैक्ष्य (=अर्हत्, =मुक्त पुरुष)-सम्यग्-दृष्टि, (२) ० सम्यक्-सकल्प, (३) ० सम्यग्-वाक्—(४) ० सम्यक्-कर्मान्त, (५) ० सम्यग्-आजीव, (६) ० सम्यग्-व्यायाम, (७) ० सम्यक्-स्मृति, (८) ० सम्यक्-समाधि, (९) ० सम्यग्-ज्ञान, (१०) अ-शैक्ष्य सम्यग्-विमुक्ति। यह दस धर्म साक्षात्-कर्तव्य है।

"इस प्रकार ये सौ धर्म (=वस्तुये) भूत, तथ्य=तथा=अ-वितथ=अन्-अन्यथा, सम्यक् (=यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसबुद्ध (=बोध किये गये) है।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

(इति पाथिकवग्ग ॥३॥)

दीघनिकाय समाप्त ॥

परिशिष्ट

१—उपमा-सूची

२—नाम-अनुक्रमणी

३—शब्द-अनुक्रमणी